प्रबन्धकर्ता—
श्री बालमुकन्द जैन सर्राफ (रावलपिण्डी वाले)
c/o पिण्डी जैन ज्यूलर्स
गुरद्वारा रोड, करौलबाग, दिल्ली—५

वि० सवत् २०१४	प्रथम सस्करण	वीर निर्वाण सं० २४८३
ई० सन् १९५८	११००	आ० सोहन संवत् २२

मूल्य—पाच रुपये

मुद्रक—
श्री जगदेवसिंह शास्त्री 'सिद्धान्ती'
सम्राट् प्रेस,
पहाडी धीरज, देहली

समर्पण

उन्ही सत पुरुष स्व० आचार्य पजाब केशरी
श्री काशीराम जी महाराज जिन के चरणो
मे वर्षो ज्ञानार्जन का अनुपम अवसर पा
अतुल शाति, गहन गाभोर्य तथा निर्मल
चारित्र्य आदि जोवनोत्कर्ष मार्गो की
अमूल्य प्रेरणा मिली उनकी
पवित्र स्मृति मे

तथा

परम स्नेही, महामना दीर्घ तपस्वी सरलात्मा
श्रद्धेय श्री निहालचन्द्र जी महाराज जिन के
अनुग्रह का हाथ सदा मेरे सिर पर रहा है
करकमलो मे सहर्ष, सभक्ति सादर
" समर्पित

दिल्ली कमला नगर
ता० २६-१-५८

विनीत—
"शुक्ल मुनि"

प्रकाशकीय निवेदन

—०:+०:—

साहित्य भी जीवन-निर्माण के साधनो मे से एक मुख्य साधन है। यह वर्तमान भूत और भविष्यत् त्रिकाल का द्रष्टा तथा परिचायक है। इसके अभाव मे वैयक्तिक, सामाजिक तथा धार्मिक नियमो का प्रचार तथा प्रसार नही हो सकता। क्योकि मानव-सिद्धान्तो तथा मनोगत विचारो को दूसरे तक पहुचाने के दो ही साधन है—वक्तृत्व और लेखन। वक्तृत्व से प्रचार सीमित तथा अस्थायी रहता है। अत उन्ही विचारो को जब आलेखित कर दिया जाता है तो जन जन तक पहुच जाते है।

फिर वर्तमान युगीन मानव की आशाये तथा आवश्यकताये इतनी बढ चुकी है कि उसके भरसक प्रयत्न करने पर भी पूर्ण नही हो पाती जिस से वह सदा अशान्त बना रहता है। अत अपने अशान्त एव निराश मन को शान्त करने के लिए नाना प्रकार के मनोरजक कार्यो का आयोजन करता है। वे मनोरजक कार्य उसके मन को स्थायी शान्ति दिला सके या न दिला सके किन्तु साहित्य तो उसके निराश एव अशान्त मन को आशा तथा सतोष के स्थायी भाव प्रदान करता है। अधिक तो क्या मानव से महामानव बन जाने को अन्तर मे प्रेरणा तथा स्फूर्ति का जागरण करता है। क्योकि साहित्य जीवन का जीता जागता प्रतीक है।

मन्त्री श्री जी का प्रस्तुत ग्रन्थ भी एक जीवनोपयोगी साधन बनेगा। यह एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है जिसमे आज से लगभग चौरासी हजार वर्ष पूर्व के भारत की स्थिति, कार्यकलाप तथा जीवन के प्रति दृढ विश्वास आदि का दिग्दर्शन कराता है। साथ-साथ उस समय के

मनुष्यो के मनोविकार, चारित्र्य आदि से होने वाले जीवन के परिवर्तन का द्योतक भी है। यह ग्रन्थ जैन कथा साहित्य का अमूल्य पुष्प बनेगा जिसे कि महाराज श्री ने वर्षों कठिन परिश्रम करके आधुनिक शैली मे तैयार किया है।

वास्तव में ऐसे महाग्रन्थ की समाज को आवश्यकता भी थी। क्योकि समाज अधिकाँश रूप मे जैन मान्यतानुसार श्री कृष्ण की नीति, चरित्र तथा पाण्डवो का धैर्य कस की दुष्टता, जरासध की अधिकार-लिप्सा और महाभारत का मूल कारण क्या था इससे अनभिज्ञ था। यह ग्रन्थ कुछ अपनी मौलिक विशेषताओ को साथ लेकर उपरोक्त अभावो की पूर्ति करता हैं। सब से बडी विशेषता इस ग्रन्थ की मुझे यही पसन्द आई कि यह देवनागरी लिपि तथा जन साधारण की भाषा को लेकर चला हैं। इससे इसका महत्व और भी बढ गया है। क्योकि तत्कालीन प्रचलित भाषा मे न रचे गये ग्रन्थ का मूल्य कम हो जाता है चाहे वह किता ही सुन्दर व भावप्रद क्यो न हो।

अत हम मन्त्री श्री जी के हार्दिक आभारी है जिन्होने कि अपने चिर अर्जित ज्ञान मे से एक किरण समाज को उसके विकास के लिए दी है। आशा है भविष्य मे भी ज्ञानदान देकर समाज का मार्ग-प्रदर्शन करेगे।

ग्रन्थमाला इसी दृष्टि को ध्यान मे रखते हुए साहित्य-प्रकाशन कर रही है कि लेखन-पद्धति द्वारा दिये गये विचार युग-युग जीवित रहते है। इससे पूर्व भी यह मुनि श्री जी के जैन रामायण और धर्म दर्शन जैसे धार्मिक तथा सामाजिक ग्रन्थ प्रकाशित कर चुकी है जिसे जनता ने अपनाया है। अत प्रस्तुत नवीन ग्रन्थ जो पाठको के कर-कमलो मे उपस्थित हैं, आशा करता हू कि वे उसका समुचित आदर करेगे।

साथ ही मैं ला० स्नेहीराम रामनारायण जी नया बाजार वालो का भी धन्यवाद करता हू जिन्होने इसके प्रकाशन में तन-मन व धन का योगदान दिया है। आशा है भविष्य मे भी इसी प्रकार ग्रन्थ-माला को सहयोग देते रहेगे।

श्री मूलचन्द जी शास्त्री को भी धन्यवाद दिये बिना नही रह सकते, जिन्होने अपनी सुख सुविधा का रचमात्र भी ध्यान न रखते हुए बडी सावधानी से प्रूफशोधन के लिए अपना अमूल्य समय दिया। तथा श्री कृष्णलाल जैन, मालिक / कृष्णा हौजरी I. B. १५२ लाजपतनगर समय समय पर सहायता देते रहे है। अतः धन्यवाद।

यद्यपि प्रेस ने पुस्तक के छापने मे पूर्ण तत्परता से कार्य किया है पुनरपि आरम्भ के लगभग २०० पृष्ठो मे टाइप की त्रुटि के कारण मात्राये पूर्णतया नही उठ पाई है। इस त्रुटि का मुख्य कारण यह है कि इस अवसर पर सम्राट् प्रेस के स्वामी तथा प्रबन्धक सज्जन पजाब के हिन्दी आन्दोलन मे जेल चले गये जिस से पीछे व्यवस्था उतनी उपयुक्त न हो सकी।

निवेदक
उलफतराय जैन
मन्त्री श्री पूज्य काशीराम स्मृति ग्रन्थमाला
१२. लेडी हार्डिङ्ग रोड, नई दिल्ली।

धन्यवाद प्रदर्शन

मानव सामाजिक प्राणी है, समाज की प्रत्येक गतिविधि के साथ इसका सम्बन्ध अवश्य रहा है। वैसे तो सामाजिक उन्नति का दायित्व उसके कर्णधारों पर ही आधारित है वे जिधर चाहे उसे मोड़ ले जाये। किन्तु गहराई में जाने से मालूम होता है कि उसका उत्थान तथा पतन प्रत्येक उसके सदस्य पर निर्भर है। क्योंकि ये व्यक्ति जितने २ अश में विद्वान् गुणवान् और चरित्रवान होंगे उतना ही उनका समाज उन्नति की ओर अग्रसर होगा अर्थात् समाजके सदस्यों की उन्नति समाजकी उन्नति और सदस्यों की अवनति समाज की अवनति है। अत प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य है कि वह अपने दायित्व का यथाशक्य पालन करता हुआ उनके साधनों को सुदृढ़, सुविस्तृत करता रहे।

समाजोन्नति में आधार भूत पांच तत्व हैं। उन तत्त्वों में से जब किसी एक तत्त्व की कमी हो जाती है तो सामाजिक व्यवस्था अस्त व्यस्त हो जाती है। वे हैं—शिक्षा की प्रचुरता सत्साहित्य, सख्या, और द्रव्य। ये तत्त्व एक दूसरे के सहयोगी हैं। किन्तु इनमें सत्साहित्य ओर द्रव्य मुख्य हैं। साहित्य के अभाव में मनुष्य अपने सिद्धात से सर्वथा अनभिज्ञ रहता है। और आज का युग लक्ष्मी प्रधान युग है अतः बिना द्रव्य के सारी उन्नतिया कुण्ठित हो जाती हैं, फिर साहित्य प्रकाशन के लिए तो द्रव्य की अत्यन्त आवश्यकता है अत साहित्य वृद्धि की पुनीत भावना को लेकर "जैन महाभारत" जैसे विशाल काय ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ निम्नलिखित धर्म प्रेमी सज्जनों ने द्रव्य व्यय की उदारता की है—

१. सर्व श्री स्नेहीराम रामनारायण जी जैन,		नया बाजार	दिल्ली
२. धर्मचन्द जी जैन (निरपड़ा वाले)	,,	,,	,,
३ ला० लद्धेशाह लोकनाथ जैन (लाहौर वाले)		सदर थाना रोड	,,
४. श्री अमरचन्द विलायती राम जैन (साढ़ोरा वाले)		बस्ती हरफूलसिंह	,,
५ श्री बोद्धराज जी जैन (रावलपिंडी)		सदर बाजार	,,
६ ला० भीमेशाह	,,	,,	,,
७. श्री लालचद शुक्लकुमार	,,	कमला नगर	,,
८. जैन बिरादरी	(,,)		,,

८. श्री रंगरूपमल जी सुराणा डागा बाजार   जोधपुर
९. श्री पुनमचन्द जी नाहटा जैन स्ट्रीट - -   ,,
१०. श्री हीराचंद भीखमचद जी जैन   ,,
११. श्री नौरत्नमल जी भांडावत माणक चौक   ,,
१२. इदकराज जी पटवा   ,,   ,,
१३. श्री ज्ञानीराम जी दर्शन कुमार जैन मोतिया खान   दिल्ली
१४. श्री मोजीराम जी ओमप्रकाश जैन   ,,   ,,
१५. श्री जम्बू प्रसाद दर्शन कुमार जैन   ,,   ,,
१६. श्री रामेश्वर दास पवन कुमार जैन   ,,   ,,
१७ श्री चन्दगीराम छोटन लाल   ,,   ,,   ,,
१८. पृथ्वीचन्द   ,,   ,,   ,,
१९. मनोहरलाल पालीराम   ,,   ,,   ,,
२०. हरदेवासिंह   ,,   ,,   ,,
२१. श्री कुन्दनलाल जी चुड़ियो वाले ,,   ,,
२२. श्री खजानचन्द जी जैन (राजाखेड़ी)   ,,

उपरोक्त सज्जनों ने द्रव्य दान कर सामाजिक तत्व की पूर्ति की है और साथ ही ग्रन्थमाला को योगदान देकर उसे सुदृढ़ किया है अत. कार्यकारिणी अत्यन्त धन्यवाद प्रदर्शित करती है और आशा करती है कि वर्तमान की भांति भविष्य मे भी अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग देश, धर्म, और समाज हित करते रहेंगे।

विनीत—

रामनारायण जैन

उपमन्त्री

पूज्य श्री काशीराम स्मृति ग्रन्थमाला

१२ लेडी हार्डिङ्ग रोड, नई दिल्ली।

—०—

शुक्ल जैन महाभारत पर एक दृष्टिकोण

भारत की सस्कृति का इतिहास महाभारत मे अकित किया गया है। जातीय सस्कारो का अभिव्यजन और भारतीयो के जीवन सम्बन्धी धारणाओ का निदर्शन जिस रूप मे हमे महाभारत मे उपलब्ध है वैसा इलियट महाकाव्य मे भी ग्रीस का परिचय नही मिल सकेगा। रामायण, महाभारत और पुराण ऐसे महाग्रन्थ है जो आर्यावर्त मे रहनेवाली जनसमाज के रहन सहन, शिष्टाचार, सभ्यता, सस्कृति तथा धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक सिद्धान्तो, मान्यताओ और कल्पनाओ का साक्षात् प्रतिबिम्ब सा झलका देते है। निश्चित है भारतवर्ष मे प्रारभ से ही एक जाति; अथवा एक विचारधारा का ही आस्तित्व नही रहा।

आर्य अनार्य, असुर सुर, आग्नेय द्राविड, सैन्धव तथा व्रात्य यहां अगणित वर्षो से रहते आये है। भारत देश अनेक जातियो और विचारधाराओ का सामाजिक रूप है। वेद काल से याज्ञिक और यज्ञ विरोधी व्रात्य सम्प्रदाये भारत वर्ष मे स्थित थी, इसका प्रमाण आपको ऋग्वेद मे प्राप्त हो सकता है। जैन धर्म भारत के प्राचीनतम धर्मो मे एक है। जैनधर्म के मूलभूत सिद्धान्तो का उल्लेख ऋग्वेद और अथर्ववेद मे देखा जा सकता है। अथर्ववेद का १५ वा काण्ड, व्रात्यस्तोम, के २२० मत्रो मे व्रात्य साधु का ही परिचय दिया गया है। "व्रात्य व्रत के मानने वाले को कहते है। अहिसा सत्य आदि पाँचव्रतो को जो धर्म के रूप मे स्वीकार करते हैं वे व्रात्य कहलाते है। वैदिक धर्म मे व्रत तो माने गये किन्तु कृच्छ्रचन्द्रायणादि व्रतो को ही व्रत की सज्ञा दी गई है। जाबालोपनिषद् मे भी श्री दत्तात्रय ने सकृति मुनि को उपदेश देते हुए व्रत केविषय मे व्याख्या करते हुए बताया है कि चान्द्रायण पौर्णमासी आदि व्रत ब्राह्मण

मानते है मैं नही मानता हू । व्रत के मानने वालो को ही वेद मे व्रात्य कहा गया गया और आज उन्हे जैन कहा जाता है । अत यह इतिहास सिद्ध है कि जैनधर्म की विचारधारा भारत के जन जीवन मे प्राचीन काल से परिव्याप्त रही है । प्रत्येक धर्मका प्रभाव अपने देश, राष्ट्र और समाज पर पडे विना नही रह सकता । और फिर जो धर्म राज्य धर्म वनने का गौरव ले चुका हो तो फिर कहने की क्या बात है । यथा राजा तथा प्रजा कहावत तो हमारे देश मे हजारो वर्षों से चलती रही है । अतः जातीय जीवन का प्रतिविम्व जब हमे महाभारत और रामायण मे देखने को मिलेगा उस समय जैनधर्म के अनुसार सामाजिक जीवन पर क्या प्रभाव था उसका विश्लेषण जैनधर्मानुयायी लेखक द्वारा लिखी हुई कृति से अच्छा आका जा सकता हैं यह तो निर्विवाद ही है ।

उपनिषद् जैनागम, तथा त्रिपिटिक सामान्य जनता की दृष्टि से गहन और दुरूह साहित्य मे से हैं । अतः लोकभोग्य साहित्य तो धार्मिक दार्शनिक और सामाजिक न होकर प्रायः कथात्मक ही रहता है । महाभारत, रामायण और पुराण कथनात्मक साहित्य है अत वह जनता का साहित्य है । प्रत्येक धर्म ने अपने आदर्शो और सिद्धान्तो का प्रतिपादन कथानको के आधार पर इन महाकाव्यो मे सम्पादित किया है । यही इनकी लोकप्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वैदिक धर्म, जैनधर्म और बौद्धधर्म इन तीनो ने ही इन महाकाव्यो और कथानको का अपने अपने रूप मे निर्माण किया है । यह सत्य है कि महाभारत जातीय जीवन का महाकाव्य है, उसमे धर्म के नाते भेद नही डाला जा सकता, किन्तु निर्माताओ और लेखको की मनोभूमिका ही उनके साहित्य मे अवतरित होती है ।

मै तो मानता हू कि सभव है कि प्राचीनकाल मे यह भेद बुद्धि इतनी न पनपी हो और इन्हे समग्रजाति का काव्यात्मक इतिहास मान लिया गया हो, क्योकि आज से सैकड़ो वर्ष पहले लिखे गये ससार के विचि-

ऋअम जैनाचार्य द्वारा निर्मित भूवलय ग्रन्थ मे महाभारत और गीता का अपूर्व समन्वय दिखलाई पडता है। प्रतीत ऐसा होता है कि भेद और अभेद, विरोध और अविरोध अनेकत्व और ऐक्य मिलन और बिछोह प्रारभ से ही चलता रहा है। अतः यह निश्चित है कि भारत की समस्त विचारधाराओ मे पारस्परिक समन्वयात्मकता का प्रभाव सहसा ही झलक उठता है। भेद दृष्टि से इन तीनो धर्मोंका साहित्य पृथक् २ रूप मे भी अपनी-अपनी मौलिक विशेषताओ से युक्त है। प्रस्तुत श्री जैन महाभारत उपलब्ध महाभारत का ही जैन सस्करण नही है अपितु अपनी टेकनीक, कथा वस्तु तथा चरित्रचित्रण की दृष्टि से सर्वथा पृथक् है।

प्राय जैन साहित्य पर सर्वाङ्गरूप से साहित्य का एक ही लक्षण घटित होता है कि साहित्य मनोरजन के लिए न होकर जीवन के लिए है। प्रस्तुत समग्र कथावस्तु शृ गार रस प्रधान होने पर भी वीतराग के उपदेशो और जैनधर्म के आचार नियमो को व्यवस्थित रूप से प्रगट करती चली है।

इस महाग्रन्थ मे पाठको को जीवन वसत की मदमाती तितलियो और मदमत्त भवरो का गु जन प्रमदाजनो की चलपलनो की बयार नूपुर गुञ्जन, विरह मिलन का स्वर जहा सुनाई देगा वहाँ जीवन नैया को खेह कर पार ले जानेवाला सदुपदेश भी प्राप्त होगा।

इस गद्य ग्र थ को लोकसाहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा क्योकि समग्र ग्रन्थ साहित्य की सरलता का प्रतीक, सामान्यजन सुलभलोकभोग्य कथाओ से परिपूर्ण, प्राचीन भारतीय इतिहास, उपदेश और जैन दृष्टिकोण से सुसज्जित त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्रम् (सस्कृत जैन ग्र थ) के अन्तस्तल के रूप मे चित्रित किया गया है। प्रचलित महाभारत मे और इस जैन महाभारत मे तुलना करने पर चाहे कितने ही क्यो न मौलिक अन्तर और भेद प्रभेद प्राप्त हो सकें किन्तु जैन के नाते इसकी अपनी निजी विशेषताए

है। यही इसकी उपादेयता है। ग्रन्थ का निर्माण और उसकी शैली, भाव और भाषा का अभिव्यजन, कथावस्तु और पात्रो का चरित्र-चित्रण, जैनजीवन की विशेषताए और सिद्धान्त प्रतिपादन की प्राजलताए तो ग्रन्थ के स्वाध्याय से भी साक्षात्कृत की जा सकती है, किन्तु ग्रन्थकार अथवा ग्रन्थ सम्पादक की जीवनी तो गर्भ-गर्त मे ही तिरोहित रह जाती है, अत. प्रस्तावक का आवश्यक कर्तव्य यह भी रह जाता है कि वह ग्रन्थकार के विषय मे कुछ कहे।

ग्रन्थकार प० श्री शुक्लचन्द्रजी म० के विषय में:—

वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ के पजाब प्रान्त के आप मत्री हैं, शान्त और निर्भीक जीवन मे प्रेम और सामञ्जस्य का जो विलक्षण समन्वय हुआ है उसी के नाते आप आज तक जैन समाज के लोकप्रिय, लोकपूज्य, और लोकवद्य बने रहे है। अभी २ दिल्ली मे विश्व धर्म सम्मेलन के अवसर पर जैन साधुओ की ओर से आप प्रतिनिधित्व कर रहे थे। सम्मेलन के २६५ प्रतिनिधियो मे आप के चेहरे पर जो शान्ति चमक रही थी वह अन्तर्राष्ट्रीय जगतके धार्मिक प्रतिनिधियो को जैन धर्म की त्यागमयी साधना और आत्मतेजस्विता के प्रति बरवश आकृष्ट कर रही थी।

आपने ही जनता के हृदय की भावना को सम्मान देते हुए श्री शुक्ल जैन रामायण का काव्यात्मक भाषा मे निर्माण किया है, अभी जैन महाभारत निर्माण करने के पीछे भी आपका उद्देश्य जन-कल्याण ही रहा है। जैन महाभारत पाठको को जहाँ वसुदेव, पाडव, कौरव, आचार्यगण, तथा युद्ध का एक नया चित्र प्रदान करेगा वहाँ यह महाभारत जैनआचार, जैनइतिहास, और जैन दृष्टिकोण के विषय मे भी नया प्रकाश दिखायेगा। ऐसा पूर्ण विश्वास है।

मुनि सुशील कुमार भास्कर
नई दिल्ली।

आत्म-निवेदन

मानव जीवन महान् है, इसमे अनन्त पुरुषार्थ, अनन्त ज्ञान, दर्शन तथा अन्य महा शक्तियाँ निहित है। यह बात तो निर्विवाद व अक्षरश सत्य है, फिर आज विज्ञान ने भी प्रमाणित कर दिया है कि मनुष्य मे किसी भी महान् कार्य के सम्पन्न करने को पूर्ण क्षमता है। किन्तु जब तक वह उन अपनी सुप्त शक्तियो को जागृत नही कर लेता अथवा उनको कार्य रूप मे परिणित व जीवन साधना के लिये साधनो का मूर्त रूप नही दे देता तब तक वे उनके लिये नगण्य ही हैं। उसमे कार्य करने की क्षमता उसी घडी तक नही आती जब तक कि हृदयस्थ धैर्य उत्साह, सहिष्णुता आदि तत्वो का उदय भाव नही हो जाता। क्योकि कार्य-पूर्ति के लिये शारीरिक बल ही पर्याप्त नही किन्तु उपरोक्त गुणो की भी परम अनिवार्यता है। शारीरिक बल के होते हुए यदि आभ्यन्तर बलो का अभाव हो जाता है तो बाह्य बल का कुछ मूल्य नही रहता। और उपरोक्त तत्वो के होते हुये शरीर बल पूर्ण न भी हो तब भी व्यक्ति शनै शनैः अपनी साधना करते करते सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

इस सिद्धि और साधना के दो रूप हैं—एक आध्यात्मिक और दूसरा भौतिक। आध्यात्मिक साधना और उसके साधन कठोर होते हुए भी सदा शात तथा सतोषदायक रहे है जब कि भौतिक साधना के साधन आत्मा को शान्ति तथा सतोष प्रदान करने में असमर्थ हैं। और यही कारण है कि वर्तमान युगीन भौतिक मार्ग मानव को अशान्त बना देता है। क्योकि स्वार्थ, फलाकाक्षा तथा कषायो की

प्रबलता मानसिक वृत्तियों पर अधिकार कर लेती है। और आध्यात्मिक साधना उस महानता का ससार बनाती है, जो शम, दम परमार्थ आदि गुणों और अलौकिक ज्योति को प्रसारित कर अपूर्व आनन्द की नदी प्रवाहित करती है जिस से आगे चलकर अखड शान्ति व अक्षय सुख की प्राप्ति होती है। किन्तु दोनो आध्यात्मिक तथा भौतिक मार्गों का द्वन्द्व आज ही नही अनादि काल से चला आ रहा है। दोनो ही अपने सिद्धान्तो को कल्याणकारी बताते है। इन दोनो के बीच होने वाले सवाद का सग्रह साहित्य मे पाया जाता है। सम्पूर्ण साहित्य इन दोनो की विशेषताओ, व्यक्तित्वो, समर्थनो और साधको को जीवनोपयोगी गाथाओ के रूप मे भरा पड़ा है। और इसी आधार पर साहित्य के दो विभाग हुए है, आध्यात्म और भौतिक।

आध्यात्म साहित्य मे जीवन क्या है, कैसे कैसे पर्यायो मे परिवर्तित हो जाता है, उसका अन्तिम ध्येय और लक्ष्य क्या है, उसके साधना मार्ग कितने है, उससे जीवन पर क्या प्रभाव पडता है, आदि बाते बताई गई है। तथा साथ साथ अनुभव गम्य व जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने वाले साधको ऋषि महर्षियो के जीवन वृत्त भी है जो आत्म साधना का मूक सदेश देते रहते है। दूसरी ओर भौतिक साहित्य मानव को सासारिक जीवन आवश्यकताओ तथा शारीरिक बल, रूप, सैन्य शक्ति पारिवारिक बल तथा कूटनीतिज्ञता आदि तथा सुख सुविधा के साधन मार्ग का ज्ञान कराता है।

ससार मे भौतिक मतावलम्बियो की बाहुल्यता भले ही हो किन्तु जीवन को स्थायी शान्ति और सतोष प्रदाता आध्यात्मिक ज्ञान ही मानव जीवन को उत्कर्ष की ओर प्रेरणा देता है। और इसी के परिणाम स्वरूप उसमे दानव से मानव, दुखी से सुखी, बधन से मुक्त, स्वार्थ से परमार्थ की ओर ले जाने वाली एक महान् शक्ति निहित है। और अन्ततोगत्वा महान् भौतिकवादियो को भी

आध्यात्मवाद का आश्रय लेना पडा है। और भौतिकवाद तो मनुष्य को स्वतन्त्र न बना उल्टे बन्धनो मे बाधता है। यही कारण है कि विश्व के बडे बडे प्रजा सत्ताको, प्रवृतको के भौतिक थपेडो ने उनके जीवन को नारकीय बना डाला था।

हाँ तो अब मुझे मूल विषय पर आना है जिसके लिये मार्ग बनाने का ऊपर प्रयास किया गया है। पाठको के हाथ मे प्रस्तुत ग्रन्थ अर्थात् महाभारत एक घटना ग्रन्थ है। इसमे आध्यात्म तथा भौतिक दोनो साधनो का वर्णन है। यूँ तो इसे धार्मिक ग्रन्थ की मान्यता प्राप्त है किन्तु वस्तुत· यह एक ऐतिहासिक साहित्य है जिससे मानव जीवन के बदलते चित्रो का अकन, उसमे होने वाले परिणाम तथा तात्कालिक ससार पर पडने वाले प्रभाव का विस्तृत वर्णन है। जैनधर्म तो इसे धार्मिक मान्यता देने को तैयार ही नही, क्योकि जिस घटना मे सहार, वैमनस्य, कषायो की प्रबलता अथवा सासारिक व्यवहारो का ही समावेश तथा सम्यक् ज्ञान, दर्शन आदि तत्वो के विपरीत कार्य कलाप पाये जाते हैं वह धार्मिक ग्रन्थो की कोटि मे नही आ सकता। फिर भी वर्तमान स्थिति व सम्यक् दर्शन आदि ग्राह्य तत्वो के धारण करने वाले राजा व अन्य साधको का जीवन चरित्र अवश्य मिलता है।

उपस्थित गद्य काव्य की घटनाओ से स्पष्ट लक्षित है कि मनुष्य के योग्य कार्य क्या हैं और उसे किस प्रकार के मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। और इन्ही साधनो के अपनाने से मानव कैसे महानता को प्राप्त करता है। वसुदेव का जीवन चरित्र ही देखिये जो पूर्व जन्म मे एक दरिद्र और निराश्रित व्यक्ति थे जिसे कोई भी सम्मान देने को तैयार न था। और तो क्या उसके कुटुम्बी भी उससे घृणा करते थे। अन्त मे ऐसे दु खी जीवन से छुटकारा पाने के लिये उतारु हो गये थे। दैवयोग से एक आध्यात्मवादी का सहयोग हुआ और आत्मसाधना मे लीन हो गये। उन्होने सर्व

क्रियाओ तथा व्रतो मे उच्च सेवाव्रत को जीवन मे स्थान दिया और स्वर्गगामी हुये। वहाँ से मनुष्य रूप मे फिर इस कर्म भूमि पर जन्म लिया और उन्ही पूर्व जन्म के सचित कर्म फल के द्वारा श्रीकृष्ण जैसे यशस्वी पुत्र के पिता वनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और आगे मोक्ष के अधिकारी वने।

दूसरी ओर जरासध व नृशसी कस के जीवन चरित्र पर भी दृष्टिपात करे जिन्होने मानवता के स्थान पर दानवता, नम्रता के स्थान पर अभिमान, मृदुता के स्थान पर कठोरता, करुणा के स्थान पर निर्दयता, अधिकार तथा भोगलिप्सा आदि राक्षसी वृत्तियो को जीवन मे स्थान दिया। तीन खण्ड पर छाया हुआ प्रभुत्व तथा शारीरिक वीरता आदि वलो द्वारा दूसरो पर जमाया हुआ आतक एव मिले हुये जीवनोपयोगी साधन उनकी दुरुपयोगिता के कारण उनके ही जीवन के घातक वन गये। क्योकि अपने तनिक से स्वार्थ के लिये वाल-हत्या आदि ही जीवन के घातक वन गये। क्योकि अपने तनिक से स्वार्थ के लिये वाल हत्या आदि उग्र अत्याचार, अन्य राज्यो की लूट, और अनधिकार चेष्टा जैसे कुकृत्य करते हुये औचित्य का विचार तक भी न आया। इसी कारण आज उनका नाम मानव इतिहास की श्रेणि से पतित हो रहा है।

किन्तु ठीक इसके विपरीत वसुदेव देवकी को भी देखे जिन्होने कस को दिये हुए अपने एक साधारण वचन मात्र की रक्षा के लिये अपनी आँखो के सामने सन्तति-हत्या को सहन किया।

कौरव पाण्डवो के जीवन क्रिया मे पाया जाने वाला अन्तर भी इस सिद्धान्त को प्रमाणित करता है कि सत्य, धैर्य, न्याय, अधिकार रक्षा तथा परोपकार गुण ही जीवन को उत्कर्ष की ओर ले जाने वाले है और इसी मे ही जीवन मे शान्ति, सतोष और सफलता प्राप्त होती है। इनके विपरीत दम्भ, गर्व, अन्याय, पराधिकार हडपने की चेष्टा, ईर्ष्या, प्रतिशोध, राज्य लोभ जैसी वृत्तियो से नही। यही

इस रचना की विशेषता है, जो पाशविक प्रवृत्तियो से जीवन को वचा कर मानवता की ओर लेजाने की अमर प्रेरणा देती रहेगी और वहाँ से भी आगे महामानव अर्थात् सर्वकर्म मल को क्षय कर उस अलौकिक अमरपद भगवान् को प्राप्त करने का मार्ग प्रदर्शक होगी। यही इस महान् महाभारत का आदर्श है।

पाठको की रुचि को जानते हुए अब मेरे लिये यह बताना भी एक कर्तव्य हो गया है कि किन कारणो से मुझे इस प्रस्तुत महाभारत के लिखने की प्रेरणा मिली।

लम्बे समय की बात है। मै विद्यार्थी रूप मे था। पू० आचार्य श्री सोहनलाल महाराज जी की सेवा मे रहते हुये पूर्वी पजाब के प्रसिद्ध नगर अमृतसर की वह घटना आज भी याद है जबकि मुझे एक महाभारत नाम की पुस्तक हाथ लगी। मैने उसे आद्योपान्त पढा मेरे हृदय मे अनायास ही एक प्रश्न उठा कि क्या जैन धर्म मे इस पुस्तक-की मान्यता नही ? यदि है तो किस रूप मे ? और श्रीकृष्ण कौरव, पाण्डव, आदि के विषय मे जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। क्योकि उस समय मै जैन साधना को लिए हुये साधक रूप मे था। मनुष्य जिस समाज मे रहता है अथवा जिसके द्वारा जीवन निर्माण की सामग्री प्राप्त करता है, उसके प्रति सहज ही उसके हृदय मे श्रद्धा, भक्ति और जिज्ञासा आदि रहती है या उत्पन्न हो जाती है।

महाभारत के सम्बन्ध मे उठी हुई जिज्ञासा को उस समय मैं मूर्त रूप न दे सका क्योकि एक ओर पठन-पाठन तो दूसरी ओर उन महापुरुषो की सेवा का मुख्य कार्य था। बीच मे अवसर भी मिला तो एक और कार्य मे लग जाना पडा। खैर, वह कार्य भी एक ऐतिहासिक एव महत्वपूर्ण था जो कि वर्षों के परिश्रम से सम्पन्न हुआ, वह था जैन रामायण का काव्यरूप सकलन। इस प्रथम प्रयास ने मुझे प्रोत्साहित किया और अतीत की विस्मृति अगडाई लेकर जाग उठी।

परिश्रम और लगन सफलता की कुंजी है। मैंने जैन महाभारत के ग्रन्थ-निर्माण, खोज आदि का निश्चय कर लिया। बीच बीच में अन्य कार्यों की ओर भी ध्यान जाता रहा और वे उस मार्ग मे बाधक ही बनते रहे। ऐसा होता ही है कि व्यक्ति जितना किसी कार्य को सोचता है परिस्थितिया उतनी ही बाधक बनती चली जाती है। और उसके लिए सदा समय साधन और योग्यता आदि की अपेक्षा रहती है। अभिलाषा बनी रही, अन्त मे एक समय आया और मैने आगमो, ग्रन्थो आदि का अवलोकन किया। पता चला कि जैन धर्म के पास प्रचलित महाभारत से कही अधिक मान्यता है और सामग्री का प्रचुर भडार है, प्राकृत सस्कृत, हिन्दी, गुजराती तथा प्रान्तीय भाषाओ के भिन्न भिन्न ग्रन्थोमे विस्तृत रूप से उल्लेख मिलता है। किन्तु उनमे श्वेताम्बर-दिगम्बर मान्यताओ मे अन्तर, आम्नायो के भिन्न - भिन्न मत मतान्तर और सबसे बडी समस्या थी प्रचलित महाभारतका समन्वय करना। जिनमे कही कही आकाश-पाताल तक का अन्तर दिखाई देता है।

खैर! इन सभी कठिनाइयो को ध्यान मे रखते हुए एक ही निश्चय किया कि इसका आधार जैन धर्म की मान्यतानुसार ही हो। रही परस्पर की मान्यताओ के अन्तर की बात, सो तो उसमे मूल-भूत आगम मान्यता को ही महत्त्व दिया जाता है। यह उसका सम्प्रदाय पक्ष नही, अनेको दृष्टियो से समर्थन होता है। कही कही दिगम्बर आम्नाय की घटना विस्तृत और अन्तरवाली होने पर भी जहाँ-तहाँ उन घटनाओ को भी स्थान देने का पूरा ध्यान रक्खा गया है। और श्वेताम्बर परम्परा के अन्य ग्रन्थो के फुटनोट भी दिये गये हैं।

कार्य आरम्भ किया, वर्ष बीत गये और समाप्त न हो पाया। अनेको विघ्न-बाधाये आई। अन्त मे यह प्रथम खण्ड द्रौपदी स्वयवर पर्यन्त पूर्ण होकर आपके हाथो मे आ रहा है। यह ग्रन्थ गद्य रचना

ही है, कहानी रूप मे है, फिर भी यथाशक्य और यथास्थान सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन के शिक्षा पूर्ण उपदेशो का सचार है। जो भावी जीवन निर्माण मे सहायक सिद्ध होगा। इस प्रकार अनेक तथ्यो का ध्यान रखते हुये यह महाग्रन्थ तैयार हुआ है।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि जैन परम्परा महाभारत को धार्मिक ग्रन्थ स्वीकार नही करती, और न ही उसके पास प्रचलित महाभारत की भाँति सकलित ग्रन्थ ही है। तथापि मूल आगमो के परिशीलन से ज्ञात होता है कि महाभारत अवश्य हुआ था किन्तु उसका मूल कारण अकेला कौरव-पाण्डवों का वैर ही नही, श्रीकृष्ण और जरासध के बीच होने वाला युद्ध था। कौरव-पाण्डव युद्ध तो एक गृह-युद्ध था, परन्तु वह हुआ उस युद्ध के साथ ही क्योकि उस समय के नरेश दो भागो मे विभक्त हो चुके थे, इस युद्ध, मे वासुदेव प्रति वासुदेव के द्वारा बढते हुये अत्याचारो को समाप्त कर सोलह हजार राजाओ पर अपना अधिकार जमाता है।[1]

इस युद्ध का विस्तृत वर्णन सघदास गणीवाचक कृत वसुदेव हिन्डी आचार्य जिनसेन रचित हरिवश पुराण, आचार्य हेमचन्द्र कृत त्रिषष्ठी शलाका पुरुष चरित्र, देवप्रभ सूरी का पाण्डव चरित्र आदि ग्रन्थो मे मिलता है। यही ग्रन्थ जैन परम्परा के महाभारत ग्रन्थ है जिनका कालमान क्रमश लगभग विक्रम सवत् ७३३, ८४०,१२३० तथा १२७० है। इससे पूर्व रचित ग्रन्थ उपलब्ध नही है। तो फिर इन ग्रन्थो का आधार क्या रहा होगा, क्या इससे पूर्व महाभारत साहित्य था ही नही ? नही, ऐसा तो नही कहा जा सकता। मूल आगम तथा सस्कृत टीकाओ मे इस सबन्ध मे उल्लेख है। जैसे कि गडिकानुयोग के भेद वर्णन करते हुए बताया गया 'से किं त गडियानु योगे, गणहर गडियाओ, चक्कहर गडियाओ, दसार

1 समयाग सूत्र।

गडियाओ, बलदेव गडियाओ, हरिवश गडियाओ" आदि वर्णन पाया जाता है; किन्तु दुर्भाग्य से इन आगमो की प्राप्ति नही हो रही है, परन्तु इनका अन्य आगमो मे नाम का उल्लेख मिलता है[२]। जिनमे कि महाभारत से सम्बधित विषय सामग्री विस्तृत रूप मे थी। फिर भी विद्यमान आगमो मे यथास्थान महाभारत नायको तथा उनके पूर्व ऋद्धि परिवार पूर्वजो का वर्णन स्पष्टतया मिलता है[३]।

हरिवश की उत्पत्ति भी जिसमे महाराज यदु[४] वसुदेव, समुद्र-विजय, श्रीकृष्ण, अरिष्टनेमी, कस के पिता उग्रसेन आदि उत्पन्न हुए शास्त्रो मे उल्लिखित है[५]।

यहाँ तक कि श्रीकृष्ण की माता देवकी की आठ सन्तानो तथा कौरव, पाँडव, धृष्टद्युम्न, द्रौपदी, रुक्मणी, प्रद्युम्न, सत्यभामा, जाम्बवती, साम्ब आदि कुमारो तथा रानियो का वर्णन भी पाया है[१]। फिर काव्य ग्रन्थो का तो कहना ही क्या, उनमे तो सविस्तार वर्णन है ही।

अत. अब यह कहना कि श्रीकृष्ण और बलभद्र आदि कर्मावतारो को जैन सिद्धान्त स्वीकार नही करता सर्वथा भूलमात्र ही होगी। हाँ यह बात अलग है कि उसकी मान्यता भिन्न रूप मे है। इस विषय को शास्त्रकारो ने स्वीकृत किया है या नही यह नीचे पाठ से स्वय ही स्पष्ट है कि दुर्धर रणागण मे,धनुर्धर, धीर, सौम्य, युद्धकीर्ति पुरुष, राजकुल तिलक, अर्ध भरत स्वामी, विपुल कुल समुद्भव, उज्जवल कौस्तुभमणी व मुकुटधारी, अजित रथ, हल, मूसल, कनक, शख, चक्र, गदा, शक्ति, नन्दक, आदि शस्त्राशस्त्रो

---

२ समयाग सूत्र, नन्दी सूत्र।

३ अन्तकृत दशाग, उत्तराध्ययन।

४ इन्हीं महाराज यदु के नाम पर हरिवश ही यदुवंश के नाम से पुकारा जाने लगा।

५ स्थानाग सूत्र, कल्प सूत्र।

१ ज्ञाता धर्मकथांग।

के धारण करने वाले अष्टशतम् प्रशस्त लक्षणयुक्त, गजेन्द्र गति वाले, मत्त क्रौंच पक्षी के समान मृदु व गम्भीर स्वर वाले मनुष्यो मे नरसिंह, नरपति, नरेन्द्र, नर वृषभ, नील व पीत वसनों के धारण करने वाले राम और केशव दो भाई थे। जो बलदेव और वासुदेव के नाम से विख्यात हैं[२]।

इसीलिए यह ग्रन्थ नायकों के वंश की उत्पत्ति, उनका उद्भव तथा विकास आदि से प्रारम्भ किया गया है और आगे उनका जीवन जिन-जिन कार्य-क्षेत्रों में परिवर्तित हुआ, दिया गया है। वे स्वयं तथा उनके कार्य कितने महान् थे, यह तो यह ग्रन्थ बतायेगा ही साथ साथ अपने महाभारत नाम को सिद्ध करेगा। क्योंकि महाभारत का अर्थ केवल युद्ध ही नहीं जैसा कि प्रचलित है, बल्कि उनके समय का भारत कितना विशाल बुद्धिमान् तथा शिष्टता, सभ्यता व धार्मिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण था जिससे वह भारत से महाभारत कहलाया।

इसमें कहाँ तक मैं सफल हुआ और यह कितना उपादेय है इसका निर्णय तो पाठक करेंगे फिर भी सैद्धान्तिक, व्यवहारिक आदि अनेकों दोष रह गये होंगे। सर्वज्ञ की भाँति यथार्थ दृष्टि से तथ्य प्रतिपादन की क्षमता का प्राप्त होना तो असम्भव है फिर भी अपनी ओर से किसी व्यक्ति विशेष की मान्यता को प्रश्रय न देकर यथार्थ की ओर बढ़ता है तथा पक्षपात रहित हो उसका मूल्यांकन करता है। प्रूफ संशोधन और प्रेस की त्रुटियाँ आ रही हैं। इन्हे सुधार कर पढ़ें।

२६ जनवरी १९५८

मुनि शुक्ल

---

२ समवायांग-उत्तम पुरुष अधिकार।

विषयानुक्रमणिका

—:o:—

———

शुक्ल जैन महाभारत

❀ प्रथम परिच्छेद ❀

हरिवंश की उत्पत्ति

इस जम्बूद्वीप के वत्स नामक देश की राजधानी कौशाबी नगरी है। यह कौशाबी नगरी यमुना के तट पर अवस्थित है। इस नगरी के विशाल भवनों और अट्टालिकाओं के प्रतिबिम्ब जब यमुना के निर्मल नील जल में पडकर नाचने से लगते हैं तो उनकी शोभा सचमुच दर्शनीय हो जाती है। इस नगरी की सुन्दरता का कुछ वर्णन ही नहीं किया जा सकता। इस कौशाबी नगरी में उस समय सुमुख नामक महाराजा राज्य करते थे। इस परम प्रतापी महीप का तेज सूर्य समान सब दिशाओं में व्याप्त हो रहा था। सारी प्रजा नीतिनिरत सन्तुष्ट और सतत धर्म कार्यो मे सलग्न रहती थी। जो राजा स्वय धर्म परायण हो उसकी प्रजा भला क्यों न धर्मात्मा होगी। अत्याचारी दुष्टों का निग्रह और धर्म मार्ग में लीन सदाचारियों पर अनुग्रह के द्वारा इस शासक ने अपने राज्य मे सर्वत्र सुख शांति की स्थापना कर रखी थी। इस प्रकार महाराज सुमुख धर्म मार्ग में रहते हुए धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुषार्थों का यथाविधि उपार्जन करते हुए अपने जीवन को सफल बना रहे थे।

सुमुख महाराज कौशांबी में इस प्रकार धर्मानुसार राज्य-व्यवहार चला रहे थे कि एक समय काल क्रमानुसार ऋतुराज वसन्त का आगमन हुआ। वसंत ऋतु के प्रभाव से प्रकृति सुन्दरी ने अत्यन्त मनोहर आकर्षक रूप धारण कर लिया। वनों, उपवनों की शोभा देखते ही बनती थी। नाना प्रकार के पुष्पों से सुशोभित बाग-बगीचों, लता-कुञ्जों, सरिता और सरोवरों के तटों पर जहाँ भी दृष्टि जाती, वहीं क्या युवक क्या युवतियां, क्या बालक क्या बालिकाएँ सभी आनन्द विभोर हो वसन्त की इस अनुपम सुषमा का रसपान करने मे मग्न से दिखाई देते। बौराये हुए आम्र वृक्षों की शाखाओं पर बैठी हुई कोयल अपनी कुहू कुहू की मधुर ध्वनि से मानव-मन को उन्मत्त बना रही थी

तो उधर पुष्प रस पान करते हुए मधुकर अपने मधुर गु जार से मनो का मोह रहे थे। वसत के ऐसे ही सुहावने समय मे महाप्रतापी सुमुख नरेश की सवारी भी सैर के लिए निकल पड़ी।

महाराजा की इस अनेक ठाठ-बाटो से सुसज्जित देवेन्द्रोपम सवारी को देखने के लिए चारो ओर से अपार नर-नारियो के झुण्ड एकत्रित होने लगे। ज्यो-ज्यो सवारी धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी त्यो-त्यो दर्शनार्थी जनता के अपार समुद्र का प्रवाह भी उत्तरोत्तर पूर्ण चन्द्रमा को देखकर समुद्र की वेला की भांति उमडता हुआ बढ़ने लगा। चारो ओर से जय जयकार की ध्वनियो से पृथ्वी और आकाश गू ज उठे, सुन्दरियों के नेत्र-चातक वातायनों मे से महाराज की रूप-चान्द्रिका का पानकर अघाते ही न थे, कहीं देवागनोपम कुल कामिनियाँ अपने २ प्रासादों की अट्टालिकाओं मे बैठीं अपने प्रिय महाराज पर पुष्प वर्षा कर रही थीं तो कहीं वन मार्गों मे अवस्थित नृप-दर्शनोत्सुकसुन्दरियो के समूह अनजाने मे ही सविभ्रम कटाक्षपात कर रहे थे।

अनेक राजाओं, राजकुमारों, राजपरिवारो, सामन्त, सचिव व सेनापतियों के साथ सुमुख की सवारी धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी कि सहसा उनकी दृष्टि युवतीवृन्द के मध्य में बैठी हुई एक अनुपम सुन्दरी की ओर चली गई। सस्कारवशात् दोनों की आंखें चार हुईं और सहसा एक दूसरे पर अनुरक्त हो गये। लाख प्रयत्न करने पर भी दोनो की दृष्टियां एक दूसरे से हटती ही न थी। महाराजा का हाथी मन्द-मदमाती गति से ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता, वह सुन्दरी भी अन्य अनेक कुलकामनियो के साथ आगे बढकर महाराज की रूप छटा का पान करने लगती। उधर महाराज भी इस परम रूपवती के सौंदय को देखकर सहसा अपनी सुधबुध खो बैठे और सहावस्थित मन्त्री—अमात्यवर्ग तथा महिषियों की कुछ परवाह न कर उनकी आँखे उस भीड़-भाड़ मे उसी परम रूपवती को ढूंढने लग गईं। किन्तु सवारी के लौटने पर ज्यों ही महाराज ने अपने अनुजीवी, परिजन और स्वजनों के साथ राजप्रासादों में पदार्पण किया तो सभी पुरजनों ने भी अपने-अपने घरों की राह ली अतः स्वभावतः उस सुन्दरी को भी सुमुख की आंखों से ओझल हो स्वस्थान की ओर प्रस्थान करना पड़ा।

उस सुन्दरी के दर्शन-पथ से पृथक् होते ही सुमुख की अवस्था

विरह वेदना के कारण अत्यन्त दयनीय हो उठी। उनका मन स्नान, ध्यान, खान-पान आदि सभी दैनिक क्रिया-कलापों से विरत हो गया। महाराज को इस प्रकार अनमना और उदास देख सुमति नामक अत्यन्त चतुर मंत्री ने हाथ जोड़ विनय करते हुए पूछा कि—

"हे प्रभो! आज आप इस प्रकार उदास क्यों प्रतीत होते हैं आप की इस आकस्मिक व्याकुलता का क्या कारण है, आपका यह एक छत्र-राज्य है, प्रजा भी आपसे अतिशय अनुरक्त है, आपने अपने अनुपम प्रेम से सभी रानियों के हृदयों को जीत लिया है, इसलिए वे भी आपकी पूर्ण प्रणयिनी हैं। दानादि सब धार्मिक कार्यों का सम्पादन भी आप यथाविधि अप्रमादी होकर करते हैं, अखंड भूमण्डल के समस्त राजा महाराजाओं पर आप ही का तेज छाया हुआ है इस प्रकार धर्म, अर्थ और कामरूप पुरुषार्थ त्रय के सम्पादन में आप सदा तत्पर रहते हैं। आपको किसी प्रकार का कोई अभाव तो दिखाई नहीं देता! इस विश्व-प्रपंच में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो कामना करते ही आपके लिए प्राप्य या सुलभ न हो। फिर आप आज इस प्रकार क्यों उदास दिखाई देते हैं। अपने हृदय की गूढ से गूढ़ मर्म वेदना को भी सदा अपने मन में छिपाये नहीं रखा जा सकता, उसे व्यक्त कर देने से मन हलका हो जाता है, इसलिए हे नाथ! आज्ञा दीजिए कि यह सेवक आपकी इस उदासी का निवारण करने में कैसे सहायक सिद्ध हो सकता है। यह शरीर यदि आपके कुछ भी काम आ सका, तो मैं अपने जीवन को सार्थक समझूंगा और प्राण-पण से आपकी प्रसन्नता के लिए पूरा-पूरा प्रयत्न करूंगा। कृपा कीजिए और अपने हृदय की बात बता दीजिए ताकि आपकी चिन्ता-निवृत्ति के लिए यथोचित उपाय किया जाय।

मंत्री के इस प्रकार मधुर विचारों को सुनकर सुमुख ने कहा मित्र-वर! तुमसे मेरे हृदय की कोई बात छिपी हुई नहीं, राजकार्यों में तुम मेरे मंत्री हो पर अंतरंग बातों में मेरे प्राणों के भी प्राण सुहृद्वर हो। अब सब कुछ जानते हुए भी अब अनजान बन रहे हो। तुम्हें तो ज्ञात ही है कि कल वन-विहार के समय एक परम सुन्दरी ने अपने कटाक्ष बाणों से मेरे हृदय को बरबस वेध दिया, उसके हाव भावों से प्रतीत होता था कि वह भी मेरे प्रति वैसी ही अनुरक्त है। यद्यपि यह कुल मर्यादा व शास्त्र नियम के विरुद्ध है पर क्या करूं इस समय मेरा मन अपने

वश में नहीं है, अत ऐसी परिस्थिति में जैसे भी हो, तुम्हें कोई उचित उपाय ढूंढ निकालना चाहिए।

राजा की ऐसी कातर वाणी सुन पहले तो सुमति चकित हो किंकर्तव्य विमूढ़ सा रह गया,पर फिर वह तत्काल कुछ सोचकर बोला—महाराज! मै जानता हूँ, जिसने आपके हृदय का हरण किया है उस परम सुन्दरी का नाम वनमाला है और वह वीरक नामक कुविन्द की भार्या है.। इसलिए आपका और उसका मिलन किसी भी प्रकार न्यायोचित नहीं है, परनारी की कामना करना भी मनुष्य के लिए नरक में पतन का कारण है, अतः आप मेरी बात मानिये और उस कामिनी के रूप के आभाजाल को तोड़ डालिए। आपके महलों मे एक से एक बढ़कर सुन्दरी रानियाँ विद्यमान् हैं, आप उन्हीं के साथ धर्मानुकूल जीवन यापन कर श्रेय और प्रेय की प्राप्ति के अधिकारी बनिये। इस नश्वर रूप के मोह में पड़कर अपने आपको पतन के मार्ग पर ले जाना विवेकी पुरुष के लिए कदापि शोभाजनक नहीं।

इस प्रकार मन्त्री ने राजा को अनेक प्रकार समझाया-बुझाया, पर कामान्ध व्यक्ति कब किस की सुनता है, क्योंकि उसके हृदय से भय और शर्म तो कूच कर जाती है इसीलिए कहा है—"*कामातुराणा न भय न लज्जा*" अतः उसने तो वनमाला को पाने के लिए प्रण ही कर लिया।

आखिर राजहठ पूरा होकर रहा, किसी न किसी प्रकार वनमाला राज महलों मे पहुँच गई। क्योंकि वनमाला का हृदय स्वय राजा सुमुख के प्रति आकर्षित हो चुका था इसलिए उसने भी नृप के प्रणय निवेदन को अनायास ही स्वीकार कर लिया। अब क्या था। राजा ने तत्काल उसे अपनी पटरानी बना लिया और दोनों आनन्दोपभोग करते हुए स्वच्छन्दतापूर्वक समय यापन करने लगे। उनके वैभव विलास और रग-रलियों ने दिनोंदिन रग पकड़ना शुरू किया। वह देवेन्द्र के समान सुखोपभोग करता हुआ राज्य करने लगा।

वीरक कुविन्द का तपस्या द्वारा देवलोक गमन

उधर अपनी प्राण-प्रिया पत्नी के विरह के कारण वीरक अत्यन्त शोक-सतप्त रहने लगा। रात-दिन उसकी आँखों के सामने वनमाला ही खड़ी दिखाई देती। वनमाला की वियोगाग्नि अब उसके लिए असह्य हो उठी, किन्तु अन्त मे एक दिन सौभाग्य से उसे किसी मुनि-

राज के दर्शन लाभ का सुअवसर प्राप्त हो गया। मुनिराज की दिव्य तेजोमण्डित भव्य-मुख मुद्रा को देख सेठ के हृदय में विरह शोक संताप के स्थान पर संतोष और वैराग्य के भावों ने स्थान बना लिया। मानव-शरीर तथा सांसारिक सम्बन्धों की नश्वरता का उसे भली भांति ज्ञान हो आया और मुनिराज के चरणों में गिर कर प्रार्थना करने लगा कि हे देव! कोई ऐसा उपाय बताइये जिस से मेरी शोक संतप्त आत्मा को स्थायी शांति प्राप्त हो सके।

वीरक के ऐसे करुणा भरे वचन सुनकर दयालु मुनि का हृदय दयार्द्र हो उठा और उसे दीक्षा देकर जीवदया के दिव्य-मार्ग का अधिकारी बना दिया। इस प्रकार दीक्षित होकर मुनिवेष धारण कर वीरक ने काम व्यथा को खंड-खंड कर देने वाली कठोर तपस्या के द्वारा अपने शरीर को छोडकर देवलोक मे जाकर किल्विष देव के नाम से विख्यात हुए।* एक समय वे अपनी खुली छत पर बैठे-बैठे आनन्द केलि मे मग्न थे कि इसी समय उनके सामने नीचे सडक पर वीरक वनमाला के विरह में व्याकुल होकर हा! वनमाला हा! वनमाला करता हुआ, बुरी तरह करुण क्रन्दन कर रहा था। वह कभी उसके विरह में पागलों की भांति सुधबुध खोकर न जाने क्या कुछ कहता जा रहा था। वीरक की ऐसी दशा देख तथा विलाप भरे वचन सुनकर वनमाला और सुमुख के हृदय मे सहसा पश्चाताप की भावना उद्बुद्ध हो उठी। वनमाला सोचने लगी कि मैंने क्षणिक वासनाओं के वशीभूत होकर यह क्या अनर्थ कर डाला, मुझ अभागिन के ऐसे दुष्कृत्य का न जाने क्या फल मिलेगा। यह मेरा पति मेरे ही कारण किस प्रकार दुःखित हो रहा है इसकी दुर्दशा का एकमात्र मैं ही कारण हू। उधर सुमुख के हृदय में भी ऐसे ही पश्चाताप के भाव उत्पन्न हो रहे थे वह भी सोचने लगा कि मैंने सांसारिक इन्द्रियजन्यवासनासुख के वशीभूत होकर यह कैसा घोर कर्म कर डाला। कामान्ध होकर मैं यह भी न सोच पाया कि जिस अनुचित कार्य से मेरी क्षणिक परितृप्ति होगी उसी कार्य से किसी दूसरे व्यक्ति (वीरक) का सर्वनाश ही हो जायेगा। अहो! मुझ से यह कैसी भयंकर भूल हो गई है।

---

*वीरक वनमाला के विरह में तडपता हुआ अन्त में जंगल में जाकर तापस-तपस्वी बन गया और वह उसी बाल तप के प्रभाव से तीन पल्योपम की स्थिति वाला किल्विष नामक देव हुआ। ऐसा वसुदेव हिण्डी आदि ग्रन्थों में उल्लेख है—

राजा रानी इस प्रकार अपने अपने किये पर इस प्रकार मन ही मन पश्चाताप करने लगे क्योंकि प्रकृति से जिनके स्वभाव शुद्ध होते हैं उन की अशुभ प्रकृति के उदय प्रायः थोड़ी देर के लिए ही हुआ करता है और समय आने पर वे उस अशुभ प्रकृति के उदय के लिए पश्चाताप या आलोचना कर उससे मुक्त होने का उपाय भी करने लगते है। पश्चाताप या आलोचना मे कर्ममल को निराकरण करने की वडी भारी शक्ति है। भूल तो मनुष्य से हो ही जाती है पर उस भूल को स्वीकार कर लेने और उसके लिए प्रायश्चित लेने के लिए उद्यत हो जाने से कर्ममल धुल जाते हैं इसीलिए एक गुरु से इस सम्बन्ध मे प्रश्न किया गया है कि—

(१) शिष्य ने पूछा—हे पूज्य! *आत्मनिंदा से जीव का क्या फल मिलता है?

गुरु ने कहा—हे भद्र! आत्मदोषो की आलोचना करने से पश्चात्तारूपी भट्ठी सुलगती है और वह पश्चात्ताप की भट्ठी मे समस्त दोषों को डाल कर वैराग्य प्राप्त करता है। ऐसा विरक्त जीव अपूर्वकरण की श्रेणी (क्षपकश्रेणी) प्राप्त करता है और क्षपक-श्रेणी प्राप्त करने वाला जीव शीघ्र ही मोहनीय कर्म का नाश करता है।

(२) शिष्य ने पूछा—हे पूज्य! गर्हा (आत्मनिंदा) करने से जीव को क्या फल मिलता है?

गुरु ने कहा—हे भद्र! गर्हा करने से आत्मनम्रता की प्राप्ति होती है और ऐसा आत्मनम्र जीव, अप्रशस्त कर्मबधन के कारण-भूत अशुभ योग से निवृत होकर शुभयोग को प्राप्त होता है। ऐसा प्रशस्त योगी पुरुष अणगार धर्म धारण करता है और और अणगारी होकर वह अनन्त आत्मघामक कर्मपर्यायो का समूल नाश करता है।

इस प्रकार पश्चाताप कर रहे थे कि अचानक बिजली गिर पड़ी और उनकी मृत्यु हो गई।

---

*'आत्मसाक्षिकी निंदा, गुरुसाक्षिकी गर्हा।' अर्थात् अपने आत्मा की साक्षी से पापो की निंदा—पश्चाताप करना आत्मनिंदा है और गुरु आदि के समक्ष अपने दोषो की आलोचना गर्हा है।

पश्चाताप के फल स्वरूप वे राजा-रानी दूसरे भव मे हरिवर्ष क्षेत्र मे युगलिये बने। जैसा कि हरि वर्ष क्षेत्र के युगलियों का नियम है कि इस क्षेत्र के नाम पर ही उनका नाम हो अतः उनका नाम भी हरि और हरिणी पडा। यह युगलियायोनी मात्र भोग योनी है इसमें किसी प्रकार का दुःख या कष्ट नहीं होता। युगलिये अपना सारा समय आनन्द पूर्वक ही व्यतीत करते हैं। ये युगलिये नरक में नहीं जाते। क्योंकि ये ऐसे अशुभ कर्म करते ही नहीं, जिन के कारण इन्हे नरक म जाना पडे।

उधर स्वर्ग मे वीरक देव के हृदय मे सहसा एक दिन फिर से प्रतिशोध की अग्नि धधक उठी। वह सोचने लगा कि "मेरी जिस कुलटा वनमाला ने मुझे धोखा देकर सुमुख का वरण किया और उसी के साथ रगरेलिया मनाती रही, उसका जीव इस भव मे न जाने कहा किस रूप मे आया हुआ है।" यह सोचते ही उस वीरक देव को अवधिज्ञान के वल से ज्ञात हो गया कि सुमुख और वनमाला इस भव मे हरिवर्ष क्षेत्र मे युगालिया के रूप मे सुखोपभोग कर रहे हैं। उनके भोग विलासों की लीला को इस दूसरे जन्म मे भी उसी प्रकार चलते देख वीरक देव की ईर्ष्याग्नि मे घृत की आहुति पड़ गई, उसके नेत्र लाल हो गये और होठ मारे क्रोध के फडकने लग पडे। उसने मन ही मन कहा—

अहा! इस दुष्ट सुमुख ने अपनी राजविभूति का घमंड कर मेरा अपमान किया था, मेरी परमप्रिया वनमाला हर ली थी, अब भी यह दुष्ट उसी के साथ सुखोपभोग करता दिखाई दे रहा है। इस दुष्ट ने मेरा वडा अपकार किया है, मैं इस समय प्रत्येक प्रकार से समर्थ हूँ यदि मैंने इस दुष्ट का दूना अपकार न किया तो मेरी इस प्रभुता को धिक्कार है। इस प्रकार सोचते-सोचते उसने सुमुख से पूर्वभव के अपमान का वदला चुकाने की ठान ली और वह तत्काल सूर्य के समान जाज्वल्यमान रूप धारण कर स्वर्ग से हरिवर्ष क्षेत्र मे उतर आया।

उस समय वे दोनो उस परम सुन्दर हरिवर्ष क्षेत्र मे क्रीडा कर रहे थे कि वह किल्विप देव सीधा उनके पास आ पहुचा। वह उन्हे देखते ही अपनी दुष्टतर माया से तत्काल क्रोध में भर उनकी इस प्रकार भर्त्सना करने लगा—

अरे परस्त्री के हरण करने वाले सुमुख ! क्या तुझे इस समय अपना वीरक वैरी का स्मरण है ? री व्यभिचारिणी वनमाला ! क्या तुझे भी अपने पूर्वभव की याद है ? देखो, मैं तप के प्रभाव से प्रथम स्वर्ग मे देव हुआ हूँ और तुम युगलिये बने हो। तुम ने पूर्व भव मे मुझे बहुत दुःख दिया था, इसलिये अब मै तुम्हे भी दुःख देने आया हू। इसीलिए किसी ने कहा है—

दूसरों को दुःख देकर सौख्य कोई पाता नहीं,
पैर में चुभते ही कांटा टूट जाता है वहीं।

देव के ऐसे भयकर वचनो को सुनकर दोनो युगलिए सहसा हक्के-बक्के से रह गये उसके जाज्वल्यमान असह्य उग्र तेजोयुक्त रूप को देखकर तथा उसकी इस भयकर विनाशक वाणी को सुनकर दोनो के शरीर थर-थर कापने लगे। इससे पहले कि उनके मुख से कुछ शब्द निकले, उस देव ने तत्काल उन्हे वैसे ही अपनी भुजाओं मे उठा लिया जैसे कि गरुड़ छोटे-बड़े सर्पों को अपनी चौंच मे दबा लेता है। देखते ही देखते वह देव इन दोनो को हरिवर्ष क्षेत्र से उठाकर आकाश मार्ग मे उड गया। युगल दम्पति की सुधबुध जाती रही, उन्हे कुछ भी होश न था कि वे कहा है और कहां ले जाये जा रहे है। उसने सोचा कि यदि मैं इन्हें तत्काल मार डालू गा तो ये मरकर स्वर्ग मे चले जायगे, पर मैं तो चाहता हूँ ये दुष्ट नारकीय यातनायें भुगते, इसलिए ऐसा उपाय करूं कि ये इसी भव में मद्य-मास सेवन आदि ऐसे क्रूर कृत्य करें कि जिन के फलस्वरूप इन्हे नरक मे जाना पडे। इसलिए मारे भय के निःसंज्ञ हुए युगल को उस देव ने दक्षिण भरत क्षेत्र मे ला पटका।

उस समय दक्षिण भारत की राजधानी चम्पापुरी नामक नगरी थी। देवयोग से उसी समय उस नगरी का शासक स्वर्ग सिधार गया। चम्पापुरी के राजा के कोई सन्तान न थी, इसलिये वह नगरी अनाथवत् हो गई थी। देव ने अपने मायाजाल से शत्रु का और भी अधिक पतन करने के विचार से वहां आकाशवाणी करके और उसे वहां का शासक बना दिया। इस प्रकार हरि हरणी को चम्पापुरी के शासक के रूप में भरत क्षेत्र में रहना पड़ा। उसी देव की प्रेरणा से हरि और हरिणी के हृदय मे तामसी प्रवृत्तिया घर कर गईं और वे मद्य-मांस आदि नरक मे ले जाने वाले पदार्थों का सेवन करने मे कोई सकोच न करने लगे।

किन्तु किसी पूर्व जन्म के अभी उनके शुभ कर्म शेष थे, इसलिये महाराज हरि ने अपने भुजबल से समस्त नृपगणों को अपने वश में करके अखण्ड भूमण्डल पर न्याय पूर्वक शासन करना प्रारम्भ कर दिया। चम्पापुरी नगरी के महाराजा और महारानी के रुप में हरि हरिणी भोग-विलासमय जीवन बीताने लगे। यही महाराज हरिवंश के प्रथम नरेश थे। और इन्हीं से यह वंश हरिवंश कहलाया। इसी हरिवंश में आगे चलकर यदु, वसुदेव, श्रीकृष्ण, भगवान् अरिष्टनेमी या नमीनाथ आदि परमप्रतापी राजा महाराजा, वासुदेव, बलदेव तथा साक्षात् भगवान् तीर्थङ्करों ने जन्म लिया। यह हरिवंश भारत के महान यशस्वी वंश के रूप में विख्यात है।

कुछ समय बीतने के पश्चात इस दम्पति के अश्व नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह अश्व वस्तुतः सिंह के समान पराक्रमी बालक था। उसने अपने तेज से कुछ ही वर्षों मे सारी पृथ्वी के शासकों पर अपनी धाक जमा दी, और देखते ही देखते युवराज पद पर अभिषिक्त होकर अपने अलौकिक कार्यो के द्वारा सारे संसार को चकित कर दिया।

हरि वंश के आदि पुरुष महाराज अश्व के माता-पिता हरिणी और हरि किल्विष देव के प्रभाव से तामसिक वृत्ति के हो गये थे और जैसा कि पहले कहा गया मद्य-मांस आदि तामसिक पदार्थों का सेवन करने लगे थे। वस्तुतः इस मद्य-मांस प्रचार आदि के परिणाम स्वरूप हरि और हरिणी इन युगलियों को अगले भव मे नरक जाना पड़ा।

शास्त्र मे नरकगति के चार कारण बताये गये हैं जैसे कि—

१ महारम्भ २. महापरिग्रह ३ पंचेन्द्रियवध ४ कुणमाहार।

अर्थ—१ अपने स्वार्थपूर्ति के हेतु न्यायान्याय न देखते हुए अतिमात्रा में प्राणी-हिंसा करना।

२ अनीतिपूर्वक धन आदि का संचय करना तथा उस पर ममत्व बुद्धि रखना अर्थात उसमें आसक्त रहना।

३ पांच इन्द्रियों वाले पशु-पक्षी आदि जीव को मारना।

४ मदिरा-मांस अंडा आदि कुत्सित भोजन करना।

उपरोक्त प्रवृत्ति वाला प्राणी अपने जीवन को नारकीय बना लेता है अतः इनसे सर्वथा दूर ही रहना चाहिये।

इसीलिये भगवान महावीर स्वामी ने उन युगलियों के नरक गमन को दस अछेरों या आश्चर्यों में गिना है। क्योंकि सामान्यतया कभी कोई युगलिया मरकर नरक में नहीं जाता, किन्तु ऋषभदेव के पिता और माता को युगलिया होकर भी तामसिक पदार्थों के सेवन के कारण नरक में जाना पड़ा। इस युगलियों से हरिवंश की उत्पत्ति हुई।

हरि और हरिणी के परलोकवासी हो जाने पर वीर शिरोमणी महाराज अश्व ने अनेक वर्षों तक बड़े न्याय के अनुसार प्रजा का पालन किया। इन्हीं महाराज अश्व के पुत्र हिमगिरी हुए। हिमगिरी के गिरी नामक पुत्र हुए, जिन्होंने अपने-अपने समय में न्याय पूर्वक राज्य करते हुए प्रजा का पालन किया।

हरिवंश में भगवान्मुनिसुव्रत का प्रादुर्भाव

अनन्त काल के बीतने पर इसी वंश में मगध देश के महाराज सुमित्र हुए। सुमित्र की राजधानी कुशाग्रपुर थी, इनकी पटरानी का नाम पद्मावती था। महाराज सुमित्र और पद्मावती बड़े आनन्द के साथ राज-काज चला रहे थे, इनके राज्य में सारी प्रजा अत्यन्त प्रसन्न और संतुष्ट थी। कहीं किसी को किसी प्रकार का दु:ख दैन्य नहीं सताता था। प्रत्येक परिवार सर्वथा सुखी और समृद्ध था तथा चारों ओर सुख और शांति का अखण्ड साम्राज्य छाया हुआ था। प्रजा के सुखी होने से राजा और रानी का मन भी सदा अत्यन्त प्रसन्न और आनन्दित रहता था।

एक समय शरद् पूर्णिमा की रात्री में महारानी पद्मावती सुख-शय्या पर सो रही थी कि प्रातःकाल के समय उन्हें सहसा १. गज, २ वृषभ, ३ सिंह, ४ लक्ष्मी, ५. पुष्पमाला, ६ चन्द्र, ७ सूर्य, ८ कलश, ९ कमलपूर्ण सरोवर, १०. समुद्र, ११. सिंहासन, १२. देव विमान, १३. रत्नराशि और १४. निर्धूम अग्नि ये चौदह महा स्वप्न दिखाई दिये।

उस समय अनुपम कान्तिवाली छप्पन दिक्कुमारियां महारानी पद्मावती की सेवा में उपस्थित थीं। इन चौदह स्वप्नों के देखने से महारानी के मुख को अत्यन्त प्रभामय और विकसित देख उनकी सब सहचारियों ने उन्हें घेर लिया और हर्ष विह्वल होकर महारानी से प्रार्थना करने लगी कि इन स्वप्नों का वृतांत तो महाराज की सेवा में निवेदन करना चाहिये और इन स्वप्नों का फल पूछना चाहिये। तब

महारानी पद्मावती महाराज सुमित्र की सेवा में जाकर अपने सब स्वप्नों का यथातथ्य वर्णन कर निवेदन करने लगी कि हे प्राणनाथ! आप कृपाकर बताएँ कि इन स्वप्नों का फल क्या और कैसा होगा?

महारानी के चौदह स्वप्नों का वृत्तांत सुनकर महाराज सुमित्र हर्ष से गद्गद् होकर कहने लगे कि—

हे प्रिये! इन स्वप्नों का फल यह है कि तीनों लोकों के स्वामी भगवान् जिनेन्द्रदेव तुम्हारे गर्भ से जन्म लेंगे।

महाराज सुमित्र के इन अमृततुल्य वचनों को सुनकर महारानी पद्मावती का हृदय ऐसे आनन्द विभोर हो गया मानों चन्द्र किरणों के स्पर्श से कुमुदनी कुल विकसित हो उठा हो। अब तक वह जिस स्त्री-पर्यायको निकृष्ट समझती रही उसे ही अब भगवान् तीर्थङ्कर की माता के रूप में देखकर परम पवित्र समझने लगी। उसी समय देवेन्द्र वृन्द वन्दित भगवान् मुनिसुव्रत सहस्रार स्वर्ग से ×च्यवकर माता पद्मावती के गर्भ में आ विराजे। जिस समय भगवान् मुनि सुव्रत गर्भ में आये उस समय माता पद्मावती कुछ नीलिमा लिये हुए श्वेत पयोधरों से शोभित विद्युत्प्रभाभरण से युक्त शरद् ऋतु के समान सुशोभित होने लगी।

यथा समय सवा नव मास में माता पद्मावती की कोख से माघ मास में शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र में समस्त चराचर मात्र को आनन्दित करने वाले भगवान् मुनिसुव्रत ने अवतार लिया। भगवान् के अवतार धारण करते ही इन्द्रादि सभी देवगण भगवान् के दिव्य दर्शनों से अपने आपको कृतार्थ करने के लिये कुशाग्रपुर में आ पहुँचे। उन देवगणों ने नगर में प्रवेश कर भगवान और उनके माता पिता को बड़े श्रद्धा से प्रणाम किया और भगवान् के दिव्य दर्शनों से कृतज्ञ हो वे लोग अपने-अपने लोकों को विदा हो गये।

अनेक प्रकार की बाल्य-लीलाओं से अपने माता-पिता के मन को हरते हुए भगवान् ने यौवन में पदार्पण किया। इसी समय एक दिन वे अपने दिव्य प्रासाद पर बैठे प्रकृति-सुन्दरी की अनुपम शोभा निहार रहे थे कि उनके हृदय में संसार की नश्वरता की भावना सहसा जागृत

× ऊर्ध्व लोक में शरीर छोड़कर मध्य लोक में जीव का आना च्यवन कहलाता है। जिसे लोक भाषा में चूणा या चोणा भी कहते हैं।

हो उठी। वे शरद ऋतु म हवा के झोंको मे इधर-उधर छितराती हुई मेघ-मालाओं को देखकर मन ही मन सोचने लगे कि यह शरद् ऋतु का अत्यन्त मनोहर मेघ देखते ही देखते कैसे विलीन हो गया। इसी प्रकार ससार, आयु, शरीर आदि सभी पदार्थ क्षणभगुर है, किन्तु महामोह के पाश मे पडे हुए इस मानव को इस नश्वरता का कुछ भी तो भान नही होता, मानो ये मेघ क्षण भर मे विलीन होकर मनुष्य की आंखो के सामने नश्वरता का प्रत्यक्ष चित्र अंकित कर देता है। ओह! शुभाशुभ परिणामो द्वारा संचित अल्पप्रमाण परमाणुओं का राशिस्वरूप यह आयुरूप मेघ निस्सार है, क्योंकि कालरूपी प्रचड पवन के वेगाघात से तितर-बितर होकर यह पलभर में नष्ट हो जाता है। जिसकी सधिया वज्रस्वरुप (वज्रवृषभनाराच) हैं और रचना सुन्दर है ऐसा मनोहर भी यह शरीर रूपी मेघ मृत्युरूपी महापवन के वेगसे भग्न हुआ असमर्थ के समान विफल हो जाता है। सौभाग्यरुप और नवयौवनरूपी भूषण स भूषित, समस्त मनुष्यों के मन और नेत्रों को अमृततुल्य सुख वर्षाने वाले इस शरीररूपी मेघ की कांति वृद्धावस्था रूपी पवनसमूह से समय-समय पर नष्ट होती रहती है। ज्यो-ज्यो आयु बढ़ती जाती है त्यो-त्यो यह शरीर क्षीण होता चलता है।

जो राजा अपने पराक्रम से अपने बड़े-बडे शत्रुओं को वश करने वाले हैं; उन्हे भी यह काल रूपी प्रचण्ड वज्र का घात बात की बात मे चूर-चूर कर देता है। ससार मे नेत्र और मन को अतिशय प्यारी स्त्रिया और प्राणो के समान प्यारे सुख मे सुखी दुःख मे दुःखी मित्र और पुत्र भी सूखे पत्ते के समान कालरूपी पवन से तत्काल नष्ट होजाते है *"दीवप्पणट्ठे व अणन्त मोहे, नेयाउयदट्ठुमदट्ठुमेव"* अर्थात् जीवों के शरीर क्षणभगुर हैं इस तथ्य को भली भांति जानते और मृत्यु से डरते हुए भी ये प्राणी मोहान्धकार से अन्धा होकर इष्ट मार्ग को न अपना अनिष्ट विषयों की ओर ही बढता है। जिस प्रकार कांटे पर लगे हुए मांस की लोभी मछली रसनेन्द्रिय के वश मे पड कर कांटे मे फस जाती है उसी प्रकार पाच कामगुणो मे अन्धा हुआ यह जीव घोर कर्मबन्ध में बन्धता है। जिस प्रकार सुगन्ध का लोभी भौंरा फूलो मे बंधकर तड़प-तडप कर प्राण दे देता है, उसी प्रकार सुगन्धलोलुप मानव भी एक दिन काल के गाल मे समा जाता है। जिस प्रकार रूप का लोभी

पतंगा दीप शिखा पर जल मरता है इसी प्रकार चित्त को चंचल बना देने वाले रमणियों के कटाक्ष पात और मन्द-मन्द मुस्कराहट की प्रभा से अलौकिक मुख मंडल को देख कामनी से संतप्त हो नानाविध विषयों में फंस जाता है। जो लोग स्वल्प शक्ति वाले हैं निर्बुद्धि हैं, वे यदि विषय भोगरूपी पंक में फंस जायं तो कोई आश्चर्य नहीं, किन्तु जो वज्रवृषभनाराचसंहनन के धारक हैं और उत्तम हैं वे भी इसमें फंस जाते हैं यह बड़ा आश्चर्य है। जो जीव अनेक बार स्वर्गसुखरूपी अनंत समुद्रों को पीकर जरा भी तृप्त न हुआ वह बिल्कुल थोड़े दिवस रहने वाले इस भूलोक के सुखरूपी जलबिन्दु से कभी तृप्त नहीं होगा, जैसे हजारों नदियों के मिल जाने से भी समुद्र नहीं भरता उसी प्रकार अनेक प्रकार के सांसारिक काम भोगों से इस जीव की भी कभी तृप्ति नहीं होती। भोगवांछारूप भयंकर अग्नि ज्वाला के बढ़ाने के लिये ये विषय-इन्धन की राशि के समान हैं और विषयों से हट जाना एवं इन्द्रियों का वश करना आदि संयम उस अग्नि ज्वाला को शांति करने वाली निश्चल जलधारा है। अब मुझे असार भूत इस विषय सुख का परित्याग कर बहुत जल्दी परम पवित्र मोक्ष के लिये प्रयत्न करना चाहिये और पहिले अपना प्रयोजन सिद्ध कर पश्चात् दूसरे प्राणियों के हितार्थ परमपवित्र सच्चे तीर्थ की प्रवृति करनी चाहिये।

इस प्रकार मति श्रुति और अवधिज्ञानरूप तीन नेत्रों से शोभित स्वयंभू भगवान मुनिसुव्रतनाथ के स्वयमेव वैराग्य होने पर देवेन्द्रों के आसन कम्पायमान हो गये एवं सौधर्म आदि स्वर्गों के देव तत्काल कुशाग्रपुर में आ गये। उस समय मनोहर कुंडल और हारों से शोभित श्वेतकांति के धारक सारस्वत आदि लौकांतिक देवों ने आकर पुष्पांजलियों की वर्षा की एवं हाथ जोड़ कर मस्तक नवा नमस्कार कर वे इस प्रकार स्तुति करने लगे —

अखंड ज्ञानरूपी किरणों से प्रबल मोहांधकार को नाश करने वाले भव्यभावनारूपी कमलनियों के विकास करने में अकारण बन्धु (सूर्य) हितकारी, बीसवें तीर्थ के प्रवर्तक हे भगवान् जिनेन्द्र! आप बढ़ जयवंत रहें और जीवें। प्रभो, यह समस्त लोक भयंकर संसार रूपी दुःख ज्वाला से संतप्त हो रहा है, इसके हितार्थ आप शीघ्र ही धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करें जिस से कि यह आप के द्वारा प्रकटित धर्मतीर्थ में स्नान

करके महामोहरूपी मैल को धोकर लोक के अग्रभाग मे विराजमान परमसुख के स्थान मोक्षलोक मे चला जाय।"

भगवान मुनिसुव्रत का पुत्र महारानी प्रभावती से उत्पन्न कुमार सुव्रत था। भगवान् ने उसका राज्याभिषेक किया जिस से हरिवंशरूपी विशाल आकाश का चद्रमास्वरूप कुमार सुव्रत श्वेत छत्र चमर और सिंहासन को तत्काल शोभित करने लगा। अनन्तर इन्द्र की आज्ञा से कुबेर द्वारा तैयार कर लाई गई पालकी मे सवार हो भगवान् शीघ्र ही वन की ओर चल दिये। जब तक वह पालकी पृथ्वी पर चली तब तक तो राजाओ ने वाहा और आकाश मे देवगण वाहने लगे। वन में जाकर भगवान् ने कार्तिक सुदी सप्तमी के दिन दीक्षा ग्रहण की और छः दिन का उपवास कर निश्चल बैठ गये। जिस समय भगवान मुनिसुव्रत ने दीक्षा ली थी उनके साथ हजार राजा और दीक्षित हुये। दीक्षा के समय भगवान् ने नोचकर जो केश उखाड़े थे उन्हे इन्द्र ने बहुमान से विधि पूर्वक क्षीरोदधि समुद्र मे क्षेपण किया। इस प्रकार भगवान् का तीसरे ×दीक्षाकल्याणक उत्सव मनाकर देवगण अपने-अपने स्थानों पर चले गये। जिस प्रकार हजार किरणों का धारक सूर्य शोभित होता है उसी प्रकार मति श्रुति अवधि और मनपर्यय इन चार ज्ञानों से भूषित भगवान् हजार राजाओ से मंडित अतिशय रमणीय जान पड़ने लगे। उपवास के अत मे दूसरे दिन भगवान् आहार विधि के वतलाने के लिये आहारार्थ कुशाग्रपुर आये और वहां वृषभदत्त ने उन्हे आहार-दान दिया।

उस समय सुन्दर शब्दो से समस्त आकाश को आच्छादन करने वाली देव दु दुभिया बजने लगी सुगन्धित जल बरसाने लगा, अनुकूल पवन बहने लगा, पुष्प वृष्टि होने लगी और आकाश से रत्न वर्षा हुई। इस प्रकार बहुत समय तक देवो ने आकाश मे स्थित हो अतिशय उत्तम एव अन्य के लिये दुर्लभ ये पांच दिव्य प्रगट किये एव पुण्य-

---

+कल्याणक का अर्थ है कल्याण करने वाला, तीर्थंकर भ० के पाच कल्याणक होते हैं, १. च्यवन, २. जन्म ३ दीक्षा, ४ कैवल्य और ५ निर्वाण, ये पाचो अवस्थायें कल्याणप्रद होती हैं अत कल्याणक कही गई हैं।

मूर्ति दाता वृषभसेन की सेवाकर अपने अपने स्थानों पर चले गये। इसके बाद भगवान् मुनिसुव्रत ने भी विहार के योग्य स्थान पर विहार किया। भगवान् मुनिसुव्रत तेरह मास पर्यन्त छद्मस्थ रहे। पश्चात् ध्यान रूपी प्रबल अग्नि से घातिया कर्म रूपी ईन्धन के जलते ही उन्हे आश्विनसुदी पंचमी के दिन केवलज्ञान का लाभ हुआ। उस समय केवलज्ञान रूपी अखंड नेत्र से समस्त जगत् भगवान् को एक साथ भासने लगा एवं जिस प्रकार निरावरण सूर्य को पदार्थ के प्रकाश करने में दूसरे की सहायता नहीं लेनी पडती उसी प्रकार भगवान् मुनिसुव्रत को भी क्रम या रीति से जतलाने वाले अन्य पदार्थ की सहायता न लेनी पड़ी। भगवान् को केवल ज्ञान होते ही इन्द्रों के आसन कंपित हो गये वे तत्काल आसनों से उतर सात पैंड चले हाथ जोड़ मस्तक नवा भगवान् को नमस्कार किया। एवं अत्यन्त आनन्दित हो देवों के साथ भगवान के पास आये। उस समय तीन भुवन के स्वामी उसे सुन्दर, अचिंत्य अनन्त आदित्य, विभूति से भूपित, भगवान मुनिसुव्रत की को मनुष्य और देवों ने भक्तिभाव से वन्दना की। भगवान् के समवशरण में बारह सभायें थीं। जिस समय मुनि देव आदि अपने-अपने स्थानों पर बैठ गये तो गणधर विशाल ने भगवान् से धर्म के विषय में प्रश्न किया भगवान् ने भी द्वादशांग वाणी का प्रकाश किया। नमस्कार कर सब लोग अपने-स्थानों को चले गये। भगवान् ने भी बहुत देशों मे विहार किया और मेघ के समान समस्त जीवों के हितार्थ धर्मामृत की वर्षा की। भगवान् के अठाईस गणधर थे जो द्वादशांगों तथा चौदह पूर्वों के पाठी थे। उत्तमोत्तम गुणों से भूषित तीस हजार मुनि थे। जिनका कि सात प्रकार का संघ था। संघ में पांचसौ मुनि पूर्वपाठी थे। इक्कीस हजार शिष्य अठारहसौ अवधिज्ञानी, अठारहसौ केवल ज्ञानी बाईस सौ विक्रिया ऋद्धि के धारक पन्द्रहसौ विपुलमति मनपर्ययज्ञानी एवं बारहसौ रागद्वेष रहित भले प्रकार वाद करने वाले मुनि थे। तथा पचास हजार आर्यिका, एक लाख शिक्षाव्रत, गुणव्रत, आदि अणुव्रतों के पालन करने वाले श्रावक एवं तीन लाख सम्यग्दृष्टि श्राविका थीं। इस लिये जिस प्रकार नक्षत्रों से वेष्टित चन्द्र शोभित होता है उसी प्रकार सभा में स्थित मुनि आदि से वेष्टित भगवान् अतिशय रमणीय जान पड़ते थे। भगवान् मुनिसुव्रत की समस्त आयु तीस हजार थी। जिस में २२५०० वर्ष राज्य अवस्था में एवं शेष संयमी अवस्था में व्यतीत हुई।

अन्त मे इन्होंने परम आनन्द देने वाले उत्तमोत्तम वनो से रमणीय-सम्मेदशिखर पर आरोहण किया। योग निरोधकर अघातिया कर्मक्षय किये एवं हजारो मुनियो के साथ मोक्ष शिला पर जा विराजे।

इस प्रकार मुनि सुव्रतनाथ के दीक्षा ग्रहण कर लेने पर उनके पुत्र दक्ष ने राज्य भार संभाला। राजा दक्ष के रानी इला से उत्पन्न एक पुत्र और पुत्री दो सन्ताने थीं। पुत्र का नाम ऐल और पुत्री का नाम मनोहरी था। राजा ऐल ने अंग देश में ताम्रलिप्ति नामक नगर बसाया और उसके पुत्र ऐलेय ने नर्मदा के तट पर माहिष्मति नामक नगर बसाया। ऐलेय के कुणिम नामक पुत्र हुआ। कुणिम के पुलोम पुलोम के पौलम और चरम नामक दो पुत्र हुए। चरम का संजय और पौलोम का महिदत्त हुआ। महिदत्त के अरिष्ट और मत्स्य नामक पुत्र हुए। मत्स्य के आयोधन से पुत्र थे। आयोवन का मूल और उसका पुत्र शाल तथा शाल का सूर्य हुआ। इसी वशं मे आगे चलकर वसु नामक लड़का हुआ। जिस समय महाराज वसु चेदी राष्ट्र की राजधानी शुक्तिपुरी मे राज्य कर रहे थे, उस समय देवयोग से एक बड़ी ही अद्भुत घटना घटी।

नारद व पर्वत का शास्त्रार्थ

राजा वसु के समय मे क्षीरकदम्बक नामक एक बड़े भारी वेदो के विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। उनके पास अनेक शिष्य वेदाध्ययन करते थे। उनमें से उनका अपना पुत्र पर्वत भी एक था। पर्वत के अतिरिक्त महाराजा वसु स्वय वेदाध्ययन करते थे। इन दोनों के साथ तीसरे साथी थे नारद। एक बार तीनों को एक साथ पढ़ते देख किसी अवधि-ज्ञानी मुनि ने कहा कि इन तीनों साथियों मे से एक तो मोक्षं को जायगा और बाकी दोनों संसार के आवागमन चक्र मे भ्रमण करते रहेगे। मुनि की यह बात सुनकर गुरु ने उनकी परीक्षा लेने के विचार से कि इनमें से कौन मोक्ष का अधिकारी है, गुरु ने इन्हें एक-एक नकली कबूतर देकर कहा कि इसे वहाँ जाकर मार डालो जहाँ कोई न देखे।

इस पर वसु ने तत्काल एक कपडे में लपेटकर कबूतर की गर्दन मरोड़ दी और पर्वत भी बहुत से स्थानों पर इधर-उधर भटकने के पश्चात् एक एकान्त गुफा मे जा कबूतर को मार लाया। किन्तु नारद को ऐसा कोई स्थान नहीं मिला, जहाँ वह कबूतर को मार सके। क्योंकि उन्होंने देखा कि ऐसा तो कोई स्थान ही नहीं जहाँ कोई भी न देखता

हो क्योंकि अवधिःज्ञानी पुरुष भी तो मर्यादित रूप में देखते तो हैं, इसी प्रकार सर्वज्ञ प्रभु तो सर्वत्र सब कुछ देखता ही है, फिर भला ऐसा कौनसा स्थान हो सकता है जहाँ लेजाकर मैं इस कबूतर को मार डालूँ। इसका अर्थ यह है कि गुरु ने मुझे इसे मारने की आज्ञा ही नहीं दी, बस यही सोचकर नारद कबूतर को जीवित ही अपने हाथों में लिये हुए लौट आये और गुरु के पूछने पर बोले कि "गुरुदेव ! मुझे तो कोई ऐसा स्थान नहीं मिला जहाँ जाकर मैं इसे मार सकूँ ! इसलिए मैं इसे जीवित ही वापस ले आया हूँ।" नारद की इस बुद्धिमता को देख गुरु अत्यन्त प्रसन्न हुए और मन ही मन सोचने लगे कि वास्तव में यह बालक ही मुक्त होने का अधिकारी है।

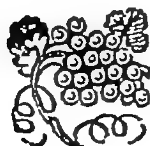
इसी समय एक दिन गुरु किसी कारण से राजा वसु पर अत्यन्त क्रुद्ध हो उसे ताडन करना चाहते थे कि वह भागकर गुरुमाता की शरण में चला गया, गुरु माता ने उस समय गुरु के कोप से उसे बचा लिया। तब वसु ने बडे विनय भाव से प्रार्थना की कि "माता मैं आज के उपकार के फलस्वरूप समय आने पर आपकी अवश्य किसी आज्ञा का पालन कर आपके ऋण से उऋण होऊगा।"

कुछ समय पश्चात् गुरु के स्वर्ग सिधार जाने पर पर्वत और नारद में इस विषय को लेकर शास्त्रार्थ होगया कि '*अजैर्यष्टव्यम्*' इस वेद वाक्य द्वारा अज शब्द से क्या अभिप्रेत है। पर्वत का कथन था कि यहाँ अज का अर्थ 'बकरा' है इसलिए इस वाक्य के द्वारा वेद भगवान् आदेश देते हैं कि यज्ञ में बकरे की बलि देनी चाहिए किन्तु नारद का कथन था कि यहाँ अज शब्द का अर्थ बकरा नहीं प्रत्युत तीन साल के पुराने जौ हैं। क्योंकि तिसलिए जौ में ऊगने की क्षमता नहीं रहती इसलिए '*न जायते इति अजः*' इस व्युत्पत्ति के अनुसार अज शब्द का अर्थ पुराने जौ ही हैं। इस पर भी पर्वत नहीं माना तो नारदने और समझाया कि उक्त वेद वाक्य में यदि अज का अर्थ बकरा होता तो "*अजेन यष्टव्यम्*" ऐसा एक वचन का प्रयोग करते। बहुवचन का प्रयोग ही यह स्पष्ट दिखाता है कि यहाँ अज का अर्थ बकरा कदापि नहीं हो सकता जौ ही हैं। इस प्रकार दोनों का वादविवाद बहुत बढ़गया। अन्त में यह निर्णय हुआ कि इस शास्त्रार्थ में किसी को निर्णायक बना दिया जाय और वह जो फैसला दे उसे दोनों स्वीकार करले। इस पर राजा वसु को निर्णायक

मान लिया गया। इधर पर्वत की माता राजा वसु के पास जा पहुची और बोली कि "बेटा बचपन के उस उपकार का बदला चुकाने का अवसर आज आया है, इस शास्त्रार्थ मे तुम मेरे पुत्र पर्वत के पक्ष मे निर्णय देना।"

वसु ने कहा —माता यह कैसे हो सकता है क्योकि सच्चा अर्थ नारद का ही है मै असत्य अर्थ का प्रतिपादन कर नरक--गामी नहीं बनना चाहता।

पर्वत की माताा बोली—अपने दिये हुए बचन का पालन करने के लिए तुम्हे ऐसा करना होगा, अन्यथा तुम्हे वचन-भंग का पापलगेगा और इसक कारण भी तुम स्वर्ग मे नहीं जासकोगे। इस पर राजा बड़े असमजस मे पड़ा, क्या करे क्या न करे। अन्त में उसने निश्चय किया कि वह ऐसी मिश्र भाषा बोलेगा जो असत्य भी न हो और गुरू माता को बात भी रह जाय। तदनुसार राजा वसु ने भरी सभा मे कहा कि—शास्त्रानुसार तो अर्थ वही है जो नारद कहता है पर गुरु ने इसका अर्थ वही बताया था, जो पर्वत कहता है। अर्थात् अज शब्द का अर्थ बकरा भी और तीन साल पुराने जौ भी है। राजा वसु के ऐसा कहते ही उस वसु का सिंहासन हिल उठा और तत्काल वह भूमि पर गिरकर नीचे सातवीं नर्क में जा पहुंचा। इस राजा वसु के बृहद्ध्वज नामक पुत्र हुआ। बहद्ध्वज ने अपने पुत्र सुबाहु को राज्य सौंप और आप तप के लिये वन मे चले गये। राजा सुबाहु का पुत्र दीर्घबाहु हुआ। दीर्घबाहु का वज्रबाहु, उसका अभिमान, अभिमान का भानु, भानु का यवि, यवि का सुभानु और उसका भीम इत्यादि अनेकों भगवान् मुनिसुव्रत के तीर्थ मे हुए और अपने-अपने पुत्रों को राज्य दे सेबों ने सयम का आश्रय लिया। भगवान् मुनिसुव्रत का तीर्थ (समय) छ लाख वर्ष तक रहा।



❀ दूसरा परिच्छेद ❀

यदुवंश का उद्भव तथा विकास

भ० मुनिसुव्रत के पश्चात् इक्कीसवे तीर्थङ्कर भगवान् नेमीनाथ का तीर्थ पाँच लाख वर्ष पर्यन्त का हुआ। उस समय मे इसी हरिवंश मे राजा यदु हुए। ये हरि वंश रूपी उदयाचल में सूर्य के समान थे और इन्हीं से यादव वंश की उत्पत्ति हुई। राजा यदु की आयु पन्द्रह-हजार वर्ष थी। राजा यदु के नरपति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसे राज्य सौंप वे स्वर्गलोक गए। राजा नरपति के शूर और सुवीर दो पुत्र हुए। वे पुत्र वास्तव में शूर वीर थे राजा नरपति ने इन दोनों को राज्य दे दिया और आप स्वर्ग सिधार गये।

कृता राजा शूर ने अपने छोटे भाई सुवीर को मथुरा का अधिपति बनाया और कुशद्यदेशमे परम रमणीय एक शौर्यपुर नाम का नगर बसाया। राजा शूरक के शूर अंधक वृष्णि आदि पुत्र हुए और मथुरा के स्वामी राजा सुवीर के अतिशय वीर भोजक हो गया। राजा शूर ने अपने बड़े पुत्र अंधकवृष्णि को और सुवीर ने ज्येष्ठपुत्र भोजकवृष्णि को राज्य दे दिया और वे दोनो यथासमय स्वर्गलोक के अधिकारी हुए।

राजा अंधकवृष्णि की पत्नीका नाम सुभद्राथा और उससे समुद्रविजय अक्षोभ्य, स्तिमित, सागर, हिमवान, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द्र और वसुदेव ये दस पुत्र उत्पन्न हुए। ये समस्त पुत्र देवों के समान प्रभावी थे, और स्वर्गों से च्यवकर सुभद्रा के गर्भ में अवतीर्ण हुए थे। सर्वगुण-सपन्न ये दशोपुत्र लोक में दशार्ह नाम से पुकारे जाते थे। इनके कुन्ती और माद्री दो कन्याएँ थीं। ये दोनों कन्याए वास्तविक स्त्रियों के गुणों से भूषित थीं और अपने गुणों से लक्ष्मी और सरस्वती की तुलना

करती थीं। कुन्ती व माद्री का विवाह कुरुवशी महाराज पॉडु से हुआ, जिससे पाण्डव वश चला, यह प्रसग आगे वर्णित होगा। इधर महाराज सुवीर के पुत्र राजा भोजकवृष्णि की स्त्री पद्मावती थी। उससे १. उग्रसेन, २. महासेन, और देवसेन। ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे।

एक समय सुप्रतिष्ठ अणगार मुनि ग्रामानुग्राम विचरते हुए शौरीपुर नगर के पास श्रीवन नामक उद्यान मे आ विराजे। मुनिराज के शुभागमन की सूचना पाकर महाराज अन्धकवृष्णि बडी श्रद्धाभक्ति के साथ सपरिवार उनके दर्शनार्थ गये। सुप्रतिष्ठ मुनि ने राजा को अनेक प्रकार से धर्म-रहस्यो का बोध कराया। अनेक प्रकार की शकाओं के सन्तोषजनक समाधान पाकर राजा परम प्रमुदित हुआ। क्योंकि मुनिराज अवधिज्ञानी थे, इसलिए महाराजा का अपने और अपने परिवार के भूत, भविष्य और वर्तमान के प्रति जिज्ञासा भाव जागृत हो उठा। और मुनि से हाथ जोड़कर निवेदन करने लगा कि हे मुनिराज! मैंने और मेरी संतान ने पूर्व जन्म मे, वे कौनसे कर्म किये है, जिनके कारण हम इस भव मे ये शुभाशुभ फल भोग रहे है। इस पर कृपालु मुनिराज ने संक्षेप मं महाराज अन्धकवृष्णि तथा उसके समुद्र विजय आदि नौ पुत्रों के पूर्व भव का चित्र अंकित कर दिखाया।

तब महाराज ने फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि "हम सब तो साधारण प्राणी है, न हमारे इस जीवन मे कोई उल्लेखनीय विशेषता है, और न पिछले भवो में ही कोई खास बात थी। पर मेरा यह सबसे छोटा पुत्र वसुदेव तो कोई विशिष्ट प्राणी लक्षित होता है, चराचर मात्र इसके प्रति सदा आकृष्ट रहता है, जिधर निकल जाता है उधर के ही नर-नारियों की दृष्टि बरबस इसकी ओर खिच जाती है। समस्त विश्व की सुन्दरियो का तो यह सर्वस्व ही है, रमणियो को इस प्रकार अनायास मन्त्र मुग्ध बना देने की इसकी अपूर्व क्षमता को देखकर सारा ससार आश्चर्य चकित है। आखिर इसने पूर्व भव मे ऐसे कौन से कर्मो का बन्धन किया है, जिनके उदय के फलस्वरूप वसुदेव को यह अद्भुत विशेषता प्राप्त हुई है। कृपा कर इसके पूर्व भव के सम्बन्ध में कुछ बताकर इस जन को कृतार्थ कीजिए"।

× वसुदेव का पूर्व भव ×

राजा के ऐसे विनीत वचन सुनकर दयासागर सुप्रतिष्ठ मुनि वसुदेव के पूर्व भव का वर्णन करते हुए कहने लगे कि—

मगध जनपद के पलाशपुर नामक ग्राम में स्कन्दिल नामक ब्राह्मण दम्पति के घर में नन्दीषेण नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह लडका बिल्कुल काला और कुरूप था, उसके बडे-बडे टेढ़े-मेढे दाँत, जो होठों से भी बाहर निकले रहते थे, मोटे-मोटे होठ, छोटी-छोटी पीली-पीलीसी आँखें चपटा सा सिर और बेडोल अंग-प्रत्यङ्गो को देखकर कुछ डर-सा लगने लगता इस कुरूपता की प्रतिमा को कोई अपने पास भी नहीं फटकने देता। एक तो जन्मजात महादरिद्र और दूसरी इस भयकर कुरूपता ने मिलकर 'एक तो करेला और फिर नीम चढ़ा' कहावत को चरितार्थ कर दिया था।

'दैवो देवो दुबल घातक'

के अनुसार उसके दुःख और कष्टों को बढाने के लिए कालने उसके माँ बापो को भी बचपन मे ही उससे छीन लिया। माता-पिता के परलोक सिधार जाने बाद नन्दीषेण अनाथ होकर इधर उधर भटकने लगा। वह दर दर की ठोकर खाता मारा मारा फिरता जहाँ भी जाता उसे तिरस्कार और ताडना के सिवा कहीं कुछ भी न मिलता, भिक्षा माँगने जाता तो भीख के स्थान पर दो चार गालियाँ ही उसको नसीब होतीं। वह रात-दिन मन मारे गम खाये पड़ा रहता। ससार में कहीं से भी तो उसे सहानुभूति स्नेह या प्यार का लवलेश भी मिलने की कोई आशा न थी। बारह बरस बाद तो घूरे (रोडियों) के भाग भी जागते हैं अतः नन्दीषेण के दिन भी फिरते दिखाई देने लगे। एक बार अचानक उसका मामा पलासपुर की ओर आ निकला। अपने भानजे की ऐसी दुर्दशा देख उसके नेत्रों में करूणाश्रु छलछला आये। बहिन के प्रति हार्दिक स्नेह उमड पडा। और वह इतने दिनों तक इस अभागे विपत्तियों के मारे अपने भान्जे की सुध न लेने के कारण मन ही मन आपको धिक्कारने लग पड़ा। पुण्य की कृपासे उसके घर खेत, कुए, गाय, भैंस आदि सभी कुछ थे।

मामाने दया कर नंदीषेण को अपने गाँव ले गया उसने उसे खेती-बाडी और पशु चराने के काम में लगा दिया। नन्दीषेण कुरूप भले ही हो, पर आलसी नहीं था। उसने खेती-बाडी के काम-काज में रात-दिन एक कर दिया। नन्दीषेण की इस कडी मेहनत के फल-स्वरूप खेती की उपज देखते ही देखते दुगनी बढ़ गई इस पर प्रसन्न

हो मामाने उसका कहीं से विवाह करने का निश्चय किया। पर ऐसे व्यक्ति को कोई भी तो अपनी कन्या देने को तैयार नहीं होता। अन्त मे मामा ने अपनी पत्नि से परामर्श करने के पश्चात् अपनी सात लड़कियो मे से सबसे बड़ी का सम्बन्ध नंदीषेण के साथ कर देने का निश्चय कर लिया। किन्तु जब उस लड़की को पता लगा तो उसने स्पष्ट कह दिया कि उस काले कुरूप और बदसूरत के साथ विवाह कराने से तो मरजाना अच्छा समझती हूँ। ये शब्द जब नन्दीषेण के कानो मे पड़े तो उसका हृदय मारे दुःख और ग्लानि के विदीर्ण हो गया। पर मामा ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा कोई कोई बात नहीं, बड़ी लड़की नहीं तो मै उससे छोटी का तुम्हारे साथ व्याह कर दूंगा। पर उस लड़की ने भी स्पष्ट शब्दो मे इस सम्बन्ध को अस्वीकार करते हुए कहा कि उसके साथ विवाह करने से तो अच्छा है मुझे साक्षात् यमराज के हाथो में सौप दो। नन्दीषेण की शक्ल-सूरत तो यमराज से भी अधिक डरावनी है।

इस प्रकार नन्दीषेण के मामा ने अपनी सातो लड़कियो के साथ नन्दीषेण के सम्बन्ध का संकल्प किया। पर सातों ने ही जब अस्वीकार कर दिया तो नन्दीषेण के हृदय में ग्लानि और दुःख के स्थान पर सहसा वैराग्य भावनाएं जाग उठीं और वह सोचने लगा कि ऐसे तिरस्कृत और अपमानित जीवन से क्या लाभ? संसार मे मुझे कोई भी तो प्यार नहीं करता, किसी की भी आत्मा के साथ मेरी आत्मीयता नहीं, इस जीवन से तो मर जाना ही अच्छा है सच कहा है किसी ने—

"नही वह जिन्दगी जिसको जहाँ नफरत से ठुकराये।

यह सोच कर वह घर से निकल पड़ा और चलते-चलते रत्नपुर नामक नगर के उपवन मे आ पहुचा।

रत्नपुर के उपवन में अनेक सुन्दरियों को अपने प्रिय पुरुषो के साथ आनन्द केली करते हुए देखा और सोचने लगा कि एक ओर तो ये सौभाग्यशाली नर-नारी हैं, और दूसरी ओर मै मन्द भाग्य जिसे संसार मे कोई देखना भी नहीं चाहता। संसार का यह अपमान और अधिक नहीं सहा जा सकता। बस! चलूं और चलकर कहीं एकान्त में आत्म-हत्या कर लूं। यह सोचता-सोचता वह एक निबिड़

तिमिराच्छन्न वन-वीथिका में जा निकला। यह स्थान ऐसा घना अन्धकारमय था कि औरों की तो बात ही क्या स्वय सूर्य किरणों का भी यहाँ प्रवेश नहीं हो पाता था। ऐसे भयकर बीहड़ जगल में जा नन्दीषेण ने पतली-पतली लताओं की सुकोमल शाखाओं का फन्दा बना अपने गले में फसा प्राण देने का निश्चय कर लिया।

इसी समय दैवयोग से एक मुनिराज उधर से आ निकले। उन्होंने जब देखा कि कोई व्यक्ति इस निभृत लताकुंज में कोई व्यक्ति आत्म-हत्या करने में उतारू हो रहा है तो उनका कोमल हृदय दयार्द्र हो उठा। वे तत्काल उसके पास जा पहुँचे और कहने लगे कि, हे! भाई, मनुष्य का दुर्लभ जन्म पाकर भी तुम इसे व्यर्थ मे क्यों खोना चाहते हो। ऐसा तुम पर कौन सा भयकर कष्ट आ पड़ा है। जो अपने हाथों अपने प्राण देने को उतारू हो रहे हो। तुम्हारा यह शरीर सुदृढ है इससे प्रयत्न और पुरुषार्थ करने पर इस ससार मे तुम्हे कहीं कोई अभाव नहीं रह सकता, अपने मन को इस प्रकार उना न बनाओ, धैर्य धरो और जीवन को सार्थक करने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ हो जाओ।

मन के हारे हार है मन के जीते जीत

के अनुसार अपने मन पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करो। जब तुम मन के स्वामी बन जाओगे तो ससार में तुम्हारे लिये कहीं कोई वस्तु अप्राप्य या दुर्लभ नहीं रहेगी।

मुनि के ऐसे सात्वना भरे वचन सुनकर नन्दीषेण फूट-फूट कर रोने लगा। हाथ जोड और मुनि के पैरों पडकर कहने लगा कि 'महाराज! आपने मुझ दुखिया को मरने से क्यों बचा लिया। ससार में कोई भी मेरा नहीं है। इस भार-भूत जीवन को लेकर मैं क्या करूँगा? मुझे अपनी राह चले जाने दीजिये। ताकि इस कुत्सक जीवन से छुटकारा मिल जावे।'

नन्दीषेण के ऐसे निराशा भरे शब्द सुनकर मुनिराज ने उसे ढाढस बधाया और बोले कि जब तक तुम ससार के पीछे भाग रहे हो तब तक संसार तुम से दूर भाग रहा है पर जब तुम संसार को धता बता कर आत्म-चिन्तन में लीन हो जाओगे तो सारा ससार स्वय तुम्हारे

पांव पड़ेगा। इसलिए उठो।' हृदय की इस दुर्बलता को छोड़ो और अपने पूर्व के पापों को धो डालने के लिये प्रयत्नशील हो जाओ। क्योंकि तुम्हारे ये पिछले जन्मजन्मानतरों के पापकर्म हैं, उन्हीं के फलस्वरूप इस जन्म में तुम्हे ऐसी कुरूप देह और यह कष्टमय जीवन प्राप्त हुआ है। अब भी शुभ कर्म करो ताकि अगले भव में तुम सब प्रकार से सुखी समृद्ध व सौभाग्यशाली बन सको। धर्म ही एक ऐसी वस्तु है जिसकी शरण मे चले जाने पर मनुष्य को किसी प्रकार का कोई अभाव नहीं सता सकता। इसलिये मेरा कहना मानो और अभी से धर्माचरण के लिये तत्पर हो जाओ।

यह सुनकर नन्दीषेण ने कहा कि "महाराज आप तो कहते हैं कि मेरे पूर्वजन्म पापों का परिणाम ही मुझे इस जन्म में भोगना पड़ रहा है और यदि मैं इस जन्म मे शुभकर्म करूंगा तो अगले जन्म में उस का अत्यन्त शुभ फल मिलेगा, किन्तु मेरा तो लोक-परलोक में कुछ भी विश्वास नहीं, आत्मा क्या है? वह क्यों बार-बार जन्म लेती है? जीव को किस-किस गति में कैसे जाना पड़ता है? यह सब कुछ विस्तार से समझाने की कृपा कीजिये तभी मैं कुछ धर्म के बारे में सोच सकूंगा।"

यह सुनकर मुनिराज ने सोचा कि इस समय इस जीव के मिथ्यातत्व का उदय हो रहा है इसलिये इसके सात्विक भावो को जाग्रत करना चाहिये और इसे जीव के कर्म बन्धनों का रहस्य भली भाति समझाना चाहिये। इसी विचार से उन महात्मा ने नन्दीषेण को सब आत्म-रहस्य इस प्रकार समझा दिये कि उसके हृदय मे किसी प्रकार की कोई शंका न रह गई। मुनि ने इस सम्बन्ध मे सुमित्रा और दो इभ्य पुत्रों की कथा सुनाकर उसके भावो को दृढ़ किया।

परलोक और धर्मफल प्रमाण में सुमित्रा की कथा

वाराणसी नगरी मे हतशत्रु नामक राजा था। उसके सुमित्रा नामक एक पुत्री थी। बचपन में एक बार वह मध्याह्नकाल मे भोजन कर सो रही थी, पानी से भीगे हुए खस के पंखे से दासियें उस पर हवा कर रही थीं कि शीतल जल के कणों के शरीर पर पड़ने से "नमो अरिहंताणं" कहती हुई वह सहसा जाग उठी।

तब दासियों ने उससे पूछा कि—स्वामिनी! आपने जिस

'अरिहंत' को नमस्कार किया है वह "अरिहंत" कौन है ? तब सुमित्रा ने उत्तर दिया कि—हे परिचारिकाओं ! मैं नहीं जानती कि 'अरिहंत' कौन हैं, किन्तु इतना निश्चय पूर्वक जानती हूँ कि वे नमस्कार करने योग्य हैं। तत्पश्चात् उसने अपनी धायमाता को बुलाकर कहा कि हे माता, तुम गवेषणा करके बताओ कि "अरिहंत" कौन हैं। इस पर धायमाता ने कहा कि—पुत्री, तुम निश्चिन्त रहो मैं शीघ्र ही पता लगाकर बताऊंगी कि 'अरिहन्त' कौन हैं। इस प्रकार कह कर वह नगर में पता लगाने चल पडी। पूछते-पूछते नगर मे स्थित अरिहन्त की अनुगामिनी दत्त नामक आर्या के पास वह पहुच गई और उन्हें नमस्कार कर सारी बात निवेदन कर पश्चात् उन्हे बहुमान के साथ राजमहल में ले आयी।

राजकुमारी साध्वी को आते देख शैय्या से नीचे उतर पडी और उसने उन्हें नमस्कार किया, पश्चात् हाथ जोडकर पूछा कि—हे महाभागे! आज मैं जब निद्रा से जागृत हुई तो सहसा ही मेरे मुख से "नमो अरिहंताणं" ऐसा वाक्य निकला, तभी से मेरे तथा दासियों के हृदय में अरिहंत के जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो रही है। कृपया आप 'अरिहंत' कौन हैं ? किसे कहते हैं आदि बताकर हमें कृतार्थ कीजिएगा। राजकुमारी की प्रार्थना पर दत्त आर्या ने कहना प्रारंभ किया कि—हे राजकुमारी! इस असार ससार में त्रस-स्थावर आदि समस्त प्राणी आठ प्रकार की कर्मरज से समन्वित हैं जिस के प्रभाव से प्राणी अकरणीय कार्य के करने में भी सकोच नहीं करते। अंधेरी रात्रि में दीपक के बुझ जाने पर घोर अंधकार छा जाता है और पास रही हुई वस्तु भी भली भांति दिखाई नहीं देती, ठीक उसी प्रकार पाप कालिमा से आच्छादित यह आत्मा न्यायपथ को देखता हुआ, जानता हुआ और समझता हुआ भी सर्वदा अन्याय, अत्याचार आदि दूषित प्रवृत्तियों की ओर निरन्तर प्रवृत्त रहता है। दूषित प्रवृत्तिया जीवन को नारकीय बना देती हैं अतः जबतक पूर्व संचित पापकालिमा और वर्तमान की दूषित प्रवृत्तियों को समाप्त नहीं किया जाता तबतक आत्मस्वरूप नहीं पहिचाना जा सकता तथा आत्म-स्वरूप के पहिचाने बिना मोक्ष एवं निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती अत सदैव इन कर्मकालिमा को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

इसी बीच में राजकुमारी ने प्रश्न किया—हे साध्वीजी ! अब आप प्रथम मुझे उन आठ कर्मों का ज्ञान कराइयेगा जिससे कि सांसारिक प्राणी दिन-रात पीड़ित रहते है। साध्वी ने उत्तर दिया कि—हे देवानुप्रिये ! ध्यानपूर्वक सुनो मैं तुम्हें उन कर्मों का हाल सुनाती हूँ जिससे बंधा हुआ यह जीव भव भ्रमण करता रहता है। प्रथम वह कर्म है जिसे ज्ञानावरणीय कर्म कहते है। यह प्राणी के ज्ञान गुण को उसी भांति ढांप लेता है जैसे मेघ घटा सूर्य को ढॉप लेती है। इस कर्म की उत्पत्ति मनीषियों, ज्ञानी पुरुषो तथा ज्ञान की अवज्ञा आदि करने से होती है जिसके फलस्वरूप प्राणी अज्ञानी बनता है।

दूसरा कर्म दर्शनावरणीय है जो प्राणी के दर्शन गुण—प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष वस्तु के सामान्य स्वरूप को अर्थात् जो देखने मे रुकावट डालता है उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते है।

जैसे द्वारपाल के प्रतिबन्धक हो जाने से राजा के दर्शन नहीं होते। उसी तरह जब दर्शनशकित पर आवरण आजाता है तो जीव, अजीव पुण्य, पाप, आश्रव, सवर आदि तत्त्वों पर दृढ़ विश्वास नही हो पाता। ऐसा प्राणी निरन्तर शकाशील ही बना रहता है अधिक तो क्या उसे अपने किये हुए कार्य पर भी पूर्ण विश्वास नहीं होता।

वेदनीय नामक तीसरा कर्म है जिसके उदय से प्राणी सुख-दुःख का अनुभव करता है। इस कर्म के दो भेद हैं—साता और असाता। साता कर्म अर्थात् जिसके प्रभाव से सुख का अनुभव हो, यह कर्म प्राण, भूत, जीव, सत्वों को यथायोग्य सुख सुविधाये देने से तथा उनके प्रति कल्याण और हित की भावनाए रखने से उत्पन्न होता है। इस कर्म के उपार्जन से इस लोक तथा परलोक मे जीवनोत्थान के साधन प्राप्त होते हैं। असाता कर्म प्राण-भूत-जीव, सत्वो को दुख, परितापन, परिताडन और अगछेदन आदि के करने तथा उनका अनिष्ट वाञ्छने से बन्धता है। जिससे अन्त मे नारकीय यातनाएं भोगनी पड़ती हैं। चौथा कर्म है मोहनीय, मोहनीय का अर्थ है मोहने वाला अर्थात् वस्तु मे आसक्त रहने की प्रेरणा देवे वह मोहनीय कर्म है। किसी वस्तु विशेष मे मोहित होकर उसी मे आसक्त रहना तथा अन्य पर द्वेष प्रगट करना मोहनीय कर्म का लक्षण है। यह कर्म आत्मा को हानि लाभ के विवेकाविवेक से उसी भाति शून्य कर देता है जिस प्रकार मदिरापान किये हुए

(व्यक्ति) को इष्ट-अनिष्ट वस्तुका ज्ञान नहीं रहता। इस कम में तृष्णा की प्रबलता रहती है तथा तृष्णा की पूर्ति के लिए लोभ का आजाना सहज ही है और जहां ये दोनों हैं वहां आसक्ति तो पास ही ठहरी हुई है। अतः जिसने अपने जीवन से दुख दूर करना है उसे प्रथम मोह को समाप्त करना चाहिए, जिसका मोह उपशान्त होगया है उसकी तृष्णा भी शान्त हो चुकी और तृष्णा के साथ २ लोभ और आसक्ति भी उपशान्त हो जाती है। जैसे कि तीर्थंकरों ने कहा है—*दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो मोहो, हओ जस्स न होइ तण्हा।*

तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, हओ जस्स न किंचणाइ ॥
अर्थात् उसी का दुख नष्ट हुआ है जिसको मोह ही नहीं होता, इसी तरह मोह उसका नष्ट हुआ समझो जिसके हृदय में से तृष्णा रूपी दावानल बुझ गई और तृष्णा भी उसी की नष्ट हुई समझो जिसको किसी भी वस्तु का प्रलोभन नहीं होता। और जिसका लोभ ही नष्ट हो है उसके लिए आसक्ति जैसी कोई चीज ही नहीं होती।

इस कर्म का उद्‌भव स्थान राग और द्वेष कहा गया है। यथा—"*रागो य दोसोऽवि य कम्मबीयं कम्मं च मोहप्पभवं वयंति।*" अर्थात् राग और द्वेष कर्म के बीज हैं और उस कर्म से मोह उत्पन्न होता है। राग और द्वेष की दो प्रकृतियां हैं जिन्हें कषाय कहते हैं। क्रोध और मान द्वेष के भेद हैं तथा माया और लोभ राग के, इन्हीं की तीव्रता से मोह कर्म का संचय होता है। प्रायः मोहासक्त प्राणी आर्त्त और रौद्र ध्यान के वशीभूत होकर दुर्गति की ओर ही प्रयाण करता है अतः हे राज-कुमारी! यह कर्म सब कर्मों का राजा है इसी से सब कर्मों का बन्ध हो जाता है। इसके वश हो बडे २ ऋषि-मुनि अपनी संयम साधना समाप्त कर विषयों के दास बन गये।

आयुष्य नामक पांचवां कर्म है जिसके प्रभाव से प्राणी नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव योनि में स्थित रहता है। यह आयुष्य कर्म कारागृह की भांति है जिस प्रकार जेल में पडा हुआ मनुष्य उससे निकलना चाहता है पर सजा पूर्ण किये बिना नहीं निकल सकता, उसी तरह नरकादि योनि में पडा हुआ जीव, आयुपूर्ण किए बिना एक योनि से दूसरी योनि में आवागमन नहीं कर सकता। क्योंकि आयुष्य के परमाणु उसे अपनी ओर खींचते रहते हैं। यह आयुष्य चार प्रकार की है.

नारकीय आयु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु। सोलह प्रकार से इन आयुष्यो का बन्ध होता है।

१ महारम्भ—सदैव षट्कायिक जीवों की हिंसा मे ही सलग्न रहना।

२. महापरिग्रह—अत्यन्त लालची बन कर अमित द्रव्यों का सग्रह तथा उस पर आसक्ति रखना।

३. कुणमाहार—मदिरा-मॉस-अण्डा आदि अशुद्ध अहार करना।

४. पॉच इन्द्रिय वाले जीवो—मनुष्य, पक्षी-पशु आदि को मारना। इस प्रवृति वाला जीव नारकीय जीवन प्राप्त करता है।

१. माया अर्थात् कपट करना और उस कपट को छुपाने के लिए असत्य आदि अवगुणों का आश्रय लेकर अधिक कपट करना। ३. व्यापारादि मे परिमाण से कम तोलना कम मापना। ४ असत्य बोलना तथा अपना दोष दूसरों पर लादना। इन कार्यो से प्राणी पशुयोनि के साथ सम्बन्ध जोड़ता है।

१. प्रकृति से भद्र होना अर्थात् स्वभावत दूसरों से सरलता का व्यवहार करना।

२. प्रकृति सेविनीत होना—अर्थात् स्वभाव से ही प्रत्येक से नम्रता का व्यवहार करना।

३. सानुक्रोश—दूसरों के प्रति हृदय मे अनुकम्पा, करुणा आदि के भाव रखना।

४ अमत्सरता—इर्ष्या आदि न करने से। इस प्रकार आचरण करने वाला जीव मनुष्य आयु का वन्ध करता है अर्थात् मनुष्यत्व प्राप्त करता है।

उपरोक्त आयु भी दो प्रकार की है, एक स्वअल्प और दूसरी दीर्घ। हिंसा से, असत्य से और घर आये अतिथि को उसकी साधना के प्रतिकूल वस्तु देने से दुखमयी दीर्घ आयु का बन्ध होता है। और अहिंसा, सत्य आदि के आचरण से तथा शुभ भावों से श्रमण, ब्राह्मण और सयति को उनकी वृत्यानुसार दान देने से सुखमयी दीर्घायुष्य का बन्ध होता है।

१ सराग सयम का पालन—देव, गुरु, धर्म और सिद्धान्त के प्रति राग रखते हुए संयम का पालन करना।

२. संयमासंयम—कुछ संयम कुछ असंयम अर्थात श्रावक (गृहस्थ-धर्म) व्रतों का पालन करना।

३ बालतप—ज्ञानरहित तप करना।

४. अकाम निर्जरा-अर्थात फल की इच्छा न रखते हुए शुभ कार्य करना। हे राजकुमारी ! ये देव गतिके कारण हैं। इस प्रकार की प्रवृति जिस प्राणी के जीवन में होती है वह क्रमशः उसी आयु का बन्ध कर लेता है।

इसके पश्चात नाम कर्म है जिसके उदयभाव से जीव आदेय, अनादेय, सुस्वर, निर्माण, तीर्थकर आदि पद को प्राप्त करता है। यह कर्म चितेरे के सदृश होता है। जैसे चितेरा अच्छे-बुरे चित्र अंकित करता है उसी तरह यह नाम कर्म भी आत्मा को नाना-रूपों में परिवर्तित कर देता है यह कर्म दो प्रकार का है, शुभ और अशुभ। जैसे कोई व्यक्ति निःस्वार्थभाव से दूसरे के हित के लिए शुभ कार्य ही करता किन्तु अन्त में उसे अपयश ही प्राप्त होता है। जब कि दूसरा व्यक्ति परहित में किञ्चितमात्र भी भाग नहीं लेता फिर भी समाज में उसकी प्रतिष्ठा, यश आदि फैला रहता है। इस यश-अपयश का कारण शुभाशुभ नाम कर्म का उदय भाव ही समझना चाहिए। शुभ नाम कर्म का उपार्जन चार प्रकार से होता है—

यथा—कायिक ऋजुता—शारीरिक प्रवृति वक्रता रहित होने से, भावों की ऋजुता-भावों में कुटिलता न होने से अर्थात् भावना के शुद्ध रखने से। भाषा की ऋजुता—वाणी में मधुरता, असंदिग्धता अकर्कशता आदि गुण होने से अर्थात कुटिलता रहित भाषा बोलने से और योगों की अविषमता से—मानसिक वाचिक और कायिक योगों की अविषमता-पूर्वक प्रवृत्ति के होने से शुभ नाम कर्म का बन्ध होता है तथा इसके विपरीत काया की प्रवृति में कुटिलता, भावों में वक्रता, भाषा में कटुता तथा उपरोक्त योगों में विषमता होने से अशुभ नाम कर्म का बन्ध होता है। शुभ कर्म के फलस्वरूप इष्ट वर्ण, गंध रस, शब्द, स्पर्श तथा इष्ट उत्थान-बल-वीर्य-कर्म-पुरुषार्थ आदि की प्राप्ति होती है। तथा अशुभ नाम कर्म से अनिष्ट वर्ण, अनिष्ट गंध आदि प्राप्त होते हैं। सातवां गोत्र नाम कर्म है जिसके प्रभाव से जीव उच्च अथवा नीच कुल में उत्पन्न होता है। यह कर्म कुंभकार की तरह है जैसे कुंभकार छोटे

बड़े बर्तन बनाता है उसी भांति यह कर्म भी जीव को छोटे-बड़े कुल में ले जाकर पैदा करता है।

इस कर्म के उद्भव का आधार मद है, यह आठ प्रकार का कहा गया है यथा—जाति मद, कुलमद, बल मद, रूपमद, तप मद, लाभमद, ऐश्वर्य मद और सूत्र मद। उपरोक्त उच्च जाति आदि प्राप्त करके जो इन पर मद करता है वह उस प्रकृति का संग्रह करता जिसके फलस्वरूप आहार-व्यवहार और आचारहीन कुल मे उत्पन्न होता है और जो प्राणी उच्च एव सुन्दर वस्तुओं के मिलने पर इठलाता नहीं, मदमे भूमता नहीं वह श्रेष्ठ गोत्र-कुल में जाकर जन्म लेता है। अतः प्राणी को इष्ट पदार्थों को पाकर उन्मत्त नहीं हो जाना चाहिए क्योंकि भौतिक पदार्थ पर-द्रव्य है आत्मद्रव्य नहीं। परद्रव्य का मूलत. गुण निर्माण और सहार है। इन का सयोग तथा वियोग शुभाशुभ कर्म प्रभाव से होता है। जब तक संयोगज कर्म प्रकृति का उदय रहा वस्तु की प्राप्ति होती रही और जब वियोग जप्रकृति उदय मे आई तो पास रही हुई भी का वियोग होगया अर्थात् हाथ से चली गयी। इसीलिए इनको क्षणिक और क्षणभगुर कहा गया है। क्षणिक पदार्थ पर मद करना, इठलाना कदापि हितकर नहीं हो सकता। -

पूर्वकृत शुभाशुभ कर्म प्रभाव से वस्तु की प्राप्ति होती है, हे राज-कुमारी, वस्तु का प्राप्त होना बुरा नहीं है उसके सयोग से अनेकों का उद्धार एव उत्थान हो सकता है किन्तु यह प्राप्तकर्त्ता के उपयोग पर निर्भर है। प्राप्तकर्त्ता यदि अपनी वस्तु समाज, देश व धर्महित अर्पण कर देता है तो वह वस्तु का सदुपयोग है और वह उसके पुण्योपार्जन मे आधार है। इसके विपरीत वस्तु का उपयोग अपने तथा दूसरे के जहां विनाश का कारण वन रहा हो तो समझना चाहिये कि वह वस्तु का दुरुपयोग है और वह पाप बध का कारण है।

यो तो ससार की प्रत्येक वस्तु मद उत्पन्न करने वाली है केवल मदिरा आदि मादक द्रव्य ही नहीं। जिस प्रकार कि आचार्यों ने कहा है—"*बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्य मदकारि तद् उच्यते*" अर्थात जिस वस्तु से बुद्धि का विनाश होता हो वह वस्तु मदकारि (मदिरा जैसी) कही जा सकती है।

अत इष्ट वस्तु प्राप्त करके उसमें [illegible] पहुँचे, जीवन पतन की ओर न जाकर [illegible] ऐसा निरन्तर प्रवृत्ति करनी चाहिये।

आठवा वह कर्म है जिसके उदय होने पर [illegible] करने पर भी इष्ट लाभ की प्राप्ति नहीं होती किन्तु [illegible] करने में प्रयत्नशील रहता है। राजकुमारी ने बड़ी [illegible] कि--हे महाभागे! कठिन परिश्रम करने पर भी इष्टलाभ [illegible] बाधा डालने वाला कौनसा कर्म है? साध्वी बोली--हे! [illegible], वह अन्तराय नामक कर्म है। अन्तराय का अर्थ है विघ्न बाधा। [illegible] वाञ्छित कार्य में विघ्न पडना अन्तराय कहलाता है। पूर्व [illegible] अथवा वर्तमान जीवन में किसी कार्य में द्वेष बुद्धि से, [illegible] रुकावट डालने से इस कर्म का सचय होता है। जैसे, किसी [illegible] व्यक्ति ने एक दीन-दुखी को देख कर करुणा भाव से उसे कुछ [illegible] देना चाहा जिस से कि वह अपना पारिवारिक जीवन सुख पूर्वक [illegible] सके। किन्तु इसी बीच एक और व्यक्ति आया और उसने उसे कहा कि "यदि आप धन देना चाहते ही हैं [illegible]

वह अपना निर्वाह कर ले, यह ता अपना निर्वाह ठीक रीति से करता है इसके पास तो सुविधाये है, यह तो यों ही अपने को गरीब बताता है।" इस प्रकार कहने से उस व्यक्ति (जिसने धन देना था) के विचारो मे परिवर्तन आ गया और उस ने उसे द्रव्य देने से इन्कार कर दिया। तब निराश होकर वह दीन वहां से चला गया। इसमे जिस व्यक्ति ने दीन की लाभ प्राप्ति मे विघ्न डाला उस ने उस अन्तराम कर्म का बध कर लिया जिस के फलस्वरूप भविष्य मे उसे भी इष्ट लाभ की प्राप्ति मे विघ्न पड़ेगा। क्योंकि वह उस दीन के अन्तराय का निमित्त कारण है। यह कर्म पांच प्रकार का है—दानान्तराय, लाभान्तराय भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और बल-वीर्यान्तराय। जो प्राणी दूसरे के इन कार्यों में विघ्न डालता है वह क्रमश उन अन्तराय कर्म का बन्ध करता है।

हे राजकुमारी! ये ही आठ कर्म हैं जिससे बंधा हुआ (लिप्त हुआ) यह जीव ससार में परिभ्रमण करता रहता है। शुभाशुभ मानसिक, वाचिक तथा कायिक प्रवृति से इन कर्मों का सचय होता है, वास्तव मे संसार की वस्तु बुरी नहीं है बल्कि प्राणी की दृष्टि बुरी है। कर्मबन्ध का मूल कारण वस्तु नहीं हृदय में रहा हुआ राग और द्वेष है। जितने परिमाण मे इस की तीव्रता होगी वस्तु चाहे सामान्य और थोड़ी ही क्यों न हो कर्म का दीर्घ स्थिति वाला प्रगाढ़ बन्ध होता चला जायेगा और पास मे अमित धनराशि के तथा अनिष्ट वस्तुओं के रहते हुए भी यदि राग द्वेष की परिणति मन्द है, उपशम है तो कर्म का वन्ध भी उसी भांति मन्द और अल्प स्थिति वाला होगा। अत. इष्टअनिष्टवस्तु पर राग द्वेष न करके उदासीनवृति से जीवन यापन करना चाहिए। हे कुमारी! इन कर्मों को दो भागों मे बाटा गया है एक घातिक और एक अघातिक। × घातिक कर्म वे है जो आत्मा के मूलगुणो को घात करते है तथा अघातिककर्म जो मूल गुणा से भिन्न गुणोका नाश करे। जो इन घातिक कर्मों को सर्वथा क्षय(नष्ट) कर देता है अर्थात् जिसका ज्ञान, दर्शन और चारित्र गुण सर्वांश रूपसे विकसित हो चुका हो वह अरिहन्त

× आत्मा के मूलगुण ज्ञान और दर्शन हैं, घातिक कर्म चार हैं ज्ञानवरणीय, दर्शनावरणीय मोहनीय, और अन्तराय शेष अघातिक।

कहलाता है। अरि से अभिप्राय है शत्रु और हन्त का अर्थ है हनन करने वाला अर्थात् जिन्होंने अपनी विशिष्ट भावना से कर्म रूप शत्रुओं का हनन (विनाश) किया है वे अरिहन्त हैं। ये शत्रु दो प्रकार के हैं— द्रव्य शत्रु और भाव शत्रु। भावशत्रु आत्मा के अपने संक्लिष्ट परिणाम ही हैं और द्रव्यशत्रु वह है जो जीव की स्वाधीनता में वस्तु प्राप्ति आदि की रुकावट में निमित्त बनता है, किन्तु उन निमित्तों में भी मूल कारण वस्तुतः अपने परिणामों की संक्लिष्टता ही है। जब इस संक्लिष्टता को समाप्त कर दिया जायगा तो द्रव्य शत्रु तो स्वयं ही समाप्त हो जायेंगे क्योंकि सब प्राणियों में सम भाव रहेगा, मैत्री सम्बन्ध होगा। ये अरिहंत दो प्रकार के हैं—एक तीर्थंकर अरिहन्त तथा सामान्य केवली अरिहन्त। तीर्थंकर का अर्थ है तीर्थ-धर्म की स्थापना करने वाले अर्थात् कर्म पाश में बंधे हुए प्राणियों को सर्व प्रथम आकर उससे मुक्त होने का जो उपाय बतलाते हैं (जिससे मुक्त हुए हैं औरों को मुक्त करते हैं) उन्हें तीर्थंकर कहते हैं। ये चौंतीस अतिशय, पैंतीस वाणी, अष्ट महाप्रतिहार्य आदि विशिष्ट गुणों युक्त होते हैं तथा अठारह दोष रहित होते हैं। और सामान्य अरिहन्त (केवली) भी बारह गुणयुक्त एवं अठारह दोष रहित होते हैं। किन्तु तीर्थंकर पद का विशिष्ट महत्व यही है कि वे संसार में सब से प्रथम आकर उन्मार्गगामी प्राणियों के लिए तीर्थ धर्म की स्थापना करते हैं जिस के आधार से प्राणी जरा-जन्म-मरण, आधि-व्याधि रूप कष्टों का नाश कर क्रमशः आत्म विकास करता हुआ अरिहन्त दशा को प्राप्त कर लेता है अतः इन तीर्थंकर को धर्म प्रवर्तक, धर्म के आदि कर्त्ता आदि कहा गया है और सामान्य केवली तीर्थ आदि की स्थापना नहीं करते। भरत-एरावत और महाविदेह क्षेत्रों में इन अरिहन्त तीर्थङ्करों का जन्म होता है। राजकुमारी ने प्रश्न किया कि क्या इस समय भी कोई अरिहन्त विद्यमान हैं? तब आर्या ने कहा—इस समय इस भरत क्षेत्र में श्री नमिनाथ तीर्थंकर हैं जो दिन-रात ज्ञान पिपासुओं को ज्ञानामृत पिलाते रहते हैं। मैं उन्हीं के शासन की साध्वी हूँ। राजकुमारी फिर से पूछा कि हे साध्वी! इन अरिहन्तों को नमस्कार करने से क्या लाभ है? साध्वी ने उत्तर दिया—अरिहन्तों को नमस्कार करने से अभिमान नष्ट होता है और नीच कर्म का बन्ध टूट कर उच्च गोत्र कर्म बन्धता है तथा उनके नाम स्मरण से जन्म-जन्म के पाप दूर हो जाते हैं।

हे राजकुमारी! उन अरिहन्तो के नमस्कार के फलस्वरूप ही तुम्हे इस ऋद्धि की प्राप्ति हुई है। अत पूर्व सस्कार के वशीभूत हो तुमने 'अरिहन्त, को नमस्कार किया है। यह सुन कर राजकुमारी ने विचार किया कि क्या यह सत्य है। इस प्रकार सोचते और आत्माध्यवसायो के निर्मल हो जाने से राजकुमारी को वहीं जाति स्मरण ज्ञान हो गया और वह हाथ जोड कर साध्वी से कहने लगी--आपका कथन सत्य है, आपने यहा आकर मेरे पर बडा उपकार किया है अत. मै हृदय से आभारी हूँ। इस प्रकार वन्दन कर बहुमान के साथ दत्त आर्या को विदा किया।

इस प्रकार सुमित्रा साध्वी से जिनेन्द्र प्रतिपादित मार्ग को सुन कर स्वीकार, जिन प्रवचन मे अत्यन्त कुशल हो गई। युवावस्था को प्राप्त होने पर पिता ने उसका स्वयवर करने का विचार किया तो राजकुमारी ने पिता से कहा कि हे पिता जी स्वयवर की कोई आवश्यकता नही है। इस भव पर भव मे सुखकारक इस गाथा का जो सम्यक् रूप से उत्तर देगा, उसी से विवाह करूंगी, अन्य किसी के साथ नहीं।

किं नाम होज्ज तं कम्मगं बहुनिव्वसणिय अलज्जणीयं च ।
पच्छाय होइ पच्छ (त्थ) य ण य णासइनट्ठए सरीरम्मि ॥

ऐसा कौनसा कर्म है जो बहुत समय तक टिकता है, जो अलज्जणीय है, जो पीछे भी हितकारी है और शरीर के नष्ट होने पर भी जो नाश को प्राप्त नहीं होता है।

यह गाथा सम्पूर्ण देश देशान्तरों मे प्रसिद्ध कराई जिसे सुन कर राजसभा मे उपस्थित अनेक विद्वानो ने विविध वस्तुओ के सम्बन्ध सुनाये किन्तु कोई भी सुमित्रा के अभिप्राय को समझ नहीं सका। तब एक पुरुष ने आ कर राजसभा में कहा—

पूछा कि—क्या यह आप ने अपनी बुद्धि से उत्तर दिया है, यदि हां तो इसका प्रमाण भी आप के पास होगा वह भी बताए। अब तो वह पुरुष बहुत घबराया और कहने लगा कि हे राजन! रत्नपुर में एक पंडित है, उसी ने यह कहा है। मुझ जैसे पामर में ऐसे युक्तियुक्त तत्त्व-विवेचन की क्षमता कहां? राजा ने कहा "अच्छा तो तुम दूत हो" इस प्रकार कह कर वस्त्राभूषणों से सत्कार कर उसे विदा दी। उसके जाने के पश्चात राजकुमारी सुमित्रा ने पिता से प्रार्थना की कि 'हे तात! उस पंडित ने मेरे अभिप्राय को ठीक ठीक समझा है, अब यदि वह अर्थ व परमार्थ से मेरा पूर्ण विश्वास करावे तो मैं उसी की पत्नी बन गी अन्य किसी की नहीं।' पिता की आज्ञा लेकर राजकुमारी सुमित्रा अपने परिवार के साथ रत्नपुर पहुची और उसने पंडित सुप्रभ को बुलाया। तब राज कन्या ने उससे प्रश्न किया कि 'तप बहुत समय तक कैसे टिकता है अलंजनीय किस रीति से है? पश्चात हितकारी कैसे? शरीर के नाश होने पर भी कैसे फल देता है? कृपया इन शंकाओं का समाधान कर कृतार्थ करें।' इस पर सुप्रभ ने इस प्रकार समझाना प्रारंभ किया।

दो इभ्य पुत्रों की कथा

इस प्रकार परस्पर लेख लिखकर नगर श्रेष्ठी के हाथ मे दे दिया। अब उसमें से एक तो उसी समय चल पड़ा। उसने देश की सीमा पर क्रय-विक्रय करते-करते कुछ द्रव्य एकत्रित कर लिया और वहां से समुद्र मार्ग से व्यापार करने लगा। इस प्रकार व्यापार करते हुए उसने बहुत सा धन व माल कमा अपने मित्रों को समाचार भेजा। दूसरे को भी उसके मित्रो ने बहुत प्रेरणा की कि तुम भी देशान्तरो में जाकर द्रव्योपार्जन करो किन्तु वह घर से बाहर भी न निकला। वह विचारने लगा कि वह लम्बे समय मे जितना द्रव्य कमा लेगा उतना तो मै निमिष मात्र मे कमा लूगा, चिन्ता की क्या बात है।

जब बारहवे वर्ष मे उसने दूसरे इभ्यपुत्र के आगमन का समाचार सुना तो दुःख पूर्वक घरसे बाहर निकल विचारने लगा कि 'मैने क्लेशों से दूर रहकर विषय लोलुपता मे बहुत सा समय व्यर्थ ही नष्ट कर दिया अब एक वर्ष मे कितना कमा लूगा। अतः अपमानित जीवन की अपेक्षा शरीर का त्याग करना ही श्रेयष्कर है।' यह निश्चय कर कहीं बाहर जाकर उसने साधुओं के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् वह उत्कृष्ट तपश्चरण मे लग गया, अन्त मे अपने शरीर को कृश बना पूर्वकृत पापो की आलोचना कर नव मास सयम पर्याय पाल और समाधिमरण से देह त्याग कर सौधर्मकल्प मे देव बना।

एक दिन स्वर्गलोक मे बैठे-बैठे उसका उपयोग अपने नगर में बैठे मित्रो की ओर चला गया, जहां वे आपस मे उसके बाहर जाकर द्रव्योपार्जन आदि की बाते कर रहे थे। उसी बीच मे एक ने कहा कि 'इतने अल्प समय मे वह दूसरे इभ्य पुत्र जितना धन थोड़े ही कमा सकेगा। उसे तो अन्त मे उस प्रतिज्ञानुसार दूसरे इभ्यपुत्र का मित्रों सहित दास बनना पड़ेगा।' इस पर उस देव ने अपने +अवधिज्ञान से अपने अपमान का कारण जान वेष परिवर्तन कर अपने देश की सीमा पर आ मित्रो को आने का समाचार भेज दिया। यह समाचार सुनकर मित्रों ने विचार किया कि इतने अल्प समय में कैसे महान् ऋद्धि प्राप्त कर सकता है? अत पहले गुप्त रूप से समाचार देना चाहिये।

+मन एव इन्द्रियो की बिना सहायता से उत्पन्न होने वाला मर्यादित ज्ञान विशेष, जो कि देवो को जन्मजात ही होता है।

जब गुप्तचरों ने उसकी ऋद्धि की मुक्त कंठ से प्रशंसा की तब सभी मित्र उसके पास जा पहुंचे। उस समय उस देव मित्र ने अपने सभी मित्रों का दिव्य वस्त्राभूषणों से सत्कार किया। जिसे देख सभी मित्र आश्चर्य चकित रह गये।

इधर दूसरे इभ्य पुत्र ने तो पहले ही स्वोपार्जित लक्ष्मी का प्रदर्शन कर दिया था, किन्तु उसकी देव द्रव्य से तुलना कैसी। देव द्रव्य के समक्ष उसका पासंग के समान भी न था, उसका सम्पूर्ण द्रव्य देव द्वारा दी गई जूतों का मूल्य भी न पा सका। जिस इभ्यपुत्र ने बारह वर्ष तक अनेक क्लेशों का सहन करके द्रव्य कमाया था, वह मित्रों सहित पराजित हुआ। पश्चात् उस देवने अपने मित्रों से पूछा कि 'मैंने अल्प-समय में इतना द्रव्य कैसे उपार्जन किया? क्या तुम बता सकते हो? 'तब मित्रों ने कहा कृपया आप ही बताएँ कि द्रव्य उपार्जन कैसे किया।' इसपर देव ने अपनी तपस्या आदि का सारा विवरण सुनाया और कहा कि इस तप के प्रभाव से ही मैंने इस दिव्य ऋद्धि को प्राप्त किया है और यह तपश्चर्या स्वर्गादि सदाकाल सुख देने वाली होती है।

अतः हे राजकुमारी! तपस्वियों का तप ही दीर्घ काल तक टिकता है और पूजनीय है। शरीर का नाश होने पर भी तप का फल देव लोक में मिलता है दूसरे कर्मों द्वारा उपार्जन किया द्रव्य क्षणिक है और शरीर नाश के साथ उस का भी नाश हो जाता है।' हे नन्दीषेण! इस प्रकार सुप्रभ ने राज कन्या से कहा तब राज कन्या ने उत्तर दिया कि हाँ, तपधर्म ही ऐसा है कि देह रहते हुए तथा देह के विनाश होने पर भी नष्ट नहीं होता, उसका फल मिलता ही रहता है। हे महाभाग! परलोक भी है धर्म का फल भी है यह कथन आपका सत्य है। मैं आपको ही अपनी प्रतिज्ञानुसार पतिरूप में वरण करूँगी।

प्रमाण देखकर अत्यन्त विरक्त होकर मुनि के उपदेशामृत का पान कर नन्दीषेण की आत्मा कृत-कृत्य हो गई। उसने तत्काल मुनिराज से चतुर्थ महाव्रति दीक्षा ग्रहण करली। अब नन्दीषेण परम विरक्त होकर गुरुदेव के चरणों मे बैठकर ज्ञानार्जन के लिए तत्पर हो गया। पश्चात् वह पॉच समीति व तीन गुप्तियो का का पालन करता हुआ एकान्त तप मे लीन होगया, क्योकि तप पूर्व संचित पापमल को दूर करता है और चारित्र्य नवीन कर्मों का निग्रह। अतः नवीन कर्म मल के आगमन के बद होने तथा प्राचीन मल के नष्ट होने पर आत्मा निर्मल हो जाती है और सुप्त शक्तियाॅ जागृत हो जाती है, इन शक्तियों का ढॉपने वाला तो कर्म मल ही है। किन्तु सर्वज्ञो ने इस विषय मे एक चेतावनी दी है कि "साधक! इहलोक परलोक की लालसा के लिए तथा कीर्ति, वर्ण, शब्द व श्लोक की कामनार्थ तपका आचरण मत कर, तप तो आत्म-शुद्धि का हेतु है तू उसे वासना पूर्ति का साधन न मानना। यदि किसी सासारिक कामना के लिए तप का अनुकरण करेगा तो आत्म-शुद्धि की अपेक्षा आत्मा मलीन ही होगा। क्योकि वासना पुनर्जन्म एव मलीनता की जड है। अत तू मात्र निर्जरा के लिए तपका अनुष्ठानकर अर्थात् निष्काम हो तप का आचरण कर। तभी द्रव्य भावसे मुक्त होकर निर्वाण प्राप्त कर सकेगा। वह तप वाह्याभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का है। वाह्य तप के छः भेद है अनशन, उनोदरी, भिक्षाचरी, रसपरित्याग, कायाक्लेश और प्रतिसलीनता। आभ्यन्तर तप के भी छः भेद है यथा-प्रायश्चित विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग।

इधर ज्यू'-ज्यू' समय वीतता गया नन्दीषेण मुनि का तप भी उत्तरोत्तर परिवृद्ध होने लगा। इस बड़े भारी तप के प्रभाव से उसकी सुप्त आत्म-शक्तिया स्वतः जागृत हो गईं। लाभान्तराय के क्षयोपशम से जव जिस वस्तु की इच्छा होती है उसे वही प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार की वस्तु स्थिति देख नन्दीषेण मुनि ने आन्तरिक तपों में वैय्यावृत्य को सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ जान उस का ×अभिग्रह धारण कर लिया क्योंकि वैयावच्च की महिमा का वर्णन करते हुए स्वय भगवान ने अपने श्रीमुख से कहा है कि वैयावृत करने वाले जीव को मानव जीवन का सर्वश्रेष्ठ पद तीर्थंकरत्व प्राप्त होता है।

इस वैयावृत्य के सम्बन्ध में भगवान महावीर स्वामी से गौतमस्वामी पूछते हैं कि—

प्रश्न—वेयावच्चेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उत्तर—वेयावच्चेणं तित्थयर नामगोत्तं कम्मं निबंधइ ।

अर्थात्—भगवन् ! वैयावृत्य अर्थात् सेवा से जीव को क्या लाभ होता है ?

वैयावृत्य से तीर्थंकरनामगोत्र कर्म का बंध होता है ।

श्री स्थानांग सूत्र में यह वैयावृत्य (सेवा) निम्न दस प्रकार की कही गई है:—

(१) आयरियवेयावच्च (२) उवज्झायवेयावच्च (३) थेरवेयावच्च (४) तवस्सीवेयावच्च (५) सेहवेयावच्च (६) गिलाणवेयावच्च (७) गणवेयावच्च (८) कुलवेयावच्च (९) संघवेयावच्च (१०) साहम्मियवेयावच्च ।

अर्थात्—(१) आचार्य की सेवा (२) उपाध्याय की सेवा (३) स्थविर की सेवा (४) तपस्वी की सेवा (५) शिष्य की सेवा (६) ग्लान-रोगी की सेवा (७) गण की सेवा (८) कुल की सेवा (९) संघ की सेवा और (१०) साधर्मी की सेवा ।

जैन शास्त्रों में तीर्थंकर पद से ऊंचा अन्य कोई पद नहीं माना गया ।

के मुखसे भी सहसा उनकी प्रशंसा में हार्दिक उद्गार निकल पडे। वे कहने लगे कि—

"नन्दीषेण मुनि ने इतना बडा वैयावृत्य आन्तरिक तप कर लिया है कि अब उनके लिए मेरे इस इन्द्र पद को प्राप्त कर लेना भी कुछ अर्थ नहीं रखता। सेवा की महिमा बड़ी निराली है। शास्त्रकारो ने मोक्ष प्राप्ति मे सेवा को सहकारी साधना माना है। "*तस्सेस मग्गो गुरुविद्ध सेवा*" अर्थात् बालजनों के संग से दूर रहना, गुरुजन तथा वृद्ध अनुभवी महापुरुषों की सेवा करना तथा एकान्त मे रहकर धैर्यपूर्वक स्वध्याय, सूत्र तथा उसके गम्भीर अर्थ का चिन्तवन करना यही मोक्ष का मार्ग (उपाय) है। अत. जो इस सेवाव्रत मे पूरा उतर गया वह वस्तुतः देवाधिदेव बनने का अधिकारी हो जाता है। मै तो नन्दीषेण मुनि की उस अलौकिक सेवा-भावना को देख-देख कर परम प्रसन्न व पुलकित हो जाता हूँ और मेरे मुख से बरबस "धन्य" "धन्य" शब्द निकलने लग जाते है।"

देवराज इन्द्र के मुख से ऐसे प्रशसा सूचक शब्द सुनकर दो देव मन ही मन सोचने लगे कि इन बड़े आदमियो का भी क्या कहना। जिसकी प्रशंसा करने लगते है उसको भी आकाश मे चढ़ा देते है और जिसके विरुद्ध हो जाये उसका कहीं पाताल मे भी ठिकाना नहीं रहने देते। देखा न भाला; न परीक्षा की न जॉच पड़ताल यों ही बिना सोचे विचारे लग गये नन्दीषेण के प्रशसा के पुल बांधने। सेवा धर्म को इन्होंने सामान्य कर्म ही समझ रक्खा है।

तो क्यों न उस सेवा व्रती नन्दीषेण मुनि की वैयावृत्य भावना की परीक्षा की जाय, क्योंकि बिना कसौटी पर कसे तो किसी का खरे-खोटे का पता चल नहीं सकता। हमारी परीक्षा तो ऐसी होगी जिससे दूध के दूध और पानी के पानी का पता लग जाय। इस परीक्षा से दोनों प्रकार से लाभ होगा, क्योंकि यदि वह हमारी परीक्षा की कसौटी पर खरे उतरे तब तो उनके यश का सौरभ सारी सृष्टि मे अनन्त काल तक व्याप्त रहेगा और यदि वे उसमे सफल नहीं हो पाये तो उनकी कलाइ खुल जायगी। ढोंगियों के ढोंग का पर्दा फास हो जाने से समाज का कल्याण ही होता है।

यही सब कुछ सोच विचार कर वे दोनों देव स्वर्ग से पृथ्वी पर उनर आये। उन्होने विचार किया कि मनुष्य और सब कष्टों को तो

सहर्ष सह सकता है पर अत्यन्त घृणित उत्कट दुर्गन्ध को वह किसी प्रकार नहीं सह पाता। मानव की नासिका के रोम-कूप सड़ायन्द को सहने में सर्वथा असमर्थ हैं इसलिए नन्दीषेण की परीक्षा का ऐसा ही कोई उपाय सोच लेना चाहिए। यह निश्चय कर उनमें से एक देव—साधु का स्वांग बना कर जहाँ नन्दीषेण मुनि ठहरे थे, वहां पास के एक जंगल में जाकर पड़ गया। उस देव ने अपने शरीर को ऐसा रुग्ण बना लिया कि शरीर के छिद्रों में से रक्त और मवाद बहने लगा। उस रक्त और पीव में से असह्य दुर्गन्ध निकल रही थी। इस प्रकार रोगी साधु का रूप धारण करके उस देवने दूसरे देव के साथ नन्दीषेण मुनि के पास समाचार भेजा कि पास के जंगल में एक साधु बहुत बीमारी की अवस्था में पड़े हैं। उनकी सेवा करने वाला कोई नहीं है, अतः उन्हें बहुत अधिक कष्ट हो रहा है।

नन्दीषेण मुनि को जैसे ही यह समाचार मिले कि वे तुरन्त उस रोगी साधु की सेवा करने के लिए चल पड़े। मुनि मन ही मन विचारने लगे—"मेरा सौभाग्य है कि मुझे साधु सेवा का ऐसा सुअवसर हाथ आया है।"

मुनि—मेरे हाथों में भी तो शक्ति नहीं है। तुम्हारे कंधे पर चढ़ूं तो कैसे चढ़ूं।

न० मुनि—तो क्या हानि है ? मैं स्वयं ही अपने कंधे पर बिठा लूँगा।

सच्चा सेवक अपनी शक्ति को दूसरों की ही शक्ति मानता है और अपना तन, मन पर की सेवा के लिए समर्पित कर देता है। सेवा का यह आदर्श अगर जनसमाज के हृदय में अंकित हो जाय तो यह संसार स्वर्ग बन जाय।

नन्दीषेण मुनि ने उस देव को अपने कंधे पर चढ़ा लिया। देव ने नन्दीषेण मुनि को सेवा की प्रतिज्ञा से विचलित करने के लिए अपने शरीर में से रक्त और पीव की धारा बहाई, मगर नन्दीषेण मुनि अपनी सेवा भावना को स्थिर और दृढ़ करते हुए देव के दुर्गन्धमय शरीर को उठाकर नगर की ओर चल पड़ा।

मुनि वेषधारी देव नन्दीषेण की इस अवर्णनीय सेवा भावना को देख कर मन ही मन गद्-गद् हो गया किन्तु फिर भी उसके धैर्य की वह और भी परीक्षा करना चाहता था, इस लिये उसके कंधे पर बैठा-बैठा भी डांटता हुआ कहने लगा कि "अरे ! मिथ्या सेवाधारी मुनि नन्दीषेण, तू व्यर्थ में क्यों सेवा का ढोंग रच रहा है तू यदि मुझे कंधे पर उठा कर न ले जा सकता तो मत ले जा पर इतना तेज क्यों दौड रहा है ऐसी तेज चाल से तो हिचकोले या धचके लग-लग कर मेरे जरा-जीर्ण शरीर की हड्डी-पसली ही एक हो जायगी। चलना है तो धीरे-धीरे चल, नहीं तो मुझे यहीं उतार दे।"

तब नन्दीषेण ने बड़े विनय से निवेदन किया कि "हे क्षमाश्रमण ! जैसी आपकी आज्ञा हो, मैं तो इस लिये तेज चाल से चल रहा था कि शीघ्रातिशीघ्र आपकी चिकित्सा की व्यवस्था हो सके। किन्तु यदि मेरे तेज चलने के कारण आप को कष्ट पहुंचा है तो क्षमा कीजिए। मैं अब ऐसी सावधानी से चलूंगा कि आप को तनिक भी कष्ट न पहुँचे।"

यह कह कर नन्दीषेण बहुत मन्द गति से चलने लगा पर उस देव की परीक्षा तो अभी तक शेष थी। उसने नन्दीषेण की अन्तिम परीक्षा लेने के विचार से चलते-चलते अत्यन्त दुर्गन्धित अतिसार कर उसके सारे अंगों को बुरी तरह सॉद दिया। किन्तु नन्दीषेण तो सेवाव्रत का

हजार वर्ष× तक कठोर तप किया। मृत्यु के समय उन्होंने यह निदान बांधा कि मैं इस तप के प्रभाव से दूसरे जन्म मे स्त्रीवल्लभ बनू। अर्थात् इस जन्म मे मै प्रत्येक प्राणी से घृणित था। किन्तु भविष्य मे प्रत्येक के हृदय का हार बनू" ऐसा दृढ निदान करने के पश्चात् शरीर छोड़कर महा शुक्र देवलोक मे जाकर देव बना।

हे राजन्! पूर्व भव का वह नन्दीषेण मुनि महाशुक्र देव से च्युत होकर तुम्हारे घर मे वसुदेव के रूप मे उत्पन्न हुआ है। अपने अन्तिम समय के निदान के अनुसार उन्हे इस जन्म मे अनुपम रूप सौन्दर्य और ऐसा कौशल प्राप्त हुआ है कि जो उन्हे देखता है वही मुग्ध हो जाता है। अपने इन गुणो के कारण ही वह रमणियो के हृदय को बरबस जीत लेता है।"

सुप्रतिष्ठित अणगार के द्वारा वसुदेव के पूर्व भव का यह वृत्तान्त सुनकर महाराज अन्धकवृष्णि हर्ष विभोर हो गये उन्होने अपने राज्य का अधिकारी अपने सबसे बड़े पुत्र समुद्रविजय को बनाकर मुनिराज के निकट दीक्षा ले ली। अन्त मे वे भी मोक्ष के अधिकारी हो गये। महाराजभोजक वृष्णि ने भी उन्हीं का अनुसरण किया। भोजकवृष्णि के पश्चात् मथुरा के राजसिंहासन पर उग्रसेन बैठे।



× 'नन्दीषेण ने ५५ हजार वर्ष तप किया' ऐसा वसुदेव हिड्यादि ग्रन्थो में उल्लेख पाया जाता है।

वचनो मे पूछा कि 'प्रिये ! जबसे तुम्हारे गर्भ लक्षण प्रकट हुए है तब से लेकर दिन पर दिन तुम क्षीण होती जा रही हो। न खाने में, न न पीने से, न पहिनने मे किसी मे भी तुम्हारा मन नहीं लगता, चोबीसो घटे उदास मुँह लिये बैठी रहती हो, जो भी सकल्प उठते हो नि सकोच भाव से बता दो, मै तुम्हारी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करने का प्राणपण से प्रयत्न करूंगा। तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करने के लिए मै अपना राज-पाट, धनवैभव, सुख-ऐश्वय सब कुछ छोड सकता हूँ। अधिक तो क्या मुझे तुम अपना ही प्राण समझो और स्पष्ट कह दो कि तुम्हारे इतना उदास रहने का आखिर कारण क्या है।'

महाराज के ऐसे प्रेम भरे वचन सुनकर महारानी धारिणी हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी कि—'प्राणनाथ क्या कहू, कुछ कह नहीं सकती बात ही कुछ ऐसी है कि जिसे न प्रकट करने मे ही सबकी कुशल है क्योंकि आजकल मेरे हृदय मे न जाने किस कारण से ऐसी-ऐसी हिंसक (आसुरी) भावनाये जागृत हो रही है कि कुछ न पूछिये। इन दिनों मेरा मौन रहना ही श्रेयष्कर है। इसलिये आप मुझे कुछ कहने के लिये बाध्य न कर मुझे अपने हाल पर ही छोड़ दीजिये!

महारानी के ऐसे निराशा भरे वचनो को सुनकर महाराज उग्रसेन अत्यन्त दुःखित होकर कहने लगे कि—

'प्रिये, मै तुम्हे पहले ही कह चुका हू कि तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने के लिए मै अपने प्राणो तक का भी मोह नहीं करूंगा फिर तुम इतना संकोच क्यों कर रही हो। जो भी इच्छा हो स्पष्ट स्पष्ट कह दो। ताकि तत्काल तुम्हारी इच्छा पूर्ण कर दी जावे। दौहद के दिनो मे इस प्रकार अनमना रहकर तुम अपना, हमारा, कुल का और आने वाले जीव का बड़ा भारी अनिष्ट कर रही हो। मैंने प्रण कर लिया है कि जब तक तुम अपने हृदय की बात न बता दोगी तब तक मै अन्न-जल भी ग्रहण नहीं करूंगा।'

महाराज के ऐसे प्यार भरे आग्रह को देखकर तथा अपने ऊपर इतना दृढ़ अनुराग समझकर धारिणी मन ही मन अपने आपको धिक्कारने लगी कि कहा तो ये मेरे स्वामी है जो मेरे लिये अपने प्राण तक देने को तैयार है और कहां मै हू जिसके मन मे रह-रहकर इनके प्राण लेने के सकल्प उठ रहे है। फिर भी वह कुछ न बोली और

चन्द्र निस्तेज सा भासित होता है। जो भी कारण हो हमें बताने की कृपा कीजिये, ताकि उस कारण को दूर करने के लिये उचित प्रयत्न किया जा सके।

तब उग्रसेन ने अपने विश्वस्त सचिवों को एकान्त मे बुलाकर सारी बात विस्तार से कह सुनाई। तब अत्यन्त दूरदर्शी बुद्धिमान् प्रधान मन्त्री ने कहा कि महाराज चिन्ता न कीजिये हम ऐसा उपाय करेंगे जिससे साप भी मर जावे और लाठी भी न टूटे।

तदनुसार एक दिन मन्त्रियो ने मृतक खरगोश का मांस राजा के हृदय के साथ इस प्रकार चिपका दिया कि किसी को कुछ लक्षित न हो सके, और उसके सामने ले जाकर राजा के हृदय पर से खरगोश के मांस के टुकड़े इस प्रकार काट-काट कर फैंके कि धारिणी को विश्वास हो गया कि सचमुच राजा के हृदय का मांस काट डाला गया है। यह देखते ही रानी का दोहद पूर्ण हो गया और राजा के मर जाने के विचार से वह छाती पीट-पीट कर रोने लगी।

उधर मन्त्रियो ने राजा को एकान्त मे छिपा दिया। अपने प्राणपति के विरह में व्याकुल होकर जब धारिणी गर्भस्थ जीव की रक्षा की कुछ परवाह न कर पति के साथ ही जल मरने के लिये तैयार हो गई। तब उसके दुखातिरेक को देख कर मंत्रियो ने राजा को फिर से प्रकट कर दिया। तत्पश्चात् यथा समय गर्भकाल के पूर्ण होने पर पौष कृष्णा चतुर्दशी को मूल नक्षत्र मे रात्रि के समय रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया।

※ कंस का पूर्व भव ※

एक बार महाराज उग्रसेन भ्रमण के लिये नगर से बाहर निकले। चलते-चलते वे एक बन मे जा पहुंचे। वहा पर एक तपस्वी रहते थे। तपस्वी के दर्शनकर महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए। ये तपस्वी एक मास मे एक ही बार आहार ग्रहण करते थे। अत. मुनिराज को मासोपवासी जान उग्रसेन के हृदय मे उनके प्रति श्रद्धा और भी बढ़ गई। इन मासोपवासी मुनि का एक कठोर व्रत यह भी था कि मैं पारणा के दिन केवल एक ही घर की भिक्षा ग्रहण करूंगा, दूसरे की नहीं।' यदि उस घर मे आहार का योग न हुआ तो वे बिना आहार के भूखे ही शहर

'हे दया सागर तपस्वीराज ! न जाने मेरे किन दुष्कर्मों का उदय हुआ कि आपको दो-दो बार मेरे घर से निराहार लौटना पड़ा। इस महान् अपराध के लिए मुझे आप जो भी दण्ड दें मैं उसे सहर्ष सहने को तैयार हूं। मैं इस अपराध की क्षमा नहीं चाहता; प्रत्युत उसके लिए यथोचित प्रायश्चित करने के लिए ही श्री सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

दीजिए-दीजिए तापसराज ! इस गुरुतर अपराध का मुझे दंड दीजिए !! यह मेरा मस्तक आपके चरणों में झुका हुआ है, यह शरीर समर्पित है। आप यथोचित इसकी ताड़ना कीजिए।'

राजाको इस प्रकार हार्दिक पश्चाताप करते हुए देख कर तपस्वी का हृदय करुणा-विगलित हो गया और वे बोले—

'इसमे तुम्हारा दोष या अपराध नहीं है। पिछले जन्म में जिसने जैसे कर्म किए हैं उसीके अनुसार सब कार्य हो रहे है। मेरे लिए इस बार भी आहार का योग नहीं बन्धा था इसलिए तुम्हारी बुद्धि पर पर्दा पड़ गया। जो कुछ हुआ सो हुआ, भविष्य मे सावधान रहना। फिर किसी साधु-सन्त या तपस्वी को इस प्रकार कष्ट न पहुँचाना।

यह सुन महाराज उग्रसेन बहुत प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर प्रतिज्ञा की कि ऐसा प्रमाद फिर कभी नहीं होगा। और अपने दो बार के अपराधों को क्षमा करवाते हुए तीसरी बार भी उस तापस को अपने यहाँ आहार के लिए निमंत्रित कर दिया। तपस्वी ने भी साधु स्वभाव के कारण इस बार फिर राजा के यहाँ आहार लेने की स्वीकृति देदी। तापसराज यथा समय पारण के दिन उग्रसेन के यहाँ पहुँचे। पर इस दिन ठीक समय पर राजधानी में कुछ ऐसी अघटित घटना घटी कि महाराजा का ध्यान और सब बातों से हट कर केवल उसी घटना की ओर लग गया, और आज भी वे तपस्वी के निमन्त्रण की बात भूल गये। तपस्वी ने देखा कि तीसरी बार भी राज प्रासादों में उन्हें कोई पूछने वाला नहीं है अतः वे पुनः बिना आहार लिये ही चले आये।

तीन मास के निरन्तर उपवास के कारण मुनिराज का शरीर अत्यन्त कृश हो चुका था। अब भी आहार न मिलने के कारण उनमें शरीर धारण की और अधिक क्षमता न रह गई थी। एक तो पहले ही एक एक मास के बाद वे यथा प्राप्त रूखा सूखा अन्न ग्रहण करने के कारण अत्यन्त कृश थे और अब तीन मास से वह भी न मिलने के कारण कृशतर हो गये।

अन्त में तीन मास के अनशन में पारणे से पूर्व ही उन्होंने शरीर त्याग दिया। शरीर त्याग से पूर्व उनको महाराज उग्रसेन पर क्रोध आ गया। और फलतः उन्होंने निदान बान्धा कि "इस तप के प्रभाव से जन्मान्तर में इस भांति उग्रसेन को कष्ट देने वाला होऊं।'

इस प्रकार पूर्व भव के उस तापस ने महारानी धारिणी के गर्भ में आकर उसके हृदय में महाराज उग्रसेन के हृदय का मांस खाने की इच्छा जागृत की। और जब इस प्रकार उग्रसेन की मृत्यु में वह असफल रहा तो जन्म के पश्चात् एक के बाद दूसरे ऐसे उग्र कार्य किये जिनसे सारी पृथ्वी काँप उठी।

निदान करने वालों का निदान जब तक पूर्ण नहीं हो जाता तब तक वे ऐसे ही कार्यों में प्रवृत्त रहते हैं। बात तो यह है कि मनुष्य एक बार जिस मार्ग पर चल पड़ता है फिर वह उत्तरोत्तर तीव्र गति से उसी पर आगे बढ़ता जाता है। पूर्व भव के तापस ने मृत्यु समय दुःख देने का निदान किया था, इसलिए इस जन्म में कंस के रूप में उसने एक के बाद दूसरे को दुःख देने का ऐसा तांता लगाया कि उसके अत्याचारों के कारण सारी सृष्टि सिहर उठी।

दिया गया। उसके साथ ही एक पत्र पर उसके माता-पिता तथा जन्म आदि का सारा वृत्तान्त भी लिखकर रख दिया गया। विश्वासार्थ महाराज ने स्वनामाङ्कित एक मुद्रिका भी इस पिटारी मे रखदी। ताकि यदि शिशु के भाग्य मे जीवन लिखा हो तो कोई इसे प्राप्त कर इसका पालन-पोषण करदे।

इस प्रकार सारी व्यवस्था कर अमावस्या की घनान्धकार रात्रि मे शिशु सहित इस पिटारे को यमुना की उत्तरल तरगों मे प्रवाहित कर दिया गया। और जनता मे यह प्रचारित कर दिया गया कि नवजात शिशु मृतप्राय था इसलिए उसे यमुना मे बहा दिया गया।

सुभद्र श्रेष्ठी को कस की प्राप्ति—

प्रभात के अरुणोदय की कान्ति से सब दिशाए अनुरजित हो रही थीं। पक्षी चहचहाते हुए अपने बसेरों से निकल-निकल कर आकाश मे इधर उधर उड़ते चले जा रहे थे। सभी नगर-ग्रामवासी नर-नारीगण नित्य नियमानुसार स्नानार्थ सरित-सरोवरों के तटों की ओर सैर करते हुए चल पड़े थे। सभी जलाशयों व नदियो के घाटों की इस समय की शोभा बड़ी ही लुभावनी थी, कोई स्नान कर रहा था। तो कोई स्नान कर सन्ध्या-वदन मे लग गया था, तो कोई नदी तट पर ध्यानावस्थित बैठा था तो कोई स्नान से पूर्व व्यायाम कर रहे थे कहीं तैलाभ्यग हो हो रहा था, कुछ लोग यमुना की अगाध नील जल धारा मे तैरते हुए जल क्रीड़ा कर रहे थे। कहीं सुन्दरिया स्नान कर रहीं थीं। तो कहीं उथले जल में उछल-कूद मचाते हुए बालक दर्शकों के मनों को मोहित कर रहे थे। ऐसे ही सुहावने समय मे शौर्यपुर नगर के चहले-पहल से भरे हुए यमुना के घाटों से कुछ दूर सुभद्र नामक व्यापारी सैर करने के लिए निकल पड़ा। सुभद्र पर पुण्य देव की पूरी-पूरी कृपा थी। सुख सम्पति का कोई ठिकाना न था बड़े-वड़े राजप्रसादोपम भवन थे, उद्यान थे, उन विशाल भवनों के द्वार पर सदा हाथी घोड़े बन्धे रहते। पर इस सम्पत्ति को भोगने वाली कोई सन्तान न थी, कई वर्ष पूर्व सुभद्र के एक सन्तान हुई भी थी पर वह भी कुछ दिन ही सेठ जी के मन को मोहित कर चल बसी।

सतानाभाव के कारण उनका तथा उनकी पत्नी का चित्त सदा

आई और पूछने लगी कि यह बालक किसका है और कहाँ से लाये हो, क्या किसी मित्र या सम्बन्धी अतिथि का है जो पीछे-पीछे चला आ रहा हो, और आप इस बच्चे को आगे ले आये हो। यह कह कर वह मन ही मन अभिलाषा करने लगी कि क्या ही अच्छा हो यदि यह बच्चा हमे ही मिल जाय। पर कोई भला अपने ऐसे सुन्दर बच्चे को हमे क्यो देगा। हमारे ऐसे भाग्य कहाँ, इस बुढ़ापे मे हमारा आँगन ठुमकते हुए बालक के पायलों की रुनझुन-रुनझुन मधुर ध्वनि से मुखरित हो। पर मेरे ऐसे भाग कहां जो मै इसे अपनी गोदी का लाल कह सकूं। अभी इसके मां बाप पीछे-पीछे आया ही चाहते होंगे वे घर में पांव रखते ही इसे इनसे ले लेंगे। इसी प्रकार नाना विध विचार तरगों में उतराती गोते खाती सेठानी ने बड़े उल्लास और आशका भरे हृदय से पूछा कि—

आज सुबह ही सुबह यह बालक किसका ले आये हैं लगता तो यह कोई राजकुमार सा है देखो न यह मेरी ओर किस प्रकार टुकुर टुकुर निहार रहा है मानो मै ही इसकी माँ हू। और मेरे स्तनों से भी बरबस दूध की धार फूट निकलना चाहती है, इसे देखकर यह हर्ष रोमाँच और वात्सल्य भाव क्यों जागृत हो रहा है। बताओ बताओ प्रिय शीघ्र बताओ यह बच्चा किसका है। सेठानी के हृदय की इस प्रकार की उत्सुकता को देख सेठ जी कहने लगे हे प्रिये! जरा सास भी लेने दो, इतनी दूर नदी से इस भारी भरकम स्वस्थ बच्चे को हाथ में उठाकर लाने में मेरा तो सास भी फूल गया है। बच्चा है पता नहीं किसका का बालक है। कितना स्वस्थ और सुडौल है यह। लो तुम ही इसे गोद में लेकर देख लो न।

इस पर सेठानी ने कहा—इसका बखान फिर करना, यह लो सब कुछ में देख ही रही हूं। पहले यह बताओ कि यह है किसका बच्चा। क्या यह तुम्हारे पास ही नहीं रह सकता। पर आपके ये भाग्य कहाँ? जो आपके आँगन मे ऐसा सुन्दर बच्चा खेलता हुआ दिखाई दे। खैर, किसी का भी हो जितने दिन अपने यहाँ रहेगा उतने दिन तो मेरा मन बहलायगा ही। यदि इसके दो-चार भाई और हुए तो मै तो इसके माँ-बाप से इसे भीख में माँग लूंगी और यदि यह अपने भाई बन्धु का हुआ जब तो आप इसे गोद रख लीजिए। इसके माँ-बापों को

मेरा मन देखने के लिए हसी कर रहे हैं या सचमुच यह बालक सदा मेरी ही गोद की शोभा बढ़ायेगा और मेरा ही लाल कहलायगा। क्या कोई मां वाप ऐसे सुन्दर लाडले लाल को जन्म देते ही नदी में बहा सकते है प्राणनाथ! आपकी वातो पर कुछ विश्वास नहीं हो रहा है। हंसी न कीजिये आप सच सच बताइये।

तब सुभद्र सेठ ने मुस्कराते हुए कहा—इतनी व्याकुल क्यो होती हो! रंक को सहसा महानिधि मिल जाय तो वह विश्वास भी कैसे करे, वही दशा तुम्हारी भी है। पर विश्वास रखो प्रत्यक्ष मे प्रमाण की आवश्य कता नहीं। अब तुम्हारी गोद से इस बच्चे को छीनने कोई न आवेगा। अब तुम हो और तुम्हारा यह बालक। यह सुनकर सेठानी ने सुख की सांस ली। पुत्र की प्राप्ति के फल स्वरूप बड़ी धूमधाम के साथ उसके जाति कर्म नामकरण आदि संस्कार किए गये। यह बालक कांसे की पेटी में प्राप्त हुआ था, इसलिए इसका नाम कंस रक्खा गया। धीरे-धीरे बालक द्वितीया के चन्द्र कला की भांति बड़ा होने लगा।

बालक कस की राक्षसी क्रीड़ा—

चार पांच वर्ष की अवस्था में ही यह बच्चा ऐसा हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ दिखाई देता था कि बारह-तेरह वर्ष का कोई अत्यन्त सशक्त स्वस्थ बालक हो। इस छोटी सी अवस्था मे ही उसकी मां की सब इच्छाएं पूरी हो गई। शरारतों से सारा नगर तग आ गया। शरारतें भी कोई साधारण नहीं। वह दिन पर दिन बड़े ही भयकर और हिंसक कांड करने लगा। कभी किसी के बच्चे को उठाकर कुए मे फेंक देता तो कभी किसी बालक को अपनी सशक्त भुजाओं में उठाकर उसे आकाश में गेद की भांति उछाल देता। कभी पांच-पांच-सात-सात बच्चों को पकड़कर उन्हें घोड़ों की भांति मीलों तक दौड़ाता। इस प्रकार इस बालक की ये लीलायें सारे नगर के लिये असह्य हो उठीं। सात-आठ वर्ष की अवस्था मे ही वह इतना बलवान, क्रूर और सशक्त था कि बड़े-बड़े पहलवानों के लिए भी वह भारी था।

मां-बाप ने प्यार, दुलार, लाड फटकार आदि सभी उपायों से काम ले लिया पर सब व्यर्थ। बिचारो के नाको दम हो गया। पुत्र का उत्साह और चाव कुछ ही वर्षों में पूरा हो गया। उस दुष्ठ बालक ने श्रेष्ठी दम्पत्ति के हृदय में विरक्ति के भाव भर दिए क्योकि वह—

मनुष्य पर जहां कुसंगति का प्रभाव पड़ता है सत्संगति का भी अवश्य पडता है *'जैसा संगत बैठतां वैसा ही गुण लीन'* के अनुसार राजपरिवार मे बसुदेव की देखरेख में राजकुमारो के साथ रहते-रहते कस का जीवन भी सुव्यवस्थित और अनुशासित हो गया। उसका बल वीर्य और पराक्रम तो उत्तरोत्तर बढ़ने लगा पर उसके वे उपद्रव और अत्याचार कुछ समय के लिए शान्त हो गये। उसकी दशा सचमुच मन्त्रमुग्ध सर्प या पिंजरबद्ध सिंह की जैसी हो गई। बसुदेव रूपी चतुर महावत ने अपने बुद्धि के छोटे से प्रखर अंकश से कसरूपी मदोन्मत्त-हाथी को देखते ही देखते इस प्रकार साधकर वश में कर लिया कि लोग आश्चर्य चकित हो दांतों तले अगुली दबाने लग गये।

सिंहरथ विजय

इधर शुक्तिमति नगरी मे वसुराज के पुत्र सुवसुराजा राज्य करते थे। कालान्तर में उन्हों ने रसनगर को छोड़ कर नागपुर को अपनी राजधानी बना लिया, यहाँ पर इनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम वृहद्रथ था, बड़ा होने पर वृहद्रथ ने राजगृह को अपनी राजधानी बनाया। वहीं पर उनके वंश मे जयद्रथ नामक राजा हुआ। इस जयद्रथ का पुत्र जरासन्ध था। यही महाराज जरासन्ध जैन शास्त्रों में प्रति वासुदेव के नाम से विख्यात है। जरासन्ध परम प्रतापी सम्राट था, तीनों खँडो पर उसका राज्य था, सभी राजा महाराजाओं को अपने अधीन करके उसने महान् मगध साम्राज्य की प्रतिष्ठा की थी। जो राजा उसके अधीन नहीं थे, वे भी उसके आतङ्क से अभिभूत हो कर उसका लोहा मानते थे। इस पृथ्वी पर कोई ऐसा शासक या नरेश नहीं था जिसकी आज्ञा शिरोधार्य नहीं, उसके विरूद्ध जो भी कोई सिर उठाता वह तत्काल अपने अधीनस्थ दूसरे राजा को या अपनी सेनाओ को भेज कर उसका मान-मर्दन कर देता। उसकी भौहों मे वल पडता देख वड़े वडे वीर नरेश थर थर काँपने लगते। साक्षात कृतान्त के समान उसका आतङ्क देश देशान्तरो के नरेशो को सतत कम्पित करता रहता था।

किन्तु ससार मे एक से एक वढ़कर प्राणी पड़े है। वैताढ्य पर्वत के निकट सिंहपुर नामक नगर था, वहाँ सिंहरथ नामक राजा राज्य करता था। उसे अपने दुर्ग और राजधानी की दुर्गमता तथा अपनी वीरता

सम्राट् जरासन्ध के दूत के द्वारा यह अनर्कित सन्देश पाकर महाराज समुद्रविजय बड़ी असमजस में पड़े। उन्हे कुछ समझ में न आता था कि क्या करें और क्या न करें। सिंहरथ को विजय करना बडी टेढ़ी खीर थी। उसके शौर्य और साहस की कथाए वे पहले ही सुन चुके थे, जिस कार्य को जरासन्ध के बड़े बड़े सामत और सेनापति न कर पाये उसी कार्य को उनके यहाँ कौन साध सकेगा। यह कुछ समझ मे नही आ रहा था। इस प्रस्ताव को सुनकर समुद्रविजय की सारी राजसभा में सन्नाटा सा छा गया।

तब निराशा मे डूबे हुए महाराज समुद्र विजय ने राज सभा में उपस्थित सब वीरों को ललकारते व उत्साहित करते हुये कहा कि मेरे यहाँ ऐसा कोई साहसी वीर नहीं है जो सिंहरथ से लोहा लेने को तैयार हो। यह मेरी आन बान और मर्यादा का प्रश्न है, अब यह महाराज जरासन्ध का प्रश्न नहीं रह गया, यह समुद्रविजय के सम्मान की रक्षा का प्रश्न है। क्या आप सब वीरों के रक्तों में क्षत्रियत्व का जोश ठंडा पड़ गया है? जो किसी की भी तलवार म्यान से बाहर निकलना नहीं चाहती।

समुद्रविजय के इस प्रकार वचनो को सुनकर सभी सभासदोंके हृदयो मे उत्साह की तरगें हिलोरे लेने लगीं। सभी के भुजदंड वीरोल्लास से फड़कने लगे, इससे पूर्व कि दूसरे कोई सामन्त कुछ कहें वसुदेव ने खड़े होकर निवेदन करना अरम्भ किया—

महाराज! आपकी आज्ञा से एक सिहरथ तो है ही किस खेत की मूली सैकड़ो सिहरथों को भी वात की वात मे परास्त कर सकते है। आप हमें आज्ञा दीजिए हम अभी चढ़ाई के लिए प्रस्थान करते हैं, और देखते ही देखते उस अभिमानी का मान मर्दन कर उसके सिर को आपके चरणों में ला झुकाते है। लोग मुझे केवल सुन्दर सुकोमल और कलाप्रिय ही न समझे, मैं उतना ही साहसी वीर और दुर्घर्ष वीर भी हूं। अब तक लोगो ने मेरे कालाप्रिय रूप को ही देखा है, अब मेरे परम पराक्रमी स्वरूप को भी पहचानें कि वसुदेव केवल गीत गाकर, मधुर वाद्य यन्त्र बजाकर नर नारियो के मनों को मोहित करना ही नहीं जानता, वह आवश्यकता पड़ने पर रणक्षेत्र में बाण वर्षा कर शत्रुओ के छक्के भी छुडा सकता है। उसके जो सुकुमार कर अपने कोमल अंगुलियों से वीणा

वसुदेव का इस प्रकार उत्साह पूर्ण आग्रह देखकर महाराज समुद्रविजय और अन्य सभासदों ने जयजयकार की हर्ष ध्वनि के साथ-साथ वसुदेव को विजय यात्रा के प्रस्थान के लिए स्वीकृति प्रदान कर दी।

वसुदेव शुभ मुहूर्त में सिंहरथ पर विजय प्राप्त करने के लिए चल पडे। कंस और वसुदेव की सेनाएँ धीरे-धीरे सिंहपुर तक जा पहुँची। शत्रु सेना के आगमन का समाचार सुनते ही सिंहरथ भी सिंह की भाँति दहाड़ता हुआ अपने दुर्ग रूपी माँद से बाहर निकल आया। दोनों ओर की सेनाओं में रणभेरी बज उठी, सूर्योदय के साथ ही घमसान युद्ध आरम्भ हो गया। सिंहरथ की बड़ी भारी सेना के समक्ष वसुदेव की सेना बहुत स्वल्प थी, फिर भी वसुदेव अद्भुत रण-कौशल दिखा रहे थे, कंस उनका सारथी बनकर उनके रथ का ऐसा संचालन कर रहा था कि शत्रु सेना आश्चर्य चकित हो स्तब्ध रह गई। कंस के द्वारा संचालित वसुदेव का रथ शत्रु सेनाओं में सहसा एक छोर से दूसरे छोर तक ऐसे जा पहुँचता, मानो मेघ समुद्रों में बिजली कौंध रही हो, कई दिनों तक घमासान युद्ध होता रहा। कुछ भी समझ में नहीं आता था कि विजयश्री किस का वरण करेगी। कभी इस पक्ष का पलड़ा भारी होता तो दूसरे क्षण में दूसरा।

ऐसे घनघोर युद्ध के समय भला कंस जैसा बलवान् वीर केवल सारथी बनकर रथ संचालन का कार्य ही कैसे करता रह सकता था? उसके हृदय में भी रह-रह कर शत्रु को दो दो हाथ दिखाने का जोश उमड़ रहा था, यह उसके स्वभाव के विरुद्ध था कि वह कायरों की भाँति स्वयं युद्ध में कोई भाग न लेकर मात्र किसी का रथ वाहक बना रहे। अतः अवसर हाथ आते ही वह बिजली की भाँति अपने रथ से कूद सिंहरथ के ऊपर झपट पड़ा। उसने बात की बात में मुद्गर से सिंहरथ के रथ को चूर-चूर कर दिया। किसी को पता भी न लगा कि कब कंस रथ से कूदा, कब शत्रु के रथ के पास पहुँचा, और कब उसे नष्ट प्राय कर दिया।

विवाह की बात जरा विचारणीय है क्योंकि क्रोष्टुकी नामक नैमित्तिक[१] ने मुझे बताया था कि जरासन्ध ने सिंहरथ को पराजित कर उसे बन्दी बना लाने वाले से अपनी कन्या के विवाह का निश्चय किया है; किन्तु जीवयशा बड़ी कुलक्षणा कन्या है जिसके साथ उसका विवाह होगा, उसका और उसके वंश का सर्वनाश हो जायगा। इसलिए यदि जरासन्ध अपनी पुत्री के साथ तुम्हारे विवाह की चर्चा चलाय तो तुम उसे किसी बहाने से टाल देना।

यह सुन कर बसुदेव कुमार ने कहा कि नियमानुसार महाराज जरासन्ध की पुत्री जीवयशा के पाणीग्रहण का अधिकार मुझे नहीं प्रत्युत मेरे शिष्य सखा व सारथी कंस को है। क्योंकि सिंहरथ को बन्दी बनाने का कार्य कंस के हाथों ही सम्पन्न हुआ है। अतः प्रतिज्ञानुसार राजकुमारी का विवाह कंस से ही होना चाहिए। अवसर आने पर मैं यही सब कुछ प्रगट कर दूंगा।

तदनुसार वे लोग सिंहरथ को बन्दी अवस्था में अपने साथ लेकर महाराज जरासिन्ध के दरबार में पहुंचे, तो उन्हे देख जरासंध अत्यन्त प्रसन्न हुआ, और अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार वसुदेव के साथ जीवयशा के विवाह की चर्चा चलाई।

तब वसुदेव कुमार ने बड़ी नम्रता के साथ कहा कि वस्तुतः सिंहरथ को पकड़ने का श्रेय मुझे नहीं मेरे परम-सखा कंस कुमार को है। इसलिए अपनी पुत्री का विवाह आपको इसी के साथ करना चाहिये।

कंस रहस्योद्घाटन और राज्य प्राप्ति

वसुदेव की उक्ति सुनकर जरासन्ध आश्चर्य चकित हो पूछने लगा कि यह कंस कौन है? इसके माता-पिता कौन हैं इसकी जाति-पांति और कुल या अभिजन व गोत्रादि क्या हैं? मैं अपनी पुत्री को ऐसे ही किसी के हाथों में थोड़े ही सौंप सकता हूँ। पहले तुम मुझे उसका पूरा-पूरा परिचय दो। फिर तुम्हारे प्रस्ताव पर विचार किया जायगा।

'महाराज यह शौरीपुर निवासी श्रेष्ठी सुभद्र का पुत्र है; उन्होंने बचपन से ही शस्त्र विद्यादि सीखने के लिए इन्हे मेरे पास छोड़ दिया था, तब से लेकर ये मेरे पास ही पले, पनपे और बड़े हुए है। मेरे संरक्षण

१. ज्योतिषी

किया। युद्ध ने भयकर रूप धारण कर लिया। कस के विपुल बलके सामने मथुरा की सेना न रुक सकी। क्रूर स्वभाव कस ने रक्त की बडी नदी बहाने के पश्चात् अपने पिता उग्रसेन को बन्दी बना एक पिंजरे में बन्द कर दिया और स्वयं राज्य का अधिकारी बन बैठा।

अतिमुक्त कुमार, उग्रसेन का पुत्र जो कस का छोटा भाई था, उसके इस निन्दनीय कुकृत्य को सहन न कर सका। उसका पुण्यात्मा कॉप उठा। मानसिक वृत्तियॉ स्थिर न रह सकीं। तापक्रम बढ़ गया। पिता की इस प्रकार दुर्गति देख उसे ससार असार दिखाई देने लगा और वैराग्य उत्पन्न हो गया। अतिमुक्त कुमार ने सब कुछ त्याग कर दिया और साधुओं के पास जाकर दीक्षा ग्रहण ली।

इस अवसर पर कस ने शौर्यपुर नगर से अपने पालक पिता को बड़ी धूमधाम और उत्साह के साथ मथुरा बुलाया। उसके निकट कस ने बहुत ही कृतज्ञता प्रगट की और उसे बहुमूल्य रत्न तथा सुवर्णादि भेंट देकर बहुत सम्मानित किया।

रानी धारिणी पतिव्रता स्त्री थी। उसे अपने स्वामी के चरणों में अपार प्रेम था। राजा उग्रसेन की दुर्दशा पर उसे बहुत दुःख हुआ। उन्हें छुड़ाने के लिये सब कुछ किया किन्तु असफल। निराश्रित होकर वह कंस के सामने आ उपस्थित हुई। रानी ने वात्सल्य प्रेम प्रगट किया, मर्यादा का भय दिखलाया, रोई, गिड़गिड़ाई, करुणा की भीख का आंचल उसके सम्मुख फैला दिया, किन्तु उसकी अनुनय विनय का आततायी कंस के हृदय पर कोई प्रभाव न हुआ।

जब रानी उपाय हीन हो गई तो कस के निकटतम मित्रों के पास गई और कहा अन्तरिम सहयोगी या मित्र ही मनुष्य के लिये ऐसा है कि कुमार्ग गामी भी उसकी शिक्षा को ध्यान से सुनता है। मित्र किसी के जीवन की बुराइयों को समूल नष्ट कर उसके जीवन में आमूल क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकता है। और "कस के साथ ऐसा करने में मेरा ही हाथ था। मैंने ही उसे कांसे के सन्दूक में बन्द कर नदी में फिकवाया था। राजा को तो इस वृतान्त का ज्ञान भी न था। वे इस सबके लिये निरपराध थे। यह जो कुछ हुआ मैंने किया है, अत वास्तविक अपराधिनी तो मै हूँ।' तुम लोगों से यही प्रार्थना है कि यह वास्तविक घटना कंस को बता कर उसे सद्मार्ग पर लाओ, और कहो कि वह

* चौथा परिच्छेद *

वसुदेव का गृहत्याग

इधर सिंहरथ की विजय के पश्चात् जब वसुदेव जरासन्ध के यहां से लौटे तो उनकी वीरता की कहानियाँ सर्वत्र विख्यात हो चुकी थीं। नगर और देश की सुन्दरियाँ उनके रूप, गुण, कार्यों और यशोगाथाओ का वर्णन करते-करते अघाती न थीं। जहाँ देखो वहीं उनके गुणानुवादों की चर्चा होती रहती थी। प्रत्येक के हृदय मे उनको निरन्तर देखते रहने की लालसा जागृत हो उठी। आबाल, वृद्ध वनिता पर्यन्त सभी नर-नारियो के नेत्र चकोर वसुदेव के रूप सुधापान करने के लिए प्रतिपल उत्सुक रहते थे। ऐसा कोई क्षण न बीतता जब उनके मनो मे वसुदेव न बसे रहते हों।

युवतियो की अवस्था तो और भी विचित्र थी। वे तो उनका नाम सुनते ही घर बार के सब काम छोड़ उनके पीछे भाग निकलतीं, न उन्हे कुल मर्यादा की ही चिन्ता थी न लोक लज्जा की परवाह। उनके रूप का आकर्षण ही कुछ ऐसा अनोखा था कि सभी का मन वरबस उनकी ओर खिंच जाता। वे उद्यान मे जब-जब सैर के लिए निकलते तब तब उनके पीछे पागल से बने हुए नर-नारियो का झुण्ड चारो ओर से उन्हें घेर लेता।

कुल ललनाओं की ऐसी विचित्र अवस्था देख पुर के प्रमुख पुरुषों के हृदयों मे बड़ी भारी चिन्ता के भाव जागृत हो उठे। बड़े-बूढ़ों के हृदय और भी अधिक व्याकुल और खिन्न से रहने लगे। इसका कुछ उपाय भी तो दिखाई न देता था। क्या करें और क्या न करे, इस समस्या का कुछ भी समाधान न सूझता था। बहुत कुछ सोचने-समझने और विचार करने के पश्चात् वयोवृद्ध नागरिको ने निश्चय

आपके हृदय मे जो भी भाव हों निःसकोच होकर व्यक्त कर दीजिए। हम यथाशक्ति और यथामति आपकी समस्या को सुलझाने के लिए यथोचित सहायता व भरसक प्रयत्न करेगे।

तब मुखिया ने इस प्रकार आत्मभाव व्यक्त करना आरम्भ किया।

हे देव! शरद् ऋतु का निर्मल चन्द्रमा किसे प्रिय नहीं होता! अपनी निर्मल धवल ज्योत्सना से चराचर मात्र को आह्लादित करना उसका स्वभाव ही है। उसमें किसी प्रकार के दोष के लवलेश की आशका करना भी अपने ही अन्तःकरण के कालुष्य को प्रकट करना है, पर फिर भी यदि उस शान्त स्निग्ध निर्मल चन्द्र को देखकर किसी के मन मे विचार भाव उत्पन्न हो जाय; तो उसमे चन्द्रमा का क्या दोष है। किन्तु किया क्या जाय, चन्द्रमा अपनी पूर्ण किरणो से प्रशान्त-सागर के हृदय में एक हलचल सी मचा देता है। उसके कुछ न करते हुए भी उसके रूप सौन्दर्य के कारण ही अतल सागर के अन्तरतम में एक भयकर तूफान सा उठ खड़ा होता है। और उसकी बेला अपनी मर्यादा की परवाह न कर ज्वारभाटे के रूप मे उथल-पुथल मचाने लगती है। इस प्रकार निर्दोष होते हुए भी प्रशान्त सागर के हृदय में एक भयकर तूफान खड़ा कर देने का सारा दायित्व चॉद पर ही आता है। यदि चन्द्रमा अपनी षोड्ष कलाओ से पृथ्वी पर परिपूर्ण रूपसुधा की वर्षा न करे तो सागर का हृदय इस प्रकार आलोडित क्यों हो।

अब आप ही बताइये कि उस शुभ्र निर्मल चन्द्र को क्या कहा जाय, उसके लिए कहने को कुछ न होते हुए भी बहुत कुछ है। इसी विषम समस्या के समाधान के लिए हम श्री चरणों में उपस्थित हुए हैं। हमारे हार्द भावों से अवगत होकर अब आप स्वय यथोचित विचार कीजिए। इससे अधिक हमारे निवेदन करने की कुछ आवश्यकता नहीं है।

शिष्टमडल के प्रमुख की यह वक्तृता सुन महाराज ने कहा, हमारी समझ में कुछ नहीं आया। इस सारी पहेली से आपका क्या प्रयोजन है, कुछ स्पष्टता पूर्वक समझायें तो बात बने। तब दूसरे सभ्य ने इस प्रकार निवेदन किया हे कृपा सिन्धु! समस्त पुर और जनपद की ललनाओ के हृदय समुद्रों मे वसुदेव कुमार के रूप और गुण चन्द्रमा के सदृश तूफान सा खड़ा कर देते हैं। उन्हें आठों पहर उन्हीं का

आपके हृदय मे जो भी भाव हों निःसकोच होकर व्यक्त कर दीजिए। हम यथाशक्ति और यथामति आपकी समस्या को सुलझाने के लिए यथोचित सहायता व भरसक प्रयत्न करेंगे।

तब मुखिया ने इस प्रकार आत्मभाव व्यक्त करना आरम्भ किया। हे देव! शरद् ऋतु का निर्मल चन्द्रमा किसे प्रिय नहीं होता! अपनी निर्मल धवल ज्योत्सना से चराचर मात्र को आह्लादित करना उसका स्वभाव ही है। उसमें किसी प्रकार के दोष के लवलेश की आशका करना भी अपने ही अन्तःकरण के कालुष्य को प्रकट करना है, पर फिर भी यदि उस शान्त स्निग्ध निर्मल चन्द्र को देखकर किसी के मन मे विचार भाव उत्पन्न हो जाय, तो उसमे चन्द्रमा का क्या दोष है। किन्तु किया क्या जाय, चन्द्रमा अपनी पूर्ण किरणो से प्रशान्त-सागर के हृदय मे एक हलचल सी मचा देता है। उसके कुछ न करते हुए भी उसके रूप सौन्दर्य के कारण ही अतल सागर के अन्तरतम में एक भयकर तूफान सा उठ खड़ा होता है। और उसकी बेला अपनी मर्यादा की परवाह न कर ज्वारभाटे के रूप में उथल-पुथल मचाने लगती है। इस प्रकार निर्दोष होते हुए भी प्रशान्त सागर के हृदय में एक भयकर तूफान खडा कर देने का सारा दायित्व चॉद पर ही आता है। यदि चन्द्रमा अपनी षोड्ष कलाओ से पृथ्वी पर परिपूर्ण रूपसुधा की वर्षा न करे तो सागर का हृदय इस प्रकार आलोडित क्यो हो।

अब आप ही बताइये कि उस शुभ्र निर्मल चन्द्र को क्या कहा जाय, उसके लिए कहने को कुछ न होते हुए भी बहुत कुछ है। इसी विपम समस्या के समाधान के लिए हम श्री चरणों में उपस्थित हुए हैं। हमारे हाद भावों से अवगत होकर अब आप स्वय यथोचित विचार कीजिए। इससे अधिक हमारे निवेदन करने की कुछ आवश्यकता नहीं है।

शिष्टमडल के प्रमुख की यह वक्तृता सुन महाराज ने कहा, हमारी समझ में कुछ नहीं आया। इस सारी पहेली से आपका क्या प्रयोजन है कुछ स्पष्टता पूर्वक समझाये तो बात बने। तब दूसरे सभ्य ने इस प्रकार निवेदन किया हे कृपा सिन्धु! समस्त पुर और जनपद की ललनाओ के हृदय समुद्रों मे वसुदेव कुमार के रूप और गुण चन्द्रमा के सदृश तूफान सा खड़ा कर देते हैं। उन्हे आठों पहर उन्हीं का

ध्यान रहता है, प्रत्येक कार्य मे वे उन्हीं के नाम की माला सी जपती रहती हैं, यहा तक कि मालिनों से शाक आदि खरीदती हुई भी वर-वस यही पूछ वैठती हैं कि वसुदेव कुमार क्या भाव है। इस पर वेचारी भोली भाली मालिनें उनका मुँह ताकती ही रह जाती है। उनकी दशा का वर्णन करते करते तो वडे बड़े ग्रन्थ ही समाप्त हो जायें। श्रीमान् तो सभी के हृदय की वात समझने वाले हैं इसलिए और अधिक कुछ न कहते हुए इतना ही निवेदन कर देना चाहते हैं।

तव महाराज ने इस प्रतिनिधि मडल को बड़े प्यार भरे शब्दों में आश्वासन दिया कि यद्यपि यह किसी के वश की वात नहीं है, किसी के हृदय पर तो न आपका, मेरा अन्य किसी का भी कोई अधिकार है। फिर भी राजा होने के नाते मैं यथाशक्ति इस समस्या को सुलझाने के लिए कुछ न कुछ प्रयत्न अवश्य करूगा। आप निश्चिन्त रहिए।

महाराज से इस प्रकार आश्वासन पाकर शिष्टमडल प्रसन्नता पूर्वक वापिस लौट गया।

वसुदेव का वन्दी होना—

उधर महारज समुद्रविजय ने एक दिन वसुदेव कुमार को बुलाकर कहा कि वत्स! आपणों, वनों व उपवनों में भ्रमण करते रहने के कारण वर्षा आतप और लूवों के प्रभाव से तुम्हारे चाँद से सुन्दर रूप की कान्ति कुछ मद पडती जा रही है और स्वास्थ्य दुर्वल होता जा रहा है, इसलिए अच्छा है कि तुम अपने राजमहलों के उपवन में ही भ्रमण कर लिया करो। यहीं तुम्हारे कलाओं के अभ्यास और मनोरजन की सब प्रकार की समुचित व्यवस्था कर दी जायगी।

भोले भाले और निष्कपट हृदय वसुदेव कुमार ने अपने बड़े भाई के इस सत् परामर्श को सिर माथे स्वीकार कर लिया और वे उस दिन से राज महलों मे ही रहने लगे। राज महल और राजोपवन को छोड़ वे कभी कहीं वाहर न आते जाते। उन्हे इस वात का तो आभास भी न था कि उन पर किसी प्रकार का कभी कोई प्रतिवन्ध भी हो सकता है।

शिष्टमंडल के आने का रहस्योद्घाटन—

इस प्रकार की व्यवस्था को अभी कुछ ही समय वीता होगा कि

सुगन्धित द्रव्य हाथ मे लिए उपवन के मार्ग से राजप्रासादों मे जाती हुई दिखाई दी। उसे देखते ही कुमार वसुदेव ने उसे अपने पास बुलाकर पूछा कि यह तुम्हारे हाथ मे क्या है ?

दासी—'गन्धानुलेपन।

किसके लिए लेजा रही हो ?

दासी—महराज समुद्रविजय व महारानी के लिये।

कुमार—क्यों, इसमे से थोड़ा हमें नहीं दे सकती ?

नहीं, महाराज की आज्ञा के बिना उनके निमित्त की वस्तु में से किसी को देना चोरी होगा, चाहे आप हों या मैं चौर्य कर्म सभी के लिये वर्जित है। दासी ने कहा।

कुमार—दूसरे की वस्तु का अपहरण चोरी है। किन्तु महाराज समुद्रविजय कोई पराये नहीं, वे मेरे ही बड़े भाई है। इसलिए उनकी प्रत्येक वस्तु पर मेरा स्वभाव सिद्ध अधिकार है, गन्धानुलेपन जैसी तुच्छ वस्तु की तो बात ही क्या। वे बहुमूल्य से बहुमूल्य वस्तु देने से भी कभी मुझसे सकोच न करेंगे। इसलिए यदि तू मुझे यह गन्धद्रव्य नहीं देगी तो मैं वरबस छीन लूंगा।

यह सुन कुब्जा ने मुस्कराते हुए कहा कि, अपनी इन्हीं करतूतों के कारण ही तो यहां बन्दियों की भाँति पड़े हो। फिर भी आपके स्वभाव मे परिवर्तन न हुआ।

इस पर आश्चर्य चकित हुए वसुदेव ने पूछा कि—मुझे बन्दी कौन कहता है ? बता तेरे इस कथन का क्या रहस्य है ?

तब कुब्जा ने नागरिकों की प्रार्थना पर उनके बन्दी किये जाने का सारा वृतान्त सविस्तार कह सुनाया। क्योंकि कहा भी है—

'रहस्यं खलु नारीणा हृदये न चिर स्थिरम्।'

इस सारी घटना को सुनकर वसुदेव ने कुब्जा को बिना कुछ उत्तर दिये विदा कर दिया।

वसुदेव का गृह त्याग और चिता प्रवेश

इधर वसुदेव को जब अपने बड़े भाई महाराज समुद्रविजय और नागरिक जनों के इस छद्म व्यवहार का पता लगा तो वह मन ही मन बड़े क्षुब्ध हुए। वे सोचने लगे कि 'मेरे रूप गुणों पर नर-नारी मुग्ध हो मेरे प्रति आकृष्ट होते है तो इसमें मेरा क्या अपराध है, और जब

मेरा कोई अपराध नहीं तो अकारण ही मुझे किसी प्रकार का कोई दण्ड क्यों दिया जाय। माना कि इस नजरबन्दी की अवस्था में मुझे किस प्रकार का कोई दुःख, कष्ट या अभाव नहीं है, पर है तो यह आखि एक प्रकार का कारागार (कैद) ही। वसुदेव कुमार का जीवन वन्दीगृ में नहीं बीत सकता। वह स्वच्छन्द विहग की भाँति समग्र भू मडल नि शक भाव से विचरण करेगा। देखे उसे कौन सा बन्धन रोकेगा इसके आगे बढते हुए पावों को कौन से निगड़ जकडेंगे। विश्व ऐसी कोई शक्ति नहीं जो मुझे अब यहाँ वन्दी बनाये रख सके।

इस प्रकार सोचते-सोचते बहुत रात बीत गई और कुछ क्षणों लिए उनकी आँखें झपने लगीं। किन्तु उनकी आँखों में नींद कहाँ थ उन्होंने अपना कर्त्तव्य और मार्ग निश्चित कर लिया। वे राज मह के उस अपार सुख वैभव को लात मार कर घर से बाहर निकलने लिए उद्यत हो गए।

उन्होंने चुपचाप अपने सेवक के द्वारा सारथी को बुलाया। औ कहा कि तत्काल रथ तैयार कर लाओ, मेरे राजोपवन से बाहर ज की चर्चा कानों कान भी नहीं होनी चाहिए।

वसुदेव कुमार की आज्ञानुसार सारथी रथ ले आया और उस सवार हो वसुदेव कुमार घनघोर-घटाओं से घिरी काली रात म चु चाप नगर से बाहर निकल गये। पश्चिम की ओर थोड़ी दूर च चलते श्मशान भूमि के पास पहुँच उन्होंने अपना रथ रुकवाया। औ सारथी से कहा कि तत्काल लकडिया लाकर एक चिता तैयार क चिता के तैयार हो जाने पर एक पत्र लिख कर सारथी को दे दिय और कहा कि इसे अभी महाराज को जाकर दे दो। और तुम्हें च चलते पीछे लौट कर देखने की भी आवश्यकता नहीं है। इस प्र पत्र लेकर सारथी ज्यों ही चला कि पीछे से चिता में से धाँय ध करती हुई ज्वालाएँ उठने लगीं, जिसके प्रकाश से सारा पथ आलो हो उठा। अमावस्या के सूचिभेद्य अन्धकार में उस परम दीप्त चित

प्रकाश पुञ्ज को देखकर सारथी स्तब्ध रह गया। वह लपक कर पीछे पहुँचा। किसी अज्ञात अनिष्ट की आशका से उसका हृदय धड़क रहा था कि कहीं कुमार वसुदेव ही चिता में जल न मरे हो।

चिता के पास पहुँचते ही उसमें अस्थि ककाल जलता हुआ दिखाई दिया। इस दृश्य को देखकर वह फूट-फूट कर रोने लगा, और कहने लगा कि हाय! कुमार तुम हमे छोडकर क्यो चले गये। इस प्रकार रोते-विलखते हुए उसने आकर वसुदेव का वह पत्र महाराज समुद्र-विजय के हाथो मे दे दिया। महाराज समुद्र विजय ने ज्यो ही वह पत्र खोलकर पढ़ा, कि सन्न रह गये, सारा शरीर थर थर काँपने लगा, चेहरा पीला पड़ गया माथे पर पसीने की बूदे चमक आई और वह पछाड खाकर धडाम से पृथ्वी पर गिर पड़े। उनकी अकस्मात् यह दशा देख सारी रानियाँ एकत्रित हो गईं। सब भाइयों ने आकर उन्हें घेर लिया। धीरे धीरे चेतना आने पर सब लोगों को उस पत्र का वृतान्त ज्ञात हो गया। उस पत्र मे लिखा था कि—

'महाराज मेरे पिता के समान है, वे सुख से रहे पुरवासी जन भी सुख से जीवन व्यतीत करें और मेरे शत्रुजन भी आनन्द मनाये, इसलिए मैं चिता में प्रविष्ट होकर मर रहा हूँ।' अब क्या था, ज्यों ज्यो पत्र की चर्चा फैलने लगी, त्यों त्यों सभी लोग दौड़ते हुए श्मशान में पहुँचने लगे। पर अब तक तो शरीर चिता में जलकर राख का ढ़ेर हो चुका था। अब तो वहाँ मानव की मुट्ठी भर जली हुई हड्डियाँ (फूल) और कुछ राजकुमार के स्वर्ण हीरे आदि के बहुमूल्य आभूषणो के अवशेष ही पडे थे।

इस दृश्य को देखकर राजा प्रजा, राज परिवार सभी चीखे मार मार कर रोने लगे। अब तो सब प्रजाजन सिर फोड़ फोड़ कर पछताते और अपनी करनी पर सिर धुनते कि हम ने यह क्या किया, हमारे ही पापों के प्रायश्चित स्वरुप आज हमको यह दिन देखना पड रहा है। वह पुष्प सा सुकोमल कुमार वसुदेव अग्नि की प्रचड लपटों मे झुलस कर भस्म हो गया। हे दैव! क्या आज का दिन दिखाने के लिए ही हम सब को जीवित रक्खा था, हमने अपने हाथो अपने पैरो पर कुल्हाड़ी क्यों मार ली। यदि हमें ऐसा ज्ञात होता तो हम उसके बारे मे कभी कुछ न कहते।

कुछ लोग रोते विलखते और एक दूसरे को कोसते हुए कहते कि इसमें उनका अपराध भी क्या था। उनके रूप और गुणों पर कोई मुग्ध हो पागल सा बन उन्हीं का पुजारी बन जाता तो उसमें उनका भी क्या दोप। और फिर उनका प्रेम भी तो सर्वथा पवित्र था, कहीं कुछ भी पाप की आशका नहीं थी, फिर भी हमने अपने मन के पाप को उनमें देखा, और व्यर्थ में हम उनके प्राणों के ग्राहक बन गये। इस प्रकार वे लोग अनुतापाग्नि में दग्ध हो रहे थे।

यह समाचार देखते ही देखते जगल की आग की भाँति सारे देश में फैल गया। अब तो ग्राम-ग्राम, नगर नगर व घर घर मे आठो पहर उन्हीं की चर्चा होती रहती, महाराज समुद्रविजय का तो खाना-पीना पहिनना, आदि सभी कुछ छुट गया। वे वसुदेव कुमार के विरह मे विक्षिप्त से रहने लगे। इसी समय एक अवधी ज्ञानी मुनिराज ने कृपा कर समुद्रविजय को दर्शन दिये, और उन्होंने महाराज को बताया कि वसुदेव इस समय जीवित है और समय आने पर अपार वैभव के साथ प्रकट होकर तुम सब को आनन्दित करेगा।' यह सुन महाराज को कुछ धैर्य हुआ, और धीरे धीरे यह बात ज्यों ज्यों दूसरे लोगो के कानों तक पडने लगी त्यों त्यों उन्हें भी कुछ सान्त्वना मिलने लगी।

वसुदेव का विजयखेट नगर में पहुंचना

उधर वसुदेव कुमार ने अपने सेवक को नगर की ओर विदा करते ही तत्काल एक निराश्रित मृतक को उठाकर चिता पर रख उसे आग लगा दी। और अपने आभूषण आदि भी उसी मे डाल दिये जिससे कि लोगों को पूरा पूरा विश्वास हो जाय, कि वसुदेव कुमार चिता में जल मरे।

इसके पश्चात वे वेप बदलकर वहाँ से पश्चिम की ओर चल पड़े। मार्ग मे चलते चलते उन्होंने देखा कि कोई सुन्दरी रथ मे बैठी हुई अपने ससुराल से अपने माय के जा रही है। उसने जब उन्हे पैदल चलते देखा तो अपने साथ की बुढ़िया से बोली कि 'यह अत्यन्त सुकुमार ब्राह्मण पुत्र चलते चलते थक गया सा दीखता है। इसलिए इसे अपने रथ में बैठालो आज वह अपने घर विश्राम कर तत्पश्चात् यथेच्छ स्थान की ओर प्रस्थान कर जायगा।'

तब बुढ़िया ने कहा,—हे भाई, तुम थक गये दीखते हो इसलिए रथ मे आ बैठो। वसुदेव को और क्या चाहिये था वे तत्काल रथ में जा बैठे। इस प्रकार वे दिन मे भी गुप्त रीति से यात्रा करते रहे। सूर्यास्त समय वे उस सुन्दरी के मायके सुग्राम नामक नगर मे जा पहुँचे, वहाँ उसके घर पर स्नान भोजनादि कर वहां से थोड़ी ही दूर एक यक्ष मन्दिर मे जा विश्राम करने लगे। वहां पर एकत्र जनसमूह में नगर से आई हुई वसुदेव की मृत्यु की सूचना के कारण बड़ा कोलाहल सा मचा हुआ था। सब लोग यही कह कह कर रो पीट रहे थे कि हाय! हमारे प्रिय वसुदेव कुमार अग्नि प्रवेश कर गये हैं। यह सुन कर वसुदेव ने निश्चय कर लिया कि सब लोगों को उनके मर जाने का विश्वास हो गया है। मेरे जीते जी बच निकलने की बात का किसी को भी पता नहीं लगा, मेरे घर वालों ने मुझे मृत जानकर मेरी और्ध्व देही क्रिया भी कर दी है अब वे मुझे ढूंढने का विचार भी न करेंगे। इसलिए मैं स्वेच्छानुसार निर्विघ्न विचर सकूंगा। इस प्रकार सोचते सोचते उसी यक्ष मन्दिर मे रात्रि बिता के प्रात काल ही उत्तर दिशा की ओर चल पड़े। और चलते चलते विजय खेट नगर मे जा पहुँचे।

वसुदेव का श्यामा तथा विजया से विवाह

विजय खेट नगर के बाहर दो व्यक्ति वृक्ष के नीचे सोये हुवे थे, उन्होंने उन से कहा कि भाई बहुत थके हुए प्रतीत होते हो, कुछ देर यहीं बैठकर विश्राम कर लो। अतः वे वहीं बैठ गये। तब उसने उनके नाम धाम आदि के सम्बन्ध मे पूछा। इस पर उन्होंने कहा 'मै गौतम नाम का ब्राह्मण हूँ और कुशाग्रपुरी से विद्या पढ़ कर चला आ रहा हू। तत्पश्चात् कुमार वसुदेव ने पूछा कि—

हे भाई! तुम ने मेरे सम्बन्ध मे इतनी जिज्ञासा क्यों की है? तब उस यात्री ने कहना शुरू किया कि—यहाँ के महाराज की श्यामा और विजया नामक दो पुत्रियाँ हैं। वे अत्यन्त रूपवती तथा संगीत और नृत्य आदि विद्याओं मे परम प्रवीण हैं। उन्होंने यह प्रतीज्ञा की हुई है कि जो विद्याओं में हम से बढ़कर होगा, हम उसी से विवाह करवायेंगी। इसलिए महाराज ने सब देशों मे यह सूचना भिजवादी है कि जो ब्राह्मण या क्षत्रिय युवक रूप गुण और विद्याओं में श्रेष्ठ हो, उन सब को हमारे यहाँ ले आओ। क्योंकि वे अपनी कन्याओं का

स्वयंवर प्रथा के अनुसार विवाह करना चाहते हैं। हम दोनों राज पुरुष हैं राजा ने हम को और हमारे जैसे सैकडों व्यक्तियों को इसी कार्य के लिए नियुक्त कर रखा है, इस लिए यदि आप संगीत और नृत्य विद्या में रुचि रखते हों तो हमारे साथ राजसभा में चलिये। क्योंकि आपके जैसा रूपवान् और गुणवान व्यक्ति हमें कोई दिखाई नहीं देता। यदि आप हमारे साथ चले चलें तो हमारा श्रम सफल हो जाय। इस पर व उनके साथ नगर की ओर चल पड़े।

नगर के राज पुरुषों ने वसुदेव को महाराज की राजसभा में पहुँचा कर महाराजा से उनका परिचय करा दिया। ऐसे गुणवान् व्यक्ति को देखकर महाराजा ने उनका बड़े आदर और उत्साह के साथ स्वागत सत्कार किया।

तत्पश्चात परीक्षा दिवस आया। श्यामा और विजया दोनों के साथ संगीत विद्या सम्बन्धी अनेकों प्रश्नोत्तर हुए। अन्त में संगीत शास्त्र में प्रवीणता को देखकर दोनों राजकुमारियाँ उन पर मुग्ध हो गई और उन्होंने वसुदेव से अपनी पराजय स्वीकार कर ली। इस पर महाराज ने शुभ लग्न में वसुदेव का अपनी दोनों कन्याओं श्यामा और विजया के साथ विवाह कर दिया और आधा राज्य भी उन्हे समर्पित कर दिया

जिस प्रकार वन गज हस्तिनियों के साथ विहार करता है उसी प्रकार स्वच्छन्दता पूर्वक अपनी दोनों पत्नियों के साथ विहार करते हुए समय यापन करने लगे। एक दिन वसुदेव की शस्त्र विद्या में अभिरुचि देख वे वसुदेव कुमार को पूछने लगीं कि हे आर्य पुत्र! आप तो ब्राह्मण कुमार हैं। फिर आपने यह शास्त्र विद्या में इतनी निपुणता क्यों प्राप्त की है? इस पर वसुदेव ने उत्तर दिया कि बुद्धिमान् ब्राह्मण के लिए सभी विद्याओं का अभ्यास आवश्यक है। क्योंकि ब्राह्मण तो सब विद्याओं का शिक्षक गुरु हैं। तत्पश्चात् उनका उत्तरोत्तर परस्पर प्रगाढ़ प्रेम हो जाने पर वसुदेव ने अपना पूरा २ सच्चा वृतान्त जिस प्रकार वे घर से छिप-कर निकल भागे थे सब कुछ स्पष्ट कह सुनाया। उनके उस वृतान्त को सुनकर महाराज तथा श्यामा और विजया दोनों को ही परम प्रसन्नता प्राप्त हुई। कुछ समय बीतने पर विजया गर्भवती हो गई।

उसके दोहद के दिवसो के पूरा हो जाने पर नवे मास मे एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। जात कर्म आदि संस्कार करने पर उत्र पुत्र का नाम अक्रूर रक्खा गया।

इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। इसी बीच एक बार वसुदेव उद्यान में भ्रमण कर रहे थे कि उन्हे देख कर किसी ने कहा—बड़े आश्चर्य की बात है कि इस व्यक्ति का रूप बहुत कुछ तो मिलता जुलता सा है। दूसरे ने पूछा किससे मिलता जुलता है। वह बोला कि कुमार वसुदेव से। यह सुनकर वसुदेव सोचने लगे कि कभी कोई मुझे पहचान ले इसलिए यहा से आगे बढ़ जाने मे ही भलाई है। यही सोचकर उन्होंने वहाँ से चलने की तैयारी कर ली।

राजकुमारी श्यामा का वरण और अंगारक से युद्ध

वसुदेव ने अपनी दोनो पत्नियों को खूब समझा बुझाकर तथा धैर्य बधाकर उनसे आगे बढ़ने की स्वीकृती प्राप्त करली। विजयखेट से चलकर वे सीधे उत्तर की ओर बढ़ गए। चलते २ वे हेमन्त पर्वत के पास पहुँच उसके साथ-साथ पूर्व की ओर चलने लगे। वे कुंजरावर्त नामक वन में जा पहुँचे। यहां पर वे बहुत अधिक श्रांत और पिपासा कुलित हो गये। इतने में उनके कानों में जलचर पक्षियों की कूजन ध्वनि पड़ी। वे उस ध्वनि का अनुसरण करते हुए जलावर्त नामक सरोवर के तट पर जा पहुंचे। यहां पहुचकर वे सोचने लगे कि अभी मार्ग के श्रम से थके हुए गर्म २ शरीर के रहते हुए पानी पीना ठीक नहीं रहेगा। इसलिए कुछ विश्राम करलू और फिर जलपान कर अपनी तृष्णा को शान्त करूंगा।

इतने में उन्होंने देखा कि अनेक हथनियों से परिवृत एक गजराज उसी ओर चला आ रहा है। पहले तो उन्होंने सोचा कि ये भी सम्भवतः इस सरोवर में जलपान और स्नान करने के लिए आए हैं। पर ज्यों २ वह गधगज उनके निकट आने लगा त्यों २ स्पष्ट प्रतीत होता था कि वह उनकी सुगन्धी के कारण उन्हीं पर आक्रमण करने के लिए चला आ रहा है। उसने पास मे आते ही कुमार को अपनी सूंड से लपेटकर पछाड़ फैंकना चाहा पर वसुदेव ने तत्काल पैंतरा बदल कर उस अत्यन्त बलिष्ठ हाथी से अपने आपको बचा लिया।

इस प्रकार एक दो दावों मे ही उस मदोन्मत्त गजराज को अपने वश में

कर लिया। और उसके मस्तक के ऊपर जा बैठे अब तो वह उनके ऐसा वशवर्ती हो बैठा कि मानो उनका पढाया हुआ शिष्य हो। अब वह उन्हे बडी मस्त चाल से आगे ले चला। इतने में आकाश मार्ग से आये हुए अर्चिमाली और पवनजय नामक दो विद्याधरों ने आकर उनका हाथ पकड लिया और वे उन्हे गजराज से उठाकर एक पर्वत पर ले गये। और वहां पर उन्हे एक सुन्दर स्थान पर बैठाकर प्रणाम वे दोनों विद्याधर इस प्रकार निवेदन करने लगे। हे देव ! इस कुंजरावर्त नामक नगर के स्वामी विद्याधरों के अधिपति महाराज अशनीवेग[१] हैं। उन्हीं की आज्ञा से हम आपको यहां ले आये हैं। आप यह निश्चित जानिये कि आज से वे आपके श्वसुर हैं और हम दोनों आपके सेवक। हमारा नाम अर्चिमाली और पवनवेग है। कुमार को इस प्रकार वास्तविक वृतान्त बता तथा उनकी उत्सुकता को शांत कर उनमें से एक तो महाराज को समाचार देने नगर की ओर चला गया तथा दूसरा उनकी सेवा में वहीं रह गया। राजसभा में प्रवेश करते ही अर्चिमाली ने विद्याधर महाराज अशनीवेग को सादर प्रणाम कर निवेदन किया कि महाराज आप बडे भाग्यशाली हैं। उस गज को पराजित करने वाले महापुरुष को हम अपने साथ ले आये है। वह कोई साधारण पुरुष नहीं है, वड़ा धीर वीर परम सुन्दर और अत्यन्त विनीत है। नव यौवन की आभा से उसका शरीर इतना देदिप्यमान है कि साधारण व्यक्ति की तो सहसा उन पर दृष्टि ही नहीं टिकती। अर्चिमाली के मुख से अपने भावी जामाता के रूप गुण की ऐसी प्रशसा सुनकर महाराज अशनिवेग परम आनन्दित हुए और उन्होंने यह शुभ सदेश सुनाने के उपलक्ष्य में उस विद्याधर को अत्यन्त बहुमूल्य वस्त्राभूषण प्रदान कर प्रसन्न किया।

तब महाराज अशनिवेग बडे ठाठ-बाट के साथ सपरिवार वहा आ पहुंचे जहा वसुदेव कुमार बैठे थे। उन्हे नाना प्रकार के दिव्य वस्त्रालकारों से विभूषित कर बडे सम्मान के साथ नगर मे ले आये। उनके रूप गुण को देखकर नगर के नरनारी उनकी शत शत मुख से प्रशसा करने लगे। वसुदेव कुमार को अत्यन्त सुसज्जित मनोहर भवन में ठहराया गया। कुछ दिन पश्चात् शुभ नक्षत्र और शुभ मुहूर्त में महाराज

१ अशनिवेग।

अशनिवेग ने अपनी पुत्री श्यामा के साथ उनका विवाह कर दिया। विवाह के पश्चात् वसुदेव और श्यामा दोनों बड़े आनन्द के साथ कुछ समय बिताते रहे। वे रात दिन अपनी प्रिया के रूप पर वैसे ही अनुरक्त रहने लगे।

जैसे भ्रमर अहर्निश कमल के रूप सौरभ पर मंडराया करता है। श्यामा वीणा वादन में अत्यन्त निपुण थी। वह वीणा बजा २ कर सदा उनका मन प्रसन्न करती रहती। उसकी इस वीणावादन कुशलता पर मुग्ध हो एक दिन वसुदेव ने कहा कि ? प्रिये ! हम तुम से बहुत प्रसन्न है इस लिये जो भी चाहो अपना मन वांछित वर मांगो। तुम जो भी मांगोगी वही देने को सहर्ष प्रस्तुत है।

श्यामा ने हाथ जोड़ बड़ी नम्रता के साथ प्यार भरे शब्दों में कहा कि हे ! प्राणनाथ, यदि आप मुझे सचमुच कोई वर देना ही चाहते हैं तो यही दीजिये कि चाहे दिन हो या रात आप मुझसे कभी एक क्षण के लिये भी विलग न हों, आपका और मेरा कभी वियोग न हो।

यह सुन वसुदेव ने कहा कि प्राणप्रिये ! यह कौन सी बड़ी बात है। तुम जानती हो कि मैं स्वयं ही तुम से एक क्षण के लिये भी पृथक् नहीं रह सकता फिर तुमने यह कौन सा बड़ा वर मांगा है। यह साधारण सी बात वर रूप में क्यों चाही, क्योंकि इससे बहुत अच्छे २ पदार्थ भी मांग सकती थी। आखिर इसमें कुछ रहस्य अवश्य होगा जो तुमने मुझ से वर मांगा है। सच बताओ ऐसा वर मांगने का क्या कारण है।

तब श्यामा बड़े प्यार भरे शब्दो में इस प्रकार कहने लगी कि हे ! नाथ मेरे इस वर मांगने का अवश्य एक विशेष कारण है। इस वैताढ्य पर्वत के दक्षिण की ओर अनेक गुणो का भंडार किन्नरों से सुसेवित किन्नरोद्गीतपुर नाम का एक नगर है। इस नगर के हरिपति अर्चिमाली नामक एक गंधर्व थे। उनके ज्वलनवेग और अशनिवेग नामक दो पुत्र हैं। महाराज अर्चिमाली ने संसार से उदासीन हो अपने पुत्र ज्वलनवेग को राज्य भार सौंप तथा छोटे पुत्र अशनिवेग को युवराज बना स्वयं दीक्षा ले ली। समयोपरान्त राजा ज्वलनवेग को भी संसार से वैराग्य हो गया और उन्होंने अपने छोटे भाई अशनिवेग को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। ज्वलनवेग के अंगारक नामक एक पुत्र था उसे उन्होंने युवराज पद दे दिया। मैं अशनिवेग की पुत्री हूँ। मेरी

माता का नाम सुप्रभा था। और अंगारक की माता का नाम विमला। जब मेरे पिता अशनिवेग को उनके बडे भाई ज्वलनवेग ने राज्य दे दिया तो अंगारक बडा क्रुद्ध हुआ और उसने अपनी विद्या के बल से उन्हें राज्य भ्रष्ट कर दिया।

इस प्रकार राज्य-च्युत होकर मेरे पिता इस कुंजरावर्त नगर में रहने लगे। किन्तु यहा वे पिंजर बद्ध पक्षी की भाति सदा उदास रहते थे।

इस प्रकार दु ख और अपमान के कारण मेरे पिता अष्टापद पर्वत की ओर निकल गए। वहाँ पर उनकी एक चारण ऋद्धि के धारक आंगिरस नामक मुनिराज से भेंट हो गई। उन्होंने उनसे पूछा कि हे मुनिराज ! आप अवधि ज्ञान रूप दिव्य चक्षु से भूत भविष्य और वर्तमान् को भली भांति जानते हैं। इसलिए कृपा कर कहिये कि मेरा राज्य फिर से मेरे हाथ आयेगा या नहीं। राजा के यह वचन सुन मुनिराज ने अपने दिव्यज्ञान रूपी नेत्रों से प्रत्यक्ष देखकर कहा कि तुम्हारी पुत्री श्यामा को जो वरेगा उसी की कृपा से तुम्हे अपने राज्य की पुनः प्राप्ति होगी।

मुनिराज के ऐसे वचन सुनकर मेरे पिता ने फिर पूछा कि हे ! भगवन् क्या आप दया करके यह भी वतला सकते हैं कि मेरी पुत्री का पति कौन और केसा होगा। मुनिराज ने उत्तर दिया—राजन् जलावर्त सरोवर पर मदोन्मत्त गज के मद को जो चूर २ कर देगा, निश्चित रूप से वही तुम्हारी पुत्री श्यामा का पति होगा।

मुनिराज के ऐसे आनन्द दायक वचन सुनकर मेरे पिता अपने स्थान पर लौट आए। उसी समय से यह भव्य नगर वना, इसे अपनी राजधानी वनाकर यहीं निवास करने लगे। आपके आने की प्रतीक्षा में जलावर्त सरोवर के तट पर दो विद्याधरों को नियत कर दिया गया। जिस दिन आपने उस गज को पराजित कर उस पर सवारी की उसी समय वे आपको पहचान कर यहां ले आए और इसीलिए मेरा आप के साथ मेरे पिता ने विवाह कर दिया।

उस दुष्ट अंगारक को भी इस समस्त वृतान्त का पता अवश्य लग गया होगा। और वह मन ही मन जल रहा होगा। हे ! नाथ अग्नि के समान देदिप्यमान् वह अंगारक महा विद्या के प्रभाव से मत्त हो रहा है। आपको आकाशगामिनी आदि विद्याएँ आती नहीं। इसलिए यदि

कदाचित् वह दुष्ट आपको हर ले गया तो मैं आकाश गामिनी विद्या के प्रभाव से आपको बचा दूंगी क्योंकि वह विद्या मुझे आती है।

क्योकि धर्णेन्द्र और विद्याधरो का यह नियम है कि कोई भी विद्याधर या धर्णेन्द्र साधु के पास में बैठे हुए या अपनी पत्नी के पास अवस्थित अथवा सोये हुए किसी भी व्यक्ति को मारेगा उसकी सब विद्याये नष्ट हो जायेगी। इसलिए यदि सदा आप मेरे साथ रहेगे तो वह दुष्ट अगारक आपका बाल भी बाका न कर सकेगा। यद्यपि उसके पास प्रज्ञाति विद्या का बल है तो भी उक्त नियम के अनुसार मेरे साथ रहते हुए वह आपका कभी बध नहीं कर सकता।

श्यामा के मुख से यह वचन सुनकर वसुदेव परम हर्षित हुए। वे दोनो दम्पति नन्दन वन में इन्द्र और इन्द्राणी के समान नाना विध सुख और ऐश्वर्य का उपभोग करते हुए आनन्द पूर्वक समय विताने लगे। एक दिन शरद् ऋतु की सुन्दर रूपहली रात्रि मे वसुदेव अपने महल की छत पर सुख पूर्वक सो रहे थे कि सहसा किसी आघात से वे चौक पड़े। उन्होंने देखा कि कोई देव उन्हे आकाश में उड़ाये लिए जा रहा है। श्यामा के बताये हुए आकार प्रकार के अनुसार उन्हें यह निश्चय करने मे विलम्ब न लगा कि यह वही श्यामा का भाई अगारक है।

श्यामा का भी अगारक से युद्ध

वसुदेव ने अगारक से छुटकारा पाने के लिए तत्काल अपनी तलवार म्यान से खींच ली किन्तु तलवार को हाथ में पकड़ते ही उनका हाथ जहाँ का तहाँ जकड़ा रह गया। उनकी इस बेवसी को देख अंगारक अट्टहास करता हुआ बोला—हम विद्याधरों के सामने भूचर मनुष्य का कोई बल या शस्त्र काम नहीं देता इसलिए अब तुम मेरे पंजे से छूट कर कहीं नहीं जा सकते। यह सुन वसुदेव अभी कुछ सोच ही रहे थे कि तत्काल वहाँ हाथ मे ढाल तलवार लिए हुए श्यामा आ पहुंची। उसने अंगारक का मार्ग रोककर उसे ललकारते हुए 'कहा कि अरे दुष्ट !! मेरे जीते जी मेरे प्राणनाथ को हर कर कहाँ लिए जा रहा है। तू मेरे पिता का राज्य छीन कर भी संतुष्ट न हुआ, ठहर,

आज मैं तेरे सम्पूर्ण अपराधों का बदला चुकाये देती हूँ।' यह कहकर उसने अपनी म्यान से तलवार निकाल अगारक पर आक्रमण किया, तब उसके वार को रोक कर अगारक बोला कि हे दुष्टिनी तू मेरी आंखों के सामने से दूर होजा। स्त्री पर शस्त्र उठाकर मैं अपने हाथों को कलंकित नहीं करना चाहता। एक तो तू अबला है, दूसरे मेरी चचेरी बहिन है इसीलिए मेरा हाथ तुझ पर नहीं उठ रहा है, नहीं तो मैं कभी का यमलोक पठा देता। अगारक के ऐसे वचन सुन सिंहनी की भांति दहाड़ती हुई श्यामा ने अगारक को फिर ललकारा कि स्वार्थान्ध मनुष्य के लिए न कोई स्त्री है न कोई बहिन न कोई भाई, तेरी आंखों में स्वार्थ का नशा छाया हुआ है। इस लिए तू अपनी बहिन के पति को भी मारने के लिए उद्यत हो रहा है, तो फिर तुझे बहिन की क्या चिन्ता है। रे दुष्ट!! तुझ में कुछ भी साहस है तो आ आगे बढ़ और [illegible] हाथ देख।

श्यामा के ऐसे कठोर वचन सुन और उसे अपना [illegible] देख अंगारक आग बबूला हो उठा। वह दुष्ट विद्या [illegible] और शिलाओं से कोमलांगी श्यामा पर वार [illegible] उसका उसी प्रकार के शस्त्रों से सामना [illegible] श्यामा दोनों का बहुत देर तक भयंकर युद्ध [illegible] तलवारें ढाल पर लग लग कर भयंकर [illegible] लगी। इन दोनों को इस प्रकार [illegible] चकित हो गये। उनके देखते ही [illegible] श्यामा के शरीर के दो टूक [illegible] पारावार न रहा। वे [illegible] आखें मिच गईं। इतने में [illegible] दी। और खोलकर [illegible] करती हुई दिखाई [illegible]

वसुदेव का वीणा-वादन अध्ययन

इस चम्पा नगरी में एक चारुदत्त नामक सेठ है। उसकी गन्धर्व-दत्ता नामक कन्या परम रूपवती और गुणवती है, अन्यान्य कलाओं के साथ वह वीणा वादन मे अद्वितीय है, इसलिए उसने यह प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि जो कोई व्यक्ति वीणा-वादन मे मुझ से श्रेष्ठ सिद्ध होगा मैं उसी की अर्द्धाङ्गिनी बनूंगी। इस गन्धर्व सेना ने अपने अनुपम रूप लावण्य की छटा से ससार भर के युवको के हृदयो को व्यामोहित कर डाला है। अतः देश देशान्तरों के वीणा-वादन मे विशारद सभी कलाकार चम्पापुरी मे आकर एकत्रित हो गये हैं,प्रतिमास एक वार संगीत सभा जुटती है उसमे बड़े बड़े संगीताचार्य अपना कौशल दिखाते हैं। पर विजय श्री गन्धर्व सेना को छोड़ और किसी के हाथ नही लगती।

इस नगरी में सुग्रीव और यशोग्रीव नामक दो विश्व विख्यात संगीताचार्य रहते हैं। वीणा-वादन मे उनकी अद्भुत प्रवीणता के कारण गायकों की मडली रातदिन उनके चरणो में बैठकर वीणा-वादन का अभ्यास किया करती है। ऐसा समझा जाता है कि सगीताचार्य सुग्रीव के संकेतों पर वीणा के स्वर स्वय नाचने लगते है। उनका शिष्यत्व स्वीकार किये बिना सगीत शास्त्र का पारगत बनना अत्यन्त कठिन है। इसलिए वसुदेव ने भी मन ही मन गन्धवे सेना पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से सुग्रीव का शिष्य बनने की ठान ली। और वे तत्काल आचार्य सुग्रीव के कला भवन जा पहुँचे। उन्होने आचार्य के चरणों मे अभिवादन कर निवेदन किया कि 'गुरुदेव मै गौतम गोत्री स्कन्दिल नामक ब्राह्मण हूं। श्री चरणो की सेवा मे कुछ सगीत कला का अभ्यास करने की मेरी भी बड़ी लालसा है। आशा है इस सेवक की तुच्छ प्रार्थना स्वीकार कर कृतार्थ करेंगे।

परतु वसुदेव को ग्रामीण जैसे वेष में देख तथा संगीतकला में सर्वथा अनभिज्ञ जान आचार्य ने कहा, नहीं हमारे पास तुम्हे कला का अभ्यास कराने के लिए समय नहीं है। इस नगर में हमारे हजारों शिष्य-प्रशिष्य हैं। उनमें से किसी के पास जाकर पहले कुछ वर्ष अभ्यास करो फिर कुछ ज्ञान हो जाने पर हमारे पास आजाना।

वसुदेव ने फिर भी वहुत अनुनय विनय की पर आचार्य ने उनकी

एक न सुनी । किन्तु वे यूं ही हिम्मत हारने वाले न थे, उन्होंने भी सुग्रीव से कला के अभ्यास का दृढ सकल्प कर लिया था । सोचते-सोचते उन्हे एक उपाय सूझ पडा, उन्होंने तत्काल निश्चय किया कि आचार्य की पत्नी के पास चलू, वहाँ शायद मेरी कुछ बात बन जाय । यह सोच तत्काल वे सुग्रीव की पत्नी के पास जा पहुचे । और कहने लगे कि हे माता ! मैं बहुत दूर से आचार्य के चरणों मे वीणा-वादन की शिक्षा ग्रहण करने आया हू । आप यदि मेरे लिए आचार्य से निवेदन कर दे तो मेरा काम बन सकता है ।

वसुदेव कुमार के ऐसे शालीनता युक्त वचन सुन आचार्य पत्नी का कोमल हृदय पसीज गया । उसने शान्त्वना देते हुए कहा कि हे ब्राह्मण कुमार, धैर्य रक्खो मैं अवश्य तुम्हारी इच्छा पूर्ति का प्रयत्न करु'गी । साथ ही उनके भोजन निवास आदि का सब प्रबन्ध भी अपने यहीं कर दिया । फिर वह अपने पति से कहने लगी कि हे नाथ ! आप इस स्कन्दिल को अवश्य शिक्षा दे मैं चाहती हू कि यह किसी प्रकार भी अयोग्य न रहे ।

आचार्य ने उत्तर दिया, यह तो निरा ग'वार है । इस पर आचार्य पत्नी बोली मुझे इसके गवार या मूर्ख होने का कोई प्रयोजन नहीं, आप इसे जैसे भी हो निपुण बनाने का प्रयत्न कीजिए । अपनी पत्नी का ऐसा आग्रह देख सुग्रीव ने वसुदेव को अपना शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया । तुम्बरु तथा नारद की उससे पूजा करवाई, फिर उन्हे वीणा और चन्दन का गज देकर बोले कि इस वीणा का स्पर्श करो । वसुदेव ने उस वीणा पर इतने जोर से गँवारों की तरह हाथ मारा कि वह वीणा टूट गई । तब उपाध्याय ने अपनी पत्नी से कहा देख इस गँवार की कला निपुणता ।

तब वह बोली 'अजी, यह वीणा तो बड़ी पुरानी जीर्ण-शीर्ण और कमजोर सी थी । दूसरी नई और मजबूत वीणा लाकर दो, तो धीरे-धीरे इसे अपने आप अभ्यास हो जायेगा ।' तदनुसार एक नई मजबूत वीणा मगवाई गई, और उन्हे समझाया गया कि वे उस वीणा का स्पर्श धीरे से करे ।

इस प्रकार आचार्य के कथनानुसार वसुदेव वीणा वादन का अभ्यास करने लगे । धीरे धीरे परीक्षा का समय आ पहुँचा । तब वसुदेव ने गुरु जी से सभा भवन में ले चलने की प्रार्थना की । आचार्य ने

सब लोगों के सामने उस वीणा के आन्तरिक भाग को खोलकर दिखा दिया गया तो सचमुच वैसा ही निकला। तब दूसरी वीणा लाकर उस के सामने रखी गई। उसे देखते ही उन्होंने कहा कि यह वीणा तो जगल मे जली हुई लकडी से निर्मित है। इसलिये इसका स्वर बड़ा कठोर है। तब वीणा बनाने वाले को बुलाकर पूछा गया तो उसने कहा कि "यह सत्य है।" तत् पश्चात् उनके समक्ष जो तीसरी वीणा लाई गई उसके सम्बन्ध मे उन्होंने कहा कि यह वीणा पानी मे गली हुई लकड़ी से बनाई गई है। इसलिये इसका स्वर गभीर निकलेगा। अतः मै इसे भी स्वीकार नहीं कर सकता। यह सुन सारी सभा परम हर्षित और विस्मित हुई। तदनन्तर एक बडी सुन्दर चन्दन चर्चित सुगन्धित पुष्प-मालाओ तथा सात स्वरों से युक्त तारों वाली वीणा उपस्थित की गई। उसे देखकर वसुदेव ने कहा कि यह वीणा श्रेष्ठ है, किन्तु यह आसन कलाकार के लिये सुखावह नहीं है। अतः वसुदेव के निर्देशानुसार सुन्दर आसन बनाया गया। तब वसुदेव ने पूछा कि मै किस गीत के द्वारा गधर्व सेना को तथा उपस्थित सभा का मनोरजन करूँ।

गधर्व सेना ने कहा कि "हे! महाभाग यदि आप वीणा बजाने मे प्रवीण है तो राजा नमुचि ने मुनियो पर उपसर्ग किया था और विष्णु कुमार ने वामन रूप धारण कर उसे दूर किया था। तब नारद तुम्बरु आदि सगीताचार्यों ने जो गीत गाया उसी गायन को लेकर आप वीणा बजाये क्योंकि साधु मुनियों की महिमा का वर्णन करने वाले गायन ही सुनने और सुनाने के कल्याण कारक होते है।

गधर्व सेना के आदेशानुसार कुमार ने सगीत शास्त्र के +सिद्धान्तो का भूमिका रूप में परिचय देते हुए विष्णु गीत प्रारम्भ कर दिया। वाद्य चार प्रकार के होते है। १. तन्त २ अनुब्ध ३. धन ४. सुशिर। वीणा आदि जो वाद्य यंत्र तार से बजाये जाते है; उन्हे तन्त कहते हैं। चमड़े से मढ़े मृदंग आदि अनुब्ध है। काँसे के मजीरे आदि को धन कहते हैं और वशी आदि छिद्रों वाले वाद्यों को सुशिर कहते है। तन्त (वीणा आदि) वाद्यो को गंधर्व विद्या का शरीर माना गया है। क्योंकि इसके सुनने से मनुष्यो के कान विशेष रूप से तृप्त होते है और

+वहाँ पर वसुदेव ने सगीत के तत्त्वो का इस प्रकार विवेचन किया था।

उन्हें परम आनन्द की प्राप्ति होती है। गधर्व विद्या से विशेष सम्बन्ध होने के कारण इसे गाधर्व भी कहते है। गाधर्व की उत्पत्ति मे वीणा वश और गान तीन कारण हैं और वे भी स्वर, ताल और पद की दृष्टि से त्रिविध हैं। स्वर के मुख्य दो भेद हैं—१ वेण २ शारीर। इसमें भी वेण स्वर के अनिवृति, स्वर, ग्राम, वर्ण, अलकार, मूर्छना और धातु साधारण आदि अनेक भेद हैं। तथा जाति वर्ण-स्वर ग्राम स्थान साधारण क्रिया अलकार और विधिश्वास शारीर स्वरों के भेद हैं।

कृदन्त, तद्धित, समास, सधि, स्वर, विभक्ति, सुबन्त, तिङन्त, और उपसर्ग आदि पद विधि बतलाई हैं तथा ताल, सम्बन्धविधि, आवाय निष्काम, विक्षेप, प्रवेशन, शम्या ताल, परावर्त सन्निपात, वस्तुक मत्र अपिदार्यंग लय, गति, प्रकरण, यति, गीति, मार्गावयव और पाणि-युक्त पादावयव मे बाईस प्रकार की वर्णन की हैं। इस प्रकार उस समय इन तीनों भेद-प्रभेद और उनके लक्षणों का वर्णन कर के कुमार ने गंधर्व विद्या को बहुत बडे विस्तार मे बतलाया। स्वर दूसरी तरह षड्ज, ऋषभ, गाधार, मध्यम, पचम, धैवत और निषाद इन भेदों से सात प्रकार के भी होते हैं और वे सातो ही १ वादी २ सवादी ३ विवादी और अनुवादी इन भेदों से चार प्रकार के हैं। मध्यम ग्राम मे पचम और ऋषभ स्वर का सवाद होता है। जब कि षड्ज स्वर मे चार, ऋषभ मे तीन, गाधार दो, मध्यम मे चार, पचम में और धैवत मे दो, और निषाद मे तीन श्रुति होती हैं। तब वह षड्ज ग्राम कहलाता है।

जब मध्यम स्वर में चार, गॉधार मे दो, ऋषभ मे तीन, पग मे चार निषाद मे दो, धैवत में तीन और पचम में तीन श्रुति होती है। तब वह मध्यम ग्राम कहलाता है। इस प्रकार दोनों ग्रामो (षड्गग्राम मध्यम ग्राम) मे प्रत्येक की बाईस २ श्रुतिया होती हैं। एव इन दोनों ग्रामो मे (प्रत्येक में सात) कुल चौदह मूर्च्छना होती हैं, जिसमें से षड्गग्राम की सातो मूर्छनाओं के क्रमश: मगी, रजनी, उत्तरायता, शुद्ध षड्गा, मत्सरीकृता, अश्वक्रांता और अभिरुद्धता ये सात नाम हैं। और मध्यमग्राम की मूर्च्छनाओं के सौवीरी, हरिणास्या कल्लोल-पदना, (कलोपनता) शुद्ध मध्यमा, मागवी, पौरवी और ऋष्यका ये सात नाम है। षड्ज (ग) स्वर मे षड्गग्राम सभूत, उत्तरमद्रा मूर्च्छना होती है। ऋषभ स्वर में अभिरुद्गता, गाधार मे अश्वकांता, मध्यम

में मत्सरीकृता, पंचम में शुद्धषड्गा धैवत में उत्तरायता और निषाद मे रजनी मूर्च्छना होती है।

इसी प्रकार मध्यमग्राम संभूत, मध्यम स्वर मे मार्गवी और धैवत में पौरवी मूर्च्छना होती है । छः और पांच स्वर वाली मूर्च्छना को तान कहते है उनमें छ स्वर वाली षाडव और पाँच स्वर वाली औड़व कही जाती है। मूर्च्छनाओं के साधारण कृत (साधारण स्वर संभूत) और काकली स्वर सभूत ये दो सामान्य भेद हैं, इसलिये पूर्वोक्त दोनों ग्रामों की आंतर स्वर संयुक्त मूर्च्छनाओं के दो २ भेद हो जाते हैं। तान चौरासी प्रकार की होती है। उनमे औडव (पंच स्वर संभूत) के पैंतीस और षाडव (षटस्वर संभूत) के उनचास भेद हैं। आंतरस्वर सयोग आरोही कोटि मे अल्प विशेष दोनों रूप से रहता है। अवरोही मे नहीं यदि वह अवरोही में उक्त दोनों (अल्प का विशेष) रूप से होता तो श्रुति राग रूप परिणत हो जायगी और जो स्वर वहां होना चाहिए वह चला जायगा। जातियो के अठारह भेद हैं और उनके नाम षड़गी, आर्षभी, धैवती, निषादजा, खुषड़गा, दिव्यवा षड्ग कौशिका, षड़गमध्या, गाधारीमध्यमा, गांधारीदिव्यवा, पंचमी, रक्त गाँधारी, रक्तपचमी, मध्यमादीव्यवा, नदयती, कर्मारवी, आंध्री, और कै (को) शिकी है। ये जातियां शुद्ध और विकृत भेद से दो प्रकार की हैं उनमें जो आपस मे एक दूसरे से उत्पन्न नहीं होतीं वे शुद्ध है और जो समान लक्षण वाली स्वर लुप्त है वे विकृत है। इन जातियों में चार जातियाँ सात स्वरवाली छः स्वरवाली और अवशिष्ट दश, पाँच स्वर वाली हैं। मध्यमादीव्यवा, षड्ग कौशिका, कर्मारवी और गांधार पंचमी ये चार जातियां सात स्वर वाली है। षड्गा आंध्री, नंदयती और गाधारी दीव्य (च य) वा ये चार स्वर वाली जातियाँ हैं और शेष दश पांच स्वर वाली समझनी चाहियें।

उनमें निषाद की आर्षभी, धैवती, षड्ग, मध्यमा और षड्गोदीच्यवती ये पांच स्वर वाली पाँच जातिया षड्गग्राम में और गांधारी रक्तगाधारी, मध्यमा, पचमी और कौशिकी ये पांच मध्यमग्राम में होती हैं। पांच स्वर वाली जाति कभी षाड्व (छः स्वर वाली) कभी (औड्व) पाच स्वर वाली हो जाती है। षड्गग्राम मे सात स्वर वाली वह (षड्ग) कौशिकी जाति होती है और गान के योग से स्वरवाली भी होती है।

मध्यमग्राम में सात स्वरवाली कर्मारवी, गांधारी, पंचमी, मध्यमदीच्यवा होती हैं और छः स्वर वाली गांधारीदीच्यवा अन्ध्री और नंदयनी ये जातियां होती हैं। छठे स्वर और सातवें स्वर के अंश में मध्यम अथवा षड्ग स्वर नहीं रहता और संवादी का लोप होने से गांधार स्वर में विशेषता नहीं होती। गांधार रक्त गांधारी कौशिका और षड्गा में पंचम स्वर और गांधार स्वर नहीं होता।

षाडव में धैवत स्वर नहीं रहता। क्योंकि वहाँ षडगोदीच्या जाति का वियोग हो जाता है। एवं ये सात जातियां, छः स्वर वाली नहीं होती। इनमें से रक्तगांधारी जाति में षड्ग मध्यम और पंचम स्वर सप्तम स्वर हो जाते हैं और वहाँ औडवित नहीं रहता। षड्ग मध्यम गांधार निषाद और ऋषभ ये पाँच अंश पंचमी जाति में रहते हैं और धैवत के साथ कौशिकी में छः रहते हैं। इस प्रकार बारह जातियां सर्वदा पाँच स्वर में रहती हैं और इनको स्वराकाय औडवित पढ़ना चाहिये। जातियों में समस्त स्वरों का नाश करने पर भी मध्यम स्वर का कदापि नाश न करना चाहिये। क्योंकि समस्त स्वरों में मध्यम स्वर प्रधान है और समस्त गांधर्व भेदों में मध्यम स्वर स्वीकार किया जाता है जातियों के तार, मंद्र, न्यास आदि अल्पत्व, बहुत्व, षाड्व और औड्व भेद से दश लक्षण हैं और जिस रस में जो जाति का लक्षण कार्यकारी होता है। वह स्वीकार कर लिया जाता है।

जहां से राग उत्पन्न होता है व जहां से राग की प्रवृत्ति होती है वहां तार मंद्र बहुलता से उपलब्ध होते हैं। वह उपन्यास विन्यास सन्यास नहीं होती हैं दुर्बल होती हैं। वहां पर वह अंश अल्परूप से समरण करता है। तथा दोनों प्रकार की उत्तर मार्ग जातियों का व्यक्त करने वाला होता है। जहां पर मंद्रलक्षण न हो और दो न्यास हों वहां गांधार होता है और न्यास का कारण दुष्ट ऋषभ होता है। समस्त जातियों में जिस प्रकार अंश स्वीकार किया गया है उसी प्रकार ग्रह माना गया है। और जहाँ अंश की प्रवृत्ति होती है वहां ग्रह नहीं रहता। समस्त दो ग्राम की जातियों के त्रेसठ अंश रहते हैं और उनका [illegible] अंश और ग्रह रहता है। धैवती से धैवत और ऋषभ ये दो अंश और ग्रह हैं। गांधारोदीच्यवा में षड्ग मध्यम ये दो अंश एवं ग्रह हैं। आर्षभी में धैवत ऋषभ निषाद षाड्व और गांधार अंश ग्रह

षड्गकौशिकी में ऋषभ षड्ग गांधार और मध्यम ये ग्रह हैं। तीनों प्रकार की जातियों के ग्रह और न्यासों का वर्णन कर दिया गया है। तथा उसके ग्रह के आदि अश गाधार ऋषभ मध्यम और पचम हैं एवं अल्प, अंश, षड्ग, ऋषभ, मध्यम और पंचम है। मध्यम जाति में गांधार और धैवत ग्रहाश है निषाद षड्ग गांधार मध्यम और पचम ये रक्तगाधारी में ग्रहांश हैं कौशिकी मे ऋषभयोग के साथ समस्त ग्रहों से मडित समस्त स्वर हैं। तथा ग्रहाश षड्ग और मध्यम है। इस प्रकार स्वजातियों में ग्रह और अंश त्रेसठ समझ लेने चाहिए।

तथा समस्त जातियों मे अंशों के समान ही ग्रह जानने चाहिए और सब जातियों मे तीन प्रकार के गुण है। एक से लेकर बढ़ते-बढ़ते छः गुणे स्वर हो जाते हैं और एक स्वर, दो स्वर' तीन स्वर, चार स्वर पाच स्वर, छ स्वर और सात स्वर इस क्रम से होते हैं जातियों में इन स्वरों की जो ग्रहांश कल्पना की गई है वह पहिले की जा चुकी है। षड्ग मे निषाद और ऋषभ को छोड़कर शेष पचस्वर होते है और वहां गाधार और पचम उपन्यास होते है। षष्टस्वर न्यास होता है और ऋषभ एव सप्तम स्वर का लोप होता है एव गाधार का विशेष बाहुल्य रहता है। आर्षभी मे अश निषाद धैवत उपन्यास और ऋषभ न्यास होता है। धैवती मे धैवत और ऋषभ न्यास और धैवत ऋषभ एव पचम उपन्यास होते है। षड्ग और पचम से रहित पंचस्वर माने जाते हैं और पचम के बिना षाड्व माना जाता है। पचस्पर्श और षाड्व आरोहण कोटि मे भी ले जाने चाहिये और इनका उलंघन भी कर देना चाहिये। तथा इसी प्रकार निषाद ऋषभ और बलवान गांधार का भी आरोहण लघन होता है। निषाद और निषाद के अश गांधार और ऋषभ ये उपन्यास हैं और सप्तम स्वर न्यास कहा जाता है। धैवती जाति मे भी षाड्व औड्व स्वर होते हैं और इनका बल (आरोहण) और उलघन होता है। षड्ग कौशिकी के गाधार और पचम ये ग्रहांश हैं और षड्ग पंचम और मध्यम उपन्यास हैं। यहाँ पर गाधार चाहे वह अधिक स्वर वाला हो वा अल्प स्वर वाला ही न्यास होता है और धैवत ऋषभ दुर्बल पड़ जाते है। षड्ग मध्यम निषाद धैवत ये षड्गोपदीच्यवा में ग्रहांश है। मध्यम न्यास है और धैवतषड्ग ऋषभ गांधार बलवान होते है। षड्ग और मध्यम सबके

उपन्यास एवं षड्ग और सप्तम सबके न्यास मानने चाहिये।

सप्तम स्वर से युक्त गांधार यवस्वर्य होता है। यहाँ सप्तम स्वर से युक्त षाड्व का अवश्य प्रयोग करना चाहिये इन समस्तों स्वरों का प्रयोग इच्छानुसार होता है। ये सात जातियां षड्ग ग्राम के आश्रय रहती हैं। गांधारी जाति में धैवत और ऋषभ को छोडकर शेष पाँच अंश रहते हैं। षड्ग और उपन्यास होते हैं। षाड्व और ऋषभ से उत्पन्न यहाँ गांधार न्यास होता है। और धैवत एवं ऋषभ के बिना औडुवित होता है। यहाँ धैवत और ऋषभ का नियम से उलघन होता है। इस प्रकार गांधार में स्वर न्यास और अंश का संचार वर्णन कर दिया। रक्त गांधारी भी इसी के समान है और षड्ग का संचार होता है और मध्य सहित मध्यम उपन्यास होता है। गांधारोदीच्यवा में षड्ग मध्यम और सप्तम अंश समझने चाहिये और वहाँ ऋषभ को छोडकर शेष सात स्वर होते हैं।

इस गांधारोदीच्यवा में अंतरमार्ग न्यास उपन्यास समस्त विधि समझनी चाहिये। मध्यमा में अंशों के बिना गांधार और सप्तम स्वर होते हैं यहां एक ही मध्यम न्यास और उपन्यास रहता है। सप्तम अंश से युक्त गांधार पंच स्वर वाला होता है और गांधार अंश रहित षट् स्वर गांधार का सदा प्रयोग करना चाहिये। बहु और मध्यम अंशों की यहां बहुलता रखनी चाहिये जहां गांधार का लंघन भी हो जाता है। मध्योदीच्यवा में नाम का अंश रहता है और मध्या में जो रीति होती है वह यहां भी समझ लेनी चाहिये। पंचमी जाति में ऋषभ पंचम उपन्यास होते हैं और पंचम न्यास रहता है। जो विधि मध्यमा में बतला आये हैं वह और षाड्व औडव स्वर यहां समझने चाहिये और यहां पर षड्ग गांधार और पंच की बहुलता होती है। यहां पर पंचम और ऋषभ का संचार होता है और पंचम स्वरों के साथ गांधार का गमन भी होता है। गांधार पंचमी में पाँच प्रकार के दोष माने गये हैं और पंचम एवं ऋषभ को उपन्यास माना है। गांधार के साथ न्यास रहता है एव यह पूर्व स्वर होता है। गांधारी में पंचम संचार माना गया है। ऋषभ पंचम गांधार और निषाद ये चार अंश हैं और ये ही उपन्यास हैं, गांधार न्यास और षड्ग से युक्त षाड्व होता है। तथा गांधार और ऋषभों में परस्पर संचार होता रहता है। यहां पर गति के अनुकूल षष्ठ और सप्तम का न्यास होता रहता है और जब औडवित

स्वर रहता है तथा षड्ग का लघन नहीं होता। नद्यती मे गाधार मध्यम और पंचम जो अंश होते हैं वे ही न्यास माने जाते हैं।

षड्ग में कोई मे कोई अश लघनीय नहीं होता, आंध्री में सचार नहीं होता। यहा मदस्वर मे ऋषभ लघित होता है। आंध्री जाति में तारस्वर मे ग्रह और न्यास होता है। ऋषभ और पचम अंश होते हैं और धैवत और निषाद न्यास हैं और पंचम उपन्यास होता है। विशेष रूप से गांधार का सर्वत्र गमन होता है तथा काशिकी षड्गा में ऋषभ के बिना सब का सचार होता है। यहा पर ऋषभ के बिना सब अंश उपन्यास माने गये हैं। गांधार सप्तम हो जाता है और वहा निषाद के होने पर पचम न्यास माना जाता है। कभी-कभी यहा ऋषभ भी उपन्यास हो जाता है और धैवत षाडव के बिना दो ऋषभ वाला षाड्व होता है। यहां पर औडवित भी होता है। बलवान स्वर के स्थान में पंचम हो जाता है। यहा ऋषभ की दुर्बलता और लंघन हो जाता है। षड्ग के साथ मध्यम का सचार होता है और जाति स्वर और संचार यथायोग्य समझ लेना चाहिए।

विजय श्री वसुदेव के हाथ

अब वसुदेव कुमार ने गन्धर्व सेना की घोषा नामक वीणा को हाथ में लेकर गान्धार ग्राम की मूर्छना से एक चित्त तीन स्थान और क्रिया की शुद्धि पूर्वक ताल लय ग्रह के अनुसार वह विष्णु गीतिका गा सुनाई। गीत के प्रारम्भ होते ही सभा मे उपस्थित लोग कहने लगे कि कहाँ तो यह कठोर परिश्रम साध्य सगीत कहां इसका सुकुमार शरीर। किन्तु संगीत के समाप्त होने पर सब के मुख मडलों पर प्रसन्नता खेलने लगी कि यह ब्राह्मण कुमार निश्चित ही आज इस गान प्रतियोगिता में गधर्व सेना को हरा देगा, विष्णु गीतिका के समाप्त हो जाने पर परीक्षा का नया कार्यक्रम आरम्भ हुआ।

अब गधर्व सेना और वसुदेव को साथ-साथ गा बजाकर अपनी कला का प्रदर्शन करना था, परीक्षा में यह प्रतियोगिता का अंश ही सब से कठिन कार्य था, जब गन्धर्व सेना की सुकोमल तथा अत्यन्त अभ्यस्त अंगुलियां वीणा की तालों पर अविराम गति से थिरकती हुई नाचने लगती तो किसी की क्या शक्ति थी कि कोई उसके वीणा वादन के साथ-साथ कभी द्रुत और कभी विलम्बित स्वर गा सके।

और जब वह गाने लगती तो कोई भी उसके साथ वीणा न बजा सकता था, इस कार्य में वह सबको नाचा दिखा देती थी किन्तु आज वसुदेव कुमार न गाने में न बजाने में, किसी में भी गन्धर्वसेना से पीछे न रहे। उन्हें इस प्रकार बढ़ा तक गन्धर्व सेना का साथ देते देख सभी लोग मन्त्र मुग्ध रह गये। तब हर्ष विभोर हो गन्धर्व सेना ने कुमार वसुदेव के गले में विजय माला डालकर उनको पति रूप में वरण कर लिया।

वसुदेव के इस प्रकार विजय प्राप्त कर लेने पर सब नगरवासी तथा आचार्य सुग्रीव और उनके भाई यशोग्रीव आदि सभी परम-हर्षित हुए।

पश्चात चारुदत्त ने वसुदेव को अपने महलों में ले जाकर शास्त्र विधि के अनुसार बड़ी धूम-धाम से गन्धर्व सेना के साथ विवाह कर दिया। विवाहोपरान्त सुग्रीव और यशोग्रीव दोनों आचार्य श्रेष्ठी चारु-दत्त के घर आए और उन्हें कहने लगे कि हमारी श्यामा और विजया नामक दोनों पुत्रियां भी गन्धर्व सेना की सखियां हैं यदि आपको व गन्धर्व सेना को कोई आपत्ति न हो तो ये दोनों लड़कियां भी वसुदेव की सेवा में आ जाये। यह सुन गन्धर्व सेना ने बड़े हर्ष के साथ आचार्य सुग्रीव का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और इस प्रकार श्यामा और विजया दोनों बहिनों का विवाह भी वसुदेव के साथ हो गया, इस प्रकार वसुदेव कुमार अपनी तीनों रानियों के साथ आनन्द पूर्वक रहने लगे।

सूक्ष्म बादर आदि विविध रूप धारिणी २ अन्तर्धानी और गगन चारिणी ये चार लब्धिया प्राप्त हो गई।

उसी समय इधर उज्जयिनी नामक नगरी में श्रीधर्म नामक राजा राज्य करता था। उसकी पटरानी का नाम श्रीमती था। महाराज श्रीधर्म के बलि, बृहस्पति, नमुचि और प्रहलाद नामक चार मंत्री थे और ये चारो ही अत्यन्त नीति निपुण थे। इस उज्जयिनि नगरी के बाहर एक अत्यन्त रमणीय उद्यान था। एक समय मुनिराज अकम्पनाचार्य सात सौ मुनियो के साथ वहाँ पधारे। मुनिराजो के आगमन का समाचार सुन कर नगरी निवासी लोग उनका स्वागत करने के लिए नगर से बाहर आने लगे। इस प्रकार जनवृन्द को सामूहिक रूप से सजधज कर नगर से बाहर जाते देख महाराज श्री धर्म ने अपने मन्त्रियों से पूछा कि मंत्रीगण! आज न तो कोई उत्सव का ही दिन है और न किसी विशेष यात्रा का ही है। फिर ये सब बालक, बूढे, स्त्री, पुरुष आज कहा जा रहे हैं?

इस पर प्रधान मंत्री नमुचि ने कहा, "महाराज आज उज्जयिनि में अज्ञानी जैन क्षपणक आ रहे है। उनकी वन्दना तथा स्वागत करने के लिए ये लोग नगर से बाहर जा रहे हैं। इस प्रकार मन्त्रियो के मुख से मुनिराजों के शुभागमन की सूचना पाकर श्रीधर्म अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे भी तत्काल अपनी पटरानी के साथ उनके स्वागतार्थ चल पड़ने को उद्यत हो गये। चारो मन्त्रियों ने उन्हे रोके रखने का भरसक प्रयत्न किया। पर उनमें से किसी की एक न चली। जब महाराज को मुनियों के दर्शनार्थ जाते देखा तो चारों मन्त्रियो को भी उनके साथ जाना पड़ा। किन्तु वे दुर्बुद्धि महाराज श्रीधर्म का मुनिराज की सेवा में आना सहन न कर सके और महाराज की अनुपस्थिति में अवसर पा एक दिन मुनिराजाओं को बहुत भला बुरा कहने लगे। पर क्षमा के अवतार मुनियों ने उनके दुर्वचनों की कुछ भी परवाह न की क्योंकि—

निन्दक नियरे राखिये, आगन कुटि छवाय,
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।

के अनुसार वे तो अपने निन्दकों को भी क्षमा ही करते रहे। संघ आचार्य ने अवधिज्ञान के बल से भावी आपत्ति को पहले ही जान ...र सब मुनिराजों को आदेश दे दिया कि इस विपत्ति के समय

मुनिराज बोले—राजन् ! वर्षा ऋतु में विहार करना शास्त्र के विरुद्ध है, और आपके राज्य से बाहर हम जा कहाँ सकते हैं, क्योंकि छः ही खंडों में आपका राज्य है।

किन्तु क्रोधोन्मत्त नमुचि को मुनिराजों की यह युक्ति संगत बात कैसे जचती। उसने फिर गरजते हुए कहा कि एक सप्ताह के पश्चात् भी यदि आप यहाँ रह गये तो मैं आपका वध करवा डालूंगा। इस पर साधुओं ने कहा, 'हम श्री संघ में विचार कर आपको उत्तर देंगे।'

तब संघ में उपस्थित स्थविर ने कहा कि हे आर्यो ! आज संघ के लिए बड़ी भारी परीक्षा का समय आ गया है। अतः आप लोग बताये कि आप में से किस किस के पास कौन कौन सी ऋद्धि है।

उनमे से एक साधु बोला मुझ मे आकाश गमन की शक्ति है। इसलिये मेरे योग्य कोई कार्य हो तो आज्ञा दीजिये।

तब श्रमणस्थविर ने कहा—आर्य तुम जाओ, और इस अग-मन्दिर पर्वत पर से विष्णुकुमार को कल ही यहां ले आओ। वह साधु बहुत अच्छा कह कर तत्काल वहाँ से चला गया। उसने वहां पहुंचकर विष्णु कुमार को संघ स्थविर की आज्ञा कह सुनाई, यह सुनते ही विष्णु कुमार ने कहा, 'भदन्त' हम कल ही हस्तिनापुर जा पहुचेंगे। तदनुसार वे यथा समय वहाँ आ पहुचे। उनके आते ही साधुओं ने उन्हे नमुंचि की सब उत्पात कथा कह सुनाई। तब विष्णु कुमार ने कहा, आप लोग निश्चिन्त रहें और इस क्लेश को मिटाने का भार आप मुझ पर डाल दें। मै सब व्यवस्था कर लूंगा।

इस प्रकार कहकर आर्य विष्णु अपने बड़े भाई महापद्म के पास पहुँचे और उन्हे मुनियों के नमुचि द्वारा दिये जाने वाले उपसर्गों (कष्टो) की सारी बात सुनाई। तथा ऋषिया-तपस्वियो के सताने का परिणाम सुन्दर नहीं होता है आदि सब कुछ नमुचि को समझाने के लिए और उससे पुन. राज्य ले लेने को बाध्य किया। इस पर महापद्म ने उन्हे बताया कि मैने उसे प्रसन्न हो एक वर मांगने के लिये कहा था किन्तु उसने उस समय न लेकर अपनी धरोहर के रूप मे रखने के लिये कहा, कुछ समय पश्चात् उसने वर के उपलक्ष्य मे सात दिन का राज्य मांग लिया। मुझे मालूम नहीं था कि उसने इस अधम कार्य के लिये राज्य मांगा है अत.मैने उसे अपनी प्रतिज्ञानुसार राज्य दे दिया। क्षत्रिय का कर्तव्य है कि वह अपनी वाणी को पूर्णरूप से निभाये। अतः

मैं उसके राज्य कार्य में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करने में विवश हूं। कृपया आप वहां जाकर उसे समझाए तो वह मान लेगा।

तत्पश्चात विष्णु कुमार नमुचि के पास पहुँचे। उन्हें महापद्म के बड़े भाई जानकर तथा अपने राज दरबार में उपस्थित देख राजा ने बड़े आदर सत्कार के साथ उठकर उनकी वन्दना की। तब विष्णु बोले 'साधुओं को वर्षा काल में यहीं रहने दो। नमुचि ने कहा, आप स्वामी हैं तो महापद्म राजा के हैं आपका मुझ पर क्या अधिकार है इसलिये आप इस विषय में मुझे कुछ न कहिये। मैंने यह निश्चय कर लिया है कि सब श्रमणों को तत्काल इस देश से बाहर निकाल दिया जाय।

तब विष्णु कुमार ने उसे बड़े प्रेम से समझाया कि—इस समय सारी पृथ्वी प्राणियों से भरी हुई रहती है इसलिए साधु-साध्वियों के लिए इस समय विहार करना निषिद्ध है। यदि तुम्हारी आज्ञा हो जाय, तो ये नगर से बाहर तुम्हारे उद्यान भवन में ही अपना चतुर्मास व्यतीत करलें। वहां से ये कभी नगर में आयेंगे ही नहीं। इसलिए मेरी बात मानो, और मुनिराजों को चतुर्मास में विहार करने के लिए बाध्य न करो।

प्रति दया शील है, मनुष्य तो क्या ये तो एकेन्द्रिय जीवों को भी कष्ट नहीं पहुँचाना चाहते। अतः इनसे तुम्हे किसी प्रकार के भय या अनिष्ट की आशंका भी नहीं करनी चाहिए। इन 'सर्वभूत हितरत' साधुओं को व्यर्थ मे मत सताओ। प्राणिमात्र के उपकारक, निरीह शत्रु मित्र मे सम भाव रखने वाले साधु सन्तो और मुनिराजो के प्रति आदर भाव रखना ही सभी राजाओ की कुल परम्परा है। इसलिए वर्षा काल मे इन्हे यहीं रहने दो, चतुर्मास समाप्त होते ही ये अपने आप यहाँ मे विहार कर जायेगे।

इस पर बल गर्वित नमुचि बोला—राज चरित्र और कुल परम्परा की बात तो उन राजाओ के लिए है, जो वश परम्परा से राजा होते आये हैं किन्तु मुझ पर तो यह नियम लागू हो ही नहीं सकता। क्यों कि मेरे बाप दादा तो राजा थे नहीं, मैं तो नया राजा हू इसलिए पुराने राजाओ के चरित्रो की बात मेरे सामने नही चल सकती। मुझे इन साधुओं से कुछ प्रयोजन नहीं इसलिये एक सप्ताह के पश्चात भी यदि किसी साधु को मैंने अपने देश मे देख लिया तो उसके लिये अच्छा न होगा। आप यहाँ मे सकुशल पधारे मैं आपको कुछ नहीं कहता पर दूसरे साधुओ का यहाँ रहना मै कभी सहन न करू गा।

यह सुनकर विष्णुकुमार ने सोचा कि इस दुरात्मा नमुचि ने साधुओं की हत्या के लिये कमर कस ली है अत सघ पर ऐसी भयकर विपत्ति के समय मुझे चुपचाप नहीं रहना चाहिये। और इस दुष्ट को दड देने के लिये कुछ उपाय अवश्य करना चाहिये। यह सोचकर उन्होंने उससे कहा—

हे राजन् ! यदि आपका यही निश्चय है तो मुझ कहीं भी तीन पांव भूमि दे दो। वे सब साधु उस भूमि मे रहकर अपने प्राण त्याग देंगे। तुम्हारे तीन कदम दे देने से मेरी बात भी बन जायगी, और तुम्हारा साधुओं को मारने का निश्चय भी पूरा हो जायगा। इस पर सन्तुष्ट हुये नमुचि ने उत्तर दिया, कि यदि यह सत्य है तो आपको यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि वे साधु जीते जी उस स्थान से बाहर न निकलेगे। यदि आप ऐसा विश्वास दिलाएँ तो आपको तीन पग भूमि देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं।

तत्पश्चात् नगर से बाहर जाकर नमुचि बोला—मैंने अपनी प्रतिज्ञानुसार आपको भूमि दे दी है। इसलिए आप तीन पग भूमि नाप लीजिये। बस फिर क्या था आर्य विष्णु ने अपनी विक्रिया नामक ऋद्धि के प्रभाव से अपने शरीर और पाव को विस्तृत कर लिया और नमुचि से कहने लगे कि हे दुर्बुद्धि! दो पाव भूमि में तो तेरा सारा राज्य आ गया है। अतः तेरे वचनानुसार तीन पाव की भूमि कहा है?

विष्णुकुमार के इस विराट स्वरूप को देखकर राजा भय से थर थर कांपता हुआ उनके चरणों मे गिर पड़ा। दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा कि—

'भगवन मेरे अपराध को क्षमा कीजिए' मैंने अज्ञानता से ऐसा कर डाला था, हे भगवान मैं आपकी शरण मे हूँ!!'

किन्तु उसके देखते ही देखते आर्य विष्णु का शरीर लाख योजन ऊंचा हो गया।

आर्य विष्णु के इस प्रकार विराट रूप धारण करते ही देवेन्द्र का सिंहासन थर-थर कांपने लगा, इन्होंने अवधि ज्ञान के बल से जान लिया कि यह तो विष्णुकुमार ने दिव्य रूप धारण कर लिया है। अतः वे विष्णुकुमार को प्रसन्न करने के लिए वे नाचती, गाती, और बजाती, यक्ष गन्धर्व और अप्सराओं की मंडली अधिपतियों ने कहने लगे कि अरे सावधान होकर देखो यह नमुचि राजा के दुराभिमान के कारण क्रुद्ध हुए विष्णुकुमार श्रमणगार अपने विराट रूप से ब्रह्मांड भर में व्याप्त हो गये हैं। ये सम्पूर्ण सृष्टि में प्रलय काल का दृश्य उपस्थित करने में भी समर्थ हैं। इसलिए इन्हें नृत्य गान आदि के द्वारा शान्त और प्रसन्न कीजिए।

उवसम साहु वरिट्ठया न हु को वो वरिणश्रो जिणिंदेहिं ।
हुंति हुँ कोवणसीलया पावंति बहूणि जाइय व्वाई ॥
(उपशम साधु वरिष्ठा नहि कोपो वर्णितो जिनेन्द्रेण) ।
भवन्ति हि कोपशीला ये प्राप्नुवन्ति बहूनि जन्मानि ॥

अर्थात् हे साधुओ मे श्रेष्ठ शान्त हो जाइये । क्योंकि जिनेश्वरों ने क्रोध को अच्छा नहीं कहा है, जो कोप शील होते है उन्हे अनेक जन्म जमान्तरो तक ससार में भ्रमण करना पड़ता है । हम पर आपकी बडी कृपा है इस प्रकार कह कर तथा प्रणाम कर विद्याधरो ने इस गोतिका को ग्रहण कर लिया ।

इधर विष्णु की इस प्रकार की अपूर्व लीला तथा उसके कारणभूत अपने दुष्ट मन्त्री नमुचि के दुर्वृत को समझकर महाराज महापद्म पौर जनपदों के साथ सघ स्थविर की शरण मे जा पहुचे । वे साधुओं के समक्ष हाथ जोड़कर गद् गद् वाणी से प्रार्थना करने लगे कि आप ही मेरे लिए शरण है । मैं जिनेश्वर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त पर अटल विश्वास करने वाला हू और सुव्रत अणगार का शिष्य हूँ। अतः मेरी तथा इन नागरिको की रक्षा कीजिए। मैंने कुपात्र के हाथो मे राज्य सौप दिया, और उसके दुर्वृत का मुझे कुछ पता न लगा इसी कारण यह बडा भारी अपराध हो गया है । राजा की इस प्रकार की विनय भावना से प्रसन्न हो उदारचेता श्रमण सघ के स्थविर ने कहा कि राजन्! हमने तो आपको क्षमा कर दिया है किन्तु उस विषय प्रमत्त नमुचि के कारण ऐसी भयकर परिस्थिति उत्पन्न हो गई कि सारे ससार के अस्तित्व मे ही सन्देह उत्पन्न हो गया । इसलिए आप विष्णु कुमार [illegible]ान्त कीजिए। इस पर सारा सघ हाथ जोड़कर विष्णुकुमार के [illegible] खडे हो विनती करने लगा कि हे विष्णुकुमार श्रमण शान्त [illegible]इये । सघ स्थविर ने महापद्म राजा को क्षमा कर दिया है अब [illegible]ाप अपने इस विराट स्वरूप को समेट लीजिए। आप अपने चरण

पैर न हिलाइये। अन्यथा आपके तेज के प्रभाव से कांपता हुआ भू-मंडल रसातल में चला जायगा।

श्री संघ की विनती सुनकर विष्णुकुमार ने पूर्णचन्द्र के समान मनोहर रूप धारण कर लिया। उस समय महापद्म ने नमुंचि को प्राण दण्ड देना चाहा पर मुनिराजों ने ऐसा नहीं करने दिया अतः उसे देश निकाला दे दिया गया।

देव गंधर्वों के मुख से निकला हुआ वह गीत ही विष्णु गीत के नाम से विख्यात है।



* छठा परिच्छेद *

चारुदत्त की आत्मकथा

एक दिन बैठे बैठे वसुदेव ने चारुदत्त से कहा कि आपने विवाह के समय गन्धर्व सेना की उत्पत्ति का रोचक वृतान्त बताने के लिये कहा था। साथ ही आपने यह भी कहा था कि आत्म कथा भी सुनाऊगा। अतः यदि उचित समझे तो वह कथा सुनाकर मेरी जिज्ञासा को शात कीजिये। यह सुन चारुदत्त ने कहा कि मेरी और गधर्व सेना की कथा वस्तुतः बड़ी ही रोचक और लम्बी है। उसे मैं तुम्हे अत्यन्त सक्षेप मे सुनाता हू। ध्यानपूर्वक सुनो—

इस चम्पा नगरी मे भानुदत्त नामक एक अत्यन्त समृद्ध सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम सुभद्रा था। वे दोनो दम्पति मुनिराजों की सेवा मे परायण रहने वाले तथा सम्यग्दृष्टि से युक्त व अणु व्रतों के पालक थे। सब प्रकार के धनधान्यादिक सुखावयवों से पूर्ण होने पर भी उनके घर मे कोई सतान नहीं थी। सतानाभाव के दुख से दोनों पति पत्नी प्रायः दुखित रहा करते थे। इस प्रकार चिंता और उदासी से उनका समय कट रहा था कि चारु नामक एक चारण ऋधि के धारक मुनिराज ने चम्पा नगरी मे अपना चतुर्मास किया। उस चतुर्मास मे भानुदत्त सेठ और सेठानी ने मुनिराज की बडी सेवा की। एक बार प्रोषध व्रत के पारण के पश्चात् सेठ और सेठानी ने बडी श्रद्धा

गन्धर्व सेना के विवाह से पूर्व चारुदत्त ने वसुदेव से पूछा कि हे कुमार आपका गोत्र क्या है? इस पर वसुदेव ने मुस्करा कर उपहास रूप मे उत्तर दिया कि 'जो आप समझ ले' वणिक् कन्या पर तो सब का अधिकार होता है। तब चारूदत्त ने कहा कि आप इसकी अवज्ञा तथा उपहास न करें, समय पर मैं आपको गन्धर्व सेना की तथा अपनी कथा सुनाऊंगा।

भद्रा ने हाथ जोड़ कर मुनिराज से प्रार्थना की कि 'महाराज' आप जानते हो कि हमारे कोई सन्तान नहीं है। पुत्र का मुख न देखने से हमारा हृदय सदा उदास रहता है क्योंकि जिस घर में बालक रूपी दीपक का प्रकाश नहीं होता वह घर सदा अन्धकार पूर्ण ही रहता है। इसलिए आप यह बताने की कृपा कीजिए कि हमारे भाग्य में सन्तान लिखी है या नहीं। हमारा आंगन भी कभी ठुमक ठुमक कर चलने वाले शिशु की पायल ध्वनि से गुंजित होगा या नहीं और यदि हमारे भाग्य में सन्तान लिखी है तो वह कब तक होगी। यह सब कुछ बताकर हमारे हृदय के संताप को शान्त कीजिये।

"आप लोग निराश न हों आप का घर शीघ्र ही पुत्र रत्न की ज्योति से जगमगायेगा" मुनिराज ने बड़े शान्त और प्रेम भरे शब्दों में उत्तर दिया। और साथ ही कहा कि आप लोगों को श्रावक धर्म के पालन में सदा इसी प्रकार सावधान रहना चाहिये।

कुछ समय के पश्चात् सुभद्रा की कोख से एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ जात कर्म करने के पश्चात् नामकरण संस्कार के दिन उसका नाम चारुदत्त रखा गया।

साथियो के साथ अगमन्दिर उद्यान की ओर निकल गया। सुन्दर उपवन, नदी, स्रोतों तथा मेघ घटाओं की शोभा देखते-देखते तथा अनेक प्रकार के फल, पुष्पों से सुशोभित वृक्ष-लताओं पर चहचहाते हुए पक्षियो के कलरवों को सुनते न जाने कल में वहुत आगे निकल गया। मुझे अपने घर वार और परिवार का कुछ भी ध्यान न रहा। मेरे साथ मेरे पांचो साथी भी उसी प्रकार वन की शोभा को निहारते हुए चले जा रहे थे। धीरे-धीरे हम चादी के समान चमकती हुई निर्मल वारीक वालिकाओं वाली [1]रत्नमालिनी नामक नदी के तट पर जा पहुचे। हम लोग यहां नाना प्रकार की क्रीडाओं में मग्न हो गये अभी तक हमारे साथ और भी अनुचर थे। हम ने उन्हे यह कह कर विदा कर दिया कि तुम लोग घर जाकर पिता जी को सन्देश दे दो कि वे चिन्ता न करें। हम लोग स्नान आदि से निवृत्त हो शीघ्र ही घर पहुँच जायेगे।

सेवकों के चले जाने के वाद हम ने स्नान करने की तैयारी की। कुछ देर नदी के तट की शोभा देख मरुभूति नदी में उतरता हुआ बोला' चलो आओ जल्दी स्नान कर लो। अभी तक तुम लोग किनारो पर खड़े हो, शीघ्र स्नान क्यों नहीं कर लेते। गौमुख ने कहा— अभी नहीं थोड़ी देर ठहर कर स्नान करेंगे क्योंकि स्वास्थ्य विज्ञान-वेत्ता का कथन है कि कहीं से चल कर आने के पश्चात् तत्काल पानी में प्रविष्ट नहीं होना चाहिए। क्योंकि पादतल से आरम्भ होने वाली दो सिरायें शरीर में ऊपर की ओर चलती हुई कठाग्र तक पहुचती है। यहा से वे दोनो नेत्रो की ओर जाती हैं। इन शिराओं की रक्षा के लिए एक दम तपे और गर्म शरीर वाले व्यक्ति को पानी मे नहीं घुसना चाहिये। इस प्रकार गर्म शरीर से कोई पानी में प्रविष्ट हो जाय तो प्रकृति के विरुद्ध होने के कारण मनुष्य को धुधलापन, बहरापन या अधत्व आदि रोगों का भय रहता है। थोड़ी देर वाद हम सव लोग नदी में उतर कर जल विहार करने लगे। इस प्रकार कमल पुष्पो को तोड़ कर हम एक दूसरे पर फैंकते, नाना प्रकार की अठखेलिया करते नदी की धारा के साथ बहुत दूर जा निकले। एक बहते हुए पद्म पुष्प के पीछे तैरते-तैरते मरुभूति बहुत दूर चला गया। वहां जब वह किनारे पर

१ सिन्धु तट पर। त्रि० रजत वालुका। वसु० हि०—

साथियों के साथ अगमन्दिर उद्यान की ओर निकल गया। सुन्दर उपवन, नदी, स्रोतों तथा मेघ घटाओं की शोभा देखते-देखते तथा अनेक प्रकार के फल, पुष्पों से सुशोभित वृक्ष-लताओं पर चहचहाते हुए पक्षियों के कलरवों को सुनते न जाने कब मैं बहुत आगे निकल गया। मुझे अपने घर वार और परिवार का कुछ भी ध्यान न रहा। मेरे साथ मेरे पांचो साथी भी उसी प्रकार वन की शोभा को निहारते हुए चले जा रहे थे। धीरे-धीरे हम चांदी के समान चमकती हुई निर्मल बारीक बालिकाओं वाली [1]रत्नमालिनी नामक नदी के तट पर जा पहुचे। हम लोग यहां नाना प्रकार की क्रीडाओं में मग्न हो गये अभी तक हमारे साथ और भी अनुचर थे। हम ने उन्हें यह कह कर विदा कर दिया कि तुम लोग घर जाकर पिता जी को सन्देश दे दो कि वे चिन्ता न करें। हम लोग स्नान आदि से निवृत्त हो शीघ्र ही घर पहुँच जायेंगे।

सेवकों के चले जाने के बाद हम ने स्नान करने की तैयारी की। कुछ देर नदी के तट की शोभा देख मरुभूति नदी में उतरता हुआ बोला। चलो आओ जल्दी स्नान कर लो। अभी तक तुम लोग किनारों पर खड़े हो, शीघ्र स्नान क्यों नहीं कर लेते। गोमुख ने कहा— अभी नहीं थोड़ी देर ठहर कर स्नान करेंगे क्योंकि स्वास्थ्य विज्ञान-वेत्ता का कथन है कि कहीं से चल कर आने के पश्चात् तत्काल पानी में प्रविष्ट नहीं होना चाहिए। क्योंकि पादतल से आरम्भ होने वाली दो सिरायें शरीर में ऊपर की ओर चलती हुई कण्ठाग्र तक पहुचती हैं। यहां से वे दोनो नेत्रों की ओर जाती हैं। इन शिराओं की रक्षा के लिए एक दम तपे और गर्म शरीर वाले व्यक्ति को पानी में नहीं घुसना चाहिये। इस प्रकार गर्म शरीर से कोई पानी में प्रविष्ट हो जाय तो प्रकृति के विरुद्ध होने के कारण मनुष्य को धुधलापन, बहरापन या अंधत्व आदि रोगों का भय रहता है। थोड़ी देर बाद हम सब लोग नदी में उतर कर जल विहार करने लगे। इस प्रकार कमल पुष्पों को तोड़ कर हम एक दूसरे पर फैंकते, नाना प्रकार की अठखेलिया करते नदी की धारा के साथ बहुत दूर जा निकले। एक बहते हुए पद्म पुष्प के पीछे तैरते-तैरते मरुभूति बहुत दूर चला गया। वहा जब वह किनारे पर

[1] सिन्धु तट पर। त्रि० रजत वालुका। वसु० हि०—

निकल आया तो उसने दूर से पुकारते हुए कहा कि अरे "इधर आओ—इधर आओ।" यह देखो कैसा आश्चर्य है।

मैंने अपने स्थान पर खड़े-खडे पूछा "अरे क्या कुछ बताओगे भी या यों ही चिल्लाते रहोगे।"

"यह बात बताने की नहीं है। स्वय आंखों से देखन की है। इस लिये जल्दी आओ और यह देखो क्या है!"

गौमुख बोला अरे कोई आश्चर्य-वाश्चर्य नहीं, वह यह बताना चाहता है कि इस पत्थर की शिला में वृक्ष कैसे उग आया है। वृक्ष की ऐसी कोमल जडों ने इस कठोर पत्थर को कैसे भेद डाला। इसी प्रकार उसने कई और बातें बता कर कहा कि ऐसा ही कुछ आश्चर्य बतला रहा होगा। किन्तु उसने कहा कि 'नहीं यह सब कुछ नहीं यह तो आश्चर्यों का भी परम आश्चर्य है।' तब हम उत्सुकता पूर्वक आगे बढे और पूछने लगे कि क्या आश्चर्य बता रहे हो? तब उसने उस कोमल बालूका में अंकित किसी युवती का पद चिह्न बताया। इस पर गोमुख ने कहा अरे इसमे क्या आश्चर्य की बात है। तब उसने दो पद चिह्न और बताये। इस पर गौमुख ने तर्क किया कि "अरे ऐसे पद चिह्न पर आश्चर्य होने लगे तो हमारे पांवों के चिह्न भी आश्चर्य माने जायेंगे।" इन पद चिह्नों मे भला कौन से आश्चर्य की बात है। तब मरुभूति ने समझाया कि "हमारे पद चिह्न तो अनुक्रम से बढते है कहीं बीच मे विचिह्न नहीं होते हैं किन्तु ये पद चिन्ह तो एक दम यहीं प्रगट हुए हैं।

पहले इनका कोई निशान नहीं है। न तो इनका कोई कुछ आने का पता है और न कहीं आगे जाने का। यह सुनकर हरिसिंह ने समझाया कि "इसमें अधिक क्या सोचने की आवश्यकता है। क्योंकि कोई व्यक्ति इस तट पर उगे हुए वृक्षों की पक्ति के ऊपर कूदता हुआ एक शाखा से दूसरी शाखा पर लटकता हुआ चला आ रहा होगा। पर यहां आकर उसको दूसरे वृक्ष का आधार नहीं मिला। इसलिये वह नीचे उतर आया और फिर उस पर चढ गया।" तब गोमुख ने विचार कर कहा "यह बात नहीं है। यदि वह वृक्ष के ऊपर से उतरा हो तो उसके हाथों और पैरों के दबाव तथा आघात से वृक्षों के सूखे या पक्के पत्र, पुष्प, फल आदि अवश्य झड़कर इस तट पर गिर जाते किन्तु यहाँ कोई ऐसा चिन्ह नहीं है। अब हरिसिंहने पूछा कि "ये पगलिये अर्थात् यह पद

चिन्ह किसके हो सकते है ।" इस पर गोमुख कुछ सोचकर बोला "निश्चित ही यह तो किसी आकाशगामी के पद चिन्ह हैं । तब हरिसिंह ने पूछा कि "आकाशगामी ता वहुत से हैं देव, चारण श्रमण, ऋद्धि मान ऋषि और राक्षस आदि इन मे से यह किसके है । यह भी तो सोचना चाहिये ।"

देवताओ के पद तो पृथ्वी से चार उगल ऊपर पडते है । वे भूमि-का कभी स्पर्श नही करते, राक्षसो के शरीर वडे स्थूल होते है इसलिए उनके पाव भी वहुत बड़े-बडे हाते है, ऋषि मुनि वडे तपस्वी होते है। तप के कारण उनका शरीर वड़ा कृश और दुर्वल हो जाता है, उनके पद चिन्ह मध्य भाग से कुछ ऊचे उठे रहेगे और साथ ही हमारे जल के किनारे चलने से किसी जलचर प्राणी को कोई वाधा न पहुचे, इस विचार से चारणश्रमण जल के किनारे चलते भी नहीं अतः इनमे से किसी के भी पद चिन्ह नहीं हो सकते 'गोमुख ने' कहा

यदि इनमे से किसी के नहीं तो फिर यह "किसके पांव है ? हरि-सिंह ने पूछा।"

गोमुख ने उत्तर दिया किसी विद्याधरी के ।

हरिसिंह ने कहा हो सकता है विद्याधरी के हो ।

गोमुख ने उत्तर दिया पुरुष बलवान होने के कारण उत्साह पूर्वक चलते हैं । उनके वक्षस्थल के विशाल होने के कारण उनके पाव आगे से दबे हुए होते हैं । पर स्त्रियों के पुष्ट नितम्बों के कारण उनके पद चिन्ह पीछे से दबे रहते है ।

इस लिये ये पदचिन्ह विद्याधर के नहीं; प्रत्युत विद्याधर के ही है। एक बात और भी है कि इस विद्याधर के पास कोई बहुत बड़ा भार भी प्रतीत होता है ।

तब हरिसिंह ने पूछा, क्या इस पर किसी पर्वत का भार है या किसी वृक्ष का अथवा इसने किसी का अपराध किया हो और वह मौका देख कर इसके सिर पर जा चढ़ा हो उसका भार है ।

गौमुख ने कहा, यदि इसके पास पर्वत शिखर होता तो उसके अत्यधिक भार के कारण यह पद चिन्ह खूब दबे हुए होते। कोई वृक्ष होता तो उसकी शाखाये पृथ्वी पर रगड़ती जातीं और उसके निशान

भी यहां पडते जाते। शत्रु को लेकर कोई ऐसे सुन्दर प्रदेश में आयेगा ही कौन।

हरिसिंह ने पूछा—यदि चिन्ह किसी का इन में नहीं तो फिर और किस का है ?

गौमुख ने उत्तर दिया, किसी स्त्री का ?

हरिसिंह ने कहा, स्त्री का भार कदापि नहीं हो सकता क्योंकि विद्याधरियाँ तो स्वय भी आकाश गामिनी होती है।

गोमुख ने कहा, इस विद्याधर की प्रिया कोई मानवी है। यह इस के साथ इस सुन्दर स्थान में फिरता होगा।

हरिसिंह ने पूछा कि यदि कोई मानवी विद्याधर की प्रिया है तो वह उसे भी यह विद्या क्यों नहीं सिखा देता।

गोमुख ने समझाया—यह विद्याधर बडे ईर्ष्यालु होते हैं। साथ ही इनको किसी पर भी विश्वास नहीं होता। इसलिये ये किसी को अपनी विद्या नहीं देते। यहां तक कि अपनी प्रिया को वह अपनी विद्या नहीं सिखाना चाहते। क्योंकि उन्हें शका रहती है कि यदि इनको आकाश-गामिनी विद्या आ गई तो कहीं ये स्वच्छन्द हो जायें। साथ ही उसने यह कहा कि वह विद्याधर यहीं कहीं वृक्ष लता कुञ्जों में होगा क्योंकि उसके पद चिन्ह बिल्कुल नवीन से हैं इसलिए आगे बढ़कर इस की खोज करनी चाहिये।

इस प्रकार ढू ढते-ढू ढते आगे चलकर हमें चार पद चिन्ह दिखाई दिये। निश्चित ही उनमें से दो स्त्री के और दो पुरुष के थे। अब हम इन पद चिन्ह का अनुसरण करते-करते आगे बढ़े। कुछ दूर जाने पर विकसित पुष्प समूहों पर मंडराते हुये भ्रमरों से सुशोभित एक सप्त-पर्ण वृक्ष दिखाई दिया। उस वृक्ष के ताजे टूटे हुये पुष्प गुच्छ को देख कर गोमुख ने कहा कि "देखिये इस टूटे हुये फूल की डडी से दूध झर रहा है। इससे ज्ञात होता कि उस विद्याधर ने अभी-अभी यह पुष्प स्वत तोडा है।

यहाँ से थोड़ी दूर सामने एक परम मनोहर लता मंडप दिखाई दे रहा था। वह देखो वह लता मडप बड़ा सुन्दर व एकान्त होने के कारण उपभोग योग्य प्रतीत होता है। हो सकता है विद्याधर अपनी प्रिया के साथ उसी में विद्यमान हो। किन्तु इसी समय उस लता

मडप में से एक सुन्दर मोर निकला उसे देखकर सबने निश्चय किया कि नहीं इस समय उस मडप मे कोई नहीं है। यदि वहाँ कोई व्यक्ति होता तो यह मोर इस प्रकार निर्भय और निश्चिन्त गति से चलता हुआ लता मडप से बाहर न आता। इसकी गति में थोड़ी बहुत आकुलता अवश्य लक्षित होती। तब हम सब लोग लता मडप मे जा पहुचे। वहा जाकर हमने देखा कि नवीन पुष्पो से निर्मित रमणीय कुसुम शैया बिछी हुई है।

दूसरी ओर देखने पर एक ढाल और रत्नकोश पड़े हुये मिले। साथ ही कुछ ऐसे स्पष्ट चिन्ह भी थे जिनसे निश्चय हुआ कि अवश्य ही किसी दुष्ट ने विद्याधर को दबोचा है। वह उससे लड़ता झगड़ता और आत्म रक्षा का प्रयत्न करता हुआ यहाँ से कहीं आगे बढ़ गया। इसलिये उसका अनुसरण करते हुये हम लोग भी और आगे चल पड़े। कुछ दूर जाने पर एक व्यक्ति कदम्ब वृक्ष के साथ बन्धा हुआ दिखाई दिया। उसके पांचो अंगों मे कील ठोककर उसे वृक्ष से इस प्रकार जकड़ दिया था मानों पांचों इन्द्रियो के विषय को पाच अन्तरायों ने व्याप्त कर लिया हो। एक कीला उसके मस्तक मे ठोका हुआ था। दो दोनों हाथों में और दो दोनों पावों मे इस प्रकार पांच कील ठोककर उसे वृक्ष मे जकड़ा हुआ था। उसकी ऐसी दशा देख हमारे हृदय द्रवित हो उठे। पर थोड़ा ध्यान से देखने पर लक्षित हुआ कि ऐसी भयकर पीडा सहते हुए भी उसके मुख मडल की कान्ति वैसी ही उज्जवल थी उसमे कहीं भी विवर्णता का लेश भी न था। उसके अगो पर कील ठुके रहने पर भी रक्त नहीं वह रहा था। तीव्र पीड़ा का अनुभव करते हुये भी उसके श्वासोच्छ्वास निरतर चल रहे थे। तब एकात वृक्ष की छाया में बैठे हुए अपने मित्रो से मैंने कहा।

उस विद्याधर को इस अवस्था मे देख मैंने कहा कि मैंने बचपन में विद्याधरों का वृत्तान्त साधुओ के मुख से सुना था कि विद्याधर अपनी थैली मे अपनी रक्षा के लिए चार ओषधियाँ भी रखते है। सो सम्भव है इस विद्याधर की थैली मे भी वे चारो ओषधियाँ हों, किन्तु देखने पर उन्हें यह पता न लग सका कि इनमे से कौनसी औषधि किस काम आती है। क्योंकि चालक नामक औषधि घायल व्यक्ति को चलने फिरने के योग्य बना देती है। उत्कीलन नामक औषधि से कील काँटे अपने

आप निकल जाते हैं। व्रण सगरोहण नामक औषधि से घाव भर जाते हैं। अत इस बात का ज्ञान करना आवश्यक था कि पहले किस औषधि का प्रयोग किया जाय। इस पर गोमुख ने कहा कि किसी दूध निकलने वाले वृक्ष को काटकर इन औषधियों के गुणों की परीक्षा करनी चाहिये कि किस औषधि से क्या कार्य सपन्न होता है। तदनुसार सब औषधियो के पता लगाने पर उनके प्रयोग के द्वारा विद्याधर को बन्धन मुक्त कर दिया गया। उनके जिस शत्रु ने उन्हे वृक्ष से जकड़ कर उनके अगों में कील ठोके थे, उसने इस बात का ध्यान रखा था कि विद्याधर को प्राणान्तक पीडा पहुचे पर वह मर न जाये। क्योंकि उसे असह्य दुःख पहुचाना अभिष्ट था मार डालना नहीं। स्वस्थ और सचेष्ट होने पर विद्याधर ने पूछा कि मुझे प्राणदान किसने दिया है। तब मेरे साथियों ने मेरी ओर सकत करते हुये बताया कि इन महानुभाव की कृपा से हमें आपकी थैली में पड़ी हुई ओषधियों का ज्ञान हुआ। इस लिये आपको जीवन दान का श्रेय हमारे मित्र चारुदत्त को ही है। यह सुन विद्याधर ने हाथ जोडकर मुझे कहा—' आपने मुझे जीवन दान दिया। इसलिये मैं आपका सेवक हूॅ बताइये मैं आपका इसके लिये क्या प्रत्युपकार करू। तब मैंने कहा आप वयोवृद्ध होने के कारण मेरे लिये पिता के समान पूज्य हैं। अतः ऐसे वचन कह कर मुझे लज्जित न करे। आप यदि मुझ पर उपकार करना चाहते हैं तो इतना ही कीजिये कि यथा समय मुझे अपना जान कर समय समय पर स्मरण रखे। इस प्रकार हमारे पारस्परिक वार्तालप के समाप्त हो जाने पर गोमुख ने उस विद्याधर से पूछा कि—आपको इस विपत्ति मे किसने और क्यों डाला ? इस पर उसने अपनी कथा सक्षेप में इस प्रकार बताई—

अमितगति विद्याधर का वृत्तान्त

वैताढ्य की दक्षिण श्रेणि में शिवमन्दिर नामक नगर है। वहाॅ के महेन्द्र विक्रम नामक एक बड़े पराक्रमी विद्याधरों के राजा राज्य करते हैं। उनकी सुयशा नामक रानी है। उन्हीं का मैं अमितगति नामक आकाश गामिनी विद्या जानने वाला विद्याधर हूॅ।

साथ विहार करता हुआ* वैताढ्य की उपत्यका में अवस्थित सुमुख नामक आश्रम पद मे जा पहुँचा। वहाँ पर हिरण्यलोम नामक तपस्वी रहते थे। वे मेरी माता के बड़े भाई थे। उन्होने मेरा बड़ा स्वागत सत्कार किया। उनके पूर्ण यौवन श्री से सुशोभित शिरीष पुष्प के समान सुकोमलांगी सुकुमारिका१ नामक पुत्री थी। उसने देखते ही देखते मेरे हृदय को हर लिया। उस समय तो मै चुपचाप अपने घर लौट आया किन्तु प्रतिक्षण उस सुन्दरी के ध्यान मे मग्न रहने के कारण मेरा खाना, पीना, पहिनना आदि सब कुछ छूट गया। मेरी यह दशा देख पिता जी ने मेरे मित्र के द्वारा वास्तविक कारण का पता लगा शीघ्र ही सुकुमारिका से मेरे विवाह की व्यवस्था कर दी। इधर मेरा मित्र धूमसिंह भी सुकुमारिका पर आसक्त था। वह जब भी मेरे घर आता उसके आकार प्रकार और विकारों को देखकर मेरी पत्नी जलभुन जाती और स्पष्ट रूप से उसकी शिकायत भी कर दिया करती। किन्तु मै उसे समझा दिया करता कि यह तेरा भ्रमजाल है। मेरे मित्र का मन कदापि विकृत नहीं हो सकता किन्तु एक दिन मैंने उसकी विकार युक्त चेष्टाओं को प्रत्यक्ष देख लिया। फिर क्या था। मेरे क्रोध का ठिकाना न रहा। मैने गरजते हुये कहा कि अरे मित्रद्रोही धूमसिंह जा यहाँ से निकल जा। अन्यथा मैं तेरे प्राण ले लूंगा। यह सुनते ही वह क्रोध पूर्ण दृष्टि से हमारी ओर देखता हुआ वहां से निकल गया। और फिर कभी उसने अपना काला मुह नहीं दिखाया। मैं भी अपनी प्रिया के साथ स्वेच्छा पूर्वक आनन्दोपभोग करता हुआ सुख से रहने लगा।

आज मैं अपनी प्रिया के साथ इस नदी तट पर आया हुआ था। किन्तु इस स्थान को रति-क्रीड़ा के लिए अनुचित जान हम उस लता मंडप मे चले गए। थोड़ी देर पश्चात् विद्या से रहित स्थिति मे मेरे शत्रु ने मुझे आ घेरा और पकड़ कर बाध लिया। वह विलाप करती हुई मेरी पत्नी को हर ले गया है। आपने अपने बुद्धिबल से मुझे जीवन दान देकर उपकृत किया। इसलिये हे चारुदत्त! आप मेरे परम हितैषी हैं। अब मुझे विदा दीजिये ताकि मैं अपनी प्राणप्रिया सुकुमारी

*हिमवान् पर्वत पर गये—ऐसा अन्य ग्रन्थो में मिलता है।
१सुकुमालिका

की शत्रु के फंदे में से छुडा लाऊ, कहीं ऐसा नि हो क मुझे मरा हुआ जानकर वह भी प्राण छोड बैठे।

किन्तु जाने से पहले मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे अवश्य कोई मेरे योग्य सेवा बतायें, क्योंकि जब तक मैं इस उपकार का बदला न चुका दू गा तब तक मेरे हृदय को शान्ति न मिलेगी। विद्याधर के ऐसे प्रेम पूर्ण वचन सुनकर मैंने कहा आप जो मेरे प्रति इतना प्रेम दर्शा रहे हैं वही क्या कम है। शेष रहा उपकार का प्रश्न सो तो मैंने अपने कर्तव्य का ही पालन किया है। दूसरे के दुःख को दूर करना प्रत्येक प्राणी का प्रथम कर्तव्य है। और मनुष्य को तो विशेष रूप से अपने इस कर्तव्य के प्रति सतत जागरूक रहना चाहिये। अतः मुझे अन्य किसी वस्तु की कोई आवश्यकता नहीं। इस ससार में सज्जनों का समागम ही सबसे दुर्लभ है इसलिये आपके दर्शन कर मुझे हार्दिक प्रसन्नता प्राप्त हुई। इस पर उस विद्याधर के नेत्र स्नेहाश्रु से पूर्ण हो गये वाणी गद्गद् हो आई वह रू धे हुए कठ से हमारा शत् शत् धन्यवाद कर वहा से विदा हो गया।

: मेरा पतन :—

विद्याधर के चले जाने के पश्चात् इधर हम लोग भी उसकी चर्चा करते हसते खेलते कूदते अपने अपने घरों को वापिस आ पहुँचे। यह उस समय की घटना है, जब मैं किशोरावस्था को पारकर नवयौवन की कान्ति से जगमगाने लगा था। इन्हीं दिनों मेरी माता अपने भाई सर्वार्थ के घर गई उनके मित्रवती नामक एक सुन्दर पुत्री थी। मामा ने उन्हें कहा कि 'मैं अपनी पुत्री का सम्बन्ध चारुदत्त से करना चाहता हूँ। मेरी माता ने इसके लिये सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी। तदनुसार मित्रवती का मेरे साथ बड़े समारोह पूर्वक विवाह सम्पन्न हो गया। किन्तु उस समय मैं सगीत कला की साधना में लगा हुआ था। विद्याभ्यास में सतत निरत रहने के कारण यौवन के विकारों से सर्वथा अनभिज्ञ और अल्हड़ था। रात-रात भर अपने एकान्त कमरे में अकेला बैठा गाता बजाता हुआ स्वर साधना किया करता। मैं विवाहित हूँ मेरी पत्नी भी है और उसके प्रति भी मेरा कुछ कर्तव्य है इसका तो मुझे तब तक भान ही न हुआ था। मेरी ऐसी दशा देख मेरी पत्नी अत्यन्त दुःखित रहने लगी। एक दिन प्रातःकाल ही मित्रावती की माता

हमारे घर आ पहुँची, उस समय मित्रावती को अलंकार और प्रसाधन से हीन देखकर, उसने पूछा—

बेटी क्या बात है ! आज तुम्हारे पति कहीं बाहर हुए गये हैं या आपस मे कुछ मन-मुटाव हो गया है। जो इस प्रकार उदास सी दिखाई देती है।' इस पर मित्रवती ने उत्तर दिया कि मुझे पिशाच के हाथो मे सौपकर अब मेरी उदासी का कारण पूछ रही हो ! इस पर उसकी माता ने डाटा कि चारुदत्त जैसे सुशील सुशिक्षित सुन्दर पति को पिशाच कहते हुए तुझे शर्म नहीं आती। अरे ! ऐसा देवता पति तुझे और कहां मिल सकता था।

इस पर मित्रावती ने उत्तर दिया मां मैं जो कुछ कह रही हूं वह सर्वथा सत्य है। आप बुरा न मानिये वे रात-रात भर अकेले कमरे में बैठे गाते, बजाते, हसते, खेलते, कूदते रहते है। उन्होंने आज तक कभी बात ही नहीं पूछी, कि मै कहाँ जीती हूं और कहा मरती हूँ। ऐसे विवाह से तो मैं कुंवारी ही रह जाती तो भला था। यह सुन उसकी मां मारे क्रोध के आग बबूला हो उठी और उसने मेरी माता को कई कठोर वचन कहने शुरु कर दिये, मेरी माताजी ने पहले उसे शान्ति पूर्वक समझाने का प्रयत्न किया पर बात तो बढ़ती गई, और अन्त में क्र ध हो उन्होंने मित्रावती को उसकी मा के साथ मायके भेज दिया।

मित्रावती के मायके चले जाने पर मै पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो गया, और रात दिन संगीत साधना मे ही मस्त रहने लगा। इसी बीच मेरे पिता जी ने मेरे लिए एक ललित गोष्ठी भी करवाई जिससे कि मैं काम वासनाओं मै प्रवृत हो जाऊं किन्तु उनका यह प्रयास भी सफल न हो सका और मै पहले की तरह ही अपने कार्य में व्यस्त रहा। पश्चात् एक दिन मेरे चाचा रूद्रदत्त को जो सातो कुव्यसनों मे निपुण था बुलाकर मेरी माता ने मुझे उसको सौप दिया और कहा कि ऐसा उपाय करो जिससे कि यह अपनी पत्नी से प्रेम करने लगे। माता के इस प्रकार कहने पर रूद्रदत्त बोला कि 'यह तो मेरे बॉये हाथ का खेल है।' तदनुसार वह नित्य प्रति मेरे पास आने लगा और मुझे काम वासना सम्बन्धी कथाए सुनाने लगा। इन कथाओं से मेरे जीवन में एक नया परिवर्तन आ गया और तब से मैं विषयों के प्रति उत्सुक रहने लगा। इसी चम्पानगरी मे उस समय कलिंग सेना नामक एक

वेश्या रहती थी। उसकी वसन्तसेना नामक परम रूपवती पुत्री थी, वह सुन्दरता में साक्षात् वसन्त लक्ष्मी के समान प्रतीत होती थी। और नृत्य-गीत आदि कला कौशल म परम प्रवीण थी। एक दिन अपने चाचा के साथ मै एक उत्सव देखने गया। दैवयोग से उस समय वहा वसन्तसेना का नृत्य हो रहा था। मै भी नगर के श्रेष्ठतम कलाविदों के बीच जा बैठा। वसन्त सेना उस समय सूची नाटक (सुइयों के अग्रभाग पर नाचना) आरम्भ करना चाहती थी। उसके पहले ही उसने चमेली की कलियां बिखेर दीं।

गायन के प्रभाव से वे कलिया तत्काल खिल गई। यह देख मडप में बैठे हुए लोग उसकी प्रशसा करने लगे। मुझे इस बात का पूर्ण ज्ञान था कि पुष्पों के खिलने से कौन सा राग होता है इसीलिये मैंने शीघ्र ही उसे मालाकार राग का इशारा कर दिया। वेश्या ने अगुष्ठका अभिनय किया लोगों ने फिर उसकी प्रशसा की और मैंने नख मडल को साफ करने वाले नापित राग का इशारा किया। जब वह गौ और मक्षिका की कुक्षिका का अभिनय करने लगी तो और लोग तो पहिले ही की भाति वेश्या की प्रशसा करने लगे और मैंने गोपाल राग का इशारा कर दिया। वेश्या वसतसेना हावभाव कलाओं में पूर्ण पडिता थी इसी लिये जब उसने मेरा यह चातुर्य देखा तो वह बड़ी प्रसन्न हुई। अगुली की आवाज पर मेरी प्रशसा करने लगी, और अनुराग वश समस्त लोगों को छोड़ मेरे सामने आकर अति मनोहर नाच नाचने लगी। नृत्य समाप्त कर वेश्या वसतसेना अपने घर चली गई। परन्तु मेरे उस चातुर्य से उसके ऊपर कामदेव ने अपना पूरा अधिकार जमा लिया था, इसी लिये वह घर जाते ही अपनी मा से बोली "माँ! इस जन्म में सिवाय चारुदत्त के मेरी दूसरों के साथ प्रणय न करने की प्रतिज्ञा है, इसलिये तू बहुत जल्दी मेरा और उस का मिलाप कराने का प्रयत्न कर। पुत्री की यह प्रतिज्ञा सुन कलिंगसेना ने शीघ्र ही मेरे चाचा रुद्रदत्त को बुलाया और दान मान आदि से पूर्ण सत्कार कर मेरे और वसतसेना के मिलाप का समस्त भार उस के शिर मढ़ दिया। रुद्रदत्त इन बातों में बडा प्रवीण था उसने एक समय मार्ग में जाते हुए मेरे आगे और पीछे दो मत्त हाथी निकाले जिससे कि घबराकर चाचा के साथ उसके कहने से मैं उसी वेश्या के घर में

चला गया। कलिंगसेना को पहले से ही सब बात मालूम थी इसी लिए वहाँ पहुंचते ही उसने हम दोनों का बडा ही स्वागत किया और आसन आदि देकर पूर्ण सत्कार करने लगी। थोड़े समय के बाद रुद्रदत्त और कलिंग सेना का जूआ जुटा। कलिंगसेना बड़ी चालाक थी उसने चाचा का दुपट्टा तक जीत लिया यह देख मुझे बड़ा क्रोध आया मैंने रुद्रदत्त को तो अलग हटाया और स्वय उसके साथ जूआ खेलने बैठ गया। कलिंगसेना को मेरे साथ जूआ खेलते देख वसतसेना से न रहा गया वह भी अपनी मा को अलग हटा मेरे सामने बैठ कर जूआ खेलने लगी। मै जूआ खेलने में सर्वथा लीन हो गया, मेरी सब सुधिबुधि किनारा कर गई। थोड़ी देर के बाद मुझे बड़े जोर से प्यास लगी। मुझे प्यास से पीड़ित जान वसंतसेना ने मोहिनी चूर्ण डाल अतिशय सुगन्धित शीतल जल पिलाया। अब वसंतसेना पर मेरा पूर्ण विश्वास हो गया। धीरे-धीरे मेरा अनुराग भी उस पर प्रबल रीति से बढ़ने लगा। जब कलिंगसेना ने हम दोनों को आपस में पूर्ण अनुरुक्त देखा तो वह शीघ्र ही हमारे पास आई और मेरे हाथ में अपनी पुत्री वसंतसेना का हाथ गहा चली गई। मैं विषयों में इतना आसक्त हो गया कि बारह वर्ष तक वसतसेना के घर में ही रहा, अन्य कार्यों की तो क्या बात ? अपने पूज्य माता-पिता और अपनी प्यारी धर्मपत्नी मित्रवती तक को भी भूल गया। उस समय तरुणी वसतसेना की सेवा से अनेक दोषों ने मुझे अपना लिया था। इसीलिए दुर्जन जिस प्रकार सज्जनों को दबा देते हैं उसी प्रकार विद्या और वयोवृद्ध मनुष्यों की सेवा से उपार्जन किये हुए मेरे अनेक उत्तमोतम गुणों को आकर दोषों ने सर्वथा दबा दिया था, मेरा पिता सोलह करोड दीनारों का अधिपति था। धीरे-धीरे वे सोलहों ही करोड दीनार वेश्या के घर आ गई। जब समस्त धन समाप्त हो चुका तो मेरी प्यारी स्त्री मित्रवती का गहना भी आना शुरू हुआ। भूषण देखते ही कलिंगसेना को मेरे घर के खोखलेपन का पता लग गया। उस दुष्टिनी ने मेरे छोडने का पक्का निश्चय कर लिया, एक दिन अवसर पाकर वह एकान्त में वसंतसेना के पास आई और इस प्रकार कहने लगी—

प्यारी पुत्री मैं तुझे तेरे हित की बात बताऊं तू सावधान होकर

सुन। क्योंकि जो मनुष्य अपने गुरुओं के उपदेशामृत मन्त्र का पालन करता है उसे कभी संकटों का सामना नहीं करना पडता। तू जानती है हमारी आजीविका सबसे नीच है। वेश्यावृत्ति से अधिक निंद्य कर्म कोई नहीं। इसलिये हमें यही उचित है कि जब तक मनुष्य के पास पैसा हो तभी तक उसे प्रेम करके काम लें। पश्चात् निर्धन होने पर पीतसार—चूसे हुए ईख के गन्ने के समान उसे छोड दें। आज चारु-दत्त की स्त्री मित्रवती के गहने मेरे पास आये थे। उन्हे देखते ही मुझे दया आ गई और मैंने ज्यो के त्यों उन्हें वापिस लौटा दिया। अब यह चारुदत्त निर्धन हो चुका है इसलिये तुझे इसे छोड देना चाहिये। रसपूर्ण गन्ने के समान अन्य किसी धनवान पुरुष के साथ आनन्दोपभोग कर। वसन्त सेना ने अपनी मां के ऐसे शब्दों को सुन-कर उसके हृदय पर मानो बिजली गिर गई, उसने उसी समय माता को उत्तर दिया।

मां तूने यह क्या कहा। यह चारुदत्त कुमार अवस्था से ही मेरा पति है। बहुत समय से मैंने इसके साथ भोग विलास किया है मैं इसे कभी भी नहीं छोड़ सकती। यदि और कोई मनुष्य कुबेर के समान धनवान हो तब भी मेरे किसी काम का नहीं। मेरे यह प्राण भी चाहें कि हम चारुदत्त के बिना रहेंगे, उसके साथ नहीं, तो ये भी खुशी से चले जाय, मुझे इनकी भी कोई आवश्यकता नहीं। मा यदि तू मुझे जीवित देखना चाहती है तो फिर कभी ऐसी बात मत कहना। हाय!! जिनके घर से आई हुई स्वर्ण मुद्राओं से तेरा घर भर गया, आज तू उसे ही छोड़ने को कह रही है। ठीक, स्त्रियाँ बडी कृतघ्न और दुष्टा होती है। अरी! यह चारुदत्त अनेक कलाओं में पारगत है, परम सुन्दर है उत्तम धर्म का उपदेश देने वाला है, महा उदार है भला इसको मैं कैसे छोड सकती हूँ। इस प्रकार पुत्री को मुझ में आसक्त जान कलिंग सेना ने उस समय तो कोई उत्तर नहीं दिया। लडकी की हाँ में हाँ मिलाली, किन्तु मन ही मन हम दोनों को अलग करने का विचार करने लगी। आसन पर सोने के समय स्नान और भोजन के समय हम दोनों एक साथ रहा करते थे। एक दिन हम दोनों को बड़ी सावधानी से सुला दिया। जब हम गहरी नींद में सो गये तो उस दुष्टनी ने मझे घर से बाहर कर दिया।

मेरा विदेश भ्रमण

वसतसेना के घर से निकल कर मैं[1] सीधा अपने घर पहुँचा। वहाँ देखा तो मेरे पिता ससार से विरक्त हो गये थे और मेरी माता तथा मित्रवती अत्यन्त दुखित होकर रो रही है। मुझे देखकर उन्होंने मेरा उदास भाव से स्वागत किया। मै भी समग्र धन के नष्ट हो जाने के कारण बड़ा चिंतित और उदास था। धनाभाव के कारण अब मेरा नगर मे रहना और लोगो को मुंह दिखाना भी कठिन हो गया था। इसलिये मैंने अपनी माता के समक्ष यह विचार प्रगट किया कि मैं विदेश जाकर धन कमा लाऊँ तो कितना अच्छा हो। क्योकि मैं इस प्रकार दरिद्रतापूर्ण और अपमानित जीवन को लेकर अपने सम्बन्धियों में कैसे रह सकता हूं। कहा भी है कि—

'न बन्धु मध्ये धनहीन जीवनम्'

आपके चरणो की कृपा से विदेश मे व्यापार के द्वारा अवश्य प्रभूत धन अर्जित कर लाऊँगा ऐसा मुझे दृढ़ विश्वास है।

यह सुन मेरी माता ने समझाया कि तू नहीं जानता है कि व्यापार मे कितने परिश्रम और अनुभव की आवश्यकता है। तू विदेश मे कैसे रहेगा। तू विदेश मे न जाय तो भी हम दोनों भाई बहन होकर सब निर्वाह चला लेंगे। तब मैंने कहा—"माताजी ऐसा न कहिये। मैं भानुदत्त सेठ का पुत्र हू। क्या मै इस प्रकार दुर्दशा मे रह सकता हूं। इसलिये आप चिन्ता न करें और मुझे आज्ञा दे दें। इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि यदि तेरा दृढ़ निश्चय है तो मै तेरे मामा से इस पर विचार विनिमय कर कल तुझे बताऊँगी।

तत्पश्चात् मै अपने मामा के साथ विदेश यात्रा के लिए निकल पड़ा। पैदल चलते चलते हम दोनो अपने जनपद की सीमा को पार कर कुशीरावर्त[2] नामक नगर मे जा पहुँचे। मेरे मामा मुझे नगर से बाहर बैठाकर स्वय नगर मे गए और वहाँ से स्नान आदि के लिए

१ वेश्या के यहा से चलकर वह अपने मामा सर्वार्थ के यहाँ पहुचा और वहा से वह और उसका मामा दोनो रावर्त्त नगर की ओर व्यवसाय के लिए चल पडे। ऐसा भी उल्लेख पाया जाता है।

२ उशीरावर्त।

उचित उपकरण व वस्त्र आदि लेकर आये और कहने लगे कि चलो नगरी मे स्नान करें। स्नानान्तर हम लोग नगर मे पहुचे और छोटा मोटा व्यापार कर अपना निर्वाह करने लगे। इस व्यापार का प्रारम्भ हमने अपने छोटे मोटे आभूषण बेचकर किया था। क्रमशः हमने रूई, कपास और सूत आदि वस्तुओं का क्रय विक्रय करना शुरू कर दिया। इस व्यापार में हमे पर्याप्त लाभ हुआ और हमने रूई के कई कोठे भर लिये। किन्तु यहाँ पर एक दिन रूई को आग लग गई। हम भी चारों ओर से आग मे घिर गये जिसमें बड़ी कठिनाई से प्राण बचाकर निकल पाये। प्रात काल नगर वासियों ने आकर इस नुकसान के लिये आश्वासन दिया कि कोई बात नहीं। आज कुछ हानि हुई है तो कल लाभ हो जायगा।

यहां से रुई और सूत की गाडियां भर के एक साथ (काफिला) हम लाग उत्कल देश की ओर चल पड़े। वहा से कपास की गाड़ियाँ भरकर ताम्रलिप्ति नामक नगरी की ओ बढ़ गये। धीरे धीरे चलते हुये हम लोगों के मार्ग में एक घना जगल पडा। इस जगल मे हमें रात्रि भर के लिये ठहरना था क्योंकि उस समय तक सूर्यास्त हो चुका था अतः हम वहीं विश्राम करने लगे। हमारे को सोये हुये थोड़ी ही देर हुई थी कि जगल में भयकर दावाग्नि व्याप्त हो गयी। देखते ही देखते आग की भयकर लपटों से दशों दिशाये प्रज्वलित हो उठी। उस प्रलय काल के समान चारों ओर फैलती और लपलपाती लपटो वाली अग्नि की ज्वालाओं में से माल-असबाब को बचाना तो दूर रहा, अपने आपको सकुशल निकाल लेना भी बडा कठिन था। सब लोग अपने प्राणों की रक्षा के लिये इधर-उधर भागने लगे। इस भगदड में कौन कहाँ गया किसी को भी मालूम नहीं रहा। यही नहीं ज्ञात हो सकता था कि उस कालाग्नि में से कौन बच निकला और कौन वहीं जल मरा।

कुछ भी हो मेरी आयु शेष थी इसलिये मैं तो बच गया किन्तु मेरे मामा सर्वार्था का कुछ पता न लग सका कि वे जीते जी बच निकले कि वहीं रह गये। अब मैंने अकेले, वनमें भटकते हुये भी हिम्मत न हारी। मैंने निश्चय कर लिया कि या तो अपने शरीर का ही त्याग कर लूगा या धन संचय करके ही घर लौटूंगा। यह भी मैं जानता था कि

लक्ष्मी उद्योग मे ही रहती है। इसलिये मुझे भयकर से भी भयंकर विपत्ति में पड़ कर भी उद्योग से पराङ्गमुख नहीं होना चाहिये।

इस प्रकार उस दावानल से निकल कर मैं एक देश से दूसरे देश में घूमता हुआ प्रियगुपट्टन नामक नगर में जा पहुचा। वहा के एक अधेड़ अवस्था के एक अत्यन्त सौम्य आकृति वाले सेठ ने कहा कि अरे तू ! तो इभ्यपुत्र चारूदत्त है ? मैंने कहा हॉ, प्रसन्न होकर वह मुझे अपने घर ले गया। वहां प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्रों व गदगद कठ से प्यार भरी वाणी मे उसने मुझे कहा कि हे वत्स ! मै सुरेन्द्रदत्त साथवाह तुम्हारा पड़ोसी हूं। मैंने तो सुना था कि सेठ जी के दीक्षा ले लेने के पश्चात् चारुदत्त गणिका के घर मे रहने लगा है सो अब तुम्हारे आने का क्या कारण है। तब मैंने अपना सारा वृतान्त कह सुनाया। इस पर उसने मुझे सान्त्वना देते हुये कहा कि घबराओ नहीं। मै तुम्हारे प्रत्येक काय मे सहायता करूंगा। यह घर बार धन सम्पत्ति आदि सब कुछ तुम्हारी ही है। यह कह कर उसने बड़े प्रेम से भोजन कराया और सत्कार पूर्वक कइ दिनों तक अपने यहॉ रक्खा। मैं वहां इस प्रकार आनन्द पूर्वक रहने लगा कि मानो अपना ही घर है। कुछ दिनों पश्चात् मैंने सुरेन्द्रदत्त से कहा कि मेरा विचार समुद्र के देशों में जाकर व्यापार करने का है। इसलिये आप यदि मेरी सहायता करें तो मैं यहॉ से माल भर ले जाऊं और दूसरे व्यापारियों की भॉति खूब धन कमा लाऊ। मेरा ऐसा विचार देख सुरेन्द्रदत्त ने एक लाख रुपया दे दिया। जिससे मैंने अनेक वस्तुएं खरीद कर जहाज में भर लीं और विदेश यात्रा की तैयारी करने लगा।

एक दिन शुभमुहूर्त और अनुकूल पवन देखकर तथा राज्य से आवश्यक पारपत्र, प्रमाणपत्र आदि प्राप्त कर मैंने समुद्र यात्रा प्रारम्भ कर दी। मेरे जहाज चीन देश की ओर बढ़ने लगे। मार्ग में अनेक भयकर तूफानों, विघ्न बाधाओं और मारणान्तिक सकटों को पार करते हुए हमारा जहाज चीन तक जा ही पहुँचा। कुछ दिन चीन में रह कर तथा अनेक वस्तुओं का क्रय-विक्रय कर मैं सुवर्ण भूमि (सुमात्रा) की ओर चल पडा। इस प्रकार सुवर्णभूमि तथा आस पास के सुदूर दक्षिण पूर्व के द्वीपों मे घूमता और व्यापार करता हुआ वापिस पश्चिम की ओर चल पडा। कमलपुर और यव द्वीप (जावा) होता हुआ मे (सिंहल)

साथ रह। मेरी सेवा मे रहते हुए तुझे बिना किसी कष्ट से धन प्राप्त हो जायगा। अत अब मै उसकी सेवा सुश्रूषा मे रहने लगा। एक वार उस साधु ने एक भट्टी सुलगाकर मुझे कहा कि 'देख, फिर उसने एक लोहे के गोले पर कुछ रस लगाकर उस गोले को जलते हुए अगारों मे डाल दिया। अंगारो क बुझ जाने पर हमने देखा कि लोह का गोला दमकते हुए स्वर्ण का गोला बन गया है। तब उसने कहा देखा तुमने! मेरे मुख से निकला हा यह तो वडी आश्चर्य जनक घटना है। इस पर उसने कहा कि 'यद्यपि मेरे पास स्वर्ण नहीं है तो भी मै वडा भारी सौवर्णिक हूँ। तुम्हे देखकर मेरा तुम पर पुत्र के समान प्रेम हो गया है। तूने अर्थ प्राप्ति के लिये अनेक कष्ट सहे है इसलिए मै तेरे लिए जाऊगा और शत् सहस्रवेधी रस ले आऊगा। फिर तू भी कृत्य-कृत्य होकर अपने घर चले जाना। यह तो मेरे पास पड़ा हुआ थोड़ा सा रस था।'

इस पर लोभ में फंसे हुए मैंने कहा तात! आप जैसा उचित समझें वैसा कीजिये। तब हम दानो एक अधकारमयी रात्रि में बस्ती से बाहर निकल हिंसक जन्तुओं से परिपूर्ण एक भयानक जगल मे जा पहुँचे। हम भील कोल आदि वनचरों के भय के कारण दिन में तो छिपे रहते और रात्रि में अपनी यात्रा को निकल पडते। इस प्रकार चलते चलते हम दोनों एक पर्वत की गुफा के पास जा पहुँचे। उस गुफा मे प्रविष्ट हाने के पश्चात् थोडी दूर चलने पर हमने देखा कि वहां पर एक घास से ढ़का हुआ एक कुआँ है। उस कुए के पास ठहर कर साधु ने मुझे कहा थोड़ी देर विश्राम कर लो। इस प्रकार कुछ सुस्ता लेने के बाद वह चमड़े के वस्त्र पहनकर कुएं में उतरने लगा, तब मैंने पूछा 'यह आप क्या कर रहे हैं।'

उसने उत्तर दिया। 'पुत्र घास से ढ़के हुए इस कुए के नीचे वज्र कुण्ड है। उसमे से रस झरता रहता है। मै रस्सी के सहारे नीचे उतरता हूँ। वहां जाकर मैं तेरे लिये रस की तुम्बी भर लाऊगा।'

यह सुनकर मैने कहा इस खटली में बैठाकर आप मुझे नीचे उतार दीजिये, आप मत उतरिये।

तब उसने कहा 'नहीं बेटा तुम्हे डर लगेगा। मैंने आग्रह किया,

नहीं, मुझे डर नहीं लगेगा आप चिन्ता न करे और मुझे ही अन्दर जाने दे।

यह सुनकर उसने मुझे चमडे के वस्त्र पहना दिये। और रासायनिक द्रव्यों से निर्मित एक ऐसी योगवर्ति या मसाल जलाई जो निर्वात कूप में भी नहीं बुझती थी। उस योग बत्ती के प्रकाश मे उस साधु ने मुझे खटोले मे बैठा कर कुए मे लटका दिया। मै कुएं के तले पर जा पहुँचा और हाथ लटका कर तुम्बी भर ली। रस्सी के हिलते ही उसने मुझे ऊपर खैंच लिया और कहने लगा कि लाओ, यह तुम्बी मुझे पकड़ा दो, मैंने कहा, पहले मुझे बाहर निकालो। फिर मै तुम्हें तुम्बी दूंगा, उसने कहा नहीं पहले तुम्बी दो, फिर निकालूंगा।" मै समझ गया कि यह दुष्ट मुझे बाहर नहीं निकालना चाहता। यदि मैंने इसे तुम्बी पकडा दी तो यह रस लेकर मुझे कुए में फेंक देगा।

यदि मैं तुम्बी न दू तो हो सकता है कि यह मुझे बाहर भी निकाल ले। पर वह दुष्ट तो अपने सिवा किसी को भी उस कूप का मार्ग नहीं बताना चाहता था। साथ ही उसे यह भी भय था कि बाहर निकल जाने पर मैं उसमें से आधा रस ले लूंगा। इस पर जब उसने देखा कि मैं किसी प्रकार भी तुम्बी देना नहीं चाहता तो उसने मुझे डराया कि उसे तुम्बी न पकड़ाने पर वह मुझे फिर कुए मे लटका देगा। तदनुसार उसने मुझे धीरे-धीरे फिर कुए में उतारना शुरु कर दिया। बीच बीच में वह दुष्ट कहता जाता कि अब भी तू मुझे तुम्बी पकडा दे तो मैं तुझे बाहर खींच लू। पर मैने तो निश्चय कर लिया था कि मुझे तो दोनों अवस्था मे मरना ही है। फिर मैं उसकी स्वार्थपूर्ति का साधना क्यों बनू, इसलिए मैंने उसकी बात न मानी। और वह मुझे कुए में नीचे उतार कर चला गया। कुए के चारों ओर पक्का फर्श था, उसके ठीक बीच मे एक छोटा सा रस कुंड था। मैं उसी कुंड की दीवार पर जा बैठा, अन्धकारवृत उस कूप मे मुझे कुछ भी नहीं दिखाई देता था।

इस प्रकार कूप की वेदिका पर दस बारह घटे तक बैठे रहने के पश्चात् जब सूर्य मध्याह्न पर पहुँचा तो उस कूप मे यत्किंचित् प्रकाश की रेखा पडने पर मैंने देखा कि कुए के रस मे कोई मनुष्य खड़ा है। वह अर्द्ध चेतन सी अवस्था में था, और रस से बाहर निकले हुए

मुख के सिवाय हाथ, पॉव आदि उसके सब अग गल चुके थे। उसमें जीवन के चिन्ह शेष देख कर मैंने उससे पूछा, अरे भाई तुम कौन हो, और यहां कैसे आ पहुँचे हो। उसने कहा कि स्वर्ण रस का लोभ दे कर कोई साधु मुझे यहाँ ले आया, और मुझ से रस की तुम्बी लेकर मुझे रस कुण्ड के बीच में फेक कर चला गया। यह रस इतना तीव्र है कि शरीर इसको सहन नहीं कर सकता। फिर उसने मेरा हाल पूछा, मैंने भी उसे सारी कहानी कह सुनाई, इस पर उसने कहा, तुम बड़े भाग्यशाली और बुद्धिमान हो। जो तुमने रस की तुम्बी उसे नहीं दी, अन्यथा तुम को भी इस रस कुण्ड की वेदिका पर न उतार कर मेरी भाँति कुण्ड के बीच में फेक जाता। फिर तुम कभी यहाँ से नहीं निकल सकते। क्योंकि रस का स्पर्श करते ही तुम्हारे हाथ, पॉव भी गल जाते।

तब कुछ उत्साहित होकर मैंने पूछा, तो क्या अब मेरे इस कुए से निकलने की कोई आशा है। इस पर उस दयालु पुरुष ने दया करके बताया कि यहा कभी कभी एक बहुत बड़ी गोह रस पीने आया करती है। जब रस पीकर वापिस चढ़ने लगे, तो तुम उसकी पूंछ पकड़ लेना। मेरे भी यदि अग गल न गये होते तो मैं भी इसी उपाय से काम लेता।

उसकी यह बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ और उस गोह की प्रतिक्षा मे बहुत दिनों तक वही बैठा रहा। आखिर मेरी उस प्रतिक्षा का अन्त हुआ। और एक दिन मुझे बड़ा भारी विचित्र सा शब्द सुनाई दिया। उसे सुनकर पहले तो मैं मारे भय के थर-थर कॉपने लगा, पर फिर मुझे ध्यान आया कि शायद यह उसी गोह का शब्द हो। मेरा अनुमान सत्य निकला और देखते ही देखते वह गोह आगई और रस पीकर ज्योंही ऊपर चढ़ने लगी कि दोनो हाथों से मैंने उसकी पूंछ जोर से पकड ली। इस प्रकार गोह के पीछे-पीछे लटकता हुआ मैं कुए के बाहर निकल आया।

इस प्रकार मैं कुये से तो बाहर निकल आया, किन्तु मुझे इस अज्ञात बीहड़ वन के मार्गों का पता न था। इसलिए मै जगल में इधर उधर भटकने लगा, कि इतने में एक भयकर भैंसा मेरे सामने आ पहुँचा। वह भैंसा क्या था साक्षात् यमराज का वाहन ही था। काल के समान भयानक उस भैंसें के बड़े बड़े तीखे सींग, लाल लाल

नेत्र व विकराल रूप को देख मैंने सोचा कि अब इस भैंसे से बचना कठिन है ज्योंही वह मुझ पर झपटा कि दैवयोग से मुझे एक बहुत ऊची सी शिला दिखाई दे गयी। मैं लपक कर उस पर जा चढा, अब उस भैंसे ने मुझे मार डालने का कोई चारा न देख उस शिला के पास आ बडे जार जोर से टक्कर मारने लगा। किन्तु उसका कुछ असर न हुआ। इस प्रकार शिला पर चढ़ मैं बच तो गया, पर उस भैंसे से बच निकलने का कोई उपाय न था। क्योंकि उसके वहाँ से टल जाने के कोई लक्षण न थे। घटों तक वह मस्त भैंसा वहाँ उत्पात मचा कर मुझे भयभीत करता रहा। इधर भूख और प्यास के मारे मेरी जान निकली जा रही थी, सोच रहा था कि न जाने कितने दिनों तक अब इस शिला पर मुझे बैठे रहना पड़ेगा। उस अध कूप में से तो बच आया। पर अब इस शिला पर बैठे बैठे ही अन्न-जल के अभाव में प्राण त्याग देने पडेंगे। क्योंकि वह भैंसा तो मेरे प्राण लेने आया था, और अब वहाँ से टस से मस नहीं होना चाहता था।

दैवयोग से इस समय एक बड़ी विचित्र घटना घटी। पास ही के वृक्ष पर से एक भयकर अजगर ने उतर कर भैंसे का पीछा करना आरम्भ किया।

अब तो भैंसे का ध्यान मेरी ओर से बट गया और वह अजगर से उलझ गया। अजगर और भैंसे के इस सघर्ष में मुझे अपने प्राण बचाने का अवसर मिल गया। और मै उस शिला से कूद कर वहाँ से निकल भागा। भागते भागते मै उस जगल को पार कर गया। अब मुझे एक पगडडी दिखाई दे गयी, उस पगडडी पर कुछ ही दूर चलने पर मै एक चौराहे पर जा पहुँचा। अब तो मुझे विश्वास हो गया कि पास में ही कोई न कोई बस्ती अवश्य होगी। इस मार्ग पर थोडी ही दूर बढा था कि मुझे कोई व्यक्ति आता हुआ दिखायी दिया। मेरे पास में पहुचते ही उसने मुझे देखते ही कहा कि अरे! चारुदत्त तुम यहां किधर से आ निकले! यह और कोई नहीं, मेरा पुराना सेवक रुद्रदत्त था। मैने उसे सक्षेप में अपनी सारी कथा कह सुनाई। इसी समय उसने अपने थैले में से निकालकर कुछ खाने-पीने को दिया। और कहा कि यहा से थोडी दूर ही १राजपुर नामक मेरा ग्राम है। इसलिए आप मेरे घर चल।

१. प्रत्यत ग्राम। पठान्तरे।

तदनुसार मैं राजपुर जा पहुँचा। इस प्रकार कुछ दिन रुद्रदत्त के घर सुखपूर्वक बीते।

कुछ दिन वहां रहने के पश्चात् रुद्रदत्त ने मुझे कहा कि यहां से एक व्यापारियों का सार्थ विदेशों में द्रव्योपार्जन के लिये जा रहा है। इसलिये हम दोनों भी उनके साथ चलेंगे। आशा है इस बार तुम्हारा श्रम अवश्य सार्थक होगा।

तदनुसार हम दोनों साथ में सम्मिलित हो गये, चलता-चलता वह सार्थ सिन्धुसागर सगम नामक नदी को पार कर ईशान दिशा की ओर चलने लगा। चलते-चलते हम लोग रवश और चीन देशों में होते हुए वैताढ्य पर्वत की उपत्यका में स्थित शंकुपथ नामक पर्वत के पास जा पहुंचे। यहां के पडाव में हमारे मार्गदर्शकों ने तुम्बुरु का चूर्ण बनाकर हम लोगों को देते हुए कहा कि इस चूर्ण के थैलों को आप लोग अपने-अपने साथ रख लेवें। अपना सब सामान भी अपनी पीठ पर बांधले। क्योंकि यहां से पहाड़ की सीधी चढ़ाई चढ़नी पडेगी। हाथों से शिलाओं को पकड़-पकड़ कर चढ़ते समय पसीने के कारण हथेलियां शिलाओं पर फिसलने लगेंगी। यदि कहीं शिलाओं से हाथ छूट गया तो इस अनन्त गहरे पर्वत के खड्ड में ऐसे जा गिरेंगे कि कहीं हड्डी पसली का भी पता न लगेगा। मार्गदर्शकों के ऐसा समझाने पर हम लोगों ने तुम्बुरु चूर्ण के थैले अपने कन्धों पर लटका लिये।

अब हम छिन्न टंक (जहां पर निवास के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता) शिखर पर चढ़ने के लिये विजया नामक अगाध नदी के किनारे-किनारे शकुपथ पर्वत पर चढ़ने लगे। शकुपथ पर्वत की चोटी सचमुच शकु यानि कील के समान सीधी और नुकीली थी इस पर चढ़ते समय प्रतिक्षण प्राणों का सशय रहता था। इस पर चढ़ते समय बड़े-बड़े साहसियों के भी छक्के छूट जाते थे। कई हमारे पथप्रदर्शक सहायक "भोमिये" हमसे ऊपर चढ़ जाते और रस्सा नीचे डाल देते हम उसी के सहारे ऊपर जा पहुँचते, कहीं दूसरी ही युक्ति से काम लेना पड़ता। इस शकुपथ की चढ़ाई का स्मरण आते ही अब भी शरीर काँपने लगता है। पर सौभाग्य से हम लोग सकुशल शंकुपथ को पार कर दूसरे जनपद में जा पहुंचे। यहां हमने वैताढ्य पर्वत से निकलने

वाली इषुवेगा नदी के तट पर अपना पडाव डाला। यहा हमें भोमियों ने बताया कि इस नदी का प्रवाह सचमुच इषु अर्थात् वाण के समान तीव्र गति वाला है। इसकी धारा के भयकर वेग के कारण इसे कोई भी तैर कर पार नहीं कर सकता। साथ ही इसके जलका प्रवाह भी यहां से इतना नीचे है कि पहुँचना भी अत्यन्त कठिन है। इसलिये इस पर्वत से सामने के पर्वत पर पहुचने का यहां एक ही उपाय है। इस उपाय को सावधान होकर सुनो तथा समझ लो। हम इस नदी के दक्षिण तट पर अवस्थित हैं। इस दक्षिण पर्वत श्रेणी से उत्तर [illegible] में नदी के दोनों तटों पर उगी हुई ये वेत्र लतायें (केन) [illegible] हैं। जब हवा उत्तर से दक्षिण की ओर वहती हैं तो [illegible] उत्तर के तट पर उगी हुई वेतें दक्षिण किनारे [illegible] हैं। ज्यों ही वेत्रलताएं दक्षिण तट पर हमारे सामने [illegible] लेना चाहिए। कुछ देर पश्चात् जब दक्षिण [illegible] तो वे वेत्र लताए- हमें भी अपने साथ [illegible]। तदनुसार उन लम्बी-लम्बी वेंतों को पकड़ कर हम [illegible] नदी को पार कर गये। नदी पार करने का [illegible] इसका कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। [illegible] हो जाती तो तत्काल उस पाताल के [illegible] जा गिरते।

पर बैठ जाना चाहिए। साथ ही सब लोग अपनी आँखों पर पट्टियां बांधलें क्योंकि यहाँ कि चढ़ाई इतनी सीधी और ऊंची है कि आंखें खुली रहने से मनुष्य को झाईं आकर उसके गिर जाने का भय रहता है। अब हम इसी प्रकार बकरो की सवारी कर वज्रकोटिक पर्वत पर जा पहुचे। यहाँ की ठडी हवाओं के लगते ही बकरों की गति अवरुद्ध हो गई। उनके शरीर सुन्न पड़ गये और वे जहा के तहाँ खड़े रह गये। अब हमे भोमियो ने कहा कि सब लोग अपनी-अपनी आँखे खोल लो और बकरों से नीचे उतर आओ, आज का पड़ाव हमारा यहीं रहेगा।'

प्रातःकाल होते ही हमे सूचित किया गया कि रत्नद्वीप यहां से वह सामने दिखाई दे रहा है। किन्तु इस पर्वत और उस पर्वत के अन्तराल को कोई भी जीव चलकर पार नहीं कर सकता। वहा पर किसी भी प्राणी के लिये चलकर पहुँच सकना असभव है। इसलिये आप सब लोग अपने-अपने बकरों को मार डालिये और उनका मास पकाकर खा लीजिए। उनकी खाल की भाथडिया (भस्त्रा या मशक) बना लीजिए। सब लोग अपने साथ एक-एक छुरी लेकर इन भाथड़ियों मे घुस जाओ। रत्नद्वीप मे से भरुण्ड नामक महाकाय पक्षी यहां चुगने के लिये आते है। वे यहाँ आकर बाँघ, रींछ, आदि हिंसक जन्तुओं को मार कर उनका मांस खाते है और जो कोई बड़े जीव मिलते है, उन्हे उठाकर अपने देश मे ले जाते है। आप लोगो की रूधिराक्त भाथडियो को देखकर उन्हे कोई बडा मास पिंड समझ वे पक्षी रत्नद्वीप मे उठा ले जायगे। जब वे वहाँ ले जाकर तुम्हे धरती पर डाले तो अपनी छुरियो से भाथडियो को काटकर उनसे बाहर निकल आना। रत्नद्वीप मे जाने का एक मात्र यही उपाय है, वहा से रत्न लेकर वैताढ्य की तलहटियो के पास मे ही [1]स्वर्ण भूमि है वहा जा पहुँचेगे।

बकरो के वध करने की बात सुन मेरा तो हृदय दहल उठा। जिन बकरो ने ऐसे विकट मार्ग मे अपने ऊपर बैठा कर हमे यहा तक पहुँचाया। उन्हीं बकरो को अपने हाथ से मारने जैसा भयकर कुकृत्य भला कोई कैसे कर सकता था। इसलिये मैंने उन लोगों से कहा कि— यदि मुझे पहले से यह ज्ञात होता कि इस व्यापार में ऐसे राक्षसी कृत्य करने पडेगे, तो मैं कभी तुम्हारे साथ न आता, अब भी तुम लोग मेरे

१. स्वर्ण द्वीप

बकरे को मत मारो। क्योंकि उसने ऐसे सकटपूर्ण मार्गों से सकुशल निकाल कर हमारे प्राण बचाये है, इसलिए इनका तो हमें कृतज्ञ रहना चाहिए।

तब रुद्रदत्त ने पूछा, तुम अकेले यहाँ क्या करोगे ?

मैंने उत्तर दिया मै यहीं तप करता हुआ विधि पूर्वक देह का त्याग कर दूगा।

इस पर वे सब लोग मेरे कहने की कुछ भी परवाह न कर अपने अपने बकरों को मारने लगे। मैं अकेला उन लोगों को ऐसा करने से रोक न सका। दूसरे बकरों को एक एक करके मरता देख मेरा बकरा बड़ी दीन और कातर दृष्टि से मेरी ओर निहारने लगा। उसकी ऐसी दयनीय दशा देख मैंने कहा—

हे बकरे ! मैं तेरी रक्षा करने में असमर्थ हू। पर इतनी बात को ध्यान में रख कि यदि तुझे मरण वेदना हो रही है तो उसका कारण रूप तेरे द्वारा पूर्व भव में किया गया मरण भीरु अन्य प्राणियों का वध ही है। इसलिए तुझे इन वध करने वालों पर भी द्वेष का भाव नहीं रखना चाहिये। और भगवान् अरिहन्त ने अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अस्तेय इन व्रतों का ससार भ्रमण के नाश के लिए उपदेश दिया है। इसलिए तू सब सावद्य—पाप युक्त व्यापारों का त्याग कर दे। अब इस अन्तिम समय मे अपने हृदय में 'नमो अरिहताण' इस मन्त्र को धारण कर ले। इसी से तेरी सद्गति होगी। क्योंकि सकट के समय धर्म ही सब से बड़ा रक्षक है, धर्म ही माता है धर्म ही पिता है और धर्म ही बन्धु है।

मेरी यह बात सुन उस बकरे ने सिर झुका कर आत्मधर्म स्वीकार कर लिया। तब मैंने उसे 'नमोकार' मन्त्र सुनाया। इस प्रकार शान्त और स्थिर चित्त हुए उस बकरे को भी उन लोगों ने मार डाला। हम लोग एक-एक छुरी हाथ में लेकर उनकी खालों में जा छिपे। इसी समय वहाँ भारुण्ड पक्षियों के आने की फरफराहट सुनाई दी, और देखते ही देखते वे लोग हमें आकाश में उडा ले गये।

अभी मैं थोड़ी ही दूर आकाश में पहुचा होऊँगा कि इतने में दूसरे भारुण्ड ने उस पर आक्रमण कर दिया। इन दोनों पक्षियों की छीना-झपटी में मैं छिटक कर गिर पडा। दैवयोग से नीचे नदी बह रही

थी। इसलिए मुझे कोई चोट न आई, मैंने छुरी से भाथड़ी को चीर डाला, और तैरता तैरता बाहर आ निकला। मैने देखा कि आकाश में दूसरे पक्षी भाथड़ियों को उड़ाए लिए जा रहे हैं, कुछ ही क्षणों मे पानी पर तैरती हुई मेरी भाथड़ी को भी एक पक्षी झपट कर ले गया।

अब म यहाँ अपने साथियो से बिछुड़ कर अकेला रह गया। मुझे चारो ओर निराशा ही निराशा दिखाई दे रही थी क्योंकि यहाँ कहीं कोई भी जीवन का चिन्ह लक्षित नहीं होता था, फिर भी आशा का तन्तु न टूटा, मै लक्ष्यहीन सा पर्वत शिखर पर चढ़ने लगा। और सोचने लगा कि शायद इस शिखर के पार कहीं किसी आशा किरण की झलक दिखाई दे जाय। इस प्रकार बन्दरो की तरह उछलता-कूदता हाथ पैर मारता कहीं मैढक की तरह फुदकता और कभी सरीसर्पों की भांति रेगता हुआ अन्त में पर्वत शिखर पर जा ही पहुँचा।

पर्वत शिखर पर पहुचते ही मेरे हर्ष और आश्चर्य का ठिकाना न रहा। यहां पर एक मुनिराज तपस्या करते हुए मेरे आँखों के सामने उपस्थित थे। वे तप में लीन थे और ध्यानस्थ थे, इसलिए मैं उन्हे प्रणाम कर चुपचाप उनके पास बैठ गया। वहां बैठकर मै सोचने लगा कि यहां आने का सब से बडा यह लाभ हुआ कि मुझे ऐसे दिव्य महात्मा के दशन हो गये। उनकी शान्त मुख मुद्रा को देखते ही सच-मुच मेरा सारा श्रम दूर हो गया, और मैं चुपचाप उनका ध्यान समाप्त होने की प्रतीक्षा करने लगा।

ध्यान से उठने के पश्चात् उन्होंने मुझे भली भाँति पहचान कर पूछा कि 'क्या तुम इभ्यश्रेष्ठी भानुदत्त के चारुदत्त तो नहीं हो' उस पर मैने कहा हाँ भगवन् मैं चारुदत्त ही हू। तब उन्होंने पूछा 'तुम यहाँ कैसे आ पहुचे। क्योंकि यहां पर देवता और विद्याधरों के सिवा अन्य किसी का आना अत्यन्त कठिन है। इस पर मैने गणिकागृह प्रवेश से लेकर यहाँ पहुँचने तक की सारी कथा सक्षेप मे कह सुनाई। तब उस तपस्वी ने कहा कि तुमने मुझे पहचाना नहीं, मै वही विद्याधर अमितगति हू जिसे तुमने बचाया था। तब मैने बड़ी उत्सुकता से पूछा कि उसके पश्चात् आपने क्या किया।

इस पर उसने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

अमितगति का अगला वृतान्त—

मैंने तुम्हारे पास से उडकर अपनी विद्या का आह्वान किया। उन विद्याओं ने मुझे बताया कि वैताढ्य पर्वत पर तेरी प्रिया इस समय तेरे शत्रु के साथ काचन गुहा मे है। तब मै काचन गुहा में जा पहुँचा, वहां मैंने हाथों में मसली हुई पुष्पमाला के समान शोभा हीन और दुःख समुद्र में डूबी हुई अपनी प्रिया सुकुमारिका को देखा। धूमसिंह वैताल विद्या की सहायता से उसे मेरा मृत शरीर बताकर कह रहा था कि यह तेरे पति अमितगति का शरीर पड़ा है। इसलिये तू या तो मुझे स्वीकार करले या जलती हुई अग्नि में प्रविष्ट होकर सती हो जा। इस पर सुकुमारिका ने उत्तर दिया मैं तो अपने प्राणनाथ का ही अनुसरण करू गी। यह सुनते ही धूमसिंह ने काष्ठ एकत्रित कर एक जाज्वल्यमान चिता तैयार कर दी। वह मेरे शव को आलिंगन कर चिता में कूदना ही चाहती थी कि मैं जा पहुँचा। मेरी ललकार को सुनते ही वह दुष्ट नौ दो ग्यारह हो गया, मुझे जीवित देख सुकुमारिका बड़ी चकित और हर्षित हुई। इस प्रकार मैं अपनी प्रिया को साथ लेकर अपने माता पिता के पास सकुशल पहुच गया।

मेरे घर पहुँचने के कुछ दिनों पश्चात् विद्याधर राज पुत्री मनोरमा के साथ पिता जी ने मेरा विवाह कर दिया। और मुझे राज्य भार सौंप कर हिरण्यकुम्भ व सुवर्णकुम्भ नामक मुनियों से दीक्षा ग्रहण कर ली। उनके दीक्षा लेने के पश्चात् मनोरमा ने सिंहयश और वराहग्रीव नामक दो पुत्रों को तथा दूसरी पत्नी विजय सेना ने गधर्व सेना नामक पुत्री को जन्म दिया। अपने पिता के निर्वाण प्राप्त कर लेने का समाचार सुनकर मैंने भी अपना राज्य अपने पुत्रों को सौंप दिया और दीक्षा ले ली। तब से मैं यहीं रहकर ज्ञानाभ्यास व तप कर रहा हूँ। इस पर्वत को कर्कोटक पर्वत कहते हैं, और इस द्वीप को १ कण्ठद्वीप कहते हैं।

हे भद्रमुख ! यह वहुत अच्छा हुआ तुम यहा आ पहुँचे। अब यहां तुम्हे किसी प्रकार की कोई कमी न रहेगी। मेरे पुत्र प्रतिदिन मुझे वन्दन करने आते हैं। वे तुम्हें अपने साथ नगर में ले जायेंगे। वहाँ तुम्हारा स्वागत सत्कार कर विपुल धनमान के साथ तुम्हें चम्पा नगरी मे पहुँचा देगे।

मुनिराज के इस प्रकार कहते ही थोडी देर में विद्याधर राज सिंहयश और वराहग्रीव वहाँ आ पहुचे। उन्होंने पिता को वन्दना कर मेरे

१ कुम्भकण्टक द्वीप

बारे में कुछ पूछना चाहा था कि उससे पूर्व ही मुनिराज ने उन्हे बता दिया कि—हे पुत्रो ! यह तुम्हारे धर्म पिता है। इन्हे श्रद्धा से प्रणाम करो। बड़े भाग्यों से इनके दर्शन हुये हैं। ये बड़े कष्ट झेलकर यहां तक पहुचे है।

यह सुनकर उन्होंने पूछा कि तात आप इन्हे हमारा धर्म पिता कहते है तो क्या ये श्रेष्ठी चारुदत्त तो नहीं ?

इस पर उन्होंने कहा—हॉ वे ही हैं। धन की खोज मे घूमते भटकते हुए बहुत वर्षों के बाद वे हमे आ मिले है। तब उन्होने मेरा सारा वृतान्त कह सुनाया। जिसे सुन कर उन दोनो विद्याधरो ने बड़ी श्रद्धा के साथ मुझे नमस्कार किया और बोले आपने हमारे पिता जी की बड़े भारी सकट के समय, जब उन्हे दूसरा कोई बचाने वाला नहीं था रक्षा कर जीवनदान दिया। उस उपकार का बदला यद्यपि हम किसी प्रकार नहीं चुका सकते तो भी हम जितनी हो सकेगी अधिक से अधिक आप की सेवा सुश्रुषा कर उस ऋण से उऋण होने का प्रयत्न करेंगे। हमारे सौभाग्य से ही आपका यहा पधारना हुआ है।

हम लोगों की आपस में इस प्रकार बात चीत हो रही थी कि एक अत्यन्त रूपवान् दिव्याभरणों से अलकृत अत्यन्त तेजस्वी देव वहां आ पहुचा। उसने परम हर्षित होकर "परम गुरु को नमस्कार" ऐसा कहते हुये मेरे को वन्दना की और तत्पश्चात् अमितगति को भी बड़ी श्रद्धा से वन्दन किया। यह व्युत्क्रम देखकर विद्याधर ने पूछा कि देव, पहले साधु को वन्दना करनी चाहिये या श्रावक को। आपने यह वन्दना विपर्यय क्यों कर किया ?

तब उसने इस प्रकार उत्तर दिया—साधु को वन्दना करने के पश्चात् ही श्रावक को प्रणाम करना चाहिए। किन्तु चारुदत्त पर मेरी अगाध भक्ति है इसलिये और वास्तव में वे मेरे धर्म गुरु है इस कारण से भी यह क्रम विपर्यय हुआ। इनकी कृपा से ही मुझे यह देव शरीर प्राप्त हुआ है। तब विद्याधर ने पूछा कि यह किस प्रकार सम्भव हुआ सारा वृतान्त बताने की कृपा कीजिये। क्योंकि आपका यह कथन विस्मय जनक प्रतीत होता है।

इस पर देव ने कहा मैं पहले भव मे बकरा था। वहॉ पर इनके

साथी व्यापारी जब मुझे मारने लगे तो इन्होंने मुझे 'नवकार मन्त्र का उपदेश देकर मेरे मन को शान्ति प्रदान की। अरिहन्त को नमस्कार करते हुये स्थिर रूप से मैं कायोत्सर्ग के लिये खडा रहा। इसी समय इनके साथी व्यपारियों ने मुझे मार डाला, और अरिहन्त के स्मरण के प्रभाव से मैं देव बन गया। अब मैं नन्दीश्वर द्वीप मे आया था। जब मुझे ज्ञात हुआ कि चारुदत्त यहाँ आये हुये हैं। मै इनके दर्शनों के लिये यहा आ पहुँचा।

तब विद्याधरों ने कहा कि तुमसे पहले हम इनका सत्कार करेंगे। क्योंकि पहले इन्होंने हमारे पिता को जीवन दान दिया था, और फिर तुम्हे धर्मोपदेश। देवने कहा नहीं, पहले मुझे अधिकार है इस प्रकार दोनों ने बडे प्रेम और आदर के साथ मेरी सेवा की। तत्पश्चात् विद्याधर मुझे शिवमन्दिर नगरी में लेआये, वहां तक देव भी मेरे साथ आया और बिदा होते समय उसने मुझे कहा कि 'आवश्यकता के समय आप मुझे अवश्य स्मरण कीजिये। मै तत्काल आ पहुँचूगा।' अब मैं विद्याधरों के घर मे अपने ही घर के समान आनन्द से रहने लगा।

मेरागृहागमन

कुछ दिन रहने के पश्चात मुझे अपनी माता और पत्नी की याद आने लगी। इसलिये मैंने विद्याधरो से कहा कि यद्यपि मुझे यहा सब प्रकार की सुख सुविधाये है किसी प्रकार का कोई अभाव नहीं। फिर भी अब मुझे अपने घर की याद आ रही है' इस पर वे बोले 'आप जैसा उचित समझे कीजिये। हम आपकी इच्छा मे किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं डालना चाहते, पर हम आप से यह निवेदन करना चाहते है कि हमारी बहिन गन्धर्वसेना के लिये नैमित्यिकों ने बताया हुआ है कि इसका पति कोई श्रेष्ठ पुरुष होगा। वह इसे संगीत विद्या में पराजित कर इसका वरण करेगा। क्योंकि किसी मनुष्य की हमारे यहा पहुच नहीं हो सकती, इसलिये पिता जी ने कहा कि इसे तुम चारुदत्त के साथ भू लोक में भेज देना। वहा इसका विवाह सरलता पूर्वक सम्पन्न हो जाय। अत: आप इसे अपने साथ ले जाइये।

विद्याधरो के कथनानुसार मै उस कन्या को अपने साथ ले अपने

घर आने की तैयारी करने लगा कि इतने में वह देव एक विमान में बैठकर वहाँ आ पहुंचा। उन्होंने मुझे बहुत से रत्नादि पदार्थ भेंट में दिये, और हम दोनों को विमान में बिठाकर चम्पापुरी में छोड़ गये हम लोग तत्काल अपने मामा सर्वार्थ के घर पहुचे। वहा मेरी माता और पत्नी ने मुझे देखकर अपार प्रसन्नता प्रकट की। उधर देव ने मेरे लिये यह भव्य भवन हाथी, घोड़े रथ वाहन आदि तथा दास दासियों का प्रबन्ध कर दिया, और महाराजा से जाकर मेरे आगमन का वृतान्त कह सुनाया। तब महाराजा ने अपने सब परिजनों के साथ आकर मेरा बहुत अधिक स्वागत सम्मान किया। तब से लेकर मैं अपनी माता तथा पत्नी मित्रावती के साथ मैं आनन्द पूर्वक यहीं रह रहा हूं। उसके पश्चात् गन्धर्व सेना के साथ आपका जिस प्रकार विवाह हुआ वह सब वृतान्त आप जानते ही हैं। इस प्रकार हे वसुदेव यह गन्धर्व सेना मेरी नहीं, प्रत्युत विद्याधर की पुत्री है।

चारुदत्त के मुख से गन्धर्व सेना का यह वृत्तान्त सुन कर वसुदेव बहुत प्रसन्न हुए। गन्धर्व सेना के प्रति उनका प्रेम-भाव अब और भी अधिक बढ़ गया।



मातंग सुन्दरी नीलयशा

वसुदेव इस प्रकार चारुदत्त के घर पर सानन्द जीवन यापन कर रहे थे। इसी समय वसन्त ऋतु का सुहावना समय आ पहुचा। शिशिर ऋतु का रूखा सूखा समय समाप्त हो गया। पत्र विहीन वृक्ष-लताए सुन्दर मनोहर पत्र-पुष्पों के बानक धारण कर मनुष्यो के मनको मोहित करने लगीं। आम्र-मजरियों की मोहक महक (सुगन्ध) पर मुग्ध हो मधुप मधुर ध्वनि करने लगे। काननो मे कोकिल की कुहू-कुहू की ध्वनि गू ज उठी। ऐसे सुहावने समय मे चम्पा नगरी के वन-उपवन और उद्यान आमोद-प्रमोद के आगार बन गये। जहाँ देखिये वहीं नृत्य वाद्य और सगीत की बड़ी-बड़ी सभाये जुडने लगीं। कला-कारों की मडलियाँ उपस्थित जन समूह के समक्ष अपनी कला का प्रदशन कर सहृदयों के हृदयो को हरने लगीं। ऐसे ही वसन्त के सुहावने म मे एक दिन सुन्दर वस्त्रालकारो से सुसज्जित होकर वसुदेवकुमार र्वसेन व अन्य परिजनों के साथ रथ पर सवार हो भ्रमण के लिये

निकल पड़े। चलते-चलते वे लोग उद्यान मे जा पहुँचे और वहाँ अशोक वृक्ष के नीचे बैठकर विश्राम करने लगे।

थोड़ी ही दूर यहाँ पर जन-समूह एकत्रित दिखाई दिया। इस जन-समूह के बीच मे नीलकमल के समान कान्ति वाली एक परम सुन्दरी, नवयुवती अपनी नृत्य सगीत आदि कलाओं का प्रदर्शन कर रही थी। उसके इस अद्भुत कला-चातुर्य को देख-देख वसुदेव मन ही मन मुग्ध हो रहे थे। उस कला के प्रदर्शन की अलौकिकता के कारण वसुदेव इतने तन्मय हो गये कि उन्हें अपने आस-पास के लोगों का भी ध्यान नहीं रहा। वास्तव में यह मातग[1] कन्या जितनी सुन्दर थी उसकी कला उससे भी कहीं बढ़-चढ़कर थी। वसुदेव को इस प्रकार अपने आपको खोया सा देख गन्धर्व सेना से न रहा गया। उसने तत्काल वहाँ से प्रस्थान करने की तैयारी कर ली। चलते समय वसुदेव और उस मातग कन्या की चार आँखें हुई। इस पर वसुदेव सोचते रह गये कि 'कहाँ तो ये मातग जाति और कहाँ इसका यह अलौकिक रूप। इस रूप के साथ ही साथ शास्त्रानुसार इसकी विचक्षण सगीत प्रतिभा ने तो इसके सौन्दर्य में सोने में सुगन्ध का काम कर दिया है। कर्मों की गति भी सचमुच बड़ी ही विचित्र है। जिसने कि ऐसी नीच जाति की कन्या को ऐसा दिव्य रूप प्रदान किया है। यही कुछ सोचते-विचारते वसुदेव बैठे हुए थे कि गन्धर्वसेना ने उन्हें मानो सचेत करते हुये कहा कि क्या अब भी उस मातग कन्या के रूप में ही खोये रहोगे? आपको ऐसे महा वशज होते हुए उस नीच कन्या पर आसक्त होने में लज्जा का अनुभव नहीं होता?

इस पर वसुदेव ने उत्तर दिया मै उसके रूप को नहीं प्रत्युत उसकी सगीतकला को देख रहा था। सच मानो उसकी कला की उत्कृष्टता ने मुझे इस प्रकार तन्मय कर दिया था कि वह कौन है और कैसी है, यह जानने या देखने का तो मुझे ध्यान ही नहीं रहा। इसलिये उस मातग कन्या के प्रति अन्य किसी प्रकार का कोई भाव मेरे मन में नहीं है। तुम विश्वास रखो कि मेरे हृदय मे तुम्हारे सिवाय अन्य किसी के लिये कोई स्थान नहीं हो सकता।

---

१. चाण्डाल कन्या, भीलकन्या — नटपुत्री

—हिं० सा० कोष

वसुदेव के इस प्रकार आश्वासन दिलाने पर गधर्वसेना के मन का विकार दूर हो गया। किन्तु थोडी ही देर पश्चात एकवृद्धा मातग सुन्दरी वसुदेव के पास आ पहुची और कहने लगी कि—बेटा वह मातग सुन्दरी जिसने अपनी कला का प्रदर्शन कर तुम्हारे मन को मोहित किया है, मै उसी की माता हूं। मै जानती हूँ कि तुमने मेरी पुत्री के हृदय को हर लिया हैं। इसलिए अच्छा है कि तुम उसे स्वीकार कर लो।' इस प्रस्ताव को सुनकर वसुदेव अत्यन्त चकित हुए और कहने लगे कि "हे माता विवाह आदि सम्बन्ध समान कुल, शील और वय वालों मे ही श्रेष्ठ समझे जाते है। असमान कुल गोत्रों के पारस्परिक सम्बन्धों को कोई अच्छा नहीं कहता। इस लिये आप मुझे क्षमा करे। मैं आपके इस प्रस्ताव को स्वीकार करने मे सर्वथा असमर्थ हूँ।

यह सुन मातग वृद्धा ने उत्तर दिया कि 'बेटा तुम्हे हमारे कुल शील के सम्बन्ध मे कुछ सन्देह नहीं करना चाहिये। यदि तुम कुल सम्बन्ध में जानना ही चाहते हो तो सुनो—

हे कुमार! इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे वनिता नामक एक अत्यन्त रमणीय नगरी थी। वहां आदि पुरुष महाराज ऋषभदेव का शासन था। उन्होंने अपने शासन में असि–खड्ग विधि, मास–लेखन विधि, कसि–कृषि कर्म तथा बहत्तर कला पुरुषों की, चौसठ कला स्त्रियों की तथा एक सौ प्रकार का शिल्प कर्म इत्यादि कार्यों के उत्पादन व सम्पादन की समुचित व्यवस्था की थी। उससे पहले यह भरतक्षेत्र (भारत) अकम भूमिक्षेत्र रहा था, जिस में मनुष्य कर्मण्य अर्थात् पुरुषार्थ हीन जीवन व्यतीत करता था, मात्र उसके जीवन का आधार प्रकृति प्रदत्त वृक्ष थ जिन्हे शास्त्रीय भाषा मे कल्पवृक्ष कहते है। किन्तु यह व्यवस्था अधिक देर न रह सकी। क्योंकि *'वट्टणालक्खणो कालो'* के अनुसार काल का स्वभाव वर्त्तना है वह प्रत्येक को अपनी वर्त्तना शक्ति से परिवर्तित करता (बदलता) रहता है। इस काल के दो रूप है निर्माण और सहार। वह एक रूप से किसी वस्तु का निर्माण करता है तो समयोपरान्त उसे अपने दूसरे विकराल रूप से उसका सहार भी कर देता है अतः यह अनन्त है, अगम्य है इसकी गति विचित्र है। तदनुसार प्रकृति प्रकोप से उन वृक्षों की शक्तिया कम होती चली गई जिससे वस्तुओं का अभाव होने लगा और जहां अभाव होता है वहा कलह

आदि निकृष्ट तत्त्व आ जाया करते हैं अत परस्पर वस्तुओं के लिए सन्देह होने लगा और मानवीय व्यवस्था भग होने लगी। इस प्रकार की परिस्थिति में उस युगपुरुष ने वस्तु उत्पादन आदि की कायविधि बतायी जिस से कि उसका अभाव दूर सके और मानव अपने आपको सही रूप में रख सके। उनकी इस पद्धति से सारा भारतक्षेत्र सुखपूर्वक अपना जीवन यापन करने लगा। कहीं भी दुःख दैन्य का नाम नहीं सुनाई देता था। आगे चलकर इन्होंने मानव जीवन को शुद्ध और निर्मल बनाने के लिए अध्यात्मवाद (धर्म नीति) का विधान किया। जिस से प्राणी क्रमश आत्म-विकास करता हुआ आत्मा से महात्मा और उससे परमात्म पद को प्राप्त कर सके। इसी लिए इन्हें आदि पुरुष, सृष्टि के आदि कर्त्ता, आदिनाथ और शास्त्रीय शब्दों म प्रथम तीर्थंकर, मार्गदर्शक आदि विशेषणों से पुकारा है।

इनके सुमगला और सुनन्दा नामक दो रानिया थीं। जो रूप, शील आदि समस्त स्त्री गुणों से युक्त थीं। सुमगला ने भरत+ आदि अठ्यानव पुत्रों तथा ब्राह्मी नामक पुत्री का जन्म दिया। जब कि सुनन्दा ने बाहुबलि और सुन्दरी नामक पुत्र-पुत्री को। इस प्रकार महाराज ऋषभदेव के एक सौ दो मन्तानें थीं। ये सब सन्तानें भी अपने पिता की भाँति गुणों से युक्त थीं।

कालान्तर मे अपने कर्म मल दूर करने तथा विश्व मे त्याग एव तप का विशिष्ट आदर्श उपस्थित करने के लिए महाराज ऋषभदेव ने अपने सब पुत्रों को राज्य बांट कर तथा भरत को राज्याभिषेक कर स्वय ने श्रमणवृति अगीकार कर ली। हे वसुदेव उन्हीं से यह सन्यासाश्रम का प्रादुर्भाव हुआ है। हा, तो जब महाराज ऋषभदेव अपने पुत्रों को राज्य बांट रहे थे उस समय उनके नमि और विनमि नामक दो पुत्र वहाँ उपस्थित न थे। फलतः वे दोनों राज्य से वचित रह गए। अब जब भगवान् तपस्या मे लीन हो गये तो वे दोनों पुत्र राज्य प्राप्ति के लिये उनकी सेवा करने लगे।

+ जिस के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पडा। शास्त्रीय दृष्टि से यह प्रथम चक्रवर्ति राजा था जिस ने छ खण्ड पर अपना आधिपत्य जमाया।

इधर इन्हीं दिनो नागराज धरणेन्द्र भगवान् के दर्शन के लिए आ पहुचे। उन्होंने उन्हे इस प्रकार उपासना करते देख कौतुहल वश पूछा कि 'तुम भगवान् की किस लिए सेवा (उपासना) कर रहे हो?' तब उन भाइयो ने कहा कि हम क्षत्रिय हैं; भगवान् के लघु पुत्र हैं। जब महाराज ने अपने राज्य का सविभाजन किया उस समय हम कहीं दूर गए हुये थे अतः हमें राज्य भाग नहीं मिल सका। इसी लिए हम उपासना कर रहे है।

धरणेन्द्र ने उन्हें इस प्रकार राज्य के इच्छुक जान कर तथा उन परम योगी, निरुद्धाश्रवी भगवान् के पुत्र और उपासक समझ कर वैताढ्य पवत की दक्षिण व उत्तर श्रेणी का राज्य उन्हे दे दिया और साथ ही उन्हे गगन गामिनी विद्या भी दे दी। जिस से कि वे सरलता पूर्वक वहा पहुच सके। कालान्तर मे दिति और अदिति नामक दो धरणेन्द्र की अनुगामिनी देवियों ने उसकी आज्ञानुसार उन्हे महारोहिणी, प्रज्ञप्ती, गोरी, विद्युत्मुखी, महाज्वाला, मातगी आदि नव प्रकार की महाविद्याए देकर विद्याधरों के स्वामी बना दिये। इस प्रकार नमि व विनमि दोनों भाई देवों के सदृश राज्य सुखोपभोग मे समय बिताने लगे।

एक बार क्रीड़ा करते हुए अनायास ही उनके हृदय मे संसार से विरक्त होने का विचार आ गया। उसी समय उन्होंने अपने-अपने पुत्रों को राज्य तथा विद्याए बांट दीं और जिनचन्द्र अणगार के पास दीक्षित हो गये। आगे चलकर इन्हीं महाविद्याओं के नाम पर विद्याधरों के वश चले अर्थात् महाराज नमि और विनमि के पुत्रों को जो जो विद्याए मिलीं उन्हीं के नाम से वे और उनके जनपद विख्यात हुए। जैसे गोरी के गौरिक, गधारी के गन्धर्व या गाधार, मात्तङ्गी के मात्तङ्ग विद्याधर कहलाये। इस प्रकार महाराज नमि और विनमि के पश्चात् असख्य विद्याधर राजा हुए है जिन्होने राज्य श्री को तृणवत् त्याग कर सयम का आश्रय ले लिया। उन्हीं मात्तग विद्याधर वश परम्परा में एक विधसितसेन नामक बड़े पराक्रमी राजा हो चुके है। उनके पुत्र महाराज प्रहसित आजकल विद्याधर पति हैं। मैं उन्हीं की पत्नी हूं। मेरा नाम हिरण्यमती है। नलिनिसभ नगर के स्वामी हिरण्यरथ की पुत्री तथा प्रीतिवर्द्धना की आत्मजा हूं। मेरे पुत्र का

नाम सिंहदाढ़ (दष्ट्र) है। उस रोज मात्तङ्ग वेष में नृत्य करती हुई नीलोत्पल के समान वर्ण वाली जो कुमारी तुम्हें दिखाई दी वह उसी प्रधान कुल मे उत्पन्न राजकुमार सिंहदष्ट्र की पुत्री नीलयशा है।

यह तो आप जानते ही है कि उसने आपको देखते ही अपना हृदय आपके चरणों मे समर्पित कर दिय था। इसलिए आप अभी चलिए। और उसका पाणिग्रहण कर उसे जीवन दान दीजिये अन्यथा वह आप के विरह में तड़प तड़प कर प्राण दे देगी।

वृद्धा के इस वृतान्त को सुनकर भी वसुदेव ने उपेक्षा पूर्वक कहा कि इस समय तो मैं आप को कुछ निश्चित उत्तर देने की स्थिति में नहीं हूँ, कुछ समय मुझे विचार करने के लिए दीजिए। आप फिर कभी आने का कष्ट करें तो मैं इस विषय पर भली भाँति सोच समझ कर आपको अपने विचार सूचित कर सकूंगा।

वसुदेव के इस उत्तर से बुढ़िया को निश्चय हो गया कि वह इस बात को टालना चाहता है। इसलिये उसने कुछ रोष प्रकट करते हुए कहा—तुम नहीं चाहते पर मैं चाहती हू। इसलिये तुम्हें मेरे पास आना होगा। अभी तो मैं जाती हूँ पर फिर तुम स्वय मेरे पास पहुचोगे।

यह कहते-कहते वह बुढिया वहां से चली गई। इधर इन्हीं विचारों में मग्न वसुदेव को रात्रि में शैय्या पर पडे पडे बहुत देर तक नींद नहीं आई। नीलयशा और उसकी माता के कार्यों तथा व्यवहारों का स्मरण करते करते ज्यों ही उनकी आँख लगी कि उनका हाथ किसी ने पकड लिया। वे आँख मींचे मींचे ही सोचने लगे यह हस्त-स्पर्श तो अपूर्व है, गधर्वसेना का तो ऐसा स्पर्श हो नहीं सकता। इस प्रकार सोचते हुए उन्होंने आंख खोल कर देखा कि एक भीषण रूप वाला वैताल उनकी बांह पकड़ कर उन्हे उडाये लिये जा रहा है। उनके देखते ही देखते वह उन्हें उठा कर कहीं दूर श्मशानों में ले गया। वहा एक बड़ी भयकर चिता धधक रही थी। उस चिता को देखते ही एक बार तो वे बहुत घबराये। किन्तु फिर विचार किया कि मैंने बचपन में साधु-

१ शीत और उष्ण का अभिप्राय उनके शरीरस्पर्श से है। जिसके शरीर का स्पर्श उष्ण हो वह उष्ण वैताल और जिसका स्पर्श ठडा हो उसे शीत वताल कहते हैं।

मुनिराजो से सुना है कि वैताल दो प्रकार के होते है। शीत और उष्ण। उष्ण वैताल यदि किसी को हर कर ले जाता है ता समझना चाहिए का किसी शत्रु की जाल साजी है और शीत वैताल यदि ले जाये तो कोई किसी विशेष लाभ की प्राप्ति समझनी चाहिए। अतः यह तो शीत वैताल है। यह मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकता। अत वे चुपचाप देखत रह। इस समय वह वैताल वहां से अदृश्य हो गया। किन्तु उस के स्थान पर वही बुढ़िया वहा प्रकट हो गई। और मुस्करा कर उन्हें कहने लगी कि "पुत्र! वैताल तुझे यहां उठा लाया। इसके लिये बुरा मत मानना। तुमने मेरी उपेक्षा की इसी लिए तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार किया गया है। अब मै तुम्हें यहॉ से उड़ाकर वैताढ्य पर्वत पर ले जाऊगी।"

अब तो वसुदेव के मुख से कोई शब्द ही न निकल रहा था। वे उस बुढिया के हाथों में कठपुतली की भाति विवश से पड़े हुए थे। वह उन्ह वहा से लेकर चलती बनी। मार्ग मे जाते-जाते उसने वसुदेव को धतूरे का धुआं पीते हुए एक व्यक्ति को दिखा कर कहा कि वह ज्वलनवेग का पुत्र अगारक है। जिसने तुम्हें आकाश से पृथ्वी पर फेंक दिया था। और इसी कारण यह उसी समय अपनी विद्या से भ्रष्ट हो गया था। अब यह यहा पर फिर अपनी विद्या की साधना कर रहा है। तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ पुरुषा के दर्शन से इसकी विद्या शीघ्र सिद्ध हो सकती है। इसलिये तुम इसे दर्शन देकर कृतार्थ कर दो तो बहुत अच्छा होगा।

वसुदेव ने उत्तर दिया कि आप इसे दूर ही रहने दें मै इसे देखना भी नहीं चाहता।

यहॉ से आगे बढ़कर उस बुढिया ने उन्हे तत्काल वैताढ्य पर्वत पर पहुंचा दिया। वहां पर सिंहदंष्ट्र राजा ने उनका बड़े उत्साह के साथ स्वागत कर उन्हे महलो में पहुँचा दिया और उनका अपनी पुत्री नीलयशा के साथ विवाह कर दिया।

कुछ समय बीतने पर एक भयंकर वज्र के समान शब्द सुनाई दिया। इस शब्द को सुनकर जनता मे चारों ओर महान् कोलाहल छा गया। इस प्रकार लोग की व्याकुलता देख वसुदेव ने नीलयशा से पूछा कि यह क्या मामला है ? इस पर वह कहने लगी—

"हे नाथ शकटमुख नामक नगर के महाराजा नीलधर और रानी नीलवती थी। उनके नीलाञ्जना नामक एक पुत्री और एक नील नामक एक पुत्र था। बचपन मे खेलते हुए उन दोनों ने आपस में यह प्रतिज्ञा कर ली कि यदि हम दोनों में से किसी के लड़का और दूसरे के लडकी होगी तो हम दोनों उनका विवाह आपस मे कर देंगे।

जब नीलाञ्जना बडी हुई तो उनका विवाह मेरे पिता जी से कर दिया गया। अब उस प्रतिज्ञा के अनुसार मेरा विवाह नील के पुत्र के साथ होना चाहिए था। किन्तु मेरे पिता जी को बृहस्पति नामक नैमित्तिक ने बताया था कि नीलयशा का विवाह यदुवंशोत्पन्न परम सुन्दर वसुदेव कुमार (अर्द्धभरत के स्वामी के पिता) के साथ होगा। यही कारण है कि मेरे पिता जी ने विद्या के बल से आप को यहाँ बुलाकर मेरा आपके साथ विवाह कर दिया है।

मेरे विवाह का समाचार सुनते ही उनका पुत्र नीलकंठ और महाराज नील आगबबूला हो उठे। उन दोनों ने यहाँ आकर बड़ा भारी उत्पात मचाया है। किन्तु आप चिन्ता न करें पिता जी ने यह सब उपद्रव शान्त कर दिया है।

यह सब वृत्तान्त सुनकर वसुदेव अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे अपनी नव-विवाहिता पत्नी के साथ आमोद-प्रमोद में अपना समय व्यतीत करने लगे।

नीलयशा का मयूर द्वारा हरा जाना

१ एक दिन अनेक विद्याधर विद्या की साधना करने के लिए और औषधियाँ प्राप्त करने के लिए ह्रीमान पर्वत की ओर जा रहे थे। उन्हें देखकर वसुदेव ने नीलयशा से कहा कि मैं भी विद्याधरों की सी कुछ विद्याए सीखना चाहता हूँ। क्या तुम मुझे अपना शिष्य समझ कर कुछ विद्याएँ सिखा सकती हो? नीलयशा ने कहा "क्यों नहीं चलो हम लोग इसी समय ह्रीमान् पवत पर चलें, वहा मैं आपको इस सम्बन्ध में बहुत सी बातें बतलाऊँगी।"

इसके बाद नीलयशा वसुदेव को ह्रीमान् पर्वत पर ले गई। वहां का अत्यन्त रमणीय दृश्य देखकर वसुदेव का चित्त चचल हो उठा। वसुदेव की यह अवस्था देख नीलयशा ने एक कदली वृक्ष उत्पन्न किया

और उसकी शीतल छाया में दम्पत्ति क्रीडा करने लगे। उसी समय वहा एक माया-मयूर आ पहुँचा, उसका सुन्दर रूप निहार कर नीलयशा उस पर मुग्ध हो गई और उसको पकडने की चेष्टा करने लगी। माया-मयूर कभी समीप आता तो कभी दूर दौड़ जाता, कभी झाड़ियो में छिप जाता तो कभी मैदान मे निकल आता। नीलयशा उसको पकड़ने की इच्छा से कुछ दूर निकल गई और अन्त मे जव वह उसके पास पहुंची तो मयूर ने नीलयशा को अपने कन्धे पर बैठा लिया। तत्पश्चात् मयूर आकाश मार्ग से जाता हुआ अदृश्य हो गया।

मयूर की इस लीला को देख कर वसुदेव आश्चर्य मे पड गये। वे मयूर के पीछे दौडे। वहुत दूर तक उन्होने मयूर का पीछा किया किन्तु जब वह उनके नेत्रो से ओझल हो गया तव वे हतोत्साह होकर वहीं खड़े हो गये। इधर सन्ध्या वेला हो चली थी अतएव कहीं विश्राम का प्रबन्ध करना आवश्यक था। वसुदेव ने इधर उधर देखा तो मालूम हुआ कि वे एक व्रज (गायों के बन्द करने का स्थान) के समीप आ पहुंचे हैं। वे वहां गये। वहा गोपियों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। इस प्रकार वसुदेव ने रात्रि वहीं व्यतीत की और सूर्योदय के पूर्व ही वे वहां से दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े।

मार्ग में उन्हे गिरितट नामक एक गांव आया। वहा उन्हे वेद-ध्वनि सुनाई दी। वसुदेव ने एक ब्राह्मण से इसका प्रयोजन पूछा।

१एक बार नीलयशा ने वसुदेव से कहा कि हे" नाथ आप विद्या वल से रहित हैं अत आपको कुछ विद्याए अवश्य सीख लेनी चाहिए, नही तो विद्याधरो द्वारा आप कही कभी भी पराजित हो सकते हैं। क्योकि यह समस्त वैताढ्य प्रदेश विद्याधरो का ही है।' इस पर प्रसन्न हो वसुदेव ने कहा प्रिये! तुमने मेरे लिए अत्यन्त हित की बात सोची है अत मैं प्राणपण से तेरे पर न्योछावर हूं। तेरे जैसी मुझे हितैषी जीवन सगिनी नही मिली। मेरे मन मे भी विद्या सीखने की कई बार अभिलाषा जागी किन्तु कोई सिखाने वाला नही मिला। इसलिए प्रिये! जैसी तेरी रुचि हो वैसी ही मुझे विद्या सिखा दो।

इस प्रकार वसुदेव की अनुमति प्राप्त कर नीलयशा उन्हे वैताढ्य पर्वत पर ले गई। वैताढ्य जैसे रमणीय प्रदेश को देखकर वसुदेव उसमें क्रीडा करने को लालायित हो उठे और वे अपनी पत्नी के साथ प्रकृति सुषमा के निहारने को इधर उधर घूमने लगे। * वसुदेवहिण्डि—

उसने इसका प्रत्युत्तर दिया कि 'दिवाकर नामक एक विद्याधर ने अपनी पुत्री का विवाह नारद के साथ किया था। उन्हीं के वश का [1]सुरदेव नामक एक ब्राह्मण इस समय इस गाव का स्वामी है। उसकी क्षत्रिया नाम की पत्नी से एक कन्या उत्पन्न हुई थी जिस का नाम सोमश्री है। सोमश्री शास्त्रों की अच्छी ज्ञाता मानी जाती है। सोमश्री के विवाह के सम्बन्ध में कराल नामक एक ज्ञानी ने बताया कि शास्त्रार्थ में जो सोमश्री को परास्त कर देगा वही उसे वरेगा। यह सुनकर वसुदेव ने उसको प्राप्त करने की अपनी घोषणा कर दी। वसुदेव को यह भी मालूम हुआ कि सोमश्री को प्राप्त करने के लिए कई युवक लालायित हैं और वे ब्रह्मदत्त नामक एक उपाध्याय से निरन्तर शास्त्रों का अभ्यास करते हैं। अतः वे ब्रह्मदत्त के घर जा पहुँचे और निवेदन किया मैं गौतम गोत्रिय स्कन्दिल नामक ब्राह्मण हूँ और आपके पास अध्ययन के लिए आया हू। अध्यापक ने सहर्ष उन्हें अपनी अनुमति दे दी। बस फिर क्या था। बहुत अल्प समय में उन्होंने समस्त शिष्यों से बाजी मार ली और अन्त में सोमश्री को पराजित कर उससे विवाह कर लिया।

वसुदेव कुमार अपनी इस नवीन ससुराल में बहुत समय तक आनन्द करते रहे। अकस्मात् एक दिवस उनकी भेंट एक उद्यान में इन्द्रशमा नामक ऐन्द्रजालिक से हो गई। उसने उनको इन्द्रजाल के अनेक अद्भुत चमत्कार करके दिखाये। यह देखकर वसुदेव की भी उस विद्या का सीखने की इच्छा हुई। उन्होंने इन्द्रशर्मा से यह विद्या सिखाने के लिए अनुरोध किया।

इन्द्रशर्मा ने कहा कि यह विद्या सीखने योग्य है और अल्प परिश्रम से सीखी जा सकती है। सन्ध्या के समय इसकी साधना प्रारम्भ की जाय तो प्रातःकाल सूर्योदय के पहले ही यह विद्या सिद्ध हो जाती है। परन्तु साधना काल में इसमें अनेक विघ्न-बाधाए उपस्थित होती हैं। कभी कोई डराता है, कभी कोई मारता है, कभी हसाता है और कभी ऐसा मालूम होता है मानों हम किसी वाहन पर बैठकर कहीं चले जा रहे हैं। अतः इस विद्या की साधना के समय में एक सहायक की आवश्यकता रहती है। वसुदेव ने कहा कि यहाँ विदेश में मेरे पास

---

१ विस्वदेव। देवदेव

कोई सहायक नहीं है। क्या मैं अकेला इसे सिद्ध नहीं कर सकता ?

इन्द्रशर्मा ने वसुदेव को उत्साहित करते हुए कहा आप अकेले ही करिये, मैं आपकी सहायता के लिए प्रतिक्षण यहाँ उपस्थित हूँ। यदि विशेष आवश्यकता हुई। तो मेरी यह स्त्री-वनमाला भी हमारी सहायता कर सकती है।

इन्द्रशर्मा के ये वचन सुन वसुदेव यथाविधि उस विद्या की साधना में लीन हो गए। रात्री के समय जब वे आदेशानुसार जप-तप में लीन हो गये तब इन्द्रशर्मा उन्हें एक पालकी मे बैठाकर वहाँ से भाग चला। वसुदेव को पहले ही समझा दिया गया था कि साधना के समय भ्रम हो जाता है इसलिए वे समझे कि वास्तव मे मुझे भ्रम हो रहा है। इस प्रकार इन्द्रशर्मा रात भर वसुदेव को गिरितट से बहुत दूर उड़ाकर ले गया। प्रातःकाल सूर्योदय होने पर वसुदेव विशेष रूप से सजग हुए तव वे ससझे कि उन्हें कपटी विद्याधर पालकी में बैठाकर कह उड़ाये लिये जा रहा है।

दीर्घकाल तक उस पालकी मे बैठे रहना वसुदेव के लिए असह्य हो उठा। वे शीघ्र उस पालकी से कूद कर एक ओर भागे। इन्द्रशर्मा ने उनका पीछा किया। जहा वसुदेव जाते वहीं वह जाता। दिन भर यह दौड़ धूप होती रही। न तो वसुदेव ने हिम्मत हारी और न इन्द्रशर्मा ने ही पीछा छोड़ा। अन्ततः सन्ध्या के समय येन-केन प्रकोरण वसुदेव धोखा देकर तृणशोषक नामक एक गॉव मे घुस गये और वहा के देवकुल में जाकर चुपचाप सो गये।

दुर्दिन में निराश्रयी को कहीं आश्रय नहीं मिलता। विपत्तियां चोली दामन का साथ किये फिरती हैं। उस देवकुल में भी रात्रि में एक राक्षस ने आकर वसुदेव पर आक्रमण किया। वसुदेव को उससे युद्ध करना पडा। राक्षस अत्यन्त बलवान था अत वसुदेव को कई बार हार खानी पडी, परन्तु अन्त में अवसर पाकर वसुदेव ने राक्षस के हाथ पैर बांध डाले और जिस भांति धोबी वस्त्र को शिला पर पटकता है उसी भांति जमीन पर पटक कर मार डाला।

प्रातःकाल जब लोगों ने देखा कि वह राक्षस जो नित्य उन्हें कष्ट देता था, देवकुल के पास मरा पड़ा है तो उनके आनन्द का पारावार न रहा। उन्होंने वसुदेव को एक रथ में बैठाकर समस्त गांव में घुमाया

से उत्पन्न मित्रश्री नामक एक पुत्री थी जिससे वहा उनका विवाह किया।

इन्हीं धनमित्र सार्थवाह के घर के पास ही सोम नाम वाला ब्राह्मण रहता था। उसके धनश्री प्रमुख पांच कन्याएँ तथा एक पुत्र था। यह लड़का बुद्धिमान् तो अवश्य था किन्तु मुंह से तुतलाता था अतः माता पिता बड़े उदास रहते थे।

एक दिन मित्रश्री ने वसुदेव से निवेदन किया कि हे आर्यपुत्र! सोम का पुत्र ज्ञानादि पढ़ने मे अशक्त है क्योंकि इसके जिह्वा मे कोई ऐसा विकार है जिससे कि यह शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकता। यदि आप इसकी चिकित्सा कर देवें तो यह अध्ययन के योग्य हो जायेगा। इस पर वसुदेव ने अपनी प्रिया के निवेदन पर उस बालक को बुलाया और उसके उन जिह्वा तन्तु को जो कि बढ़े हुए थे और बोलने में रुकावट डालते थे काट दिए। जिसके फलस्वरूप वह उसकी वाणी गंभीर और स्पष्ट बन गई और वह अध्ययन करने लगा। इस अपूर्व चमत्कार से प्रसन्न हो उन्होंने धनश्री का विवाह वसुदेव के साथ कर दिया। इस प्रकार देवांगनाओं के सदृश उन कन्याओं के साथ क्रीड़ा करते हुए उन्हे वहां बहुत समय बीत गया।

एक दिन वसुदेव ने बैठे २ विचार किया कि यहां से अब मुझे चलना चाहिए अधिक देर तक ससुराल में ठहरने से मनुष्य घृणा का पात्र बन जाता है।

अत वहा से वे वेदसाम नगर की ओर गये। वहाँ वे एक उद्यान में विश्राम करने के लिए घुसे कि अनायास ही इन्द्रशर्मा की स्त्री वनमाला से उनकी भेंट हुई। वनमाला ने वसुदेव को "देवर" शब्द से सम्बोधित करते हुई उनके सामने अपनी आत्म कथा सुनाने लगी। पश्चात् वह उन्हे अपने साथ अपने घर ले गई। वहां पर उसने अपने पिता वसुपालित से उसका परिचय कराया कि यह मेरा सहदेव नामक देवर है। वसुपाल ने अपना निकट सम्बन्धी जान वसुदेव को यथोचित आदर सत्कार दिया। पश्चात् वह उनसे इस प्रकार कहने लगा 'हे कुमार इस नगर के राजा का नाम कपिल है और उनके कपिला नामक एक अत्यन्त स्वरूपवान कन्या है। भृगु नामक ज्योतिषी ने बतलाया था कि उसका विवाह वसुदेव कुमार के साथ होगा। वे इन दिनों गिरीतट नामक नगर मे आये हुए है। वे यहां आकर स्फुल्लिगमुख नामक अश्व का दमन करेंगे।' हे वत्स! उसी समय से महाराज कपिल तुम्हारी

ओर आँख लगाये बैठे है। एक बार उन्होंने मेरे जामाता-इन्द्रशर्मा को तुम्हें ले आने को भेजा था किन्तु तुम मार्ग में पालकी से उतर कर कहीं दौड गये थे। किन्तु अब तुम स्वय ही इधर आ निकले हो अतः तुम स्फुल्लिगमुख अश्व का दमन करो और कपिला से विवाह कर लो

वनमाला के पिता की बात सुनकर वसुदेव ने विचार किया कि मुझे सहज ही गौरव प्राप्त हो रहा है अतः मुझे यह कार्य कर ही लेना चाहिए। यह सोचकर उन्होंने अश्व के दमन तथा कपिला के विवाह करने की स्वीकृति वसुपाल को दे दी। तत्पश्चात् वसुदेव के यहां आने तथा अश्वदमन आदि की स्वकृति की सूचना वसुपाल ने राजा को। दे दी। सूचना के प्राप्त होते ही राजा कपिल ने स्फुलिगमुख अश्व को छोड़ दिया। जिसे देखते ही देखते वसुदेव ने सबके सामने पछाड़ दिया और कपिला के साथ विवाह कर लिया।

इसके बाद वे अपने श्वसुर और अपने साले अशुमान के आग्रह से कुछ काल तक वहीं ठहरे। इसी बीच में कपिला से उनको एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम कपिल रखा गया।

एक दिन वसुदेव कुमार अपने श्वसुर की गजशाला में गये। वहाँ पर कौतुहल वश वे एक हाथी की पीठ पर चढ़ गये। वह हाथी उन्हें आकाशमार्ग में ले उडा। उसकी यह कपट लीला देखकर वसुदेव ने उसके ऊपर बलपूर्वक एक मुष्टिक प्रहार किया। मुष्टिक के लगते ही वह नीचे एक सरोवर मे जा गिरा। (यह हाथी का रूप धारण कर वही विद्याधर आया था जो नीलयशा के विवाह के समय उनके पिता से युद्ध करने आया था और बाद में ह्रीमान् पर्वत से मोर बनकर नील-यशा को उडाकर ले गया था।)

इस सरोवर से बाहर निकलकर वसुदेवकुमार सालगुह नामक नगर में गये। यहा पर उन्होंने राजा भाग्यसेन को धनुर्वेद की शिक्षा दी थी। एक दिन भाग्यसेन के साथ युद्ध करने के लिये उसका अग्रज मेघसेन नगर पर चढ़ आया परन्तु वसुदेव कुमार ने उसे बुरी तरह मार भगाया। इस युद्ध में वसुदेव का पराक्रम देखकर दोनों राजा प्रसन्न हो उठे। भाग्यसेन ने प्रसन्न होकर अपनी पुत्री पद्मावती का तथा मेघसेन ने अपनी पुत्री अश्वसेना का विवाह वसुदेव से कर दिया। इस प्रकार कुछ समय बिताकर वसुदेव ने वहाँ से आगे के लिए प्रस्थान किया।

चलते चलते वे भद्दिलपुर नामक नगर में पहुंच गये। वहां के महाराज पुंढ्रराज थे किन्तु उनकी मृत्यु हो जाने पर उनकी पुत्री पुंढ्रा पुरुष का रूप धारण कर राज्य-कार्य सचालन करती थी। वसुदेव ने बुद्धिबल से जान लिया कि यह पुरुष नहीं स्त्री है। वसुदेव को देखकर, पुढ्रा के हृदय में भी अनुराग जाग उठा। उसने वसुदेव से विवाह कर लिया। उसके उदर से पुंढ्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो अन्ततोगत्वा उस राज्य का उत्तराधिकारी हुआ।

एक दिन वसुदेव सोये हुये थे कि अनायास ही दुष्ट अंगारक उनकी पूर्व पत्नी श्यामा की कलहसी प्रतिहारी का रूप धारण कर वहाँ आ पहुँचा और उसने उन्हे जगाते हुए कहा कि हे कुमार! श्यामा ने प्रणाम कहा है। तथा उसके पिता ने आपके प्रताप से दुष्ट अंगारक से पुनः राज्य प्राप्त कर लिया है अतः इसी प्रसन्नता के उपलक्ष्य में महाराज और महारानी ने आपको बुलाया है।' इस प्रिय सदेश को सुनते ही वसुदेव ने स्नेहवश हो उसको वहाँ ले चलने के लिए कहा। वह दुष्ट तो यह चाहता ही था कि वसुदेव किसी तरह मेरे साथ चल पड़े, अत वह आज्ञा पाते ही उन्हें अपने साथ ही ले उड़ा। थोड़ी देर के बाद वसुदेव ने विचार किया कि यह मार्ग तो वैताढ्य का नहीं है कहीं शत्रु मुझे छल कर तो नहीं लिये जा रहा है। अत परीक्षा निमित्त उन्होंने उस पर एक मुष्टिका का प्रहार किया। इस पर उस दुष्ट ने तत्काल वसुदेव को वहाँ से नीचे बहती हुई गंगा नदी में फेंक दिया। वसुदेव तैरने म बड़े चतुर थे। इसलिए वे नदी के प्रवाह में से तैरकर पार हो गये। प्रातःकाल होते ही वे तटोतट चलते-चलते एक नगर में जा पहुचे। नगर निवासियों को देखकर उन्होंने पूछा कि गगा नदी के तट पर भूषणस्वरूप यह कौनसा नगर है। उसने कहा कि यह इलावर्धन नामक नगर है। वह नगर वास्तव में बड़ा सुन्दर था। उस नगर की शोभा को देखते-देखते वे एक भद्र नामक सार्थवाह की दुकान पर जा पहुचे। उसने उन्हें देखते ही बड़े सत्कार पूर्वक अपनी दुकान पर बैठा लिया। उनके वहा बैठे ही बैठे उस दुकानदार को एक लाख रुपये का लाभ हो गया। इस पर प्रसन्न वदन उस सेठ ने वसुदेव को अपने घर ले जाकर उन्हे खूब अच्छा भोजन निवास आदि देकर प्रसन्न किया। इसी समय वहां पर उपस्थित सेठ की दास पुत्री दूसरी ओर मुँह कर बोलते देख वसुदेव ने उसे पूछा कि हे सुन्दरी

तुम दूसरी ओर मुँह करके क्यों बोलती हो। उसने उत्तर दिया कि मेरे मुँह में से लहसुन के जैसी दुर्गन्ध आती है इसलिये मैं दूसरी ओर मुँह करके बोलती हू। इस पर वसुदेव ने औषधि के प्रयोग से उसके मुँह की दुर्गन्ध को धीरे-धीरे दूर कर दिया। यह देख सेठ ने अपनी उस रत्नवती नामक पुत्री का तथा दासपुत्री लहसुणिका का उन्हीं के साथ विवाह कर दिया।

विवाह के उपरान्त वर्षा ऋतु में एक दिन सार्थवाह ने वसुदेव से कहा कि हे पुत्र, महापुर नामक नगर में आजकल इन्द्रमहोत्सव हो रहा है। यदि आपकी इच्छा हो तो हम लोग भी वह उत्सव देखने के लिये चले। इस पर वसुदेव की स्वीकृति पा वे लोग उत्सव देखने के लिये चल पडे। वहाँ पहुच कर नगर के बाहर बने हुए एक जैसे सब नये भवनों (मकानों) को देख वसुदेव ने पूछा—यहा पर ये सब नए मकान शून्य से क्यों दिखाई देते हैं? तब सार्थवाह ने उत्तर दिया कि—

"यहां के महाराज सोमदेव की पुत्री सोमश्री है। महाराज ने उसके विवाह के लिये स्वयवर रचा था। उस स्वयवर में हसरथ, हेमागद, अतिकेतु, माल्यवन्त, प्रभकर आदि बडे बडे रूप कुल और यौवन से युक्त राजा महाराजा आये थे। उन राजाओं के ठहराने के लिये ही इन भव्य प्रासादों का निर्माण किया गया था। पर उनमें से किसी ने भी अपने आपको कुमारी सोमश्री के योग्य सिद्ध न किया, इस लिये वे सब वापिस अपने-अपने नगरों को चले गये। वह बालिका अभी तक कुवारी ही है।

इस प्रकार बातचीत करते हुए वे लोग नगर के मध्य में स्थित इन्द्रस्तभ के पास जा पहुँचे। वसुदेव ने उस स्तम्भ को नमस्कार कर ज्योंही आगे बढने की तैयारी की कि इतने में रथ में बैठकर आती हुई राज-परिवार की महिलाए दिखाई दे गईं। ये महिलाएँ अभी तक इन्द्रस्तम्भ से बहुत दूर थीं, कि दूसरी ओर से एक मदोन्मत्त हाथी बन्धन तुडाकर जन समुदाय को चीरता हुआ वहां आ पहुंचा। उसने वहा आते ही बड़ा भयकर उपद्रव मचाना शुरू कर दिया। वह किसी को पैरों से कुचल डालता तो किसी को सूड में उठाकर कहीं का कहीं फेंक देता। घूमता-घूमता वह हाथी राजकुमारी

के रथ के सामने जा पहुंचा। लोगों को तो अपने ही प्राणों के लाले पड़े हुए थे, वहाँ भला राजकुमारी को बचाने का साहस कौन करता! राजकुमारी को इस प्रकार भयकर सकट मे देख कर वसुदेव तत्काल वहां आ पहुचे और हाथी का उससे पीछा छुड़ाने का प्रयत्न करने लगे। वसुदेव का अपने सामने देख वह हाथी और अधिक उत्तेजित हो उठा और राजकुमारी को छोड़ वसुदेव के पीछे पड़ गया। वसुदेव तो ऐसे मदोन्मत्त हाथियों को वश करने मे चतुर थे ही, उन्होंने नाना प्रकार के कौशलों से काम लेकर उस मदोन्मत्त हाथी पर काबू पा लिया। हाथी के शान्त हो जाने पर उस राजकुमारी को मूर्च्छित अवस्था मे देख होश में लाने के लिये पास ही एक मकान मे उठाकर ले गये। अनेक प्रकार के उपयुक्त उपचारो से उस अत्यन्त त्रस्त और भयभीत राजकुमारी को जब चेतना आई तो उसकी दासियां उसे अपने साथ राजमहलों में ले गईं।

इस महापुर नगर में ही रत्नवती की एक बहिन का विवाह कुबेर नामक सार्थवाह से हुआ था, उसे पता लगते ही वह वसुदेव को तथा अपने पिता को अपने घर ले गई। वहां पर उसने उनका भोजन आदि के द्वारा यथोचित आदर सत्कार किया। थोड़ी देर पश्चात् महाराज सोमदत्त का मंत्री वहा आ पहुँचा उसने वसुदेव को प्रणाम कर निवेदन किया कि, यह तो आपको विदित ही है कि हमारे महाराज के सोमश्री नामक एक राजकुमारी है। महाराज ने पहिले उसका स्वयंवर पद्धति से विवाह करना निश्चित किया था; किन्तु इसी समय *सर्वाण अनगार* (साधु) के केवल ज्ञान महोत्सव मे जाते हुए देवताओं को देखकर उसे जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया इसलिये उसने स्वयवर का विचार छोड़ दिया और तभी से वह मौन धारण किये हुए है।

राजकुमारी की यह अवस्था देख महाराज अत्यन्त चिन्तित रहने लगे। उन्होंने उसकी अभिन्न सखि को बुलाकर कहाकि हमारी बेटी किसी को अपने हृदय का भाव नहीं बताती, तुम अपने विश्वास के द्वारा यदि उसके हृदय की बात जान सको तो हमारी यह चिन्ता दूर हो जाये, इस पर सखि ने उसके हृदय की बात जानने के लिये उससे कहा कि हे सखि! तुम्हारे इस प्रकार मौन धारण कर लेने से महाराज अत्यन्त चिन्तित रहते हैं। तुम्हारी अवस्था विवाह के योग्य हो गई है

और तुम इस सम्बन्ध में कुछ बात ही नहीं करती, जब तक तुम कुछ बताओगी नहीं महाराज तुम्हारे हृदय की बात को कैसे जान सकते हैं? तब सोमश्री न उत्तर दिया कि हे सखि! पिछले भव मे मेरा पति एक देव था हम दोनों पति-पत्नी देवलोक[1] में बड़े आनन्द से रहते थे। एक दिन हम दोनों भगवान् मुनि सुव्रत अरिहन्त के जन्मोत्सव में सम्मिलित होने के लिये नन्दीश्वर द्वीप मे चले गये। वहाॅ से अपने वासस्थान को आते हुए धात्रीखड द्वीप के पश्चिम भाग मे दृढ़धर्म अरिहन्त का निर्वाण महोत्सव मनाया और पुनः आते आते मेरा पति देवलोक से च्युत हो गया। पति के बिछुड़ जाने पर मेरी आँखों के आगे अधेरा छा गया, मेरे पांव भारी हो गये और मैं किंकर्तव्य विमूढ सी इधर-उधर भटकती हुई जम्बुद्वीप के उत्तर पूर्व में अवस्थित भद्रशाल वन मे जा पहुँची। वहां पर प्रीतिकर और प्रतिदेव नामक दो अवधिज्ञानी मुनि तपस्या कर रहे थे उनसे मैंने पूछा कि भगवन्! मेरे प्राणनाथ यहा से च्यवकर कहां गये हैं और उनके साथ मेरा समागम कब होगा। इस पर उन्होंने मुझे बताया कि हे देवी, यह तेरा देव चौदहगरोपम आयुष्य के क्षीण हो जाने पर देवलोक से च्यवकर मनुष्य हो गया है तू भी च्यवकर महापुर नगर के राजा सोमदेव की पुत्री सोमश्री होगी और वहीं पर तेरा अपने स्वामी के साथ समागम होगा। जो व्यक्ति मदोन्मत्त हाथी से तेरी रक्षा करेगा वही तेरा पति होगा।

उनके इस प्रकार कहने पर उन्हें वन्दना कर मैं अपने विमान में बैठ कर अपने स्थान पर जा पहुची, पर उस देव के साथ मेरा अत्यन्त मोह था अत मैं सुख चैन से न रह सकी। किन्तु कुछ काल के पश्चात आयुष्य पूर्ण होने पर मैं वहाॅ से च्युत हो कर इन महाराज के घर उत्पन्न हुई। अब इधर मेरे स्वयवर के अवसर पर ही सर्वाण भगवान् के केवल ज्ञानोत्सव पर आये हुए देवताओं की कृपा से मुझे [2]जातिस्मरण ज्ञान होने पर मैं मूर्छित हो गई, चेतना आने पर मैंने सोचा कि मेरे पिता जी ने मेरे लिए स्वयवर रचा हुआ है अनेक राजपुत्र यहा मेरे साथ विवाह के लिये एकत्रित हैं। इसलिये इस स्वयम्वर से बचने के

१ स्वर्ग २ पूर्व जन्म का ज्ञान। उत्कृष्ट जाति स्मरण ज्ञानी अपने पूर्व निन्यानवें (९९) सज्ञी भावो (जन्मो) के देख सकता है।

विद्या ग्रहण कर मैं अपने राज्यभाग को भोगती हुई सुखपूर्वक अपनी माता के पास रहने लगी।

मेरा भाई मानसवेग बड़ा दुराचारी है, वह आज किसी मानवी को उड़ा लाया है। उसे प्रमदवन मे रख मुझे कहने लगा कि मैं इस सुन्दरी पर बलात्कार नहीं कर सकता क्योंकि सोये हुए दम्पतियों पर बलात्कार करने से विद्याधरो की विद्या नष्ट हो जाती है। अतः तू जा कर उस के मन को किसी प्रकार मेरे अनुकूल बना दे। तदनुसार मैंने प्रमद वन में जा कर मुर्झाये हुए कमल के समान उदास मुखमण्डल वाली सुन्दरी को देखा, और उसे इस प्रकार समझाने का प्रयत्न किया—

"आज यहा तुम्हे इस प्रकार उदास न होना चाहिये क्योंकि पुण्य कार्य करने वाली स्त्रियाँ ही देवलोक के सदृश स्थान मे आ सकती हैं, इसी लिये तुम्हे विद्याधर लोक म लाया गया है। मै राजा मानसवेग की बहिन हूँ, मेरा भाई मानसवेग अत्यन्त सुन्दर, कलाओं में प्रवीण, युवक और कुलीन है। जो देखता है वही उसकी प्रशसा करने लगता है, अब तुम्हे मनुष्य पति से क्या लाभ? श्रेष्ठकुल मे उत्तम पति को पाकर हीन कुलोत्पन्न स्त्री भी सर्वत्र सम्मानित होती है। इस लिये तू शोक न कर और मनुष्य रूप मे दुर्लभ भोगो का यहाँ रहकर अनुभव कर।

यह सुनकर उस ने उत्तर दिया, हे वेगवती! मैंने दासियो के मुख से सुना था कि तू बड़ी विदुषी और समझदार है, किन्तु तू ने जो कुछ कहा वह तो सर्वथा अयुक्तियुक्त है अथवा तू ने अपने भाई के प्रेम के कारण यह आचार विरुद्ध बात कह दी। क्योंकि माता-पिता कन्या को जैसे भी पति के हाथो सौंप दे उसे जीवन भर उसी को अपना उपास्य देव मान कर उसकी सेवा करनी चाहिए। ऐसा करने से वह इस लोक मे यशोभागिनी तथा परलोक मे सुगति गामिनी होती है। यही कुलवधुओं का धर्म है और तू ने जो मानसवेग की प्रशंसा की वह भी बिल्कुल झूठ है। क्योंकि राज्यधर्म के अनुसार आचरण करने वाला कोई भी श्रेष्ठ पुरुष अज्ञात कुल शीला किसी स्त्री का हरण करके नहीं ले आता। जरा सोचो तो सही यह उसकी शूरता है या कायरता, यदि उसी समय आर्य पुत्र जाग जाते तो वह कभी यहाँ जीवित न लौट

पाता। तू ने कहा कि मेरा भाई बड़ा रूपवान् है सो चन्द्रमा से बढ़ कर तो इस ससार में कोई सुन्दर नहीं, मैं तो अपने प्राणनाथ को उससे भी सुन्दर समझती हू और शूरवीर तो वे ऐसे हैं कि अनेकों से अकेले ही लोहा ले सकते हैं। उन्हों ने मदोन्मत्त हाथी को अपने वश में करके अपनी वीरता की धाक बैठा दी है, विद्या में वे वृहस्पति के समान हैं। हे वेगवती ! ऐसे श्रेष्ठ पुरुष की भार्या होकर मैं किसी अन्य पुरुष की मन से भी इच्छा नहीं कर सकती हूँ ऐसा तो तुझे कभी विचार भी नहीं करना चाहिये। अत तुझे मेरे सन्मुख फिर कभी ऐसी बात न करना।

उसके ऐसे विचारों को सुन मैं मन ही मन बडी लज्जित हुई, और मैंने क्षमा मांगते हुए कहा कि हे देवी ! मुझ से बड़ी भूल हुई अब मैं तुम्हें फिर ऐसे वचन कभी नहीं कहूँगी। तुम्हारे दुःख को दूर करने का उपाय भी मेरे हाथ में है। मैं अपनी विद्या के बल से सम्पूर्ण जम्बूदीप में भ्रमण कर सकती हूँ। इसलिए मैं अभी जाकर तुम्हारे पति को यहाँ ले आती हू। वह मेरे भाई मानसवेग को यहां आकर उसके कृत्य का यथोचित दण्ड देगा। यह सुनकर सोमश्री ने कहा कि यदि तुम मेरे प्राणनाथ को यहा ले आओ तो मैं तुम्हारे चरण की दासी बनकर रहूँगी। तदनुसार मैं वहां से चलकर आपको लेने के लिए यहाँ आ पहुँची। यहां आकर मैंने देखा कि आप सोमश्री के विरह में अत्यन्त व्याकुल हैं इसलिए यदि मैंने सब सच्ची बात कह दी तो आप मुझ पर कभी विश्वास न करेंगे और सोमश्री के हरण का वृतान्त सुनकर उसके विरह दुःख के कारण आपके प्राण भी संकट में पड जाये, इसके अतिरिक्त मैं स्वय भी आपके रूप पर मुग्ध हो गई थी इसीलिए मैंने सोमश्री का रूप धारण कर दुबारा विवाह का ढोंग रच दिया। अब मैं आपकी विधिपूर्वक विवाहिता पत्नी हू। आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें।

इसलिये उन्होंने उसे क्षमा कर दिया और प्रातःकाल होते ही सोमश्री के हरण का समाचार सब लोगों को सुना दिया गया।



✻ सातवां परिच्छेद ✻

मदनवेगा परिणय

एक बार जब वसुदेव अपनी पत्नी के साथ सुख पूर्वक सो रहे थे तो तुम्हे ऐसा अनुभव होने लगा कि मानो कोई आकाशगामी पुरुष उन्हे उठाये लिए जा रहा है। थोड़ी ही देर के बाद उन्होंने जान लिया कि यह तो दुष्ट मानसवेग उन्हे मार डालने के लिए ले जा रहा है। तब उन्होंने निश्चय किया कि मरना तो है ही पर इसे मार कर क्यो न मरूं। इसलिए उन्होंने उसकी छाती में ऐसे जोर से मुक्का चलाया कि वह तिलमिला उठा, और उसने घबराकर वसुदेव को नीचे फेंक दिया दैवयोग से उस समय नीचे कोई पुरुष गंगा की धारा में खड़ा हुआ तपकर रहा था वे उसके कधों पर ऐसे जा बैठे, जैसे कोई घोड़े पर जा बैठता है। वसुदेव के उसके कधे पर गिरते ही उसकी विद्या सिद्ध हो गई, इसलिए प्रसन्न हो उसने पूछा आपके दर्शनों से मेरी विद्या सिद्ध हो गई है इसलिए मै आप पर बहुत प्रसन्न हूं, बतलाइये मैं आपका क्या प्रत्युपकार करू ? साथ ही वसुदेव के पूछने पर उसने यह भी बतलाया कि यह स्थान कनखलपुर नाम से विख्यात है। उस विद्याधर के बहुत आग्रह करने पर वसुदेव ने कहा कि यदि आप मुझ पर वास्तव में प्रसन्न हैं तो मुझे आकाशगामिनी विद्या दे दीजिए।

विद्याधर ने उत्तर दिया यदि तुम में पुरश्चर्ण करने की सहन शक्ति है तो किसी अन्य स्थान पर चलकर मैं तुमको मत्र की दीक्षा देता हूं तुम वहां पर एकाग्र चित्त से विद्या का स्मरण करते हुए अपना आसन जमा लेना। यह कहकर वह उन्हे दूसरे स्थान पर ले गया वहाँ जाकर उसने समझाया कि यहाॅ पर अनेक प्रकार के विघ्न उत्पन्न होते हैं। विघ्न करने वाले देवता स्त्रीका रूप धारण कर अनेक प्रकार के हाव भावों

तथा अन्य चेष्टाओं द्वारा साधक के मन को विचलित करने का प्रयत्न करते हैं।

किन्तु इन वातों की कुछ परवाह न कर अपने ध्यान ही में रहते हुए मौन भाव से तप ग्रहण करना चाहिये। एक दिन रात को इस प्रकार साधना करने के पश्चात् मैं तुम्हारे पास आऊंगा और पुरश्चर्ण की समाप्ति पर तुम्हें आकाशगामी विद्या की प्राप्ति हो जायगी। इस प्रकार समझा कर वह विद्याधर वहा से विदा हो गया।

सध्या समय नूपुर और मेखलाओं के श्रुति मधुर शब्दों से समस्त वातावरण को मुखरित करती हुई उल्काओं के समान अपनी दिव्य कान्ति से सारे प्रदेश को जगमगाती अपने मन मोहक हाव भावों से मन को मोहित करती हुई एक सुन्दरी वहां आ पहुँची। उसे देख वसुदेव बडे विस्मित हुए। वे सोचने लगे कि यह कोई साक्षात् सिद्धि है या बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सुशोभित कोई देवता है अथवा चन्द्रलेखा के समान कान्तिवाली साक्षात् विघ्न मूर्ति है। जिसकी सूचना गुरु ने मुझ को पहिले ही दे दी थी।

देखते ही देखते वह उन्हें वहां से उठा कर एक ऐसे पर्वत शिखर पर ले गई जहां पर उगी हुई सब औषधिया अपने दिव्य प्रकाश से जगमगा रही थीं, वहाॅ उन्हें पुष्पशयन नामक उद्यान में पुष्पभार से विनम्र अशोक वृक्ष के नीचे एक सपाट शिला पर बैठाकर तथा घबराओं नहीं ऐसा कहकर वहाॅ से चली गई। थोडी देर बाद दो १ सुन्दर युवकों ने आकर उन्हें प्रणाम करते हुए कहा हम दधिमुख और चण्डवेग नामक दोनों भाई हैं, हमारे उपाध्याय भी क्षण भर में ही आने वाले हैं। इतने में उनका २ उपाध्याय दण्डवेग भी वहाॅ आ पहुचा। वे लोग वसुदेव को वहाॅ से अपने नगर मे ले गये और दूसरे दिन अपनी बहिन मदनवेगा का विवाह कर दिया। इसके बाद वसुदेव ने वहां कुछ समय बड़े आनन्द से विताया। एक दिन दधिमुख ने उन्हें बताया कि—

दिवस तिलक नामक नगर मे त्रिशिखर नामक राजा राज करता है। उसके सूपर्क नामक एक पुत्र है। त्रिशिखर ने अपने पुत्र के पास मदनवेगा के विवाह का प्रस्ताव रखा था, किन्तु पिता जी ने उसे अस्वीकार कर दिया। क्योंकि किसी चारण मुनि ने पिता जी को

१ तीन युवको ने २ दडवेग उपाध्याय नही. बल्कि द्वितीय भाई था। त्रिशष्टिशला०—

बतलाया था कि मदनवेगा का विवाह हरिवंशोत्पन्न वसुदेव कुमार के साथ होगा। वे ।वद्या की साधना करते हुए रात्रि के समय चण्डवेग के कन्धे पर गिरेंगे और उनके गिरते ही चण्डवेग की विद्या सिद्ध हो जायगी। इसलिए पिता जी ने उसकी माँग पर जब कुछ ध्यान नहीं दिया तो त्रिशिखर ने रुष्ट हो हमारे नगर पर आक्रमण कर दिया। वह हमारे पिता जी को पकड़ कर ले गया है, इस समय हमारे पिताजी उस दुष्ट त्रिशिखर के बन्धन में पड़े हुए हैं। आपने विवाह के समय हमारी बहिन मदनवेगा को एक वर माँगने को कहा था १ तदनुसार आप हमारे पिता जी को कैद से छुडवाने मे हमारी सहायता कीजिये। हम लोग आपके इस महान् उपकार को सदा स्मरण रखेंगे।'

इस पर वसुदेव ने सहर्ष उनकी सहायता करना स्वीकार करते हुए कहा कि मेरे योग्य जो भी कार्य होगा मै सहर्ष करूगा। आप मुझे बतायें कि मैं आपकी किस प्रकार सहायता कर सकता हूँ। यह सुन दधिमुख ने अनेक,दिव्य शस्त्रास्त्र वसुदेव के सामने रखते हुए कहा—

हमारे वंश के मूल पुरुष नमि थे उनके पुत्र पुलस्त्य तथा उसी वंश में मेघनाद हुए। मेघनाद पर प्रसन्न होकर सुभ्रम चक्री ने उन्हें दो श्रेणियां तथा ब्राह्म और आग्नेय आदिक शस्त्र प्रदान किये थे,मेरे पिता विद्य द्वेग विभिषण ही के वंशज हैं इसलिये वे सब शस्त्रात्र वंशानुक्रम से हमारे कुल में चले आ रहे है। अब हमारे शत्रु को पराजय करने के लिये आप इन शस्त्रों को स्वीकार कीजिये। क्योंकि हम लोगों के लिये तो ये सर्वथा व्यर्थ हैं। वसुदेव ने वे सब शस्त्र सहर्ष स्वीकार कर लिये किन्तु जब तक उन्हें सिद्ध न कर लिया जाय तब तक उनका उपयोग नहीं हो सकता था इसलिये उन्होंने बड़ी कठोर साधना द्वारा उन शस्त्रास्त्रों को शीघ्र ही सिद्ध कर लिया।

इधर इसी समय यह ज्ञात होने पर कि मदनवेगा का विवाह किसी भूचर मनुष्य से कर दिया है त्रिशिखर ने अमृतधारा नगर पर आक्रमण कर दिया। उधर वसुदेव तो पहिले ही युद्ध के लिये तैयार बैठे थे इसलिये वे चण्ड विद्याधर के दिये हुए रथ पर बैठ कवच धारण कर नानाविध शस्त्रों से सुसज्जित हो युद्ध के लिये प्रस्थानोद्यत हो गये। दधिमुख उनका सारथी बनकर रथ संचालन करने लगा। दण्डवेग और चण्डवेग ने भी घोडों पर

नोट—एक दिन मदनवेगा ने स्वय वसुदेव को प्रसन्न कर वर मागा था।

सवारी कर अपनी-अपनी सेना के साथ युद्ध के लिये प्रस्थान कर दिया।

युद्धारभ होने के पूर्व अपनी पहले की विजय के मद में उन्मत त्रिशिखर के योद्धा चण्डवेग आदि को ललकारते हुए कहने लगे कि हमारे शरणागतवत्सल महाराज को प्रणाम कर उनकी दासता स्वीकार कर लो अन्यथा यहीं युद्ध में मारे जाओगे। इस पर दण्डवेग ने उत्तर दिया व्यर्थ में डींगें क्यों हांकते हो यदि कुछ सामर्थ्य है तो हमारे सामने आकर दो दो हाथ क्या नहीं देखते। बस फिर क्या था दोनों ओर से युद्ध के नगाड़े बज उठे और घनघोर युद्ध आरम्भ हो गया। त्रिशिखर ने अन्धकारास्त्र छोड़ा जिससे चारों ओर देखते-देखते अंधेरा छा गया किन्तु वसुदेव ने बात की बात में उस अस्त्र का प्रभाव नष्ट कर फिर से दिन का प्रकाश प्रकट कर दिया। अब तो त्रिशिखर मारे क्रोध के आगबबूला हो उठा। उसकी बाण वर्षा से सारा नभोमण्डल आच्छादित हो गया। उसने वसुदेव को ललकारते हुए कहा अरे तुच्छ मानव! मैं तुझे खूब पहिचानता हूँ,अपने आपको बचा सकता है तो बचा। यह कहकर त्रिशिखर ने कनक शक्ति आदि अनेक शस्त्र उन पर फेंके।

इधर वसुदेव भी अपने शस्त्रों के द्वारा तत्काल उसके सब शस्त्रास्त्रों को मार्ग में ही काट डालते जब उसके शस्त्रास्त्र व्यर्थ हो गये तो वसुदेव ने उसके हृदय में एक ऐसा अमोघ बाण मारा कि वह धडाम से पृथ्वी पर जा गिरा। इस प्रकार युद्ध में विजय प्राप्त कर वसुदेव ने अपने श्वसुर के बंधन काट डाले। अब वे वहीं पर आनन्दपूर्वक रहने लगे।

कुछ समय उपरान्त मदनवेगा की कोख से एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम अनाधृष्टि रखा गया। वसुदेव के रूप और गुणों पर समस्त विद्याधर और विद्याधरिनियां मोहित हो गई थीं। वे जिधर भी निकल जाते सब लोग उन्हें अपलक नेत्रों से देखते रह जाते। मदनवेगा भी तन-मन से उन्हें प्रसन्न रखने का प्रयत्न करती।

एक दिन वसुदेव के मुख से सहसा निकल पडा कि, "हे वेगवती आज तो तुम अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती हो।" यह सुनते ही मदनवेगा क्रोध में भरकर बोली यदि आपके हृदय पर किसी अन्य सुन्दरी का चित्र अंकित है तो आप व्यर्थ में मेरे मुख पर मेरी चापलूसी क्यों किया करते हैं? वसुदेव ने अपनी भूल स्वीकार करते हुए कहा कि—प्रिये मेरे मन में इस समय

अन्य किसी का कोई विचार नहीं है और भूल से जिसका नाम इस समय निकल गया है वह तो इस लोक में है ही नहीं। इसलिये इस जन पर तुम्हारा रोष व्यर्थ है।

थोडी ही देर पश्चात् [1]मुस्कराती हुई मदनवेगा वसुदेव के पास आ पहुँची। उसे प्रसन्न देखकर मन ही मन हर्षित हो वसुदेव उसे कुछ कहना ही चाहते थे कि इतने मे बाहर से बड़ा भयकर कोलाहल सुनाई दिया। "वह देखो महल जल रहा, महल जल रहा है।' लोगों की इस प्रकार की चिल्लाहट उनके कानों में पड़ने लगी। पल भर में ही प्रचंड पवन से प्रेरित आकाश तक छूने वाली भयकर आग की लपटों ने सारे महल को घेर लिया। इसी समय मदनवेगा वसुदेव को आकाश में ले उड़ी। इतने में ही [2]मानस वेग आकाश में उड़ता हुआ दिखाई दिया। वह झपट कर वसुदेव को पकड़ लेना चाहता था कि उसे देखते ही मदनवेगा ने वसुदेव को नीचे पटक दिया। गिरते गिरते वसुदेव एक घास के ढेर पर आ पहुंचे। इसलिए उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। वसुदेव ने सोचा कि वे विद्याधर श्रेणी में हैं। किन्तु इतने में उन्हे महाराज जरासन्ध के कार्यो का वर्णन करते हुए कुछ व्यक्ति दिखाई दिये। इसलिए उन्होंने उससे पूछा कि "इस देश का क्या नाम है और यह नगर कौनसा है तथा यहाँ का राजा कौन है।"

उसने उत्तर दिया कि यह मगध देश है। यह राजग्रही नगरी है और यहा के महाराज परम पराक्रमी जरासन्ध है। यह सुनकर वसुदेव। तालाब मे हाथ मुह धो नगर की शोभा देखते हुए एक द्यूती गृह में जा पहुचे। वहाँ पर नगर के बड़े बड़े सम्पन्न व्यक्ति बैठे हुए जुआ खेल रहे थे। उन खेलने वालों ने वसुदेव को देखते ही कहा कि यदि आपकी इच्छा हो तो आप भी खेलिये। इस पर वसुदेव ने भी उनके साथ खेलना आरम्भ कर दिया और देखते ही देखते अनन्त राशि उनसे जीत ली। जीते हुए उन सब रत्नादिकों को एकत्र कर वसुदेव ने मध्यस्थ को कहा कि यहा के सब दीन हीन दरिद्रों को बुलाकर एकत्रित (इकट्ठा) कर लो। क्योंकि यह सब द्रव्य में गरीबों को बाँट

---

१ वस्तुत यह मदनवेगा नही थी बल्कि एक अन्य विद्याधरी उसका रूप धारण कर मारने के लिए आई थी। और उसी ने ही यह अग्निप्रकाप किया था।

यह सचमुच २ मानसवेग नही था जो कि वसुदेव का दुश्मन था प्रत्युत वह वेगवती थी। वसुदेव की रक्षा निमित्त वह उसका रूप लेकर आई थी।

देना चाहता हूँ। यह सुनकर वे सब लोग वसुदेव की प्रशसा करने लगे कि यह तो कोई मनुष्य नहीं दिखाई दे रहा। यह तो कोई वास्तव में कुवेर के घर में रहने वाला कमलाक्षयक्ष है। अथवा स्वय कुवेर ही है जो इस प्रकार उदारता पूर्वक द्रव्य दान दे रहा है। वे लोग इस प्रकार बाते कर रहे थे कि राज-पुरुषों ने आकर वसुदेव को घेर लिया और कहने लगे कि चलो तुमको महाराज बुला रहे हैं।

इस पर वसुदेव उनके साथ जब चलने लगे तब दूसरे सब लोग भी उनके पीछे २ हो लिये। वे लोग आपस में बातें कर रहे थे कि ऐसे धर्मात्मा को राजकुल में न जाने क्यों बुलाया जा रहा है।

राजसभा में पहुँचते ही महाराज को वसुदेव के आने की सूचना दी गई। राजा ने उन्हें एकान्त में बुलाकर बहुत बुरी तरह से जकड़ कर बाँध दिया और मारे क्रोध के दाँत पीसते हुए कहना शुरु किया कि ले और जुआ खेल ले॥ वसुदेव के बन्धन की सूचना पाकर सारा शहर एकत्रित हो गया। वे लोग हाय २ करके चिल्लाने लगे कि इस बेचारे को बिना किसी अपराध के ही मारा जा रहा है। तब सहानुभूति शील राजपुरुषों से वसुदेव ने पूछा कि मुझे किस कारण बाधा गया है। इस पर उन्होंने वसुदेव को समझाया कि कल किसी ज्योतिषी ने महाराज जरासघ को कह दिया कि कल तुम्हारा वध करने वाले का पिता यहां आयेगा और वह जुए मे बहुत सा रुपया जीतकर गरीबों को बांट देगा। इसीलिए जरासघ ने द्यूतशाला में अपने विश्वास पात्र व्यक्ति नियुक्त कर दिये थे। उनकी सूचना से ही जरासघ ने तुमको पकड लिया है।

यह सुन वसुदेव मन ही मन सोचने लगे कि अपने जरा से प्रमाद के कारण ही इस प्रकार बधन में पड़ा हूँ। यदि मैं महलों में जाने से पूर्व ही राज पुरुषों से पूछ लेता कि आप मुझे क्यों महलों में ले जा रहे है तो मै महलो में जाता ही नहीं। अथवा अपना पराक्रम दिखाकर सब लोगों को ढकेलता हुआ बहार निकल जाता। किन्तु अब क्या हो सकता है। इस प्रकार विचारों मे मग्न वसुदेव को राजपुरुष गाडी मे बैठाकर ले चले। राजपुरुषों को आज्ञा दी गई थी कि वे उन्हे जीते जी बकरे की खाल में बदकर दूर कहीं फेक आयें।

तदनुसार राजपुरुष गुप्त रूप से उन्हे नगर से बाहर ले गये और जीते जी बकरों की खाल में बंद कर किसी बहुत ऊचे पहाड़ पर ले

जाकर वहां से नीचे ढकेल दिया। किन्तु भाग्य जिसका रक्षक है उसे भला कोई कैसे मार सकता है। वसुदेव का तो अभी आयुष्य कर्म बहुत शेष था। इसलिए वसुदेव की भसरा,ज्योंहि पर्वत से फेंकी गई कि किसी ने बीच ही मे उसे उठा लिया। अब तो वसुदेव सोचने लगे कि जिस प्रकार चारूदत्त की भसरा को भरूण्ड पक्षी उड़ाकर ले गए थे सम्भवतः मेरी भसरा को भी उसी प्रकार यह कोई भरूण्ड पक्षी उड़ाये लिए जा रहा है। हो सकता है मुझे भी उन्हीं के समान किसी चारण श्रमणं का सौभाग्य प्राप्त हो जाय।

वसुदेव अभी इसी प्रकार सोच ही रहे थे कि उनको बकरें की खाल में से निकाल कर उनके पूर्व परिचित कर युगलों ने उन्हें प्रणाम किया और वेगवती फूट फूट कर रोती हुई उनके पैरों में गिर पड़ी। वह कह रही थी कि "हे महासत्व! हे मेरी जैसी अनेक रमणियों के प्राणाधार! मैंने आपको कैसे भयकर घोर संकट की अवस्था मे पुनः प्राप्त किया है। आपने न जाने पिछले जन्म में ऐसे कौन से कर्म बाँधे थे जिनके परिणाम स्वरूप आपको ऐसा कष्ट देखना पड़ा।' तब वसुदेवने उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि प्रिये! 'स्वयं कृत कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।' अतः चिंता मत करो होनहार होकर रहती है। भवितव्यता को कोई टाल नहीं सकता। मैंने भी पिछले भव्व में किसी को पीडा पहुँचाई होगी इसीलिए तो ऐसा दुःख पाया है।

इस प्रकार धैर्य बन्धवाने के पश्चात् उन्होंने वेगवती से पूछा कि तुमने मुझे यहाँ आकर कैसे बचाया और अब तक तुम्हारे दिन मेरे वियोग में किस प्रकार बीते यह तो बता दो।

इस पर वेगवती ने अपना आत्म-वृत इस प्रकार बताना प्रारम्भ किया हे प्राणनाथ! महापुरनगर में मैं और आप दोनों राजमहल में सो रहे थे। थोड़ी देर पश्चात् अचानक जब मेरी नींद खुली तो क्या देखती हूँ कि आप शैया पर नहीं हैं। तब मैं व्याकुल हो हो कर रोने लगी और दास दासियों से पूछने लगी कि मेरे प्राणनाथ कहा चले गए है। मुझे सदेह होने लगाकि मेरा भाई मानसवेग ही मेरे प्राणनाथ को हर कर ले गया है। तब रोते २ मैंने महाराज के पास सूचना पहुँचाई कि आर्य पत्र यहां नहीं है। यह सुनते ही सारे राज महलों मे खलबली मच गई। सब लोग आपको इधर उधर ढूढ़ने लगे पर जब आप कहीं नहीं मिले

तो मैं बेहोश होकर गिर पड़ी। सज्ञा आने पर मुझे पिताजी ने कहा कि घबराने की आवश्यकता नहीं है धैर्य धरो, तुम्हारे पास तो विद्या है। उस विद्या के बल से पता लगा लो कि वह कहा गए हैं और किस अवस्था में है।

तब मैंने स्नान कर विद्या का जप किया। उसके प्रभाव से ज्ञात हुआ कि आपको मानसवेग हर कर ले गया है और विद्याधर भगिनी मदनवेगा से आपका विवाह हो गया है। यह जानकर मुझे और भी दु:ख हुआ किन्तु मुझे पिताजी ने सात्वना दी कि तुम्हारा पति एक न एक दिन तुमको अवश्य मिलेगा, धैर्य धारण करके उनके आगमन की प्रतिक्षा करनी चाहिए। तुम चाहो तो अपनी विद्या के बल से उन के पास जा सकती हो। तब मैंने पिताजी से कहा कि मुझे आपके चरणों मे रहते हुए परम हर्ष होगा। मैं स्वय चलकर अपने शौक या सौतन के पास कभी नहीं जाऊगीं। इस प्रकार अपने पिताजी के घर में रहती हुई मैंने केवल एक ही बार भोजन कर ब्रह्मचर्य और तपस्या के द्वारा अपने शरीर को क्षीण बना डाला।

एक दिन बैठे-बैठे मेरे मन में आया कि मैं अपने प्राणनाथ के दर्शन तो कर आऊँ, वे कहाँ हैं और क्या कर रहे हैं। इस लिये मैं माताजी से आज्ञा लेकर गगन मार्ग से भारतवर्ष का अवलोकन करती हुई अमृतधार पर्वत पर जा पहुची। पश्चात् उस पर्वत को पार अरिञ्जयपुर पहुच गई। वहा पर मैंने आपको मदनवेगा के स्थान पर मेरे नाम से पुकारते देखा और सोचा कि मैं सचमुच बड़ी सौभाग्य शालिनी हू कि आर्य पुत्र का अभी तक मेरा स्मरण तो है। इस समय मदनवेगा आपसे नाराज होकर आपके पास से उठकर चली गई। फिर अग्नि का प्रकोप कर आपका वध कर डालने की इच्छा वाली सूपर्णखा[1] ने मदनवेगा का रूप धारण कर आपको आकाश मे उड़ा दिया। क्योंकि वह मुझ से अधिक विद्या वाली थी, इसलिये मैं उससे

---

१ यह दिवस तिलक नामक नगर के राजा त्रिशिखर की रानी है जिसका सूपर्क पुत्र है। जिसके लिए त्रिशिखर ने अमृतधारा नगर के राजा विद्युद्वेग से उसकी पुत्री मदनवेगा को मागा था किन्तु उसने उसे न देकर वसुदेव से विवाह किया। तब से सूर्पक आदि की वसुदेव के साथ शत्रुता शुरु हुई और इस समय अवसर देख सूर्पक की माता प्रतिशोध के लिए आई।

दूर ही दूर रहती हुई "हाय स्वामी मारे जा रहे हैं। इस प्रकार शोक करती हुई उसके नीचे चलती रही। मैंने विद्या के वल से मानस वेग का रूप धारण कर लिया। मुझे मानस सम्झकर सूर्पणखा आपको पटक कर मेरे पीछे दौड़ पड़ी। मैंने बड़ी कठिनाई से उससे अपना पीछा छुड़ाया। फिर आपको ढूंढने के लिये मैं निकल पड़ी। ढूंढती-ढूंढती तथा आपका अनुसरण करती हुई इधर-उधर भटकने लगी। तब मुझे आकाश वाणी सुनाई दी कि "यह तेरा पति छिन्नकटक पर्वत से नीचे गिर रहा है। इसलिये शोक त्याग कर उसे बचा।" यह सुनकर तत्काल मैं यहाँ पहुंची और आपकी भसरा को पकड़ कर आपको बचा लाई। हे नाथ! आज से अब मेरी विद्या का प्रभाव नहीं रहेगा। क्योंकि इस ओर आती हुई मै एक श्रमण के ऊपर से चली आई थी। विद्याधरों की विद्याओं का नियम है कि यदि वे किसी श्रमण तपस्वी आदि के ऊपर से उल्लंघन करेगे तो उनकी विद्याए नष्ट हो जायेंगी।

यहाँ से चलकर वसुदेव और वेगवती पचनद संगम के पास एक आश्रम में आ पहुचे। यहां आते आते वेगवती मानवी स्त्रियों के समान भूचरी हो गई। उसकी सब विद्याएं लुप्त हो गई। उन दोनों ने वहा पर विद्यमान सिद्ध को प्रणाम कर तथा फल आदि का आहार कर आगे चलने की तैयारी की। मार्ग में उन लोगों को देखकर ऋषियों ने कहा कि अरे य दम्पति तो कोई देव-मिथुन प्रतीत होते हैं। जो कुतूहल वश भू लोक को देखने के लिए स्वर्ग से यहां उतर आये है। थोड़ी दूर चलने के पश्चात् वे लोग वरुणोदका नदी के तट पर अवस्थित ऋषियों के आश्रम में जा पहुंचे।

यहाँ पहुंच कर वसुदेव ने वेगवती से कहा कि तुम्हें विद्या भ्रष्ट हो जाने की कोई चिन्ता नहीं करनी करनी चाहिये। क्योंकि हमे यहाँ किसी प्रकार का कोई अभाव नहीं हैं। इस पर उसने कहा, "अपने प्राणेश्वर के प्राणों की रक्षा करते हुए विद्या से भ्रष्ट हो जाने पर भी मुझे बड़े भारी गौरव का ही अनुभव हो रहा है।"

बालचन्द्रा की प्राप्ति

वसुदेव और वेगवती इस प्रकार परस्पर प्रेमालाप करते हुये एक बार वन में विहार कर रहे थे कि उन्होंने एक बडा भारी आश्चर्यजनक दृश्य देखा। उस वन के मध्य भाग में कोई अत्यन्त सुन्दरी कुमारी

नागपाश से जकडी१ पडी थी। उसे देखते ही वसुदेव ने वेगवती से पूछा, देखो यह कौन इस प्रकार पीडित अवस्था में पडी हुई है। इस पर वेगवती ने उसके पास में जाकर भली भाँति देखकर बताया कि "हे प्राणनाथ उत्तर श्रेणि में गगनवल्लभ नामक नगर है। उस नगर के महाराज चन्द्राभ और महारानी मेनका की पुत्री यह कन्या मेरी बाल सखी है। इसका नाम बालचन्द्रा है। बड़े राजकुल में उत्पन्न हुई यह कन्या अभी तक अविवाहित है। इसे आप जीवन दान देने की कृपा कीजिये। क्योंकि विद्या की सिद्धि करते हुए पुरुश्चरण में कोई त्रुटि हो जाने के कारण यह पीडित होकर इस प्रकार नागपाश मे बन्धी हुई है। इस समय इसके प्राण संकट में पड़े हुए हैं। आप के प्रभाव के आगे कोई भी कार्य असाध्य नहीं है।"

वेगवती के इस प्रकार वचनों को सुनकर वसुदेव ने बड़े साहस पूर्वक उसके बन्धन काट दिये। बन्धन मुक्त कर उसके मुख पर शीतल जल के छींटे दिये तथा अपने आँचल से ठडी हवा करते हुए उसे चेतना मे लाने का प्रयत्न किया।

सचेत होने पर वह हाथ जोड कर बडे कृतज्ञतापूर्ण शब्दों में वेगवती से कहने लगी कि "हे सखि तुमने मुझे जीवन दान देकर मुझ पर अपना बडा भारी स्नेह दर्शाया है। इस ससार मे जीवन दान से बढकर और कोई दान नहीं हो सकता। इस लिये मैं आपकी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ" तत्पश्चात् वह वसुदेव की ओर अभिमुख होकर उन्हें कहने लगी—हे देव मैं महाराज विद्युद्दष्ट्र वशोत्पन्न राजकन्या हूँ। हमारे कुल में अत्यन्त कष्ट साध्य महाउपसर्ग वाली अर्थात् जिन की साधना में बडे बडे भयकर विघ्न उपस्थित हो जाते हैं ऐसी महा विद्याएं हैं। उनको सिद्ध करते करते बडे बडों के प्राण सकट में पड जाते हैं। किन्तु आपने यहाँ पधार कर मुझे प्राण दान तो दिया ही है, साथ ही मुझे सिद्धि भी आपकी कृपा से प्राप्त हो गई है। कहा तो मुझे मृत्यु के गले लगना था और कहां सिद्धि प्राप्त हो गई।' इस पर वसुदेव ने उसे कहा कि तुम हमें अपना ही समझो। पर यह तो बताओ कि वह विद्युद्दष्ट्र कौन था तथा तुम्हारे कुल में इस प्रकार घोर कष्ट से विद्याएं क्यों सिद्ध होती हैं। उस पर वह बोली—"आप सावधान होकर बैठ जाइये तो मैं अपनी कथा आपको

१ नदी में बहती हुई दिखाई दी। त्रि०—

निश्चिन्तता पूर्वक सुना सकूं।' वसुदेव के अशोक वृक्ष के नीचे बैठ जाने पर उसने अपनी कथा इस प्रकार सुनानी आरम्भ की—

विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर का वृतान्तः—

"हे देव! इस भरतक्षेत्र (भारत वर्ष) को दो विभागो में विभक्त कर देने वाला वैताढ्य नामक पर्वत अपने दोनो पार्वो को पूर्व और पश्चिम मे लवण समुद्र तक फैलाकर खड़ा हुआ है। उसके उत्तर और दक्षिण की श्रेणियों मे विद्याधरों की बस्तियाँ हैं।

उन दोनों श्रेणियों पर विद्याधरों के बल के महात्म्य को मथन करने वाला अत्यन्त पराक्रमी शासक विद्युदंष्ट्र का शासन था। उसने शौर्य आदि गुणों से सब विद्याधरों को अपने वश में कर रखा था। उसकी राजधानी गगनवल्लभपुर नामक नगरी थी।

एक बार महाराज विद्युदंष्ट्र अपनी प्रियतमाओ के साथ पश्चिम विदेह में स्थिति भद्रशाल नामक अत्यन्त रमणीय वन में क्रीड़ार्थ गये। वहां से वे क्रीड़ा कर अपनी राजधानी को लौट रहे थे कि मार्ग में वितशोकापुरी नगर का भीमदर्शन नामक श्मशान पड़ा। उस श्मशान में अनायास ही उनकी दृष्टि एक प्रतिमा धारी श्रमण पर गई जो वहा सात दिन के प्रतिमा योग से युक्त थे। उस मुनि का नाम संजयन्त था। वे अपर विदेह की पश्चिम दिशा में स्थित सलिलावतो विजया की वितशोकापुरी नगरी के महाराज संयत (वैजयन्त) के बड़े पुत्र थे। इन्होंने अपने पिता तथा छोटे भाई वनजयन्त के साथ भगवान् स्वयभू के पास दीक्षा ग्रहण कर ली थी। दीक्षा लेने क अनन्तर इन तीनो मुनिराजों ने आगमो का अभ्यास किया पश्चात् कर्ममल का दूर करने के हेतु कठोर तपस्या का अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया। इस तप के प्रभाव से श्रमण सयत का घातिक कर्ममल दूर हो गया। उन्हें केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई। इस केवल ज्ञान के उत्सव के अवसर पर चारों निकायों के देव अपनी देवियो सहित अरिहत सयत के दर्शन करने के लिए आये। उनमे नागराज धरणेन्द्र भी शामिल थे। धरणेन्द्र का महान् वैभव देख मुनिराज वैजयन्त ने आगामी भव मे धरणेन्द्र बनने का निदान बांध लिया था। तदनुसार कालधर्म को प्राप्त हो वे णेन्द्र बन गये।

मुनिराज को देखते ही पूर्व भव के वैर के कारण महाराज विद्यु-[illegible] को क्रोध आ गया और वे उन्हे वहां से उठाकर दक्षिण वैताढ्य [illegible] वरुण नामक चोटी पर ले आये। जहां पर हरिवती, चडवेगा, [illegible]जवति, कुसुमवति और स्वर्णवति इन पाचों नदियो का सगम होता [illegible]। उस पचनद क पास ही मुनिराज को छोड़ अपने राज्य प्रासादों में [illegible] पहुँचा। प्रात काल होते ही सब विद्याधरों को कहा 'विद्याधरो ! [illegible]ज रात्रि को मैंने स्वप्न में एक बड़े भारी शरीर वाला भयकर [illegible]पात देखा है। यदि हम उसका तत्काल नाश नहीं कर देंगे तो वह [illegible]म सब का सर्व सहार कर देगा। इसलिए आप लोग इसी समय जा[illegible]र उसका काम तमाम कर दें।'

विद्य दंष्ट्र की ऐसी आज्ञा पाते ही सब विद्याधर एकत्रित हो मुनि-[illegible]ज सजयन्त के पास जा पहुँचे। और उन पर नाना प्रकार के उपसर्ग [illegible]रने लगे, अपने ऊपर हो रहे इन घोर उपसर्गों को देख मुनिराज ने [illegible]माधि धारण कर ली और क्षण भर में घातिक कर्मों का नाश कर [illegible]तकृत केवली हो गये।

जिस समय मुनिराज पर विद्याधर इस प्रकार उपसर्ग कर रहे थे [illegible]वयोग से उन अरिहन्त के ज्ञान महोत्सव के [illegible] वैजयन्त का जीव धरणेन्द्र भी वहा आ पहुँचा और उनके इस दुष्कृत्य को देख उन्हे फटकारते हुए कहने लगा "अरे दुष्टों तुमने इन मुनिराज पर अकारण ही इतने उपसर्ग क्यों किये हैं। इस [illegible] के परिणाम स्वरूप तुम्हारी सब विद्याएँ नष्ट हो जायेंगी और तुम [illegible] हो जाओगे।'

धरणेन्द्र के ऐसे क्रोध भरे वचन [illegible] विद्याधर हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे कि [illegible] नहीं है। हम तो राजा विद्युद्दंष्ट्र के [illegible] इन मुनिराज को मारने के लिए आए थे। [illegible] उत्पात है।" इस पर धरणेन्द्र ने [illegible] विद्युद्दष्ट्र का यह शाप है कि [illegible] सिद्धि नहीं होगी जब [illegible] करेगा। यही कारण है कि [illegible] होती हैं।

हे आर्य ! मैं उसी विद्युद्दंष्ट्र के वंश में उत्पन्न राजकन्या हूं। मै नदी के किनारे पर महाविद्या सिद्ध कर रही हूँ, यह देख मेरा वैरी एक विद्याधर यहाँ आ पहुंचा और वह मुझे नागपाश से बांध गया। परन्तु आपने आकर मुझे बचा लिया। हमारे वंश मे पहिले भी एक केतुमति नामक राजकन्या ने विद्या की सिद्धि की थी। उसे भी किसी ने नागपाश से जकड़ दिया था, जिस प्रकार आपने मेरा उद्धार किया उसी प्रकार अर्द्धचक्री राजा पुण्डरीक ने उसे भी बन्धन मुक्त किया था। और जिस प्रकार राजकुमारी केतुमति पुण्डरीक की प्रियतमा बन गई थी उसी प्रकार मैं भी अब आपकी पत्नी हो चुकी हूँ यह निश्चित समझिये ! यह विद्या जो विद्याधरो को सर्वथा दुर्लभ है आपकी कृपा से सिद्ध हुई है इसलिए आप इसे ग्रहण कर लीजिये।'

यह सुन वसुदेव कुमार ने वेगवती को विद्या देने की इच्छा प्रगट की। कुमार की इच्छानुसार बालचन्द्रा ने वेगवती को सिद्ध विद्या दे दी और आकाशमार्ग से अपने नगर को चली गई।

राजकुमारी प्रियंगुमञ्जरी

बालचन्द्रा के गगन वल्लभपुर चले जाने के पश्चात् वसुदेव अपने निवास स्थान को लौट गए। वहाँ पहुँच कर उन्होंनें दो ऐसे राजाओं को देखा जिन्होंनें कुछ समय पूर्व ही दीक्षा ली थी और जो अपनें पौरुष को धिक्कार रहे थे। उनकी इस आत्म ग्लानि का कारण पूछनें पर उन्होनें अपना वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि—

श्रावस्ती नगरी में एणीपुत्र नामक एक बड़ा धर्मात्मा राजा है। उसनें अपनी पुत्री प्रियगुमञ्जरी को विवाह योग्य देखकर स्वयवर का आयोजन किया। स्वयवर का निमन्त्रण पाकर अनेक देश देशान्तरों के नृपतिगण वहाँ उपस्थित हुए। किन्तु राजकुमारी ने उनमें से किसी का भी वरण नहीं किया। इसलिये रुष्ट हो उन राजाओ ने मिलकर महाराज एणीपुत्र के विरुद्ध युद्ध ठान दिया। किन्तु उन्होंने अकेले ही उन सब राजाओ को परास्त कर दिया। इस पर भयभीत हो बहुत से राजा लोग तो पहाड़ों में जा छिपे। कई जंगलों मे इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे है। क्योंकि लज्जा के कारण पराजित हो वे अपनी राजधानी में जा स्वजनों को मुह भी नहीं दिखा सकते। हम दोनों भी वहाँ से भागकर यहाँ आ पहुंचे और हमने यह तापस वेष धारण कर लिया है। हे महापुरुष ! हमें अपनी इस भीरुता के लिये बड़ा दु:ख है।

इस पर वसुदेव ने उन्हे सान्त्वना देकर धर्म पर दृढ़ रहने का परामर्श दिया। यहाँ से चलकर वसुदेव श्रावस्ती नगरी में पहुँच गये। वहाँ पर एक उद्यान में उन्होंने ऐसा मन्दिर देखा, जिसके तीन द्वार थे। उसके प्रमुख प्रवेशद्वार पर बत्तीस ताले लगे हुए थे। इसलिये उन्होंने दूसरे द्वार से मन्दिर में प्रवेश किया। वहाँ पर तीन विचित्र मूर्तियाँ देखीं। पहली मूर्ति किसी ऋषि की थी दूसरी किसी गृहस्थ की और तीसरी तीन पैर वाले भैंसे की। इन विचित्र मूर्तियों को देख उन्होंने एक ब्राह्मण से पूछा कि हे! महाभाग यह तीनों विचित्र मूर्तियाँ यहां क्यों प्रतिष्ठित हैं। इनका कुछ रहस्य बताकर मेरी उत्सुकता शान्त कीजिये। इस पर उसने कहा—

यहाँ पर जितशत्रु नामक एक राजा राज्य करते थे। उनके मृगध्वज नामक एक पुत्र था। उसी समय कामदेव नामक एक वणिक पुत्र भी यहाँ रहता था। एक वार उसके अपनी पशुशाला में जाने पर उस के पशुपालक दडक ने बताया कि—वह एक भैंस के पाच बच्चे मार चुका है। उस समय उसके छटा बच्चा उत्पन्न हुआ था। जिसकी दीनदृष्टि को देखकर दडक के हृदय में दया की भावना जागृत हो उठी। वह सोचने लगा कि यह तो कोई जन्मान्तर का उत्कृष्ट प्राणी प्रतीत होता है। अपने किन्ही पूर्व सस्कारों के कारण इस जन्म में भैंस की योनी में आ गया है। इसलिये इसे नहीं मारना चाहिये। यह सुनकर कामदेव ने भी उसे अभयदान दे दिया। और राजा ने भी आज्ञा निकलवा दी कि उसे कोई न मारे।

हे प्रभो ! आपका उस महिष के साथ ऐसा कौनसा वैर था, जिसके कारण आपने उसका पैर काट डाला ?" तब केवली भगवान् ने इस प्रकार उत्तर दिया—

बहुत समय पहले यहां पर अश्वग्रीव नामक एक अर्द्ध चक्रवर्ती राजा था। उसके हरिश्मश्रु नामक मन्त्री बड़ा नास्तिक था। परम आस्तिक महाराजा और महानास्तिक मन्त्री में सदा विवाद होता रहता। धीरे-धीरे उनका विरोध बहुत अधिक बढ़ गया। अन्त में वे दोनों त्रिपृष्ठ और अचल के (वासुदेव-बलदेव राजाओं) द्वारा मारे जाकर सातवें नरक के अधिकारी हुए। वहाँ से निकल कर वे दोनों असख्य योनियों मे भ्रमण करते रहे। अन्त में अश्वग्रीव नामक उस आस्तिक राजा का जीव तो मेरे रूप मे आया। और वह हरिश्मश्रु नास्तिक भैंसे के रूप में आया। पूर्व जन्मके उक्त वैर के कारण ही मैंने उसका पैर काट डाला। यहाँ पर मृत्यु के वाद उसने लोहिताक्ष नामक असुर का शरीर पाया है। अन्य सुरासुरों के साथ वह भी मुझे वन्दन करने आया है। इस प्रकार हे राजन् यह ससार चक्र बड़ा ही विचित्र है। किन्तु यहाँ प्रत्येक वात मे कार्य कारण की शृंखला विद्यमान है। पर साधारण अज्ञानी जीव प्रत्येक बात के वास्तिक कारण को नहीं जान पाता इसीलिये वह भवभ्रमण करता रहता है।

उसी चिरस्मृति के लिए लोहिताक्ष असुर ने ये तीनों रत्न निर्मित मूर्तियां यहा स्थापित करवाई हैं। और कामदेव सेठ के वश में इस समय कामदत्त नामक एक महान धनवान् श्रेष्ठी है। उसके बन्धुमती नामक एक पुत्री है। किसी नैमित्तिक ने उसे बताया था कि जो इस मन्दिर के मुख्य द्वार को खोलेगा वही बन्धुमती का पाणी ग्रहण करेगा। इस पर वसुदेव ने तत्काल मन्दिर के प्रमुख द्वार को खोल डाला फलत कामदत्त ने वन्धुमती के साथ उनका विवाह कर दिया।

महाराज ऐणीपुत्र की कन्या प्रियगुमञ्जरी भी जो वन्धुमती सखी थी। इस विवाहोत्सव पर अपने पिता के साथ आई। उसने वसुदेव को देखते ही अपना सर्वस्व उन पर न्यौछावर कर दिया। और रात्री

नोट—भरतक्षेत्र के तीन खड जिसमे सोलह हजार देश होते हैं उस पर जिस राजा का शासन होता है उसे अर्द्धचक्री अर्थात् प्रतिवासुदेव देव कहते हैं। इन सोलह हजार प्रजाशत्ताओ के अधिपति को जो युद्ध में परास्त कर राज्य लेता है उसे वासुदेव या नारायण कहते हैं।

के समय गुप्त रूप मे एक दूत को उनके पास भेजकर उन्हें अपने यहाँ आने के लिये निमन्त्रित किया। वसुदेव सभवतः उसके निमन्त्रण को स्वीकार कर गुप्त रूप से उसके साथ भी चले भी जाते किन्तु उन्होंने इसी समय एक नाटक देखते हुए सुना कि—

महाराज नमि का पुत्र वासव विद्याधर था। उसके वंश में आगे चलकर एक पुरहूत नामक वासव हुआ। एक दिन पुरुहूत हाथी पर सवार होकर भ्रमण करता हुआ गोतम ऋषि के आश्रम में जा पहुचा। वहा पर गोतम पत्नी अहिल्या को देख कामान्ध हो धोखे से उसके साथ रमण करने लगा। पुरुहूत का ऐसा दुर्वृत देख कुपित हुए गौतम ऋषि ने शाप देकर उसे नपु सक बना दिया। यह वृत्तान्त सुनकर वसुदेव सावधान हो गये और उन्होंने गुप्त रूप से प्रियगुमञ्जरी के पास जाना अस्वीकार कर दिया।

उसी दिन रात्रि को वसुदेव बन्धुमति के साथ अपने शयनकक्ष में सो रहे थे कि अर्धनिद्रित अवस्था में उन्होने एक देवी को अपने सामने खडी देखा। उसे देखते हुए विस्मित होकर उठ बैठे और मन ही मन सोचने लगे कि क्या यह कोइ स्वप्न है? या सचमुच ही कोई मेरे सामने देवी खडी है? उन्हे इस प्रकार दुविधा में पड़े देख उस देवी ने उनके सदेह का निराकरण करते हुए कहा कि "हे वत्स! तुम घबराओ मत यह कोई स्वप्न नहीं प्रत्युत मैं सचमुच तुम्हारे सामने खड़ी हूँ।"

इससे पूर्व कि वसुदेव उससे कुछ पूछे, वह उन्हें उठाकर अशोक वाटिका में ले गई और वहाँ पर बैठाकर ...

ने महाराज को दो दिव्य फल भेट किये। वे उन अदृष्टपूर्व और अनास्वादित पूर्व फलों को देखकर विस्मित हुये। महाराज अमोघरेतस ने उन तापसों से पूछा कि उन्हे वे फल कहां से उपलब्ध हुए हैं?

राजा की जिज्ञासा को शाँत करने के लिये कोशिक और तृण बिन्दु ने हरिवश की उत्पत्ति से लेकर कल्पवृक्ष ले आने तक की कथा संक्षेप में कह सुनाई। इस उत्सव के अवसर पर अन्यान्य सैकड़ों कलाकारों के साथ कामपताका ने भी अपने अपूर्व कला कौशल का अत्यन्त आकर्षक ढंग से प्रदर्शन किया। अनेक प्रकार के नृत्य दिखाने के पश्चात् उसने छुरी नृत्य का प्रदर्शन किया। इस नृत्य मे वह छुरियों की तीव्र धाराओं पर बहुत देर तक नाचती रही। इस अद्भुत नृत्य को देखकर सभी दर्शक मंत्र मुग्ध रह गये। चारों ओर कामपताका की कला की प्रशंसा के शब्द सुनाई देने लगे। दर्शक वृंद में उपस्थित राज कुमार चारूचन्द्र तो कामपताका के अपूर्व रूप लावण्य को देख अपने आपको खो बैठा। उधर तापस कुमार कौशिक का भी मन अपने वश में न रहा। तापस कुमार और राजकुमार दोनों ही कामपताका को अपनाने का प्रयत्न करने लगे। पर कहाँ तो राजा और कहाँ एक साधारण तपस्वी।

एक ही वस्तु को लेकर राजा और रंक के पारस्परिक विवाद में रंक को पराजित होना पड़ा। कामपताका को चारूचन्द्र ने अपने अधिकार में कर लिया। उधर कौशिक को इसका कुछ पता न था इसलिए उसने कामपताका को प्राप्त करने के उद्देश्य से महाराज को अपने हृदय की बात कह सुनाई। इस पर राजा ने अपनी विवशता प्रकट करते हुए उत्तर दिया कि "तापसकुमार! युवराज चारूचन्द्र ने कामपताका को अपने पास रख लिया है। अतः मैं उससे आपको दिलाने में सर्वथा समर्थ हूँ।" यह सुन तापस कौशिक ने कुपित हो चारुचन्द्र को शाप दिया "कि जब वह कामपताका के साथ रमण करेगा तो उसकी मृत्यु हो जायगी।"

तापसकुमार के चले जाने के पश्चात् सम्पूर्ण राज्य का भार अपने पुत्र के कंधे पर डाल महाराज अमोघरेतस जगल में चले गये और वहाँ तपस्वियों के साथ रहने लगे। उनकी रानी चारुमति उस समय गर्भवती थी परन्तु उन्हे उसका पता न था। उनके तपोवन में चले जाने

सतायुद्ध के पुत्र शिलायुद्ध वहां से विदा हो गये। उनके चले जाने पर ऋषिदत्ता ने यह सारा वृतान्त अपने पिता को सूचित कर दिया। यथा समय ऋषिदत्ता के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी समय प्रसूति वेदना के कारण ऋषिदत्ता बालक को अपनी छाती का दूध पिलाये बिना ही स्वर्ग सिधार गई।

हे वसुदेव कुमार! पिछले भव की वह ऋषिदत्ता इस जन्म में एक देवी बनकर ज्वलनप्रभ नामक नाग कुमार की यह रानी है। और तुम्हें सुनकर विस्मय होगा कि वह देवी मैं ही हूं और आज एक विशेष प्रयोजन से तुम्हारे पास उपस्थित हुई हैं। हाँ तो सम्भव है तुम जानना चाहोगे कि मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरे उस पिछले भव के पुत्र का क्या हुआ तो सुनो—ऋषिदत्ता की मृत्यु के पश्चात् उस के पिता अमोघरेतस उस नवजात शिशु को अपनी गोद में लिये बिलखने लगे। उन्हें कुछ समझ में नहीं आता था कि उस बालक का पालन-पोषण किस प्रकार किया जाय। इधर मुझे अवधि (जाति-स्मरण) ज्ञान था ही इसलिए मैं ज्वलनप्रभ की भार्या होने पर भी अपने पुत्र के प्रति उमडे हुए वात्सल्य भाव के कारण हरिणी का रूप धारण कर मैं उस नवजात शिशु के पास जा पहुंची और अपना दूध पिलाकर उसका पालन-पोषण करने लगी।

एणी अर्थात् हरिणी के द्वारा पालित होने के कारण ही उसका नाम ऐणीपुत्र पड़ गया।

उधर तापस कुमार कौशिक मर कर मेरे पिता से बदला चुकाने के लिए दृष्टिविष सर्प की योनि में आकर मेरे पिता को डस गया। किन्तु मैंने अपनी विद्या से उस विष के प्रभाव को नष्ट कर उनके प्राण बचा लिए। तत्पश्चात उस सर्प को प्रतिबोध की प्राप्ति हुई। फलतः वह सर्प के शरीर को छोडने के पश्चात बल नामक देव हो गया।

इधर एणीपुत्र के कुछ बड़ा हो जाने पर मैं अपना पुराना ऋषिदत्ता का स्वरूप धारण कर श्रावस्ती नगरी में पहुँची। मैंने उस बालक को महाराज शिलायुद्ध के समक्ष उपस्थित करते हुये उन्हें कहा कि अपनी पूर्व प्रतिज्ञानुसार आप अपने इस पुत्र को अपना लीजिये। किन्तु वह उन सब बातों को भूल कर कहने लगा कि "देवि! मैं नहीं जानता कि तुम कौन हो और यह बालक किस का है। अतः मैं इसे अपने पुत्र के रूप मे स्वीकार नहीं कर सकता।"

राजा के ऐसे निराशाजनक वचन सुनकर मैं बहुत दुखी हुई। कुछ देर तो वहीं किंकर्त्तव्य विमूढ़ सी खड़ी रही। पर अन्त में मैंने अपने कर्तव्य का निश्चय कर लिया। उस बालक को वहीं छोड़ मैं आकाश मे उड गई। आकाश मे जाते-जाते मैं ने शिलायुद्ध को सम्बोधित करते हुए कहा कि—

"हे राजन् मैं वही ऋषिदत्ता हूँ जिस के साथ आपने तपोवन में रमण किया था। यह बालक आप ही का पुत्र है। आपने इसे अपना उत्तराधिकारी बनाने की प्रतिज्ञा की थी। इसके जन्मते ही प्रसव वेदना के कारण मैं मर कर देवी बन गई थी" पश्चात् पुत्र वात्सल्य के कारण मैंने दूसरा शरीर पाकर भी अपनी वैक्रिय शक्ति से हरिणी बनकर इसका पालन किया है। इसी लिए इस का नाम एणी पुत्र है। अत हे राजन् आप इसे स्वीकार कर अपनी प्रतिज्ञानुसार राज्य का अधिकारी बनाइये।

इस पर महाराज शिलायुद्ध ने उस बच्चे को स्वीकार कर उसे राज्यधिकारी बना दिया, और स्वय नेदीक्षा ले ली।

इसके अनन्तर क्योंकि एणीपुत्र के कोई सन्तान नहीं थी, उस ने अट्ठमभक्त तप करके मेरी आराधना की। उस तप के प्रभाव से उसके एक कन्या उत्पन्न हुई। ऐणीपुत्र की वही कन्या प्रियगुमञ्जरी के नाम से प्रसिद्ध है। प्रियगुमञ्जरी ने अपने स्वयवर में आये हुए सभी राजाओं को अस्वीकार कर दिया था। यह तो तुम जानते ही हो। अब उसने तप करके मुझे बुलाया था और वह तुम्हें पति रूप में प्राप्त करना चाहती है। अत तुम्हे अपने आदेशानुसार उसके साथ विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए अपनी पौत्री के विवाहोपलक्ष्य मे मैं तुम पर प्रसन्न होकर तुम्हारी इच्छानुसार वर देना चाहती हूँ। तुम जो भी चाहो मुझ से वर मांग सकते हो।

यह सुन कर वसुदेव ने कहा, भगवती! मुझे आप का आदेश शिरोधार्य है। आपके आज्ञानुसार मैं प्रियगुमञ्जरी को अवश्य स्वीकार कर लूंगा। शेष रही वरदान की बात, सो आप मुझे यही वर दीजिये कि मैं जब भी आपका स्मरण करूं, आप वहीं पहुच कर मेरी यथोचित सहायता करें, तब देवी तथास्तु कह कर अन्तर्धान हो गई।

इधर दूसरे दिन प्रियगुमञ्जरी ने फिर वसुदेव को बुलाने को

भेजा। आज वसुदेव को प्रियगु मञ्जरी के सन्देश वाहक के साथ जाने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं हुई। वे चुपचाप उसके साथ चल पड़े। उधर प्रियगुमञ्जरी तो पहले से ही प्रतीक्षा बैठी थी। अतः उसने वसुदेव को देखते ही आगे बढ़कर बड़े उत्साह के साथ उनका स्वागत सत्कार किया। और महलों मे ही गन्धर्व-विधि से विवाह कर लिया। विवाह के १८ वें दिन प्रियंगुमञ्जरी ने अपने पिता महाराज ऐणीपुत्र को इस विवाह की सूचना दी। इस शुभ समाचार को सुनकर महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने वसुदेव का खूब आदर सम्मान कर बहुत दिनों तक अपने महलो मे ही रख कर उन्हे अनेक प्रकार से सन्तुष्ट किया। + + × ×

—ःसोमश्री का पुनर्मिलनः—

पाठकों को स्मरण होगा कि एक बार सोमश्री सहसा ही वसुदेव की शैया से लुप्त हो गई थी, वस्तुतः उसे उनकी पत्नी वेगवती का भाई मानसवेग विद्याधर अपनी राजधानी स्वर्णाभपुर में हरकर ले गया था। इधर एक बार वसुदेव को भी मारने की इच्छा से उड़ाकर कहीं ले जाया गया था किन्तु वसुदेव ने तो उससे येन केन प्रकारेण अपना पीछा छुड़ा लिया और अब वे सोमश्री के वियोग मे ही व्याकुल रहने लगे।

उधर सोमश्री वसुदेव के विरह में अत्यन्त व्याकुल रहती थी। उसकी इस दु.खित अवस्था को देख गन्धसमृद्धि नामक नगर के महाराज गधारपिंगल की राजकुमारी प्रभावती ने जो एक बार स्वर्णाभपुर में आयी थी और वहाँ सोमश्री से भेंट होने पर वह उसकी सहेली बन गई थी। उसने उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि हे सखी, तुम इस प्रकार व्याकुल मत हो, मैं जैसे भी होगा तुम्हे तुम्हारे पति से मिला दूँगी।

सोमश्री ने उदास भाव से उत्तर दिया, वेगवती भी तो मुझे इसे ही प्रकार धैर्य बंधाकर गई थी, पर अभी तक तो उसका कहीं कुछ पता नहीं लगा। मेरे जैसे अभागिन के भाग्यों में अब फिर से उनसे भेंट कहां पर लिखी है।

तब प्रभावती ने अत्यन्त विनम्र शब्दों में उसे आश्वासन दिया कि मैं वेगवती की भांति कभी तुम्हे धोखा नहीं दे सकती। विश्वास रक्खो

मैं अवश्य तुम्हारा वसुदेव के साथ मिलन करवा दूंगी।' यह कहते ही वह वसुदेव को ढूंढने के लिये चल पड़ी। उसने अपनी दिव्य विद्याओं के प्रभाव से जान लिया कि वसुदेव इस समय श्रावस्ती नगरी में हैं, अतः वह तत्काल वहा पहुँची और वसुदेव से निवेदन करने लगी हे राजपुत्र ! मैं गंधसमृद्धि नगर के अधिपति की पुत्री हूँ। एक बार मैं अपनी सखि वेगवती से मिलने के लिये स्वर्णाभपुर में गई थी। वहां तुम्हारी प्रिया सोमश्री जो तुम्हारी विरह वेदना से आकुल व्याकुल है, दिखाई दी और उसने ही यहां अब मेरे को संदेश देकर आपके पास भेजा है।' सोमश्री का नाम सुनते ही वसुदेव ने उत्सुकता भरी दृष्टि से उसकी ओर देखकर पूछा—क्या सचमुच सोमश्री ने तुम्हें भेजा है? इस पर प्रभावती बोली आप विश्वास रखिये उसी ने ही मुझे भेजा है, आपको इतने विचार करने की आवश्यकता नहीं जब कि सारा विश्व आशा और विश्वास पर ही गतिशील है। अतः आप मेरे साथ चलिये।' वसुदेव ने उत्तर में कहा सुन्दरी ! मैं वहां चलने को प्रस्तुत हूँ किन्तु सोमश्री ने जो कहा है उसे सुनाकर पहले मेरे हृदय की जिज्ञासा को शांत कर दो। वसुदेव को इस प्रकार सोमश्री के वचनों के सुनने के लिये आतुर होते देख उसने कहा—हे सौम्य ! उसका यही निवेदन है कि यदि आप मुझे आकर मुक्त नहीं करायेंगे तो अब मैं आपके वियोग में प्राण त्याग दूंगी। पतिव्रता का यही धर्म है।' यह सुनते ही वसुदेव ने शीघ्र चलने का इशारा किया। संकेत पाते ही वह त्वरित गति से उन्हें उठाकर स्वर्णाभपुर में ले आई।

वसुदेव को देखते ही सोमश्री को मानो नवजीवन प्राप्त हो गया। अब उसकी प्रसन्नता का कोई पारावार न था। वह वसुदेव के साथ आनन्द-पूर्वक रहने का विचार करने लगी। किन्तु उसे यहा रहते मानस वेग का भी भय था, वह जानती थी कि यदि मानस वेग को वसुदेव के मेरे पास रहने का पता लग गया तो वह न जाने हम दोनों की क्या दशा कर डाले। इसलिये सोमश्री ने यथा सम्भव वसुदेव को अपने पास छिपाकर रखने का प्रयत्न किया। इस प्रकार गुप्त रूप से रहते वसुदेव को अभी कुछ ही दिन बीते थे कि मानसवेग को उनकी उपस्थिति का पता चल गया।

मानसवेग ने तत्काल वहां पहुँच, वसुदेव को पकड़ लिया। उनके पकड़े जाने का समाचार सुनते ही अनेक विद्याधरों ने आकर

उन्हें मानसवेग के बन्धन से मुक्त कर दिया। पर वह दुष्ट भी कब चुप रहने वाला था। प्रतिदिन वसुदेव से उलझ पड़ता। नित्य कलह होने लगा। पर किसी प्रकार भी वसुदेव को पराजित होते न देख मानसवेग ने वैजयन्ती नगरी के राजा बलवीरसिंह के पास जाकर वसुदेव की शिकायत करते हुए कहा कि वसुदेव ने सोमश्री का बलात् अपहरण कर लिया है, पहले उसका विवाह उस ही से होना निश्चित हुआ था। इसीलिए वह उसे उठा लाया। किन्तु वसुदेव ने उसका यहां पर भी पीछा न छोड़ा और यहां आकर उसके साथ गुप्त रूप से रहने लगा। अपनी बहिन वेगवती का विवाह मैंने सहर्ष वसुदेव के साथ कर दिया है। अतः अब वह सोमश्री के साथ अपना सम्बन्ध सर्वथा छोड़ दे।

वसुदेव ने उत्तर दिया—"मानसवेग की ये सब बातें सर्वथा असत्य हैं। सोमश्री का विवाह मेरे ही साथ हुआ था। और वेगवती ने भी अपनी इच्छा से और कपटपूर्वक मेरे साथ विवाह किया। उसको तो उस विवाह की सूचना भी नहीं थीं।"

इस प्रकार मानसवेग की असत्यता और धूर्तता प्रकट हो जाने पर वह अपना सा मुँह लेकर रह गया। पर अब उसने उनके साथ प्रत्यक्ष संघर्ष ठानकर युद्ध करने का निश्चय कर लिया। वह अपने नील कण्ठ और सूर्पादिक खेचर साथियो को साथ ले वसुदेव से युद्ध करने के लिए आ डटा। मानसवेग को इस प्रकार अत्याचार करते देख वेगवती की माता अंगारवती ने वसुदेव को एक दिव्य धनुष और दो कभी वाणों से खाली न होने वाले तुणीर दिये। वेगवती की सखी प्रभावती ने उन्हे प्रज्ञप्ति विद्या प्रदान की। इस प्रकार विद्या और शास्त्रास्त्रों को प्राप्त कर वसुदेव को परम हर्ष हुआ। उन शस्त्रों के बल से उन्होंने देखते देखते अपने सब शत्रुओं को परास्त कर दिया। वे मानसवेग को वन्दी वना लाये, पर उसकी माता अंगारवती ने उसे छुड़ा दिया। अव तो मानसवेग उनके साथ बड़ी नम्रता का व्यवहार करने लगा। अव वे सोमश्री के साथ विमान में बैठ महापुर आ पहुँचे, और वहीं पर सानन्द रहने लगे।

इस प्रकार मानसवेग तो हिम्मत कर बैठा, पर उसका कपटी साथी सूर्पक अभी तक अनेक प्रकार के छल-छिद्रो और मायाजाल से उनका पीछा करता रहा। एक बार वह घोड़े का रूप धारण कर महापुर आया और वसुदेव को उठा ले चला। यह देखते

ही इन्होंने उस अश्वरूपधारी सूर्पक के सिर पर ऐसा मुक्का जमाया कि वह तिलमिला उठा और उन्हें वहीं फेंककर भाग निकला। इस अश्व की पीठ पर से गिरकर वसुदेव गंगा की धारा में जा गिरे। गंगा को पारकर वे एक किसी तपस्वी के आश्रम में जा पहुँचे। वहां गले में हड्डियों की माला पहने हुई एक कन्या खड़ी थी। उसे इस प्रकार खड़ी देख वसुदेव ने तपस्वी से पूछा:—

"महात्मन्! यह कौन है और यहां क्यों खड़ी है?"

तपस्वी ने कहा—"हे कुमार! यह वसंतपुर के महाराज जितशत्रु की पत्नी और जरासन्ध की नन्दिषेणा (इन्द्रसेन) नामक पुत्री है। इसे एक सूरसेन नामक परिव्राजक ने विद्या से वश कर लिया था, इसलिए राजा ने उसे मरवा डाला। किन्तु उसके वशीकरण का प्रभाव इस पर इतना अधिक पड़ा कि यह अब तक उसकी हड्डियाँ धारण किये रहती है।"

यह सुनकर वसुदेव ने अपने मन्त्रबल से उसके वशीकरण का प्रभाव नष्ट कर दिया। इससे वह फिर अपने पति राजा जितशत्रु के पास चली गई। राजा जितशत्रु ने इस उपकार के बदले में वसुदेव के साथ अपनी केतुमती नामक बहिन का विवाह कर दिया। वसुदेव वहीं ठहर गये। और उसका आतिथ्य ग्रहण करने लगे।

धीरे-धीरे यह समाचार राजा जरासन्ध के कानों तक जा पहुँचा। उसने डिम्भ नामक द्वारपाल को राजा जितशत्रु के पास वसुदेव को मंगाने के लिये भेजा। जितशत्रु ने वसुदेव को सहज ही दे देना था। क्योंकि एक तो वह जरासन्ध का दामाद था दूसरे उस समय वह सोलह हजार राजाओं का अधिपति था अतः उस भय के मारे उसने तुरन्त द्वारपाल को सौंप दिया। वसुदेव के राजगृह में पहुँचते ही उन्हें बन्दी बना लिया गया। क्योंकि जरासंध को किसी नैमित्तिक ने बताया था कि जो नंदीषेणा को परिव्राजक के वशीकरण मन्त्र के प्रभाव से मुक्त करेगा उस ही का पुत्र तुम्हारा का विघातक सिद्ध होगा।

जरासन्ध के राज्यकर्मचारी इस प्रकार वसुदेव को पकड़कर उन्हें मार डालने के लिए वध-स्थान में ले गये। वहाँ पर पहले से ही वधिक वसुदेव को तलवार के घाट उतार देने के लिए तत्पर थे। वधिकों ने ज्योंही वसुदेव को तलवार के घाट उतारने के लिये अपने शस्त्र उठाये,

कि उसी समय भगीरथी नामक एक धात्री ने उन्हें वधिकों के हाथों से छुड़ाकर गन्धसमृद्धिपुर नामक नगर में पहुँचा दिया। बात यों हुई कि सोमश्री की पूर्वोक्त सखी प्रभावती के पिता महाराज गंधार पिङ्गल को किसी ने बतला दिया था कि प्रभावती का विवाह वसुदेव के साथ होगा, इसीलिये उसने भगीरथी को वसुदेव को लाने के लिये भेज दिया। किन्तु इधर तो उनका मृत्यु वधू से विवाह हो रहा था परन्तु भगीरथी ने ठीक समय पर पहुँच कर उन्हें वधिकों के हाथों से छुड़ा दिया। अत. "जाको राखे साईंया मार सके न कोय।" वाली उक्ति यहां सम्यक् रूप से चरितार्थ हुई। उधर गन्धसमृद्धिपुर पहुँचने पर महाराज पिंगल ने वसुदेव के साथ अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह कर दिया। अब वे वहां आनदपूर्वक अपना समय यापन करने लगे।

कुछ समय पश्चात् वे वैताढ्य पर्वत की कौसला नामक नगरी में जा पहुंचे। वहाँ के कौशल नामक विद्याधर राजा ने अपनी पुत्री सुकोशल का विवाह उनसे कर दिया। इस प्रकार अनेक विद्याधरों तथा भूचर राजाओं की अनेक कन्याओ के साथ विवाह कर वसुदेव का समय बड़े आनन्द के साथ बीतने लगा।



कनकवती परिणय

भरत क्षेत्र में स्वर्ग की शोभा को भी लज्जित करने वाला पेढालपुर नगर था। वहा पर एक महाप्रतापी प्रजा पालक हरिश्चन्द्र नामक राजा राज्य करते थे। हरिश्चन्द्र की लक्ष्मीवती नामक एक अत्यन्त गुणवती, रूपवती और पतिपरायणा महारानी थी।

महाराज हरिश्चन्द्र के यहाँ कुछ समय पश्चात् एक परम रूपवती पुत्री का जन्म हुआ, उसके जन्म के समय सम्पूर्ण वैभव और ऐश्वर्य के अधिपति कुबेर ने स्वय पेढालपुर में स्वर्ण की वृष्टि कर अपनी प्रसन्नता प्रकट की थी। जन्म के समय हुई इस अपूर्व घटना के कारण ही उस राजकुमारी का नाम कनकवती रखा गया। धीरे-धीरे कनकवती अनेक धात्रियों के द्वारा लालित-पालित हो कर द्वितीया की चन्द्रकला के समान बढने लगी। महाराज ने अपनी इस प्राणप्रिया पुत्री को शिक्षा दीक्षा आदि के सम्बन्ध में कोई कसर न रखी। पुत्री होते हुए भी उसके सब कार्य पुत्रवत् सम्पन्न होने लगे। उसकी पढ़ाई के लिए उद्भट विद्वान् और आचार्य नियुक्त कर दिये गये। कुशाग्र बुद्धि वाली उस बालिका ने अल्प समय में चौसठ कलाओं का अध्ययन कर लिया। उसकी इस अपूर्व प्रतिभा को देखकर सभी लोग चकित हो जाते किसी भी विषय को एक बार पढ कर ही वह हृदयगम कर लेती थी।

बालिकायें यों भी बालकों की अपेक्षा बहुत शीघ्र विवाह योग्य हो जाती हैं। फिर राजकुमारियों की तो बात ही क्या? देखते ही देखते कनकवती का कमनीय कलेवर यौवन की कलित कान्ति से उद्भासित हो उठा। पुत्री के युवावस्था में पदार्पण करते ही उनके परिवार वालों को चिन्ता आ घेरती है। जब तक कोई योग्य वर न मिल जावे तब तक उनके माता पिता का खाना, पीना, सोना, उठना, बैठना आदि सब कार्य बन्द से हो जाते हैं। तदनुसार महाराज हरिश्चन्द्र को भी

कनकवती के लिए अच्छा वर ढूंढने की चिन्ता सताने लगी। उसके लिए योग्य वर ढूंढने में उन्होंने रात दिन एक कर दिये। पर उनकी इच्छा के अनुसार सर्व गुण सम्पन्न वर ही कोई दिखाई नहीं देता। दूर देश-देशान्तरों में भटक-भटक हार गये किन्तु किसी ने भी आशा का सन्देश न सुनाया। राजा रानी दोनों को ही इस पुत्री के विवाह की समस्या ने अत्यन्त चिन्तित बना डाला। अन्त में उन्होंने अपने मन्त्रियों को बुला कर उनके समक्ष अपना हृदय खोलते हुए कहा कि "मन्त्रीगण ! आप तो जानते ही हैं, राजकुमारी कनकवती की अवस्था विवाह के योग्य हो गई है, उसके यौवन की दीप्ति से सम्पूर्ण देश जगमगाने लग गये हैं। युवती कन्या को अविवाहित रख उसके मनोवेगों को निरुद्ध करने के परिणाम स्वरूप माता-पिता को अत्यन्त चिन्तित रहना ही पड़ता है। अब आप लोग जानते ही हैं कि इस सम्बन्ध में हम ने अपनी ओर से किसी प्रकार की कसर उठा नहीं रखी है। पर योग्य वर की प्राप्ति अपने हाथ में तो है ही नहीं। उसका जहा जिस के साथ सम्बन्ध लिखा होगा उस ही के साथ तो होगा। भाग्य के आगे मनुष्य का भला क्या वश चल सकता है, अतः अब आप ही बतलाइये की इस समस्या का समाधान किस प्रकार हो।"

मन्त्री ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि महाराज कनकवती विधाता की सृष्टि में अपूर्व सुन्दरी और विदुषी राजकुमारी है। उसको प्राप्त करने के लिए यक्ष गन्धर्व आदि सभी विद्याधर भूचर तथा राजकुमार लालायित हैं। इसलिए उसके विवाह के सम्बन्ध में आपको अधिक चिन्तित होने की कोई आवश्यकता नहीं। शीघ्र ही राजकुमारी के स्वयंवर का आयोजन कर इस चिन्ता से मुक्त हुआ जा सकता है।

तदनुसार महाराज हरिश्चन्द्र ने कनकवती के स्वयवर की तैयारिया शुरू कर दीं। देश-देशांतरों के राजा महाराजाओं आदि के पास स्वयवर में भाग लेने के लिए निमन्त्रण पत्र भेजे जाने लगे। इधर पेढालपुरी नगरी को अमरपुरी समान सजाया जा रहा था। तो दूसरी ओर एक अत्यन्त सुसज्जित देव विमानोपम रमणीय विशाल मण्डपका निर्माण किया जाने लगा। इस प्रकार स्वयंवर का बड़े धूम-धाम से आयोजन होने लगा।

इस ही समय राजकुमारी अपनी सखियों के साथ एक दिन उपवन

में घूम रही थी कि उसे एक अत्यन्त सुन्दर राजहंस दिखाई दिया। कर्पूर और हिम के समान उसके निर्मल शुभ्र पंख, कोमल पल्लव के समान रक्ताभ, उसकी चोंच और चरणों को देख राजकुमारी अत्यन्त विस्मित हो उसे पकड़ने का प्रयत्न करने लगी। उसके गले में बन्धी हुई किन्कणियों से ज्ञात होता था कि वह कोई पालतू हंस है। राजकुमारी ने इस हंस को देखते ही उत्सुकता वश पकड़ने का प्रयत्न किया। कुछ समय तो वह हंस राजकुमारी की पकड़ से बचने का प्रयत्न करता रहा। परन्तु मानव के सम्पर्क के अभ्यस्त उस पालतू हंस को विवश हो राजकुमारी के हाथों में बन्दी हो जाना पड़ा। उसे पकड़ते ही राजकुमारी इस प्रकार प्रसन्न हुई मानो कोई अपूर्व निधि मिल गई हो। वह मन ही मन आनन्दित और मुग्ध होती हुई सोचने लगी कि जिस किसी ने ऐसे सुन्दर हंस को पाला है वह महाभाग भी कैसा सौभाग्यशाली रहा होगा। चलो पहले कहीं रहा हो, किसी ने कहीं पाला हो इस से मुझे क्या। इस समय तो मेरे हाथों में यह बन्दी है। अब तो इसे जन्म भर अपने से अलग न होने दूंगी। यह सोचते वह उस भोले-भाले पक्षी को अपनी छाती से लगा उसके निर्मल शुभ्र सुकोमल पंखों को अपने सुकुमार कर से सहलाती हुई सखी से कहने लगी कि अरी चारुशीले! तनिक देख तो सही यह हंस कितना सुन्दर और भोला-भाला है। चलो इसे अपने महलों में ले चलें, वहाँ इसे सोने के पिंजरे में रखेंगे। यह कह कर कनकवती अपनी सखियों के साथ हंस को लिये हुए अपने राज्य महलों में आ पहुंची। वहाँ आते ही उसके लिए रत्नजटित सोने का पिंजरा मंगवाया। ज्यों ही वह उसे पिंजरे में बन्द करने लगी कि वह हंस मनुष्य के समान स्पष्ट वाणी में राजकुमारी से इस प्रकार कहने लगा—

हे राजकुमारी! तुम बड़ी विदुषी और समझदार हो मैं आज तुम्हें तुम्हारे हित की बात कहने के लिए ही यहां आया हूँ। इसलिये विश्वास रखो मैं तुम से बातचीत किये बिना यहाँ से कदापि न जाऊंगा। मुझे पिञ्जरे में बन्द करने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे हाथों से मुक्त होकर भी मैं जिस उद्देश्य से आया हूँ उसे पूरा करके ही जाऊंगा।" हंस को इस प्रकार मनुष्य के समान बातचीत करते देख राजकुमारी अत्यन्त विस्मित हुई, उसने आज तक किसी पक्षी को

बात चीत करते देखा सुना कहीं था। आज पहली बार उसके सामने ऐसा सुन्दर हंस आया था, जिसने आपके सौन्दर्य के साथ ही साथ मानव-सुलभ-भाषा में बात चीत कर उसे विमुक्त कर दिया। इसलिये उसने हंस की बातों का विश्वास कर उसे छोड़ते हुए कहा हे मधुर भाषी प्रिय पक्षी राज ! लो मै तुम्हें छोड़ती हूँ। तुम स्वतन्त्र होकर बतलाओ कि मेरे योग्य क्या कार्य है तुम मुझे वह कौन सा प्रिय सन्देश देने आये हो जिसका पालन कर मैं सौभाग्यशालनी बन सकती हूँ। राजकुमारी के हाथों से उन्मुक्त हो वह राजहंस पास ही गवाक्ष पर जा बैठी और अत्यन्त प्रिय मधुर वाणी से उसे इस प्रकार कहने लगा—

हे राजकुमारी ! सुनो, यदुवश में उत्पन्न वसुदेव कुमार परम गुणवान् और युवा हैं। रूप में तो मानो वह प्रत्यक्ष कामदेव का ही रूप है। जिस प्रकार पुरुषों में वह सर्वश्रेष्ठ सुन्दर है उस ही प्रकार स्त्रियों में विधाता ने तुम्हें बनाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम दोनों की अनुपम जोडी बनाने के लिए यह मणी-कान्चन योग हुआ है। यदि तुम उसे पति रूप में प्राप्त कर लोगी तो तुम्हारा जीवन सार्थक हो जावेगा। मैं उनसे तुम्हारे रूप गुण की चर्चा पहले ही कर आया हूं। अत वे भी तुम पर पहले ही से अनुरक्त हैं अतः तुम्हारे स्वयवर में वे आवेगे ही। जिस प्रकार आकाश में छोटे मोटे अनेक ग्रह नक्षत्रों के रहते हुए भी चन्द्रमा के पहचानने में किसी को कोई कठिनाई नहीं होती उसी प्रकार पहली झलक में उनको तुम पहचान जाओगी। अपनी अनुपम सौन्दर्य समन्वित यौवन की कान्ति व तेजस्वीता के कारण छिपाने पर भी वे छिप न सकेगें और स्वयवर में उपस्थित हजारों राजकुमारों मे से तत्काल तुम्हारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेगे। इसलिए तुम बड़ी सावधानी और सजगता के साथ काम लेना और अन्य किसी विद्याधर या देवता के मोह में मत पड़ जाना अब मुझे आज्ञा दो। मै गगन विहारी पक्षी हूँ। अनन्त आकाश में स्वछन्दता-पूर्वक विचरण करते हुए सरोवरो मे खिले हुए फूलों के साथ नानाविध लीलायें करते रहने का ही हमारा स्वभाव है। इसलिए अब और मैं अधिक देर आपके पास नहीं ठहर सकता। यह कहते हुए हस अपने हिम-शुभ्र पंखों को पसार उड़ने की तैयारी करने लगा।

हंस के मुख से ऐसी अतर्कित बात सुन राजकुमारी चित्र-लिखित सी रह गई, उसे कुछ समझ नहीं आ रही थी कि वह हंस की किस बात का क्या उत्तर दे और क्या न उत्तर दे। देखते ही देखते हंस गवाक्ष में उड़ने लगा उड़ते २ उसने अपने फैलाये हुए पंखों में से एक अत्यन्त सुन्दर चित्र कनकवती के हाथों में देकर कहा कि हे सुन्दरी! जिनके अनुपम रूप गुणों की चर्चा अभी २ तुम्हारे सामने की थी यह उसी सुभग का चित्र है। यह मेरी रचना है अतः इसमें कोई दोष या त्रुटि हो सकती है पर निश्चय रक्खो कि उस युवक में कोई दोष नहीं है। इस चित्र के द्वारा स्वयंवर में उपस्थित सहस्त्रों राजकुमारों के होते हुए भी तुम उसे पहचान लोगी।

चित्र को देखकर राजकुमारी का मौन टूटा। उसने प्रकृतिस्थ होकर पूछा हे सौम्य मुझे अपने विरह के दुख में डालकर यहाँ से विदा होने के पूर्व यह तो बता जाओ कि तुम कौन हो और तुमने मुझ पर यह अकारण कृपा क्यों की है? तुम कहाँ से आये हो और वह सुन्दर युवक कौन है? आशा है तुम यह सब बताकर मेरे हृदय की उत्सुकता को शान्त करोगे।

कनकवती के इस प्रकार कहने पर हंस रूपधारी वह विद्याधर अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट कर कहने लगा कि भद्रे! "मैं चन्द्रातप नामक विद्याधर हूँ। तुम्हारी और तुम्हारे भावी पति की सेवा करने के लिए ही मैंने यह रूप धारण किया है। एक बात और भी स्मरण रखना कि स्वयंवर महोत्सव में वह युवक सम्भवतः किसी का दूत बनकर आयेगा। इसलिए तुम्हें पहचानने में भूल नहीं करनी चाहिये। यह कहकर वह हंस वहां से उड़ गया।

हंस के चले जाने पर राजकुमारी बार बार उस चित्र को देख देख कर मोहित होते हुए मन ही मन कहने लगी कि यह चित्र तो मुह बोलता सा जान पड़ता है। सचमुच इसने मेरे हृदय पर जादू सा कर कर दिया है। निश्चित ही इस परम सुन्दर युवक का और मेरा इस जन्म का ही नहीं कोई जन्म जन्मान्तरों का संस्कार है। अन्यथा यह अकारण बन्धु हंस मुझे पहले ही से आकर इस प्रकार सावधान व सूचित क्यों करता। इस प्रकार सोचती हुई उस चित्र को देखते २ वह पागल सी हो गई। कभी उसे हृदय से लगाती। कभी सिर माथे पर

बात चीत करते देखा सुना कहीं था। आज पहली बार उसके सामने ऐसा सुन्दर हस आया था, जिसने आपके सौन्दर्य के साथ ही साथ मानव-सुलभ-भाषा में बात चीत कर उसे विमुक्त कर दिया। इसलिये उसने हंस की बातों का विश्वास कर उसे छोड़ते हुए कहा हे मधुर भाषी प्रिय पक्षी राज ! लो मै तुम्हें छोड़ती हूँ। तुम स्वतन्त्र होकर बतलाओ कि मेरे योग्य क्या कार्य है तुम मुझे वह कौन सा प्रिय सन्देश देने आये हो जिसका पालन कर मैं सौभाग्यशालनी बन सकती हूँ। राजकुमारी के हाथों से उन्मुक्त हो वह राजहंस पास ही गवाक्ष पर जा बैठी और अत्यन्त प्रिय मधुर वाणी से उसे इस प्रकार कहने लगा—

हे राजकुमारी ! सुनो, यदुवश में उत्पन्न वसुदेव कुमार परम गुणवान् और युवा है। रूप में तो मानो वह प्रत्यक्ष कामदेव का ही रूप है। जिस प्रकार पुरुषों मे वह सर्वश्रेष्ठ सुन्दर है उस ही प्रकार स्त्रियो मे विधाता ने तुम्हें बनाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम दोनों की अनुपम जोडी बनाने के लिए यह मणी-कान्चन योग हुआ है। यदि तुम उसे पति रूप मे प्राप्त कर लोगी तो तुम्हारा जीवन सार्थक हो जावेगा। मैं उनसे तुम्हारे रूप गुण की चर्चा पहले ही कर आया हूं। अत वे भी तुम पर पहले ही से अनुरक्त हैं अतः तुम्हारे स्वयवर में वे आवेंगे ही। जिस प्रकार आकाश में छोटे मोटे अनेक ग्रह नक्षत्रों के रहते हुए भी चन्द्रमा के पहचानने में किसी को कोई कठिनाई नहीं होती उसी प्रकार पहली झलक में उनको तुम पहचान जाओगी। अपनी अनुपम सौन्दर्य समन्वित यौवन की कान्ति व तेजस्वीता के कारण छिपाने पर भी वे छिप न सकेगें और स्वयवर में उपस्थित हजारो राजकुमारो मे से तत्काल तुम्हारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेंगे। इसलिए तुम बड़ी सावधानी और सजगता के साथ काम लेना और अन्य किसी विद्याधर या देवता के मोह में मत पड़ जाना अब मुझे आज्ञा दो। मैं गगन विहारी पक्षी हूँ। अनन्त आकाश में स्वछन्दता-पूर्वक विचरण करते हुए सरोवरो मे खिले हुए फूलो के साथ नानाविध लालाये करते रहने का ही हमारा स्वभाव है। इसलिए अब और मैं अधिक देर आपके पास नहीं ठहर सकता। यह कहते हुए हंस अपने हिम-शुभ्र पंखों को पसार उड़ने की तैयारी करने लगा।

हंस के मुख से ऐसी अतर्कित बात सुन राजकुमारी चित्र-लिखित सी रह गई, उसे कुछ समझ नहीं आ रही थी कि वह हंस की किस बात का क्या उत्तर दे और क्या न उत्तर दे। देखते ही देखते हंस गवाक्ष से उड़ने लगा उड़ते २ उसने अपने फैलाये हुए पखों में से एक अत्यन्त सुन्दर चित्र कनकवती के हाथों में देकर कहा कि हे सुन्दरी ! जिसके अनुपम रूप गुणों की चर्चा अभी २ तुम्हारे सामने की थी यह उसी सुभग का चित्र है। यह मेरी रचना है अतः इसमें कोई दोष या त्रुटि हो सकती है पर निश्चय रक्खो कि उस युवक में कोई दोष नहीं है। इस चित्र के द्वारा स्वयंवर में उपस्थित सहस्त्रों राजकुमारों के होते हुए भी तुम उसे पहचान लोगी।

चित्र को देखकर राजकुमारी का मौन टूटा। उसने प्रकृतिस्थ होकर पूछा हे सौम्य मुझे अपने विरह के दुख में डालकर यहाँ से विदा होने के पूर्व यह तो बता जाओ कि तुम कौन हो और तुमने मुझ पर यह अकारण कृपा क्यों की है ? तुम कहाँ से आये हो और वह सुन्दर युवक कौन है ? आशा है तुम यह सब बताकर मेरे हृदय की उत्सुकता को शान्त करोगे।

कनकवती के इस प्रकार कहने पर हंस रूपधारी वह विद्याधर अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट कर कहने लगा कि भद्रे ! "मैं चन्द्रातप नामक विद्याधर हूँ। तुम्हारी और तुम्हारे भावी पति की सेवा करने के लिए ही मैंने यह रूप धारण किया है। एक बात और भी स्मरण रखना कि स्वयंवर महोत्सव में वह युवक सम्भवतः किसी का दूत बनकर आवेगा। इसलिए तुम्हें पहचानने में भूल नहीं करनी चाहिये। यह कहकर वह हंस वहाँ से उड़ गया।

हंस के चले जाने पर राजकुमारी बार बार उस चित्र को देख देख कर मोहित होते हुए मन ही मन कहने लगी कि यह चित्र तो मुंह बोलता सा जान पड़ता है। सचमुच इसने मेरे हृदय पर जादू सा कर कर दिया है। निश्चित ही इस परम सुन्दर युवक का और मेरा इस जन्म का ही नहीं कोई जन्म जन्मान्तरों का संस्कार है। अन्यथा यह अकारण बन्धु हंस मुझे पहले ही से आकर इस प्रकार सावधान व सूचित क्यों करता। इस प्रकार सोचती हुई उस चित्र को देखते २ वह पागल सी हो गई। कभी उसे हृदय से लगाती। कभी सिर माथे पर

लेती, कभी चूमती प्यार लेती हुई और बाते करने लगती, और कहती कि अब तुम कब आओगे। वह कौन सा सौभाग्य शाली दिन होगा जब तुम से साक्षात्कार भेट हो सकेगी। कभी वह सोचती कि पिताजी भी न जाने कितने निष्ठुर हैं। जो स्वयवर मे इतनी देर कर रहे हैं। आज इसी क्षण क्यो नहीं स्वयवर कर देते। ऐसी नाना प्रकार की कल्पनाओं मे उलझी हुई कनकवती के लिए एक एक पल युगों के समान भारी बन गया।

चन्द्रातप विद्याधर कनकवती के यहाँ से विदा हो कोशला नगरी में जा पहुचे। वहाँ पर वसुदेव विद्याधरराज कौशल के महलों में अपनी रानी सुकोशला के साथ वसुदेव आनन्द पूर्वक सो रहे थे। उसने वहां पहुंचते ही वसुदेव को जगा दिया।

शैय्या से उठते ही वसुदेव ने अपने सामने एक अपरिचित युवक को बैठे देखा। इस अदृष्ट पूर्व युवक को सहसा अपने शयन कक्ष में उपस्थित देखकर भी वसुदेव न तो चकित ही हुए और न क्रुध ही और न भयभीत ही हुए। वे सोचने लगे कि यह अज्ञात पुरुष निश्चित ही कोई असाधारण जीव है। क्योकि इस प्रकार सुरक्षित महल में आकाशगामी सिद्ध पुरुष के सिवाय रात्रि के समय कोई आ नहीं सकता। अवश्य ही यह कोई विद्याधर है। परन्तु समझ में नहीं आता कि यह कोई मेरा शत्रु है जो मुझे उड़ा ले जाकर मार डालना चाहता है या हितेषी मित्र है। पर शत्रु होता तो इस प्रकार मुझे जगाता क्यों। वह तो पहले की भाँति चुपचाप उठा ले जाता। अतः यह कोई शुभ चिन्तक ही है। पर मुझे इसके हृदय के भाव कैसे ज्ञात हो सकते हैं क्योंकि यदि मै इसे बात चीत करता हूँ तो प्रिया सुकोशला की नींद में बाधा पडेगी अतः कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे सुकोशला की निद्रा में बाधा न पड़े और घर आये अतिथि से बातचीत न करने की धृष्टता भी न प्रतीत हो। तब वे शनैः२ अपने पलंग से उठकर धीरे धीरे पर रखते हुए शयक कक्ष से बाहर निकल आये। ज्यों ही वे कमरे से बाहर निकल कर अलिन्द मे पहुचे कि चन्द्रातप ने उन्हें प्रणाम किया। उसे देखते ही वे पहचान गये कि यह तो वही विद्याधर है जिसने कनकवती का परिचय दिया था। तब उन्होने बड़े मधुर स्वर से कहा कि भद्र तुम्हारा स्वागत हो। सुख पूर्वक बैठो और इस समय

अपने यहा आने का कारण बतला कर मेरी उत्सुकता दूर करो । इस पर चन्द्रातप ने उत्तर दिया कि—

हे कुमार मैं आपके यहां से विदा होकर सीधा पेढालपुर के उपवन में विहार करती हुई राजकुमारी कनकवती के पास पहुचा । उसे मैंने आपका परिचय दिया । साथ ही अपनी विद्या के बल से तत्काल आपका एक चित्र बनाकर उसे दे आया हूँ । आपके रूप गुणों की प्रशसा सुनकर व आपके रूप को देखकर वह आप पर मोहित हो गई है । उसने आप के चित्र को लेते ही पहले तो बडी श्रद्धा-पूर्वक उसे प्रणाम किया । फिर हृदय से लगाकर पागलों की भाँति प्रेमाश्रु बहाती हुई कहने लगी कि प्राणनाथ इस दासी को दर्शन देकर आप कब कृतार्थ करेंगे । इससे ज्ञात होता है कि इसका हृदय पूरी तरह आप में अनुरक्त है । स्वयवर में आपको छोड़कर अन्य किसी का वरण नहीं करेगी । इसलिए हे महा भाग, आप तत्काल स्वयवर सभा में पहुचने का प्रयत्न कीजिए और शीघ्रातिशीघ्र यहा से प्रस्थान की तैयारी शुरू कर दीजिये । स्वयवर में अब केवल दस दिन शेष रह गये हैं । यदि आप समय पर नहीं पहुच पाये तो निराशा के सागर में डूबती हुई कनकवती कुछ भी आलम्बन न पा आपके वियोग में तड़प २ कर अपने प्राण दे देगी ।

यह सुन वसुदेव के चन्द्रातप का धन्यवाद करते हुए कहा कि भद्र तुम ने जो कुछ कहा वह सर्वथा सच है । मैं उसके अनुसार कार्य करने का प्रयत्न करूंगा । प्रात काल होते ही अपने सब सज्जनों से परामर्श के पश्चात् यहा से प्रस्थान कर दूगा । तुम प्रमद वन में मेरी प्रतीक्षा करना । मैं वहाँ तुम्हें मिलूगा ।

वसुदेव को इस प्रकार प्रस्थानोद्यत कर चन्द्रातप अपने स्थान को लौट गया । प्रभात होते ही वसुदेव अपने सब सज्जनों तथा प्राण-प्रिया पत्नी सुकोशला की अनुमति लेकर पेढालपुर के लिए प्रस्थान कर गये । वहाँ पहुँचने पर महाराज हरिश्चन्द्र ने उनका स्वागत कर, उन्हे लक्ष्मीरमण नामक उद्यान में ठहराया । उद्यान तरह-तरह के वृक्ष, लता, पुष्प तथा फलों से सुशोभित हो रहा था । इसके नाम के सम्बन्ध में किसी ने वसुदेव से बतलाया कि प्राचीन काल में श्री नमिनाथ भगवान् का समवसरण इस उद्यान में हुआ था । उस समय देवांगनाओं के साथ स्वय लक्ष्मी जी ने श्री नमिनाथ भगवान् के सामने रास क्रीड़

की थी । उसी समय से यह उद्यान लक्ष्मीरमण कहलाने लगा ।

इसी समय कुमार ने देखा कि असख्य ध्वजा पताकाओं से सुशोभित एक चलते-फिरते सुमेरू पर्वत के समान विशाल विमान धीरे-धीरे आकाश से नीचे उतरता आ रहा है । उस विमान मे बैठे हुए बन्दीजन मगल वाद्य बजाते हुए जय जयकार की ध्वनियो से गगन मंडल को गुंजा रहे हैं ।

इस प्रकार उसे देखते ही उन्होंने लोगों से पूछा कि यह अद्भुत विमान किस का चला आ रहा है। तब परिचित देव दूत ने उन्हें बताया कि हे महाभाग ! यह विमान कुबेर का है। वे कनकवती के स्वयवर को देखने के लिए इस विमान मे बैठ कर यहां आ रहे है। सचमुच वह कनकवती धन्य है जिसके स्वयंवर में कुबेर आदि बड़े-बड़े देवगण भी इस प्रकार बड़ी सजधज व धूमधाम के साथ पधार रहे हैं।

देखते-देखते कुबेर का विमान उद्यान में उतर आया । विमान से बाहर आकर कुबेर ने ज्यों ही उपवन में पॉव रखा कि वसुदेव उन्हें दिखाई दे गये । उनके दिव्य रूप को देख कुबेर भी मन्त्र मुग्ध से रह गये । उन्होंने अगुली के सकेत से वसुदेव को अपने पास बुला लिया, सकेत पाते वे ही सहर्ष कुबेर के पास जा पहुँचे । कुबेर ने बड़े आदर और स्नेह के साथ उन्हे अपने पास बैठा कर उन्हे सम्मानित किया । थोड़ी ही देर मे पारस्परिक परिचय और कुशल प्रश्न के पश्चात् दोनों में सख्य भाव हो गया। कुबेर को अपने ऊपर इस प्रकार प्रसन्न देख वसुदेव ने बड़े विनय के साथ निवेदन किया कि देव ! मुझे आप अपना सेवक ही समझिए और मेरे योग्य कोई सेवा हो तो आज्ञा दीजिए। मैं आपकी कुछ सेवा कर अपने आपको कृतार्थ समझूंगा ।

इस पर कुबेर ने बड़े स्नेह भरे चेहरे से उत्तर दिया क्या आप वस्तुत हमारे किसी कार्य में सहायक बनना चाहते हैं, यदि आप कोई कार्य करना चाहते हैं तो मैं आपको इसी समय एक आपके योग्य कार्य बता सकता हूँ । उस कार्य के लिए मुझे आप जैसा चतुर और बुद्धिमान् दूसरा कोई व्यक्ति दिखाई नहीं देता । इसीलिए मैं यह कष्ट आप ही को देना चाहता हूँ । मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप अपनी व्यवहार-निपुणता से मेरा वह कार्य अवश्य सम्पन्न कर सकेंगे ।

वसुदेव ने उत्तर दिया "मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य होगी।

आप जो कुछ भी कहेंगे मैं प्राणप्रण से उस कार्य को पूरा करने का पूरा-पूरा प्रयत्न करूंगा। आप नि संकोच भाव से आदेश दीजिए कि आप इस जन से क्या कार्य लेना चाहते हैं ?"

तब कुबेर कहने लगे—आप को यह तो ज्ञात ही होगा कि यहां के महाराज हरिश्चन्द्र की कनकवती नामक राजकुमारी का स्वयवर होने वाला है। इसलिए आप उसे जाकर मेरा यह सदेश दे दीजिये कि कुबेर स्वय तुम्हें अपनी पटरानी बनाना चाहता है। इसलिए तुम ऐसे दुर्लभ अवसर को हाथ से न जाने दो। आज तक ऐसा सौभाग्य किसी मानवी को प्राप्त नहीं हुआ कि मनुष्य योनि में जन्म लेकर भी देवी कहलाये।

तब वसुदेव ने कहा—हे देव ! मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है पर आप यह ता बताएँ कि मैं कनकवती के पास पहुँच कैसे सकूंगा। क्योंकि सैंकडो पहरेदारों के रहते हुए अन्त पुर में उसके पास पहुचना मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के लिए कैसे सम्भव हो सकेगा ?

कुबेर ने कहा—आपका कथन सर्वथा सत्य और स्वाभाविक है। सामान्यतया राजकुमारी के पास मनुष्य तो क्या कोई पखेरू भी नहीं फड़क सकता। किन्तु इस समय तो तुम मेरे आदेश से जा रहे हो इस लिये मेरे प्रभाव से पहुचने में तुम्हे किसी प्रकार की कठिनाई का सामना न करना पड़ेगा। तुम वायु की भांति निर्विघ्न रूप से कनक-वती के पास जा पहुँचोगे।

इस पर वे वहां जाना स्वीकार कर अपने निवास स्थान पर लौट आए। वहां आकर उन्होंने अपने बहुमूल्य वस्त्राभरण उतार दिए और साधारण सेवक के समान वस्त्र धारण कर लिए। उन्हें इस प्रकार साधारण सेवक के रूप में कनकवती के पास जाते देख कुबेर ने कहा—तुम ने सुन्दर वस्त्र क्यों उतार दिये। शोभनीय वस्त्रों से ही तो मनुष्यों का दूसरों पर प्रभाव पड़ता है।' वसुदेव ने उत्तर दिया—इसके लिए वस्त्रों की कोई आवश्यकता नहीं, मनुष्य चाहे कैसे ही वस्त्रों में क्यों न रहे उसकी वाणी में किसी दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता चाहिये वह अपनी मधुर वाणी से सब लोगों को अनायास ही वश में कर सकता है। तब कुबेर ने उनकी सफलता की कामना करते हुए वसुदेव को वहां से सहर्ष विदा किया।

कुबेर के यहा से वसुदेव विदा होकर राजा हरिश्चन्द्र के राज

प्रासादों मे जा पहुँचे । वहां स्वयवर महोत्सव के कारण इतनी धूम-धाम चहल-पहल और भीड़-भाड थी कि कहीं तिल धरने को भी स्थान नहीं था । किन्तु कुबेर के आशीर्वाद के प्रभाव से वे अदृश्य रूप से बिना किसी विघ्न बाधा से इस प्रकार आगे बढ़ते गए मानो जन शून्य मार्ग पर अकेले जा रहे हो ।

शनै. शनैः वे राजमहल के प्रमुख द्वार पर जा पहुँचे । इस द्वार में प्रवेश करते ही उन्हे अत्यन्त सुन्दर और समान आयु वाली स्त्रियों का एक दल तथा इन्द्र नीलमणी द्वारा निर्मित एक ऐसा स्थान दिखाई दिया, जिसे देखकर वे विस्मित हो गए ।

इस स्थान से आगे बढने पर वसुदेव राजमन्दिर के दूसरे दरवाजे पर पहुँचे । यहां पर ध्वज दण्डयुक्त सोने का एक ऐसा स्तम्भ था । जिस पर रत्ननिर्मित पुतलियां कूद रहीं थीं । यहां से आगे बढ़ने पर वसुदेव को राज मन्दिर, का तीसरा द्वार मिला । जहाँ दिव्य वस्त्राभूषणों से विभूषित अप्सरा के समान बहुत सी स्त्रियां उन्हे दिखाई दीं । पश्चात् वे वहां से चौथे द्वार पर आये । चौथे दरवाजे पर वसुदेव को देखने पर ऐसी भूमि दिखाई दी कि जहा जल का भ्रम होता था । और वह ऐसा प्रतीत होता था कि जल पूर्ण सरोवर की तरग मालाओ पर हस कारण्डव आदि जलचर पक्षी किलोलें कर रहे थे । यहाँ की दीवारें इतनी निर्मल और चमकदार थीं कि सुन्दरियों को शृंगार के समय दर्पण की भी आवश्यकता न रहती थी ।

इस प्रकोष्ठ को पारकर वसुदेव पाँचवे प्रांगण मे जा पहुंचे । यहां के सभी कुट्टिम (फर्श) मणिमरकतमय थे । रत्न जटित पात्रो मे विविध उपकरण लिये हुए सुन्दरियाँ इधर से उधर बड़ी शालीनता के साथ आ जा रही थीं । छठे कक्ष मे पहुँचने पर वसुदेव ने वहाँ की भूमि को चारों ओर से विकसित कमल पुष्पों से विभूषित पद्म सरोवर के समान अत्यन्त मनमोहक रूप से सुसज्जित देखा ।

अब सातवे द्वार पर पहुँचते ही वसुदेव को ज्ञात हुआ कि इस द्वार में प्रवेश करना बड़ा कठिन है । साथ ही इस कड़े पेहरे को देख कर वसुदेव को निश्चय हो गया कि अवश्य यही अन्त पुर का प्रमुख द्वार है

इतने में सखियों की बातचीत से वसुदेव को विदित हो गया ।

कनकवती प्रमद वन में दिव्य वस्त्र भूषणों से अलंकृत हो अकेली बैठी है। यह सुनते ही वसुदेव प्रमद वन की ओर चल पड़े और कनकवती को खोजने लगे। खोजते-खोजते वे एक 'प्रासाद' के सातवें खड पर पहुँचे। वहाँ पर एक अत्यन्त भव्य भद्रासन पर बैठे हुई बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित एव पुष्पाभरणों से अलकृत साक्षात वन शोभा के समान समस्त वातावरण को आलोकित करती हुई कनकवती उन्हे दिखाई दी। इस समय वह वसुदेव का चित्र हाथों मे लिए हुए उस चित्र से न जाने वह क्या कुछ बातें कर रही थी।

कनकवती की यह दशा देख वसुदेव को कुछ समझ नहीं आया कि वह किस से क्या बाते कर रही है। इस प्रकार वसुदेव विस्मित से खड़े ही थे कि इतने में कनकवती की दृष्टि उन पर पडी। उन्हें देखते ही उसका मुख कमल हर्ष से विकसित हो उठा। वह तत्काल अपने आसन से उठ कर खडी हो गई और हाथ जोड़ कर वसुदेव से कहने लगी कि हे सभग, आज मेरे ही पुण्यों से आपका यहाँ आगमन हुआ है। हे प्राणप्रिय, आप मुझे अपनी ही दासी समझिये।

यह कह कर वह वसुदेव को प्रणाम करने लगी, बीच मे ही रोकते हुए कुमार ने कहा—हे राजकुमारी मुझे प्रणाम करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि मैं तो किसी का दूत हूँ। जो व्यक्ति तुम्हारे लिए वन्दनीय हो उसी को प्रणाम करना चाहिये। तुम तो भ्रम वश मुझे प्रणाम कर के की भूल कर रही हो।

कनकवती ने उत्तर दिया हे कुमार! मैं भ्रम मे नहीं हूँ और न किसी प्रकार की भूल ही कर रही हूँ। मैं आपको भली भाति जानती हूँ वह विद्याधर मुझे आपके बारे में सब कुछ बता गया है और आपका एक चित्र भी दे गया है अब मुझे आप धोखा नहीं दे सकते, अब तक मैं आपके चित्र को देखकर ही जीवित रही हूँ। आप ही मेरे जीवन सर्वस्व व प्राणाधार हैं। अपनी दासी के समक्ष इस प्रकार वचन कहना आपको शोभा नहीं देता।

वसुदेव ने समझाया—"हे सुन्दरी तुम सचमुच भूल कर रही हो विद्याधर ने जिनके बारे में बताया था वह मैं नहीं दूसरा कोई है। तुम यह जान कर प्रसन्न होगी कि मैं उन्हीं की ओर से तुम्हारे पास आया हूँ क्योंकि मैं उनका सेवक हूँ अतः मुझे उन्होंने तुम्हें सदेश देने लिये भेजा है। तुमने कुबेर का नाम तो सुना ही होगा उनका अतुल

धन, वैभव और ऐश्वर्य किसी से छुपा हुआ नहीं है। तुम्हारे समक्ष उपस्थित यह जन उन्हीं का सदेशवाहक है। मैं तुम से उनकी ओर से प्रार्थना करने आया हूँ। वे तुम्हें अपनी हृदयेश्वरी बना कर अपने आप को कृतकृत्य समझेंगे वे तुम्हें अपनी पटरानी का सम्मान प्रदान करेंगे उस अवस्था मे शतश देवांगनाएँ सदा तुम्हारी सेवा सुश्रूषा में तत्पर रहेगी। मानवी होकर भी तुम इस प्रकार देवी पद को प्राप्त कर लोगी। अत तुम्हे और अधिक सोच-विचार न कर स्वय वर सभा में कुबेर ही का वरण करना चाहिये।

कनकवती ने उपेक्षा पूर्वक उत्तर दिया हे सुभग! संसार में कुबेर को कौन नहीं जानता वे पूज्य हैं, आदरणीय हैं अत मैं उन्हें हाथ जोड़ कर प्रणाम करती हूँ किन्तु फिर भी उनका और मेरा सम्बन्ध कैसा, मनुष्य और देवता का विवाह आज तक न हुआ है और न हो सकता है। इस लिये मुझे तो ज्ञात होता है कि तुम को जो सन्देश देने के लिये भेजा है वह या तो हंसी की बात है या केवल मनोरजन मात्र है उसमें वास्तविकता कभी नहीं हो सकती क्योंकि यह सर्वथा अनुचित और अस्वाभाविक है।

इस पर वसुदेव ने उस को समझाया कि भद्रे जो कुछ तुम ने कहा वह तो सत्य है पर तुम्हे यह भी स्मरण रखना चाहिए कि देवताओ कि बात न मानने से मनुष्य पर बड़ी भयकर विपत्तियां आ सकती हैं। दमयन्ती को कैसे कैसे कष्टों का सामना करना पड़ा यह तो तुम जानती ही हो। कनकवती ने बड़ी विनय के साथ उत्तर दिया—कुबेर का नाम सुनते ही पूर्वक जन्म के किसी सम्बन्ध विशेष के कारण मेरे हृदय में अनेक प्रकार की भावनाएँ घर करने लगती हैं। मेरा चित्त उनके लिये बहुत उत्सुक और आनन्दित हो उठता है; किन्तु मेरा और उनका विवाह कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। अरिहन्त भगवान् ने भी कहा है कि मनुष्य का और देवता का सम्बन्ध कदापि योग्य नहीं क्योंकि मनुष्य के दुर्गन्ध युक्त औदारिक शरीर की गन्ध सुधाधारी देवगण सहन करने मे असमर्थ होते हैं। अतः मेरा और उनका सम्बन्ध सर्वथा असम्भव है।

वसुदेव ने फिर भी अनेक प्रकार की तर्क और युक्तियों से कनकवती को समझाने की पूरी पूरी चेष्टा की पर जब उस पर कोई

प्रभाव पडता नहीं तो वे मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए कि कनकवती का उनके प्रति अनुराग वस्तुतः अत्यन्त दृढ सत्य व परिपक्क है। अब तो वे कनकवती से हार मान कर जिस प्रकार गुप्त रीति से यहां आये थे उसी प्रकार विदा हो गये।

कुबेर के पास पहुच उन्होंने सारा वृतान्त अक्षरशः निवेदन करने का उपक्रम किया ही था कि उन्हे बीच ही में रोककर कुबेर ने कहा मुझे कुछ बतलाने की आवश्यकता नहीं देवताओं को तो अवधि ज्ञान होता है इसलिए वे बैठे बैठे ही सब कुछ जान लेते हैं।

पश्चात् कुबेर ने समग्र देवताओं के सम्मुख वसुदेव के पवित्र शुद्ध एव पवित्र आचरण की प्रशसा की और उन्हे दो देवदूष्य वस्त्र तथा दिव्य आभूषण भी प्रदान किये। इन वस्त्राभूषणों को धारण करते ही वसुदेव भी साक्षात् कुबेर के समान प्रतीत होने लगे।

यह ज्ञात होने पर कि राजकुमारी का स्वयवर देखने के लिए साक्षात् कुबेर आये हैं महाराज हरिश्चन्द्र अत्यन्त उत्साहित हुए। उन्होंने स्वयवर सभा भवन को नाना विध दिव्य उपकरणों से अलकृत व सुसज्जित करवा दिया अब तो यह सभा भवन अपनी अनुपम छटा के कारण साक्षात् देवराज इन्द्र की सभा के समान अलौकिक हो उठा। सभा मण्डप में कुबेर के लिये एक ऊँचा और विशेष रूप से आकर्षक ऐसा सिहांसन बनवाया गया जिसे देख कर सब लोगों की दृष्टि सहसा उसी की ओर खिंच जाती।

आखिर स्वयवर का दिन आ ही पहुँचा। धीरे-धीरे सभा मण्डप नाना देश देशान्तरों से आये हुए राजाओं, राजकुमारों तथा अन्य दर्शकों से भरने लगा, इधर महाराज हरिश्चन्द्र स्वय कुबेर को लेने के लिये उनके आवास स्थान पर जा पहुँचे। तब कुबेर अपनी बड़ी ठाठ-बाट की सवारी के साथ सभा भवन की ओर चल पडे। उनके दोनों ओर देवागनाएँ उन पर चवर ढोल रही थीं, आगे-आगे वन्दीजन स्तुति-गान करते हुए चल रहे थे, वे लडे मनोहर हस की सवारी किये हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे और उनके पीछे-पीछे अन्यान्य देवताओं का दल चला आ रहा था।

कुबेर के सभा भवन में पहुँचते ही वह विशाल मण्डप उनकी दिव्य छटा से आलोकित हो उठा। देव और देवांगनाओं से घिरे हुए कुबेर

की उपस्थिति के कारण वह सभाभवन ऐसा प्रतीत होता था कि मानो स्वर्ग का एक कोना पृथ्वी पर उतर आया।

कुबेर और वसुदेव के आसन ग्रहण कर लेने के अनन्त अन्यान्य राजकुमारो व राजाओं ने भी अपने-अपने आसन ग्रहण किये। इसी समय कुबेर ने वसुदेव को एक कुबेर कान्ता नामक मणि से युक्त अगूठी पहनने को दे दी। वह अंगूठी अर्जुन स्वर्ण की बनी हुई थी और उस पर कुबेर का नाम अंकित था उसे धारण करते ही वसुदेव भी सर्वथा कुबेर ही के समान दिखाई देने लगे। सभा में एक साथ दो कुबेरों को देख कर उपस्थित लोगो के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे कहने लगे कि कुबेर तो दो रूप धारण करके यहाँ पधारे हैं। अब तो जिसे देखो उसी के मुख से यही चर्चा सुनाई दे रही थी।

इधर यथा समय बहुमूल्य अनुपम वस्त्रालंकारों से सुसज्जित अपने सुकोमल कर कमलों में कमनीय कुसुम माला लिये हुए सखियो से परिवृत हुई कनकवती ने राज हंसिनी के समान मनोहर मन्दगति से सभा मण्डल में प्रवेश किया। उसके पदार्पण करते ही चारों ओर से एक साथ ही सहस्त्रों दृष्टियाँ उस पर जा पड़ीं। कनकवती ने भी एक बार आँख उठा कर चारा ओर देखा, उसकी समुत्सुक दृष्टि उस राजा वसुदेव कुमार को ढूंढ़ रही थी। किन्तु आज स्वयवर सभा मे उसे वे कहीं दिखाई न दे रहे थे। इसलिए वह बार बार अपने चचल नेत्रों से सभा के एक कोने से दूसरे कोने तक उन्हे कहीं ढूंढ़ निकालने का प्रयत्न करने लगी। पर वे कहीं भी दिखाई न दिये। वसुदेव को सभा मे अनुपस्थित देख कनकवती के बदन चन्द्र पर उदासी की काली घटाएं छाने लगीं। वह बार बार सोचती कि वसुदेव क्यों नहीं आये। कहीं उन्हे आने मे बिलम्ब तो नहीं हो गया। मार्ग में अघटित घटना तो नहीं घट गई। किसी देव या गन्धर्व आदि ने तो उनके साथ छल नहीं किया। क्या कारण है कि वसुदेव आज यहाँ दिखाई नहीं देते। इस प्रकार विविध शंकाओं से घिरी और उनका कुछ भी समाधान न पाती हुई कनकवती अपनी शून्य दृष्टि से, वसुदेव को ढूंढ़ निकालने का निष्फल प्रयत्न करने लगी। राजा लोग भी उसके मुख मण्डल पर व्याप्त निराशा की रेखाओ को देख, मन ही मन सोचने लगे कि राजकुमारी ऐसी अन्यमनस्का क्यों दिखाई देती है। इसे तो अत्यन्त उत्साहित और प्रसन्न होना चाहिये था। कहीं कोई

हमारे वेश विन्यास में तो त्रुटि नहीं है, जो हमारी ओर देखना ही नहीं चाहती।

उसे इस प्रकार खोई हुई सी देख कर एक चतुर सखि ने कहा—हे राजकुमारी! इन उपस्थित राजाओं, महाराजाओं व राजकुमारों में से जिस पर तुम्हारा हृदय अनुरक्त हो। उसी के गल में जयमाला डालकर वरण कर लो। अब और अधिक विलम्ब लगा कर इन लोगों की उत्सुकता को अधिक न बढ़ाओ।

कनकवती ने उदास स्वर में उत्तर दिया--सखि मैं जयमाला पहनाऊँ किसे? मैंने जिसे अपना हृदयेश्वर बनाया था वह मेरा प्राण वल्लभ तो ढू ढने पर भी दिखाई नहीं दे रहा, क्या करू, क्या नहीं करू कुछ समझ में नहीं आता।

वह इस प्रकार कह ही रही थी कि उसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये, गला रुध गया और मन ही मन वह कहने लगी—हे! नियति तेरा स्वरूप भी विचित्र है, तूने ही तो पहले आशातीत सफलता की प्राप्ति के स्वप्न दिखाकर उसके साधन जुटाये और अब क्षण भर में उन सब आशाओं पर पानी फेर दिया। हा दैव! यदि ऐसा भीषण सकट और दुर्दिन दिखाना ही था तो पहले इतना सुख का आभास रूप प्रलोभन दिया ही क्यों था? हे विधन! न जाने मेरे भविष्य के गर्भ में क्या क्या छिपा हुआ है॥

कनकवती इस प्रकार दैव को कोस रही थी कि अनायास ही उसकी दृष्टि कुबेर पर जा पडी। उधर कुबेर ने भी कनकवती को देखकर व्यंग भरी मुस्कान फेकी उनकी इस व्यग-मुस्कराहट को देखते ही वह तत्काल समझ गई कि वसुदेव को स्वयंवर मडप में न आने के लिये कुबेर ही है। अत वह करवद्ध प्रार्थना करने लगी हे देव! वियोगियों के हृदय को विरह ज्वाला से अब अधिक न जलाइये, हे वरद! मेरे प्राणेश्वर को शीघ्र ही प्रकट कर मेरी उत्सुकता को शान्त कीजिये।

कनकवती के सत्य युक्त एव उत्सुकता भरे वचनों को सुनकर कुबेर हसने लगे। और उन्होने वसुदेव को कुबेरकान्त अंगूठी को अंगुली से निकाल देने को कहा। कुबेर की आज्ञा पाते ही वसुदेव ने अंगूठी अगुली से निकाल दी। अगूठी के निकलते ही वसुदेव का स्वाभाविक स्वरूप प्रकट हो गया। वसुदेव को प्रकट हुआ देख कनकवती बड़े

प्रसन्नता के फूली न समाई। उसने तत्काल ही वसुदेव के गले मे वर माला डालकर उन्हे पति रूप मे वर लिया।

इधर कनकवती के जयमाला पहनाते ही देव„दुन्दुभिया वज उठीं। अप्सराओं के मगल गान प्रारम्भ हो गये। चारो ओर से धन्य-धन्य की आती हुई ध्वनि से नभ मण्डल गूज उठा और उस दम्पति युगल के सयोग की सभी सराहना करने लगे।

विवाहोपरान्त वसुदेव ने कुबेर से वड़ी नम्रता के साथ पूछा कि हे देव! आपने यहा आने का कष्ट क्यों उठाया है कृपया आप मेरे इस कौतुहल को शान्त करने के लिये अपने आगमन का वास्तविक कारण बताने की कृपा कीजिये।

यह सुन कर कुबेर ने अपने आगमन का कारण इस प्रकार बताना आरम्भ किया—

कनकवती का प्रथम भव

इसी भारत वर्ष मे अष्टापद पर्वत के पास सगर नामक एक नगर है। वहा हर मम्मन नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम वीरमती था। एक दिन वह अपनी रानी के साथ शिकार खेलने निकला। दैवयोग से उसी समय एक मलिन वेशधारी साधु उसके सामने आ पहुँचे। राजा ने उस साधु को देखकर इसे बड़ा भारी अपशकुन समझा और सोचने लगा कि महलों से निकलते ही साधु का सामने मिलना तो अच्छा नहीं हुआ। इससे तो शिकार करते समय मुझ पर या मेरी प्रियतमा पर निश्चित ही कोई न कोई आपत्ति आयेगी। यह सोच कर वह दुष्ट तत्काल अपने महलों को लौट आया और दर्शन देने की प्रार्थना कर उस साधु को भी अपने महलों को भी अपने साथ ले आया। वहाँ पर उसने बारह घण्टे तक उन मुनिराज पर नाना प्रकार के उपसर्ग किये। तत्पश्चात् उसे कुछ दया आ गयी और उसने मुनिराज से पूछा महाराज—आप कहां से आ रहे थे और कहा जा रहे थे? तब मुनि ने उत्तर दिया कि मैं रोहितकपुर से आया हू और अष्टापद पर्वत की ओर जा रहा हूं। तुमने मुझे मार्ग ही में रोक कर अपने साथी मुनिराजों से वियुक्त कर दिया है।

राजा और रानी लघु कर्मी थे इसलिए मुनिराज से बात चीत करते हुए, वे दुःस्वप्न की भांति अपने क्रोध को भूल गये। मुनिराज तो

परोपकारी और स्वभाव से ही दयार्द्र हृदय थे ही इसलिये उन्होंने इस दम्पत्ति को आर्हत धर्म का उपदेश दिया। इस उपदेश के प्रभाव से वे दोनों राजा रानी कुछ धर्म कार्यों में रुचि लेने लगे। इस प्रकार कर्म रोग से पीड़ित उन दोनों को धर्म ज्ञान रूपी महौषधि प्रदान कर मुनिराज अष्टापद की ओर चल पडे। अब तो वे दोनों श्रावक व्रत ग्रहण कर कृपण के धन की भांति उस व्रत का बडी सावधानी से पालन करने लगे।

इस प्रकार धर्म में उत्तरोत्तर श्रद्धा बढाने के कारण राजा रानी में पारस्परिक प्रेम भी बढ़ने लगा। कुछ दिनों पश्चात् आयु के समाप्त होने पर समाधि मरण ग्रहण कर उन दोनो ने शरीर त्याग दिये। और वहां से, वह दम्पत्ति देव लोक मे जाकर देव और देवी बन गये।

कनकवती का तीसरा भव

देव लोक से च्युत होने पर मम्मन का जीव बहेली देश के पोतनपुर नामक नगर में एक धमिल्ल नामक गोपालक के यहाँ उसकी पत्नी रेणु के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उस बडे पुण्य आत्मा का वहां पर धन्य नाम रखा गया।

उधर वीरमती का जीव देव लोक से च्युत होकर एक कन्या के रूप में उत्पन्न हुआ और वह धूसरी के नाम से पुकारी जाने लगी। कुछ दिनों पश्चात् धन्य और धूसरी का विवाह हो गया। धन्य जगल में प्रति दिन भैसे चराने जाया करता था। एक बार वर्षा ऋतु में वर्षा की भयकर झड़ी लगी हुई थी, आकाश बादलों से ढ़का हुआ था, रह रह कर कड़ती हुई बिजली चमकती रही थी। धरती कीचड़ से भर गई थी। इस घुटनों तक बढ़े हुवे कीचड़ के कारण चलने फिरने वालों को बड़ा कष्ट होता था। ऐसे समय कोई भी अपने घर से बाहर नहीं निकलना चाहता था।

किन्तु धन्य तो ऐसे समय में भी अपने सिर पर वर्षा जल को रोकने के लिए एक छाता लगा कर भैसों को वन मे चराने के लिए निकल पड़ा, क्योंकि कीचड़ में लेटने और चलने फिरने से भैसें तो बहुत आनन्द मनाती हैं। इस प्रकार दलदल में घुसती हुई भैसें जगल में जिधर जिधर निकल जाती वह भी उनके पीछे पीछे चलता रहता।

चलते चलते धन्य को एक पैर पर खड़े होकर तपस्या करते हुवे मुनिराज दिखाई दिये, उनका शरीर तपस्या के कारण अत्यन्त कृश हो गया था और वर्षा जल के कारण हवा से हिलते हुवे वृक्ष के समान उनका वह शरीर कांप रहा था।

उस मुनिराज को इस प्रकार परिषह सहते देख कर धन्य के हृदय मे दया आ गयी और उसने अपना छाता मुनिराज के सिर पर लगा दिया। सिर पर छाते के लगते ही मुनिराज के दुःख का वैसे ही अन्त हो गया जैसे कि वे खुले जगल में न होकर बस्ती में बैठे हों। शराब पीकर मदोन्मत्त हुए शराबी की प्यास जैसे उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है वैसे ही वर्षा का वेग भी प्रति पल बढ़ रहा था। घटों बीत गये पर वर्षा ने बन्द होने का नाम नहीं लिया। जब तक वर्षा बन्द नहीं हुई धन्य भी उनके सिर पर छाता लगाये रहा।

अन्त मे वर्षा बन्द हुई। मुनिराज ने वर्षा के बन्द होने तक ध्यान का अभिग्रह किया था। इसलिए वर्षा समाप्ति पर जब वे ध्यान से निवृत हुए तो धन्य ने उनके चरणों मे प्रणाम कर पूछा कि हे! भगवन्, आज का वर्षा का समय तो बड़ा भयकर है, चारों ओर पानी ही पानी और कीचड ही कीचड दिखाई दे रहा है ऐसे भयकर समय मे आपका यहा आगमन कहाँ से और किस प्रकार हुआ ?

तब मुनिराज ने बताया कि वे पाण्डु देश से चले आ रहे हैं और लका की ओर चले जा रहे हैं। क्योंकि लका नगरी गुरु के चरणों से पवित्र हो चुकी है मार्ग में चलते चलते अन्तराय स्वरूप यह वर्षा आ गई। इस प्रकार मेरी यात्रा मे विघ्न उपस्थित हो गया क्योंकि जब वर्षा हो रही हो तो साधु के लिये मार्ग मे चलना निषिद्ध है इसलिए वर्षा के समाप्त होने तक ध्यान करने का अभिग्रह लेकर मैं यहीं पर खडा हो गया। हे आत्मन्! आज सातवे दिन वर्षा के समाप्त होने पर मेरा अभिग्रह पूर्ण हो गया है, अतः मैं अब किसी बस्ती मे चला जाऊगा।

तब धन्य ने परम प्रसन्नता पूर्वक हाथ जोड़ कर कहा हे मुनिराज! क्योकि मार्ग मे बहुत अधिक कीचड़ भरा हुआ है, पैदल चलना बड़ा बडा कठिन है अतः आप मेरे भैसे पर बैठ जाइये ताकि अनायास ही बस्ती मे पहुंच जायेगे।

मुनिराज ने उत्तर दिया हे गोपालक ! साधु लोग किसी भी जीव पर सवारी नहीं करते। वे ऐसा कोई कार्य नहीं करते, जिससे दूसरों को कोई कष्ट या पीड़ा हो। मुनिराज तो सदा पैदल ही चला करते हैं। इस प्रकार बातचीत करते हुए वह साधु इसके साथ बस्ती में आ पहुंचे।

गो पालक ने अपने घर आकर उनको दूध दान दिया, सारी रात्रि वहीं पर बिता कर मुनिराज ने प्रात काल हाते ही विहार कर दिया। गो पालक ने इस प्रकार प्राप्त हुए साधु सेवा के इस दुर्लभ अवसर को अपना बड़ा भारी भाग्य का उदय समझ कर अपने आपको धन्य माना। मुनिराज के सम्पर्क के कारण पति पत्नि दोनों ने श्रावक धर्म ग्रहण कर लिया। और सम्यकत्व धारण कर दोनों सुख पूर्वक काल यापन करने लगे।

तत्पश्चात् धन्य और धूमरी दोनों न दीक्षा ले ली। सात वर्ष तक दोनों मुनि व्रत का पालन कर समाधि मरण प्राप्त कर परलोक सिधार गये। क्षीर दान के द्वारा उपार्जित विशेष पुण्य के कारण और प्रशस्त लेश्या युक्त वे दोनों दम्पत्ति हेमवत् पर्वत पर जाकर युगलिये बने। पश्चात् आर्तध्यान और रौद्रध्यान के अभाव के कारण वहा से मर कर वे दोनों युगलिया क्षीर डिंडीर के नाम से विख्यात देव और देवी के रूप में दम्पत्ति हुए।

(इति चौथा और पाचवा भव)

—ःकनकवती का छठा भवः—

(नल दमयन्ती चरित्र)

देव लोक से च्युत होकर वह देव काशल देश की अयोध्या नामक नगरी मे इक्ष्वाकु वशोत्पन्न महाराज निषध की महारानी सुन्दरा की कोख से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ यहां उसका नाम नल रक्खा गया।

इसी समय विदर्भ देश के कुन्डिन पुर नामक नगर में महाराज भीमरथ राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम पुष्पदन्ती था देव-लोक से च्युत होने पर क्षीर डिंडीरा देवी ने महारानी पुष्पदन्ती की कोख से पुत्री के रूप में जन्म लिया। यहा इसका नाम दवदन्ती या दमयन्ती पड़ा। यौवन मे पदार्पण करते ही दमयन्ती के स्वयवर की

१ नोट नल दमयन्ती चरित्र विस्तार भय के कारण यहा सक्षेप में ही दिया जा रहा है। —लेखक

से किसी भी स्थान पर रह सकती हो, परन्तु मैं तो कहीं भी रहना नहीं चाहता।"

यह लिख कर नल पहले तो नाना प्रकार के संकल्पो विकल्पो मे पडे रहे। फिर अन्त में अपने हृदय को कठोर बना, अपनी प्राणप्रिया को एकाकिनी छोड़ वहां से चलते बने। प्रात.काल उठते ही दमयन्ती ने जब उन्हे कहीं न देखा, तो बहुत घबराई और फूट फूट कर रोती हुई उन्हे इधर उधर ढू ढ़ने लगी। उसकी आँखों के आगे अंधेरा छा गया। पर ज्यों ही अचानक उसकी दृष्टि उन दोनों श्लोकों पर पड़ी तो उसे बहुत धैर्य बधा, वह सोचने लगी कि पतिदेव सकुशल है और वे मुझे भूले नहीं हैं यही बड़े आनन्द की बात है। अब तो मुझे अपने पतिदेव के आदेशानुसार अपने मायके चले जाना चाहिए। यह सोच वह वट वृक्ष के पास वाले मार्ग से चल पडी, मार्ग मे चलते चलते उसे दहाड़ते हुए सिंह, फु कारते हुए विषधर नाग आदि अनेक हिंसक प्राणी दिखाई दिये। पर वे सब उसके सतीत्व के तेज के सामने भयभीत होकर भाग निकलते, किसी को भी उसे रंचक भी कष्ट पहुँचाने का साहस न होता चलते चलते दिन बीत गये, दमयन्ती के वस्त्र जर जर और मलिन हो गये, वर्षा, आतप, वायु, और तूफान आदि कष्टों के कारण उसकी देह यष्टी भी कृश और मलिन हो गई। वह उदास और निराश भाव से चली जा रही थी।

मार्ग मे चलते चलते दैवात् उसे एक सार्थ मिल गया। उस सार्थ-वाहक ने भिलनी के समान दुर्दशाग्रस्त दमयन्ती को देख पूछा कि देवी तुम कौन हो, कहाँ से आई हो, और कहाँ जा रही हो? दमयन्ती ने अपना सारा वृतान्त सक्षेप मे कह सुनाया, अब तो सार्थवाहक की दमयन्ती के प्रति बड़ी श्रद्धा बढ़ गई। उसने बड़े आदर सम्मान के साथ उसके निवास भोजन आदि की व्यवस्था कर दी, इतने में वहाँ एक दस्यु दल आ पहुंचा। उसने सार्थवाहक को लूटना चाहा, किन्तु दमयन्ती के तेज के प्रभाव से वे डाकू अपने आप भाग निकले। अब दमयन्ती ने और अधिक सार्थवाहक के साथ रहना उचित न समझा। क्योंकि उसके कारण उन लोगों को सेवा शुश्रुपा आदि का कष्ट करना पड़ता था। और वह कहीं भी भार भूत बनकर रहना उचित नहीं समझती थी। अतः रात्रि में ही चुपचाप वहा से निकल पड़ी। मार्ग में

उसे एक भयकर राक्षस निगलने आया। दमयन्ती ने उसे कहा कि हे राक्षस! तू मुझे निगलने का प्रयत्न मत कर, क्योंकि मेरा स्पर्श करते ही तू मेरे सतीत्व के तेज से भस्म हो जायगा, यह मै तेरे हित के लिए ही कह रही हू। यह सुन वह राक्षस बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि देवी मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम जो चाहो मैं तुम्हारी सेवा कर सकता हू। यदि चाहो तो मै तुम्हे पिता के घर क्षण भर मे तुम्हे पहुचा दू। दमयन्ती ने उत्तर दिया कि मुझे पर पुरुष का स्पर्श किसी भी अवस्था मे नहीं करना है इसलिए पिता के घर तो मैं अपने आप चली जाऊगी। पर तुम मुझे यह बताओ कि अब मेरे पतिदेव से भेट कब होगी।

इस पर उस राक्षस ने बताया कि बारह वर्ष के पश्चात् तुम्हारी अपने पति से भेट हो सकेगी।

इस प्रकार उस राक्षस से अपने पति के मिलने की निश्चित अवधि जान वह आगे चल पडी। चलते चलते उसके मनमें ऐसा वैराग्य का भावउदित हुआ कि अब मैं पिताके घर जाकर भी क्या रहूगी, यहीं कहीं तपोवन में बैठ कर तपस्या मे अपना समय काट दू। यह सोच वह पास ही पर्वत की गुफा में बैठकर तप में लीन हो गई। कुछ दिनों पश्चात् वह सार्थ भी वहाँ आ पहुचा उस सार्थ के सब लोगों ने भी उस के साथ वहीं रहने का निश्चय कर लिया। वहां रहने वाले ५०० सौ तपस्वियों को सम्यक ज्ञान प्राप्त हुआ, इसीलिए उस स्थान का नाम तापसपुर पड़ गया।

फिर एक दिन उन लोगों ने किसी पर्वत की चोटी पर एक दिव्य प्रकाश पुञ्ज देखा। उसे देखते ही सब लोग दमयन्ती से पूछने लगे कि देवी यह प्रकाश कैसा है, तब दमयन्ती ने उन्हें कहा कि सिंह केशरी नामक एक साधु को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ है उसी के उत्सव में सम्मिलित होने के लिए इस पर्वत पर अनेक देव गन्धर्व आदि एकत्रित हुए हैं यह प्रकाश वहीं पर हो रहा है। यह सुनते ही सब लोगों की इच्छा उस उत्सव में सम्मिलित होने की हुई। दमयन्ती के तप तेज के प्रभाव से सब लोग उस पर्वत पर जा पहुँचे। वहां जाकर सब लोगों ने बडी श्रद्धा भक्ति पूर्वक केवल ज्ञानी मुनि सिंह कुमार को वन्दना की। उन्होंने भी सब को समयोचित आर्हत धर्म का महत्व समझाया इस

प्रकार अरिहन्त का उपदेश सुन कर दमयन्ती आदि पुन. अपने स्थान पर लौट आये।

दमयन्ती एक बार एक गुफा में अकेली बैठी तपस्या कर रही थी। कि उसे बाहर से—

'मैंने तेरे पति को देखा है' इस प्रकार के शब्द सुनाई दिये। यह शब्द सुनते ही वह गुफा से बाहर निकल आई, और उस व्यक्ति को ढू ढ़ने लगी, जिसके वे शब्द थे। जगल में बहुत दूर तक भटकती रही। पर कहीं भी उसे कोई व्यक्ति दिखाई नहीं दिया। भटकते भटकते वह अपनी गुफा का मार्ग भी भूल गई, अतः वह चारो ओर से निराश्रित हो पागलों की भाँति निरुद्देश्य भाव से आगे बढ़ने लगी। मार्ग में उसे एक सार्थ मिल गया, उसके साथ चल कर वह अचलपुर नामक स्थान में आ पहुंची।

यहाँ पर वह पानी पीने के लिए एक बावड़ी में उतरी। ज्यूं ही उसने पानी मे पैर रक्खा कि एक गोह ने उसका पैर पकड़ लिया, गोह के पाँव पकड़ते ही दमयन्ती ने नमोकार मन्त्र का स्मरण किया। बस इस मन्त्र के स्मरण करते ही तत्काल गोह ने उसका पांव छोड़ दिया। इस प्रकार सकुशल जल पान कर दमयन्ती बावड़ी से बाहर निकल आई और एक वृक्ष के नीचे अर्द्ध निन्द्रित अवस्था में बैठ गई। इसी समय यहाँ के महाराज ऋतुपर्ण की रानी चन्द्रयशा की कुछ दासियाँ बावड़ी पर पानी भरने आई, वे दमयन्ती के दिव्य तेजोयुक्त रूप को देख बड़ी प्रभावित हुई। उन्होने तत्काल जाकर अपनी रानी से उसकी बात कह सुनाई। इस पर रानी ने उसे अपने पास बुला लिया, यह चन्द्रयशा दमयन्ती की सगी मौसी थी। उसने बचपन मे दमयन्ती को देखा भी था, पर अब तक उसकी आकृति उसको ज्ञान न रही। इसीलिए वह उसे पहचान न सकी, फिर भी बड़े प्रेम से अपनी पुत्री के समान उसे लाड प्यार के साथ अपने पास रख लिया।

इस प्रकार दमयन्ती को वहाँ रहते कुछ ही दिन बीते थे कि उधर महाराज भीमरथ को नल के राज त्याग का पता लगा, इस पर चिन्तित हो महाराज भीमरथ और रानी पुष्पदन्ती ने देश देशान्तरों मे दमयन्ती और नल को ढूंढ़ने के लिए दूत भेज दिये। उसे ढूंढता हुआ हरिमित्र नामक पुरोहित अचलपुर आ पहुँचा। उसने भोजन करते समय भोजन परोसती हुई दमयन्ती को पहचान लिया। दमयन्ती के मस्तक पर एक

सूर्य के समान तेजस्वी तिलक था, वह उस तिलक को जान बूझ कर मैल में छुपाये रखती थी। इसलिए हरिमित्र को सन्देह हुआ कि दमयन्ती का वह तिलक कहाँ चला गया यह कोई और तो नहीं है। इसी समय रानी ने उसके मस्तक को धो दिया, जिससे कि उसका तेजोमय तिलक फिर से दीप्त होने लगा। अब तो राजा रानी दोनो ने दमयन्ती का बहुत अधिक आदर सत्कार किया। हरिमित्र ने दो चार दिन वहाँ ठहर के पश्चात् महाराज ऋतुपर्ण से आज्ञा माँगी कि हे देव! अब मुझे आज्ञा दीजिए मैं दमयन्ती को लेकर इसके माता-पिता के पास शीघ्रातिशीघ्र पहुच जाऊ।

तब महाराज ने उन्हें सहर्ष विदा किया। अचलपुर से चलकर कुछ ही दिनों में वे लोग कुन्डिनपुर जा पहुचे। वहाँ महाराज भीमरथ और रानी पुष्पदन्ती उसे मिल कर बहुत प्रसन्न हुई, इस प्रकार दमयन्ती तो भटकती भटकती आखिर में अपने पिता के घर आ ही पहुंची। अब उसे यहाँ कोई किसी प्रकार का भय या कष्ट नहीं था, किन्तु महाराज नल का अभी तक कहीं कुछ पता नहीं था। बस एक इस चिन्ता के सिवाय दमयन्ती को और किसी प्रकार की कोई चिन्ता न रही।

※पुनर्मिलन※

उधर महाराज नल दमयन्ती को छोडकर कई वर्षों तक वन वन में भटकते रहे। एक दिन उन्होंने देखा कि जगल मे बडी भयकर आग लगी हुई है अत वे बडे उत्सुक होकर उस आग की ओर बढे ही थे कि उन्हें उस आग में घिरे हुए किसी मानव की चीत्कार सुनाई दी। वह कह रहा था—

हे इक्ष्वाकु कुल तिलक महाराज नल! हे क्षत्रीय अर्षभ मेरी रक्षा कीजिए। यद्यपि आप अकारण उपकारी है तो भी यदि आप मेरी रक्षा करेंगे तो मैं अवश्य कुछ आपका प्रत्युपकार कर सकू गा।'

यह शब्द सुनते ही वे आगे बढे, और देखते क्या हैं कि वन-लताओं के झुण्ड में एक भयकर सर्प पडा हुआ है और वही पुकार पुकार कर अपनी प्राण रक्षा की दुहाई दे रहा है। सर्प की ऐसी कातर वाणी सुन नल ने साहस पूर्वक उस साँप को आग मे से बाहर निकाल दिया। किन्तु आग से बाहर आते ही उसने नल के हाथ में बड़े जोर से डस लिया। सर्प के डस लगते ही महाराज नल का रग एकदम

काला और कुरूप हो गया, उनके बाल रूखे से और शरीर सहसा कुबड़ा बन गया।

अपनी यह दशा देख नल बडे चिन्तित हुए। वे सोचने लगे ऐसे घृणित जीवन से तो मर जाना ही अच्छा है, इसलिए किसी मुनिराज की सेवा मे जाकर के दीक्षा ले लूं। और तप करके समाधि मरण के द्वारा शरीर त्याग कर दू। वे ऐसा सोच ही रहे थे कि वह सर्प एक दिव्य तेज पुञ्ज से देदीप्यमान देव बन गया और कहने लगा कि—

हे नल! तुम्हे घबराने की आवश्यकता नहीं मैं तुम्हारा पिता निषध हू। मैने तुम्हें राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली थी उसी के प्रभाव से देव लोक मे मै देव बन गया। वहां पर अवधि ज्ञान के बल से तुम्हारी यह दशा देख मैने सर्प का रूप धारण कर तुम्हे इस प्रकार कुरूप बना दिया है इससे तुम्हारा उपकार ही होगा। यह एक बिल्व फल और मजूषा रत्न मैं तुम्हे देता हूं तुम इसे सम्भाल कर रखना। जब तुम अपने वास्तविक रूप को धारण करना चाहो तो इस फल को तोड डालना। इस मे से देव दुष्य वस्त्र और पिटारी में से रत्नाभूषण मिलेंगे, उन्हे धारण करते ही तुम अपने वास्तविक रूप मे आ जाओगे।

अपने पिता के ऐसे वचन सुन महाराज नल अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने पूछा कि हे पिता जी इस समय दमयन्ती की क्या अवस्था है। बताने की कृपा कीजिए।

तब देव शरीरधारी निषिध ने उत्तर दिया कि दमयन्ती की चिन्ता न करो, वह कुन्डिनपुर के मार्ग मे है और शीघ्र ही वहा पहुँच जायगी। तुम्हे भी इस प्रकार वन वन भटकने की आवश्यकता नहीं, तुम जहां भी जाना चाहो मैं तुम्हें क्षण भर मे पहुँचा सकता हूँ।

इस पर नल ने उत्तर दिया मुझे 'सुसुमारपुर पहुँचा दीजिए।'

फिर क्या था, क्षण भर मे नल सुसुमारपुर पहुँच गये। नल ने अभी नगर के बाहर उद्यान मे पांव रक्खा ही था कि वहा एक मदोन्मत्त हाथी बन्धन तुडाकर अनेक प्राणियों तथा उपवन के वृक्षों का विनाश करता हुआ दिखाई दिया। वह हाथी प्रचड तूफान के समान बड़े वेग से जिधर निकल जाता उधर ही सर्वनाश कर डालता। उसके इन विनाशक काण्ड को देखकर वहां के महाराज दधिपर्ण ने घोषणा

की कि जो इस हाथी को वश में कर लेगा उसे उसके मन चाही वस्तु पुरस्कार में दी जायगी।

नल ने देखते ही देखते उस मदोन्मत्त हाथी को वश में कर उसे आलान-स्तम्भ पर जा बाँधा। हाथी को इस प्रकार वश में कर लेने से उनकी चारो ओर ख्याति हो गई। अब तो महाराज ने बड़े प्रसन्न होकर उनसे पूछा कि गज को वश में करने के सिवा कुछ और भी विद्या तुम जानते हो?

इस पर नल ने उत्तर दिया। महाराज मुझे पाक शास्त्र का भी थोड़ा बहुत ज्ञान है यह कह कर नल ने महाराज के आग्रह से सूर्य के ताप में ही ऐसे दिव्य पदार्थ बनाकर खिलाये कि महाराज आश्चर्य चकित हो उठे।

अब तो दधिपर्ण की जिज्ञासा और कौतुहल भावना और भी जागृत हो उठीं। वे मन ही मन सोचने लगे कि पाक विद्या में ऐसा निपुण तो नल के सिवा कोई नहीं है। पर कहाँ तो देवोपम सुन्दर महाराज नल और कहां ये काला कलूटा कुबड़ा। यही सोच वह चुप हो रहे, पर फिर भी उन्होंने पूछा कि अरे भाई तुमने यह पाक कला कहा से सीखी है और तुम कौन और कहाँ से आये हो? मुझे अपना सच सच सारा वृत्तान्त सुनाकर मेरी उत्सुकता शान्त करो। तब नल ने कहा कि मैं महाराज नल के यहां रसोइया का काम करता था, उन्हीं की कृपा से मुझे यह विद्या प्राप्त हुई है, तब तो महाराज दधिपर्ण और भी प्रसन्न हुए, उन्होंने उसे एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ पाँच सौ गाँव और अनेक वस्त्राभूषण प्रदान किये नल ने पांच सौ गाव छोड़कर बाकी सब वस्तुएँ दान दे दी।

कुब्ज की ऐसी उदारता देख महाराज और अत्यधिक प्रसन्न होकर कहने लगे कि तुम और भी जो कुछ चाहो माँग सकते हो। तब उसने वर माँग कर उनके राज्य में से मद्य माँस और जूआ प्रचलन बिल्कुल बन्द करवा दिया। इन अद्भुत चातुर्य से प्रभावित हो महाराज ने कुब्ज को अनेक बहुमूल्य रत्न प्रदान कर अपने ही यहाँ रख लिया।

कुछ दिनों पश्चात् महाराज दधिपर्ण का कोई दूत भीमरथ के यहा गया और उसने उस कुब्ज की पाक कला की चर्चा की। यह सुन दमयन्ती ने कहाकि इस ससार में नल के सिवाय दूसरा कोई पुरुष सूर्य

पाकी नहीं है। सम्भव हो वह महाराज नल ही हो। इसलिए उनका वास्तविक पता लगाने के विचार से कुशल नामक एक ब्राह्मण भेजा गया। कुशल ने जब जाकर उस कुबड़े कुरुप याचक को देखा तो वह बड़ा निराश हुआ। पर फिर भी वह अपने सन्देह निवारण के लिए उस रसोइये के सामने यह श्लोक पढ़ने लगा।

"निर्घृणानां निस्त्रयाणां नि.सत्वाना दुरात्मनाम्।
धूर्वहो नल एवैकः पत्नी तत्याज य सतीम् ॥१॥
सुप्तामेका किनी मुग्धां, विश्वस्ता त्यजतः प्रियाम्।
उत्सेहातेकथं पादौ नैषधेरल्प मेधसः ॥२॥

अर्थात् निर्दय, निर्लज्ज और निर्बल तथा दुरात्मा पुरुषो मे नल ही सबसे बढ़कर है जिसने अपनी सती साध्वी पत्नी को भी जंगल में अकेली छोड़ दिया। ऐसी अवस्था में उसे छोड़ते हुए उस निर्दय मूर्ख नल के पॉव कैसे आगे बढ़ सके होंगे।'

विप्रराज के मुख से बार बार यह श्लोक सुन कर कुब्ज के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। कारण पूछने पर उसने बताया कि नल की निर्दयता का वृत्तान्त सुनकर मेरी ऑखों में से ऑसू बह रहे हैं। कुशल का और कुब्ज का इस प्रकार आपस मे परिचय बढ़ गया, कुब्ज ने वे सब रत्नाभूषण ब्राह्मणराज को भेंट दे दिये जो उन्हे महाराज दधिपर्ण ने दिये थे।

कुब्ज से वे सब रत्न पाकर विप्रराज कुण्डिनपुर आ पहुचे। उन्होंने दमयन्ती और भीमरथ से सारा वृत्तान्त कह सुनाया, अब तो उन्हे और भी निश्चय हो गया कि हो न हो वह नल ही है। किसी कर्म विशेष के कारण उनका शरीर विकृत हो गया है, इसलिए उसे यहाँ बुलाया जाना चाहिए।

तब भीमरथ ने कहा कि बेटी मैने नल की वास्तविकता का पता लगाने का एक उपाय सोचा है कि मै दधिपर्ण के पास तुम्हारे दुबारा स्वयवर की झूठी खबर भिजवा दू और स्वयवर की तिथि इतनी निकट लिखू कि वायु के समान तीव्रगामी रथ के सिवा वह यहाँ पहुच ही न सके। नल अश्व विद्या के ज्ञाता है और वे घोड़ों को वायु वेग से चला सकते हैं, यदि वह कुब्ज नल ही होगा तो उन्हे निर्दिष्ट समय से भी पहले यहाँ पहुंचा देगा।

तदनुसार दधिपर्ण के पास स्वयवर का निमन्त्रण भेजा गया। दधिपर्ण बडी चिन्ता में पड़े, किन्तु एक दिन में वहाँ पहुचना बड़ा कठिन था। इसलिए वे अत्यन्त चिन्तित और उदास हो गये, कुब्ज ने उनकी उदासी का कारण जान उनको कहा कि आप चिन्ता न कीजिए मैं आपको समय से भी पहले वहाँ पहुँचा दूँगा।

देखते ही देखते दधिपर्ण का रथ हवा हो गया। और वायुवेग से चलता हुआ वह सूर्योदय से पहले ही कुण्डिनपुर जा पहुचा। कुण्डिनपुर में दधिपर्ण को बहुत सुन्दर आवासस्थान दिया गया, और महाराज ने स्वय उनकी सेवा में पहुचकर निवेदन किया कि राजन्! जिस प्रयोजन से मैंने आपको यहा बुलाया है वह तो मैं फिर बताऊँगा। किन्तु इस समय तो मैं आपको यह कष्ट देना चाहता हूं कि आपके यहाँ जो एक अत्यन्त कुशल कुब्ज पाचक है उसकी पाक कला का चमत्कार देखने के लिए सारा अन्त पुर उत्सुक है। अतः आप उस पाचक को मेरे साथ भेज दीजिये। दधिपर्ण भला भीमरथ के इस प्रस्ताव को कैसे अस्वीकार कर सकते थे। उन्होंने तत्काल कुब्ज को उनके साथ विदा कर दिया। उसके हाथ का बना हुआ भोजन चखते ही दमयन्ती ने कहा, पिता जी ये नल के सिवा दूसरा कोई नहीं है किन्तु मैं उनकी एक परीक्षा और भी कर सकती हूँ। उनके शरीर का स्पर्श होते ही मेरा अंग अग रोमांचित हो जाता है इसलिए आप इन्हें कहें कि ये मेरे मस्तक पर तिलक कर दें। कुब्ज ने ज्यों ही दमयन्ती के मस्तक पर तिलक किया कि उसका शरीर कदम्ब पुष्प की भाति रोमाञ्चित हो उठा। अब तो दमयन्ती नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाती हुई नल के चरणों में लिपट कर कहने लगी कि हे नाथ! एक बार आप मुझे धोखा देकर भाग निकले थे, पर अब दुबारा धोखा नहीं दे सकते, अब तो मुझे अपना खोया हुआ धन मिल गया है इसलिए कृपा कीजिए और बताइये कि आपका रूप कैसे विकृत हो गया।

दमयन्ती के ऐसे प्रेम वचन सुनकर नल का हृदय गद्गद् हो गया। वे अब अधिक देर तक अपने को छिपाकर न रख सके। उन्होंने तत्काल बिल्वफल को तोड़ तथा रत्नमजूषा में से देवदूष्य, रत्नाभरण निकाल कर धारण कर लिये। उन्हें धारण करते ही नल अपने वास्तविक रूप में आ गये।

अनेक कष्ट और विपत्तियों को झेलते हुए बारह वर्ष के पश्चात् एक दूसरे को मिलकर नल दमयन्ती तथा भीमरथ और पुष्पदन्ती की प्रसन्नता का पारावार न रहा। वे हर्ष विभोर हो एक दूसरे को प्रेमाश्रुओं से आप्लावित करने लगे, समस्त राजपरिवार इस प्रसन्नता से नाच उठा, जब महाराज दधिपर्ण को नल के प्रकट होने का समाचार ज्ञात हुआ तो उन्होने बड़ी नम्रता से नल को कहा कि मैं तो आपका सेवक होने के भी योग्य नहीं हूँ। फिर भी मुझसे आपको अपने यहाँ सेवक बनाकर रखने की अनजाने मे जो धृष्टता हुई उसे क्षमा कीजिए। तब महाराज नल ने उन्हें बड़े प्रेम भरे शब्दो में कहा कि राजन् मै तो स्वेच्छा पूर्वक आपका सेवक बनकर रहा था, आपने तो मेरे प्रति बडा ही सुन्दर व्यवहार किया। इसलिए आपको किसी प्रकार का अनुताप नहीं प्रत्युत हर्ष ही होना चाहिये।

नल के प्रकट होने का समाचार पाते ही महाराज ऋतुपर्ण व उनकी रानी चन्द्रयशा और तापसपुर का स्वामी सार्थवाह श्री शेखर भी कुन्डनपुर आ पहुंचे। उन लोगो ने मिलकर महाराज नल का बड़ी धूमधाम से राज्याभिषेक कर दिया। अभिषेक के पश्चात् सब राजाओं ने निश्चय किया कि कुबेर को पराजित कर नल को उनका पैतृक राज्य वापस दिलाना चाहिए। बस फिर क्या था, देखते ही देखते बड़ी भारी सेना अयोध्या के निकट जा पहुँची, वहाँ पहुच कर महाराज नल ने कुबेर को सदेश भिजवाया कि यद्यपि मै इस समय युद्ध की तैयारी करके आया हू किन्तु तुमने मेरा राज्य जूए द्वारा प्राप्त किया था। इसीलिए मै द्यूत के द्वारा भी उसे वापस लेना अनुचित नही समझता, तुम द्यूत या रण दोनो मे से किसी एक का निमन्त्रण स्वेच्छा पूर्वक स्वीकार कर सकते हो।

इस सन्देश को पाकर कुबेर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सोचा कि मैं अब भी नल को जूए मे हरा दूंगा। किन्तु अब तो समय बदल चुका था, नल के दुःख के दिन बीत गये थे। अब भला कुबेर की क्या सामर्थ्य थी कि वह उन्हे जीत लेता, देखते ही देखते कुछ दावों मे वह सारा राज्य पाट हार गया। पर नल तो परम दयालु और सज्जन थे उन्होंने तो तब भी उसके साथ सज्जनता का ही व्यवहार किया, और उसे यथापूर्व अपना युवराज बना लिया।

इस समय उनका फिर राज्याभिषेक हुआ। इस महोत्सव के अवसर पर सहस्रों राजा-महाराजा नानाविध उपहार लेकर उपस्थित हुए। नल ने भी उनका बहुत आदर सत्कार कर उन्हें सम्मानित किया। इस प्रकार महाराज नल कई वर्षों तक न्यायपूर्वक राज्य करते रहे।

अन्त में एक दिन दिव्य रूपधारी निषधदेव अपने पुत्र नल के पास आकर कहने लगे—

हे वत्स! इस भवारण्य में आत्मज्ञान रूपी धन को विषय वासना रूपी लुटेरे लूट रहे हैं। यदि मानव शरीर पाकर भी तुम उसकी रक्षा न कर पाये तो तुम्हारा पुरुषार्थ किस कामका। अतः अब तुम्हें दीक्षा ग्रहण कर आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो जाना चाहिए।

इस प्रकार दीक्षा का सन्देश देकर निषध देव अर्न्तध्यान हो गये। उसी समय एक अवधि ज्ञानी मुनिराज वहाँ आ पहुँचे, उन्होंने नल को बताया कि पूर्वभव में मुनिराज को दुग्ध का आहार[1] दान आदि देने के कारण सातवेदनीय कर्म का बन्धन किया था उसी के फल स्वरूप तुम्हें यह राज्य प्राप्त हुआ। किन्तु[2] बारह घन्टे तक तुमने अपने साथी साधुओं से अलग करवा, और अनेक प्रकार के कष्ट पहुचाये इसलिए बारह वर्ष का तुम्हें दमयन्ती से वियोग सहन करते हुए अनेक दुख देखने पडे।

तदनन्तर नल ने बडे धूम धाम से दीक्षा ग्रहण कर ली। और कई वर्षों तक लम्बी साधना में लगे रहे। किन्तु दमयन्ती के प्रति उनका आसक्ति का भाव बीच बीच में जागृत हो उठता, उनके इस प्रकार के आसक्ति के भाव को देख एक बार आचार्य ने उन्हें सघ से पृथक भी कर दिया। किन्तु उन्हें अपने इस कृत्य पर बडा दुःख हुआ, वे गुरु जी से क्षमा मांग फिर सघ में सम्मिलित हो साधना में तत्पर हो गये।

दीर्घकाल तक साधना करने के उपरान्त उन्होंने अनशन व्रत धारण कर देह त्याग कर दिया। इधर दमयन्ती ने भी उन्हीं का अनुसरण कर अनशन व्रत के द्वारा शरीर त्याग दिया। मृत्यु के पश्चात वे दोनों स्वर्ग लोक के अधिकारी हुए।

---

१ देखिये मम्मन और धम्मिल की कहानी पृष्ठ २००-२०१ पर

कनकवती का सातवां भव

कुबेर ने इस प्रकार अभूत पूर्व वृतान्त सुनाते हुए वसुदेव से कहाकि हे यदूकुल भूषण ! मृत्यु के पश्चात् महाराज नल का जीव ही मेरे रूप में उत्पन्न हुआ है। अर्थात् पूर्व भव का नल ही इस भव में मैं कुबेर बना हूं। दमयन्ती भी मेरे साथ मेरी रानी (देवी) बनी, देव योनि में रहने के कर्म समाप्त होने पर वह दमयन्ती ही स्वर्ग से च्युत होकर महाराज हरिश्चन्द्र के यहाँ उनकी पुत्री कनकवती के रूप में उत्पन्न हुई है। पूर्व भव की पत्नी होने के कारण ही कनकवती के प्रति मेरे हृदय मे मोह उत्पन्न हो गया। और इसी लिए मैं इसे देखने के लिए यहाँ आ पहुँचा। हे वसुदेव ! इस प्रकारका यह मोह सैकड़ों जन्म जन्मान्तरों तक भी जीव का पीछा नहीं छोडता। मुझे यह देखकर परम प्रसन्नता हुई है कि कनकवती को तुम्हारे जैसा रूपवान्, बली, साहसी और धैर्यशाली पति प्राप्त हुआ और मैं तुम्हें यह भी बता देना चाहता हूँ कि कनकवती इसी जन्म में अपने सभी प्रकार के कर्मों का क्षय कर मोक्ष को प्राप्त हो जायगी।

इस प्रकार कनकवती के पूर्व जन्म का वृत्तान्त बताकर कुबेर तो वहाँ से अन्तधान हो गये। और वसुदेव कनकवती के साथ विवाह कर सानन्द समय बिताने लगे।

—इत्यलम्—



* नवां परिच्छेद *

वसुदेव के अद्भुत चातुर्य

एक बार रात्रि को सोये हुए वसुदेव को ऐसा अनुभव हुआ कि उन्हें कोई आकाश में लिए जा रहा है। आंख खोलने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि कोई खर मुखी स्त्री उन्हें दक्षिण की ओर ले जा रही है। यह देखते ही उन्होंने उसके पीठ पर जोर से एक ऐसा मुक्का मारा कि पीडा से बिलबिलाती हुई उस स्त्री ने उन्हें वहीं फेंक दिया। आकाश म से उसके हाथों मे से छूटकर वे नदी मे आ गिरे। धीरे धीरे वे नदी को पार कर किनारे आ पहुचे।

उस समय रात्रि का अन्तिम पहर था। उषा काल की लालिमा से दशों दिशाएँ अनुरजित हो रही थी। प्रभात के उस मद प्रकाश में उन्होंने देखा कि पास ही कुटियाओं में से अग्नि का धुआ निकल रहा है। हिरणों के बच्चे स्वच्छन्द और निर्भय रूप से अखोट, प्रियाल, कोल, तिन्दुक, इगुदी, कसार, और निवार आदि (धान्य विशेष) तथा फलों से भरे पूरे पक्षियों के कलरव से मुखरित वन में घूम रहे हैं। ऐसे सुन्दर आश्रमपद को देखते ही वसुदेव तत्काल उस आश्रम के कुलपति महर्षि के चरणों में पहुच उन्हें प्रणाम कर पूछने लगे कि ऋषिराज! यह कौन सा प्रदेश है।

उन्होंनें उत्तर दिया बहुत अच्छा आप तो गगनचारी प्रतीत होते हो, जो इस प्रदेश को जानते ही नहीं, यह गोदावरी नदी है और श्वेत जनपद। अब आप यहाँ कमल पत्रों में फल पुष्पों का आहार स्वीकार कर हमारा आतिथ्य ग्रहण कीजिए।

इतने मे ही वसुदेव की दृष्टि एक अत्यन्त सुन्दर युवक पर जा पड़ी। उसके मस्तक पर पडी चिन्ताओं की रेखाओं से स्पष्ट लक्षित होता था कि वह किसी गहरी चिंता मे फसा हुआ है। उनको इस प्रकार चिन्तित देख वसुदेव ने उससे पूछा महाभाग आप कौन हैं, इस प्रकार चिंतित क्यों प्रतीत होते हैं, कोई मेरे योग्य सेवा हो तो बताइये। आप की

चिन्ता निवारण के लिए प्रयत्न करूंगा। वसुदेव के ऐसे मृदुल वचन सुन कर मुनिराज ने उत्तर दिया कि हे सौम्य ! यह पोतनपुर के अधिपति का अमात्य सुमित्र है, यह स्वभाव से ही स्वामिभक्त और बड़ा प्रजा हितैषी है। इसकी कुछ सहायता कर उसे कृतार्थ कीजिए।

यह सुनकर 'वसुदेव ने उत्तर दिया:—आज्ञा दीजिए जो भी कुछ हो सकेगा यह सेवक अवश्य करेगा। आपके कार्य साधनके लिए कोई कसर उठा न रक्खेगा।'

तब वह युवक कहने लगा कि मैं श्वेत जनपद के महाराज विजय का सचिव और सखा हूँ। एक बार कोई भारी धनिक सार्थवाह पोतनपुर में आ पहुंचा, उसके दो स्त्रियाँ थी, पर पुत्र एक था। उसी समय उस सार्थवाह की मृत्यु हो गई। सेठ के मरते ही उसकी दोनों पत्नियों मे झगडा होने लग पड़ा। दोनो ही कहती कि इस लड़के की सगी मा मैं हू, क्यों कि लडके की सगी माता ही उस सारी सम्पत्ति की वास्तविक अधिकारिणी हो सकती थी।

इस प्रकार दोनों झगडती झगडती राजा के पास आ पहुँची। राजा के पास निर्णय करने का कोई आधार नहीं था. उन्होंने यह कार्य मुझे सौंप दिया कि तुम इनके विवाद का निर्णय करो। यह एक बड़ी उलझी हुई समस्या थी, क्योंकि दोनो ही अपने आपको सगी मा बताती थीं। और लड़का भी दोनो को माँ कहकर पुकारता था, कहीं से अन्य किसी प्रकार की कोई साक्षी भी उपलब्ध होने की सम्भावना न थी। इसलिए दोनों का विवाद सुनकर मैंने 'अच्छा विचार करेंगे' कहकर उन्हे उस समय तो विदा कर दिया; किन्तु कुछ समय पश्चात् वे फिर राज दरबार मे आ पहुंची, यह देख महाराज बड़े क्रुध हुए उन्होने भर्त्सना करते हुए मुझ से कहा ऐसी जटिल समस्याओ के समाधान मे ही तो मन्त्रियों की वास्तविक योग्यता का पता चलता है। इस लिए जब तक तुम इस विवाद का निर्णय न कर लो तब तक मेरी राज्य सभा मे आने की आवश्यकता नहीं।

तब मैंने सोचा कि राजाओ की प्रसन्नता मे कुबेर का और उनके कोप मे यम का निवास होता है इसलिये राजकोप से बचने की दृष्टि से मैं नगर छोड़ गुप्त रूप से इस तपोवन मे चला आया हू। यही मेरी चिन्ता का प्रमुख कारण है।

यह सुन कर वसुदेव ने उत्तर दिया। आप चिन्ता न कीजिए। मैं समझता हूँ कि मैं इस समस्या का समाधान कर सकूंगा, मेरी तुच्छ बुद्धि में इस विवाद को निपटाने का एक उपाय सूझ गया है। चलो मेरे साथ, और राजा से चल कर विवाद के निर्णय की सूचना दो।

तत्पश्चात् अमात्य ने अपने परिवार को बुला लिया। वसुदेव के साथ उन सब लोगों ने गोदावरी की स्वच्छ जल धारा में स्नान तथा आह्निक कृत्य समाप्त कर महर्षि द्वारा प्रदत्त आश्रमोचित आहार ग्रहण कर वहा से प्रस्थान कर दिया। पोतनपुर में प्रविष्ट होते ही वसुदेव के अनुपम रूप लावण्य को देख सभी लोग कहने लगे कि अरे यह तो कोई देवता अथवा कोई विद्याधर है। इस प्रकार जनता द्वारा प्रशंसित और सत्कृत होते हुए वसुदेव राजमहलों मे जा पहुचे। महाराजा ने उन्हें देखकर उनका बडा आदर सम्मान किया, स्नान सन्ध्या भोजनादि के पश्चात्-वह दिन वसुदेव ने विश्राम करते हुए बिता दिया। दूसरे दिन प्रात.काल ही महाराज ने आकर वसुदेव से कहा कि चलिए उन सार्थवाह पत्नियों को जरा देख लीजिए।

तत्पश्चात् महाराजा और मन्त्रियों से घेरे हुए वसुदेव बाह्योपस्थान अर्थात् दीवाने आम में आ बैठे। यह सभा स्थान पहले से ही लोगों से खचाखच भरा हुआ था। प्रार्थी दोनों सार्थवाह पत्निया भी वहां पहले ही से उपस्थित थीं। उन्हे देखकर वसुदेव ने राजपुरुषो को आज्ञा दी कि एक अत्यन्त तेज धारा वाली आरो उपस्थित की जाय। आरी या करोत के आ जाने पर वसुदेव ने उन दोनों श्रेष्ठ पत्नियों को अपने पास बुलाकर कहा कि आप दोनों सेठ के धन के लिये ही तो लड रही हो, यदि हम इस बच्चे को आधा दोनों को बॉट दे तो धन भी अपने आप ही दोनों को आधा आधा मिल जायगा। यह करकर उस लडके को बुला लिया गया, और उसे एक निश्चित स्थान पर खडा कर बधिकों को आज्ञा दी गई कि इस लडके के सिर पर आरी रख कर इसे ठीक मध्य भाग में से चीर डाला जाय।

ज्यों ही लडके के सिर पर आरी रक्खी गई उन दोनों में से एक स्त्री का मुख मडल तो आधा धन प्राप्त हो जाने की आशा से विकसित कमल की भांति खिल उठा। किन्तु दूसरी स्त्री—'मैं सच कहती हूँ मेरा विश्वास करो यह मेरा बेटा नहीं इसी का है यह धन और पुत्र

दोनों, इसी को दे दो मुझे कुछ नहीं चाहिये। इसे छोड़ दो, इसके इस प्रकार दो टुकड़े मत करो। कहती हुई उसके पैरों मे पछाड़ खाती हुई गिर पड़ी।

यह देखते ही वसुदेव ने कहा कि 'देखो यह सच्ची मां है और दूसरी स्त्री मिथ्या वादिनी है। जिसके हृदय मे इस बच्चे के प्रति इतनी दया है वही सच्ची मां हो सकती है, इसने धन की कुछ परवाह न कर बच्चे को छोड देना उचित समझा, पर दूसरी को धन के लोभ के कारण बच्चे के दो टुकड़े होते देखकर भी कुछ' दया न आई। वसुदेव को इस प्रकार उचित निर्णय देते देख सभी लोग शतृशत मुख से उनकी प्रतिभा और न्याय निपुणता का धन्यवाद करने लगे। उस सच्ची माता को बुलाकर महाराज ने कहा कि देवी यह पुत्र तुम्हारा ही है और धन की अधिकारिणी भी तुम ही हो। इस पापिन को तुम अपनी इच्छानुसार अन्न वस्त्र देती रहना।

तदुपरान्त वसुदेव बहुत दिनों तक राजा का आतिथ्य ग्रहण करते हुए वहीं रहते रहे। कुछ दिनों के पश्चात् महाराज ने अपनी पुत्री भद्रमित्रा और उनके अमात्य ने अपनी क्षत्राणी पत्नी से उत्पन्न सत्य रक्षिता के साथ वसुदेव का विवाह कर दिया। ये दोनों कन्याएँ संगीत और नृत्य आदि कलाओं में अत्यन्त निपुण थी।

ये दोनों पत्नियाँ वसुदेव का इन कलाओं के द्वारा मनोरजन करने लगीं। किन्तु वसुदेव तो घुमक्कड़ और नये नये स्थानों को देखने के लिए सदा उत्सुक स्वभाव के थे। इस लिये एक दिन वे कोल्लयर नामक नगर को देखने के लिए अपनी पत्नी को सूचित किए बिना ही निकल पड़े।

वसुदेव की कला निपुणता

वसुदेव जहाँ भी जाते मार्ग में लोग उनके भोजन, वसन, शयन, आसन आदि का प्रबन्ध बड़े सम्मान के साथ कर देते। इस प्रकार चलते-चलते वे चारो ओर से अनेक रमणीय उद्यानो प्रयावों और मंडपो से सुशोभित उच्च अट्टालिकाओ और प्रासादों से रजतगिरि के समान भासित होने वाले अत्यन्त दृढ़ प्राकार युक्त कोल्लयर नगर मे जा पहुचे। वहा घूमते-घूमते वे एक अशोक वन मे जा कर वहाँ के रक्षक माली से कहने लगे कि हम को एक दिन के लिए विश्राम स्थान चाहिए।

तुम यदि उचित समझो तो हमें यहीं कहीं कोई ठहरने की जगह दे दो। माली ने प्रसन्न हो उद्यान में बने हुए बहुत बडे सुन्दर राजभवन का कमरा उनके लिए खोल दिया।

दूसरे दिन प्रात काल मालाकार की कन्या को फूलों की माला गूथते देख वसुदेव ने पूछा कि भद्रे ! यह माला तुम किस के लिए बना रही हो। उसने उत्तर दिया कि मै राजकुमारी के लिये यह माला बना कर ले जा रही हूँ। वसुदेव ने पूछा यह राजकुमारी कौन है ?

उस ने उत्तर दिया हे देव ! महाराज पद्मरथ की अग्रमहिषी की पुत्री है। अनेक कलाओं मे निपुण यह राजकन्या पद्मावती वास्तव में मूर्तिमती सरस्वती और रूप में लक्ष्मी ही है। तब वसुदे ने उसे कहा कि तुम मुझे विविध रूप रग और गध वाले पुष्प ला दो, मैं तुम्हे राजकुमारी को भेंट देने के लिए एक बहुत सुन्दर माला बना देता हू।

पुष्पों के आ जाने पर वसुदेव ने एक ऐसी सुन्दर माला जो साक्षात् श्री—लक्ष्मी के योग्य हो, श्रीदाम तैयार कर दी। महलों से लौट कर मालाकार कन्या ने वसुदेव से कहा—

'आप की कृपा से आज राजकुमारी मुझ पर बहुत प्रसन्न हुई और उसने मुझे बहुमूल्य रत्नाभरण पुरस्कार स्वरूप प्रदान किये।'

इस पर वसुदेव ने पूछा—भद्रे ! यह कैसे हुआ ? उसने उत्तर दिया—राजमहलों मे पहुच कर वह माला राजकुमारी के कर कमलों में भेंट की तो उस ने मुझ से पूछा कि बालिके, माला बनाने की ऐसी निपुणता कहाँ से सीखी। मैंने निवेदन किया, स्वामिनी आज हमारे घर कहीं से कोई अतिथि आया हुआ है उसी ने बडे आदर पूर्वक यह बनाई है तब तो वह गद्‌गद् वाणी से कहने लगी कि तुम्हारा यह अतिथि कैसा है और इसकी अवस्था क्या है ? तब मैंने उत्तर दिया कि ऐसा सुन्दर पुरुष तो मैंने आज तक कहीं कोई नहीं देखा। मुझे तो ऐसा लगा है कि वह कोई विद्याधर या देवता है। उसकी देह कान्ती नव यौवन की शोभा से मडित है। यह सुनते ही वह रोमाचित हो उठी। उसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। उसने मुझे पुरस्कार स्वरूप ये रत्नाभरण प्रदान करते हुए कहा—तुम चाहो तो मैं ऐसा प्रयत्न करूं कि तुम्हारा वह अतिथि यहीं कुछ दिनों के लिये ठहर जाये। यह सुन कर मैं वहां से चली आई।

दिन ढलते-ढलते महाराज पद्मरथ की दायीं भुजा के समान सहायक उनका मन्त्री अपने परिजन तथा सेवकों के साथ वसुदेव के पास पहुँच अर्घ्य प्रदान के द्वारा उनका सम्मान कर उन्हे अपने घर ले गया। दूसरे दिन प्रात काल मन्त्री ने कहा कि महाभाग, मुझे हरिवंश की उत्पत्ति और उसके प्रमुख राजाओं के दिव्य चरित्रो की कथा सुना कर कृतार्थ कीजिये। इस पर वसुदेव ने हरिवश चरित्र बडे विस्तार से कह सुनाया। उस चरित्र को सुन कर मन्त्री महोदय बहुत प्रसन्न हुए। कुछ दिनो पश्चात् महाराज ने उन्हे बुला कर अपनी कन्या पद्मावती के साथ उनका विवाह कर दिया।

अब वसुदेव शची के साथ इन्द्र के समान पद्मावती के साथ आनन्दपूर्वक विहार करने लगे। एक दिन बैठे-बैठे वसुदेव ने पद्मावती से पूछा कि—"हे देवी! मुझ अज्ञात कुलशील व्यक्ति के साथ तुम्हारे पिता ने तुम्हारा विवाह क्योंकर कर दिया। इस पर उसने हसते हुए उत्तर दिया कि—

हे आर्य पुत्र! अत्यन्त मनमोहक सुगन्धि की सम्पत्ति से समृद्ध किन्तु वन के एकान्त प्रदेश मे कुसुमित चन्दनवृक्ष के सम्बन्ध मे क्या भ्रमर को कुछ बताने की आवश्यकता रहती है? मेरे पिता ने एक दिन किसी विश्वस्त ज्ञानी नैमित्तिक से पूछा कि भगवन् पद्मावती को कब और कैसा योग्य वर मिलेगा। इस सम्बन्ध में कुछ बताने की कृपा कर इस दास को चिन्ता मुक्त कीजिए।' तब उत्तर में नमितिक ने कहा महाराज आप इसके सम्बन्ध में किसी प्रकार की चिन्ता न कीजिए क्योंकि इसे ऐसा श्रेष्ठ पृथ्वीपालक पति प्राप्त होगा। जिसके चरणों मे बड़े बडे राजा महाराजाओ के मस्तक झुका करगे।'

पिता जी ने फिर पूछा महाराज वह पुरुष कब और किस प्रकार प्राप्त होगा?

नैमित्तिक ने उत्तर दिया वह थोड़े ही समय मे स्वयं यहां आ पहुँचेगा, जो व्यक्ति पद्मावती के लिए श्रीदाम पुष्पों की एक माला बना कर भेजे और हरिवश का सच्चा इतिहास सुनाय। वही तुम्हारी कन्या का पति होगा।'

इस प्रकार उनके वचनो को प्रमाणित मानकर पिता जी ने मुझे कहा कि बेटी जो व्यक्ति तेरे लिए श्रीदाम बना कर भेजे तू उसकी सूचना तत्काल मन्त्री जी को दे देना।

हे प्राणनाथ ! इस प्रकार आपको पहिचान कर पिता जी ने मेरा आपके साथ विवाह कर दिया।

इस प्रकार वसुदेव और पद्मावती कभी जल विहार करते; कभी उद्यानों व उपवनों में भ्रमण करते हुए सानन्द समय बिताने लगे।

—:एक का वियोग दूसरी का संयोग:—

एक दिन वे दोनों प्रकृति सुन्दरी का निरीक्षण करते हुए वन मे दूर निकल गये। वहां एक परम सुन्दर हंस को देख पद्मावती वसुदेव से कहने लगी कि "प्राणनाथ चलिये इस सरोवर में चल कर जल क्रीडा करें" यह सुनते ही वसुदेव पद्मावती के साथ सरोवर में उतर जल विहार करने लगे। जल में तैरते अठखेलियाँ करते वे बहुत दूर निकल गये तब वसुदेव को ध्यान आया कि अरे यह तो पद्मावती नहीं है, कोई दूसरी ही स्त्री है जिसने मुझे धोका देकर यहां तक लाने का प्रयत्न किया है यह 'सोचते ही उन्होंने उसे पूछा कि "सच बता तूँ कौन है ?" और वसुदेव के यह पूछते ही वह सहसा अदृश्य हो गई अब तो वसुदेव जल से बाहर निकल विलाप करते हुये पद्मावती को ढूढने लगे कभी जल चर पक्षियों से पूछते हे हंस, हे चक्रवातक तुमने मेरी प्रियतमा को कहीं देखा हो तो बता दो उसकी तुम्हारे ही समान सुन्दर गति थी और तुम्हारे ही समान वह अपने प्राणप्रिय अर्थात् मुझ से अलग नहीं रह सकती थी, हे भाई हरिण, यदि तुमने कहीं देखा हो तो तुम्हीं बता दो उसके नेत्र तुम्हारे ही समान मनोहर और विशाल थे।

इस प्रकार वे वन वन में भटकते हुए पद्मावती को ढूढने लगे। अन्त में उन्हें "यह देखो पद्मावती यहाँ" की ध्वनि सुनाई दी। कानों के लिए अमृत के समान इस ध्वनि को सुन वसुदेव उसी का अनुसरण करते हुए आगे बढने लगे। चलते चलते वे एक पल्ली में जा पहुँचे उस पल्ली के सभी आदमी उनके स्वागत सत्कार मे जुट गये और उन्हें अपने साथ राज महलों में ले गये। वहाँ जाकर उन्होंने ... एक कन्या को दिखाते हुए वसुदेव से कहा कि वह देखो वह तुम्हारी पद्मावती देवी खडी है। यह सुन वसुदेव का हृदय आनन्द से आनन्दित हुआ। पर पास में जाकर देखने पर उन्हें पता चला कि वह पद्मावती नहीं प्रत्युत उसी के जैसी कोई दूसरी सुन्दरी है।

तत्पश्चात् उस पल्ली पति ने अपनी उस पुत्री के साथ वसुदेव का विवाह कर दिया। इस विवाह का कारण पूछने पर राज कुमारी ने वसुदेव का बताया कि—

मेरे पितामह अमोघ प्रहरी अपने शत्रुओं से पराजित हो। इस एकान्त दुर्ग में आश्रय लेकर रहने लगे। अनेक राजा महाराजा मेरे साथ विवाह करने के लिये लालायित थे पर मेरे पितामह ने उनमे से किसी के साथ भी मेरा विवाह करना स्वीकार नहीं किया। एक दिन कुछ ऐसे लोगो ने जिन्होंने पहले कोल्लयरपुर मे आपको देखा था, आकर पितामह से निवेदन किया कि महाराज पद्मावती के वियोग में विलाप करते हुए महाराज पद्मरथ के जामाता इस वन में आए हुए हैं। यह सुन "अहा! काम बन गया" कहते हुए मेरे पितामह ने उन लोगों द्वारा आपको यहां बुला लिया। आपके यहाँ पहुँच जाने पर मेरी सखियाँ मुझे कहने लगी पद्मश्री आज तेरा यौवन सफल हो गया। भगवान तुझ पर प्रसन्न हैं पद्मावती के प्रियतम ही तेरे पति बनेंगे। बस इस प्रकार आपका मेरे साथ विवाह हो गया।

विवाहोपरान्त वसुदेव कुछ दिन वहां रहे। पद्मश्री के इसी समय एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ, जिसका नाम जर रखा गया। इस पुत्र को गोद में लेते हुये वसुदेव ने कहा कि यह बालक तुम्हारे शत्रुओं को जीर्ण करेगा। इसीलिये इसका नाम जर रखा गया है।

—: वसुदेव की अध्यात्म चर्चा :—

जरकुमार जब कुछ बडा हो गया तो वसुदेव पद्मश्री के राजमहलों से निकल कर बाहर भ्रमण करने के लिये चल पड़े। चलते-चलते वे कांचनपुर नगर में जा पहुचे। नगर के बाहर एक उपवन के एकान्त स्थान में पद्मासन लगाकर बैठे हुये एक योगीराज को देखा। उन्हे देख वसुदेव ने विनयपूर्वक पूछा—"भगवन् आप किसका चिन्तन कर रहे है?

योगीराज ने उत्तर दिया हे महाभाग! मैं प्रकृति पुरुष का चिन्तन कर रहा हूँ।

वसुदेव ने जिज्ञासा प्रकट की कि वह पुरुष क्या है, और कैसे है?

मुनिराज ने समझाया—वह पुरुष चेतन, निलय, अक्रिय निर्गुण

और भोक्ता है। वह शरीर के आश्रय के कारण बन्धन में आता है और ज्ञान के द्वारा मुक्त हो जाता है। प्रकृति सत्व, रज, और तम इन तीन गुणों से युक्त होने के कारण त्रिगुणात्मिका है। वह अचेतन, सक्रिय और पुरुष की उपकारक है।

वसुदेव ने पूछा—भदन्त यह चिन्तन कौन करता है? मुनिराज ने उत्तर दिया प्रकृति की विकृति स्वरूप यह मन ही सब कुछ करता है।

इस पर वसुदेव ने शका प्रगट करते हुए निवेदन किया कि भगवन् आपके ध्यान में किसी प्रकार की बाधा न हो तो मुझे इस सम्बन्ध में कुछ और बताने की कृपा कर कृतार्थ कीजिये। क्योंकि मेरे हृदय में इस विषय को अधिकाधिक जानने और सुनने की प्रबल जिज्ञासा जागृत हो गई है।

इस पर परिव्राजक ने अपनी मन्द मुसकराहट से आलोकित मुख-मण्डल की कान्ति से समस्त वातावरण को उत्फुल्ल एवं मन मोहक बनाते हुये। बड़े ही मधुर शब्दों से इस प्रकार समझाना प्रारम्भ किया—

अचेतन मन पुरुष अथवा प्रकृति के आश्रय के बिना किसी प्रकार का कोई कार्य कर नहीं सकता। पुरुष मे विद्यमान् चेतना विस्मरण शील नहीं है। इसलिये वह मन को भावित करने या ज्ञानमय करने के लिये असमर्थ है। यदि चेतना मन को भावित करने वाली हो जावे, तो मन ही पुरुष बन जाये, पर वास्तव मे बात ऐसी नहीं है। अनादि काल से उत्पन्न और अपरिणामी पुरुष नित्य और अनादि हैं। वह जो इस प्रकार चिन्तन करता है। वह तो पूर्व भाव के परित्याग और उत्तर-भाव अर्थात् बाद में होने वाले भाव के स्वीकार से भावान्तर को प्राप्त हुआ पुरुष अर्थात् आत्मा अपने आपको अलिप्त समझने लगता है। वसुदेव ने कहा यदि ऐसा हो तो तुम्हारे सिद्धान्त से विरोध हो जायेगा। मन के चिन्तन का आश्रय करके जिस रीति पर विचार किया है उस वस्तु को इस प्रकृति के सम्बन्ध में ही समझना चाहिये (क्योंकि तुम्हारे मत के अनुसार मन प्रकृति का विकार है। अचेतन और अनादि पुरुष और प्रकृति के सम्बन्ध में अथवा दूसरे के सम्बन्ध में चिन्तन

घटित नहीं हो सकता। क्योंकि जो ये वस्तुएँ दिखाई देती है वे सिद्ध हैं।

इस पर परिव्राजक कहने लगा—'प्रकृति पुरुष का संयोग होते ही ये सब सम्भव हो जाता है। प्रकृति और पुरुष ये दोनों जब अकेले-अकेले रहते है तो नियत स्वभाव और नियत परिणाम के कारण कुछ भी करने मे असमर्थ रहते है। पुरुष सचेतन है और प्रकृति अचेतन जैसे सारथी और अश्व क द्वारा रथ मे गति होती है वैसे ही इन दोनों दोनों के सयोग से चिन्तन होता है।

तब वसुदेव ने कहा जो परिणामी द्रव्य हो उन्हीं में यह विशेषता सम्भव है कि जैसा कि खटाई और दूध के सयोग से दही का परिणाम होता है रथ की क्रिया की गति के कारण रूप जो अपने सारथी और घोड़े बताये वे दोनों तो चेतन की प्रेरणा से प्रयत्नशील होते हैं। जिस प्रकार रथ चलता है उस प्रकार आत्मा के विषय में आप किसे बतायेगे।

परिव्राजक ने कहा—'जिस प्रकार अन्ध और पंगु के सयोग से दोनो ही इच्छित स्थान पर पहुँच सकते हैं उसी प्रकार ध्यान करते हुए पुरुष को चिन्तन पत्पन्न हो जायगा।'

वसुदेव ने उत्तर दिया—'अन्ध और पगु ये दोनों तो सचेतन और सक्रिय है पर अपनी इस चर्चा मे तो पुरुष चेतन और प्रकृति अचेतन है। परिस्पन्द-चेष्टा ही जिसका लक्षण है, ऐसी तो क्रिया है और उससे बोध ही जिसका लक्षण है ऐसा ज्ञान है। श्रोत्रेन्द्रिय मे परिणत श्रवण शक्ति जिसकी अत्यन्त तीव्र हो गई है ऐसा अन्धा व्यक्ति शब्द रूपी वस्तु को जानता है इस सम्बन्ध मे देवदत्त (अन्धा) और यज्ञदत्त (पगु) का उदाहरण है। इस बात को हम दृष्टान्त से और भी स्पष्टता पूर्वक इस प्रकार समझा सकते हैं कि विशुद्ध और ज्ञानी पुरुष को विपरीत प्रत्यय—विपरीत ज्ञान (विभगज्ञान) कभी नहीं हो सकता, प्रकृति की निश्चेतनता को स्वीकार करने मात्र से अकेला ज्ञान कार्य साधक नहीं हो सकता। जैसे कि—विकार अर्थात् रोग के ज्ञान मात्र से रोग का नाश नहीं हो सकता, पर वैद्य के निर्देशानुसार औषधि और पथ्यादि के अनुष्ठान से ही रोग की निवृत्ति सम्भव है। इसी प्रकार यह आत्मा स्वय ज्ञान स्वरूप है वह अपने किये हुए ज्ञानावरणीय कर्म के वश हो जाता है तो उसे विपरीत प्रत्यय-विपरीत

ज्ञान का सशय होने लगता है। जैस मकडा अपने ही द्वारा उत्पन्न तन्तुओं के जाले में स्वय आबद्ध हो जाती है। उन आत्मा के ज्ञाना वर्णीय आदि कर्मो के क्षयापशम से देशज्ञता-मत्यादि ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञानावर्णीय के क्षय से सर्वज्ञता प्राप्त होती है और वे सिद्ध कहलाते हैं। जो कर्म रहित हो गये हैं उन्हें विपरीत प्रत्यय कभी नहीं होता। एक देश को अर्थात् ज्ञान के एक अश विशेष के जानने वालों से सर्वज्ञ विशेष हाते हैं। क्योंकि उन्हें सम्पूर्ण ज्ञान होता है। जिस प्रकार लाख के कबूतर आदि द्रव्यों में ऊ चाई और व्यास आदि सामान्य धर्म है। किन्तु कृष्णत्व, स्थिरत्व, चित्रत्व (रग) आदि विशेष धर्म हैं, उनके सम्बन्ध में यदि आंखें कम देखती हो तो अथवा प्रकाश मन्द हो तो सशय या विपरीत प्रत्यय हो जाता है। इसलिए आपका यह मोक्ष का उपदेश शुद्ध नहीं है। रागद्वेष से अभिभूत और विषय सुख की अभिलाषा वाला यह जीव जिस प्रकार दीपक तेल ग्रहण करता करता रहता उसी प्रकार कर्मो को ग्रहण करता है। कर्मो से ही ससार उत्पन्न होता है वैराग्य मार्ग में चलने वाले लघु कर्मी ज्ञानी सयमी आश्रव को रोक कर तथा तप के द्वारा घातिक (या) और अघातिक (या) कर्मो के क्षय करने पर जीव को निर्वाण की प्राप्ति होती है। यही सक्षेप में जीव और कर्म का सिद्धान्त है।

इस प्रकार के वचनो से सतुष्ट हुए परिव्राजक ने वसुदेव से कहा कि आप मेरे मठ में पधारिये और वहीं विश्राम कीजिए। वहाँ पहुचने पर परिव्राजक के उपस्थित भक्तों ने विद्वान और शास्त्रज्ञ जानकर उनका खूब स्वागत सत्कार किया।

ललित श्री से विवाह

भोजन के पश्चात् उस साधु ने कहा कि—

हे महाभाग मैं सब लोगो का विशेषतः गुणवानों का मित्र हूँ। इसीलिए लोग मुझे सुमित्र कहते है। मैं इस समय आपको एक भिक्षुक धर्म के विरुद्ध बात कहने जा रहा हूँ, वह यह कि स्त्रियों के सर्व श्रेष्ठ गुणों से समन्वित हंसगामिनी मृदुभाषणी, कुल वधुओं के समान पवित्र आचरण वाली, गणिका पुत्री ललित श्री के सम्बन्ध में नैमित्यिको ने कहा है कि वह किसी बहुत बडे महाराज की भार्या बनेगी। पर वह ललित श्री पुरुषों से बहुत घृणा करती है, एक दिन

अपने दर्शनार्थं आई हुई उसे मैंने पूछा कि—'पुत्री तू यौवनवती और कलाओं में निपुण है फिर भी पुरुषों के प्रति तेरी ऐसी द्वेषभावना क्यों है ?

तब उसने उत्तर दिया कि हे तात ! इसका काई विशेष कारण है। वह मै आपको बताती हूँ इससे पूर्व मैंने यह कारण आजतक किसी को नहीं बताया, इससे पूर्व भव मे मै एक वन प्रदेश मे चरने वाली हरिणी थी। अपने प्रिय सुनहरी पीठ वाले हिरण के साथ-साथ जगलो में स्वच्छन्द विहार किया करती थी। एक बार ग्रीष्म ऋतु मे बहुत से व्याधों ने हमारे मृग पर आक्रमण कर दिया, इस पर वह यूथ चारों ओर तितर-बितर हो गया और वह मेरा प्रिय हरिण भी मुझे अकेली छोड़ शीध्रता पूर्वक भाग निकला। गर्भवती होने के कारण मन्दगति वाली मुझको व्याधों ने पकड़ कर मार डाला। तब वहाँ से आकर मैंने यहां जन्म लिया, बचपन मे राजमहलों के आँगन मे किलोले करते हुए मृग शावक को देखकर मुझे पूर्व जन्म का स्मरण हो आया और मैंने मन में निश्चय किया कि ये बलवान् पुरुष कपटी और अकृतज्ञ होते हैं। पहले मृग मुझे इस प्रकार मोहित कर एक प्रदेश मे छोड़ कर चला गया। इसलिये मुझे किसी पुरुष के दर्शन से कोई प्रयोजन नहीं, हे तात ! इसी कारण से मेरे हृदय मे पुरुषों के प्रति द्वेषभावना जागृत हो गई है।

इस पर मैंने उसे कहा—'यह तुम्हारा निश्चय उचित ही है।' किन्तु हे सौम्य ! वह कन्या अब आपके योग्य है इसलिये कोई उचित उपाय कीजिए।

तब वसुदेव ने एक चित्रपट मगवाकर ऐसा चित्र अंकित किया जिसमें उस मृगी से बिछुड़ा हुआ हरिण उसके विरह में तड़फता हुआ इधर-उधर भटक-भटक कर उसे ढूंढ़ रहा था। और अन्त मे उसे कहीं न पाकर अपने उदास नेत्रों से अश्रुधारा बहाता हुआ दावाग्नि में अपने आपको फेंक रहा था। एक दिन ललित श्री की एक दासी सुमित्र के पास आई और वसुदेव को तन्मय होकर चित्र देखते देख कहने लगी कि यह चित्र आप किसका देख रहे हैं। इस पर वसुदेव ने उत्तर दिया—'मैं अपना आत्म-चरित ही देख रहा हूँ।

तब वह उस चित्र को ललितश्री के पास ले गई। चित्र पर दृष्टि-पात करते ही ललितश्री के नेत्र सजल हो आये। उसके मुख मडल पर उदासी की रेखाएँ छागई, उसे इस प्रकार सजल नेत्र और चिन्तित देख सखियों ने पूछा कि—'हे स्वामिनी! आप इतनी उदास क्यों हो गई है?' तब ललितश्री ने उन्हें उत्तर दिया—

हे! सखि स्त्रियाँ सचमुच बड़े छिछोरे हृदय वाली, कार्याकार्य में अविवेकिनी और अदीर्घदर्शी होती है। उनके हृदय में अपने प्रियजनों के सम्बन्ध व्यर्थ ही में कई दुर्भावनाएँ आ जाया करती हैं। अपनी इसी मूर्खता पर पश्चात्ताप करते हुये मुझे फूट फूट कर रोना आ रहा है।'

यह कहकर उसने सखियों के द्वारा वसुदेव को अपने घर बुला लिया और उसकी माता ने वसुदेव के साथ उसका विवाह कर दिया।



* सातवां परिच्छेद *

रोहिणी स्वयंवर

भरतक्षेत्र में जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित नगराज सुमेरू के नन्दन वन के मान को मर्दन करने वाला अरिष्टपुर नामक अत्यन्त सुन्दर नगर था। जिसके अधिपति महाराजा रुधिर थे। उनकें मित्र देवी अग्रमहिषी थी। उसके नीलोत्पल सदृश्य छवि वाली रोहिणी नामक रूपवती कन्या थी।

रोहिणी के युवा हो जाने पर महाराजा रुधिर ने उसके लिये स्वयंवर का आयोजन किया। जिसकी सूचना भरतक्षेत्र के सभी राजा-महाराजाओं को दे दी गई। तदनुसार स्वयंवर में भाग लेने को सभी नरपति अपनी-अपनी राजधानियों से चल पड़े। उधर वसुदेव भी कंचनपुर से अपनी प्रिया ललितश्री को बिना सूचित किये ही एक दिन वे पहले कि भाँति निकल पडे। मार्ग मे उन्हे कौसल जनपद आया, वहाँ उनकी एक देव से भेट हुई। देव ने उनको बताया कि अरिष्टपुर मे राजकुमारी रोहणी का स्वयवर हो रहा है अतः तुम्हे वहाँ वेणुवादक के रूप मे जाना चाहिये। वहाँ जाकर जब तुम स्वयवर मे वेणु वजाओगे तो तुम्हारी वेणु की ध्वनि से तुम्हे पहचान कर रोहिणी तुम्हारे गले में वर माला डाल देगी।

देव के कथनानुसार वसुदेव चलते-चलते अरिष्टपुर जा पहुँचे। वहा देखा कि सचमुच ही उस स्वयवर मे भाग लेने के लिये जरासन्ध आदि वडे बड़े महाराजा उपस्थित हैं तथा वे सब लोग यथा समय सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूपणों से सुसज्जित होकर स्वयवर मण्डप मे अपने अपने नियत आसनो पर आ वैठे। वसुदेवकुमार उन राजाओं के बीच मे न वैठ अन्य वादको के साथ वेणु वाद्य हाथ में लिये हुये

वैठ गये । इसलिये वहां पर उपस्थित समुद्रविजय आदि उनके भाइयों ने उन्हे पहचाना नहीं। देखते ही देखते सारा सभा मण्डप राजा-महाराजाओं से मण्डित हो गया। सब लोगों के उचित आसनों पर विराजमान हो जाने पर परम सुन्दरी साक्षात् सौभाग्य लक्ष्मी की प्रतिरूप रोहिणी ने स्वयवर सभा में पदार्पण किया। इस राजकुमारी के भुवन-मोहक रूप को देख सब राजा लोग अपने आपको भूलकर उसी की छवि निहारने में तन्मय हो गये। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि मानों स्वयवर में उपस्थित नृपतिगण अपनी दृष्टि रूपी नलिनियों के द्वारा रोहिणी का सम्मान कर रहे हैं। पहले तो वे लोग उसकी रूप-सौन्दर्य की चर्चा करते ही मुग्ध हो रहे थे। किन्तु अब प्रत्यक्ष उसको अपने सम्मुख उपस्थित पाकर उनके आनन्द का ठिकाना नहीं रहा था। सभा में उपस्थित एक से एक सुन्दर सभी नवयुवक और राजकुमारों हृदय इस समय मारे खुशी के बल्लियों उछल रहे थे, इस समय प्रत्येक के हृदय में यही भाव था कि इस सभा मे मेरे समान सुन्दर दूसरा कोई नहीं है। अतः रोहिणी अवश्य मेरा ही वरण करेगी—जय-माला मेरे ही गले मे डालेगी।

कन्या के आगमन की सूचना देने वाले शख, मुरज, पटह, पणव वेणु वीणा आदि वाद्यों के बन्द हो जाने पर रोहिणी के साथ चलने वाली हित मित व मधुर भाषिणी परम चतुरा धाय राजकुमारी को राज-मण्डल के सन्मुख ले जाकर उपस्थित प्रार्थियों में से एक-एक का परिचय देते हुए कहने लगी कि—

हे वत्से! तीनों लोकों को विजय करने से साकार यश के समान चन्द्र मण्डल के जैसे शुभ्र छत्र को धारण करने वाला सुशोभित यह महाराज जरासन्ध है। समस्त विद्याधर और भूमिचर राजा इनके आज्ञाकारी हैं। अखण्ड भूमण्डल के स्वामी महाराज जरासन्ध के रूप में मानो आकाश से चन्द्रमा ही रोहिणी रूपी रोहिणी का वरणन करने के लिये पृथ्वी पर उतर आया है। ये परम शान्त और सुन्दर है अतः तुम इनका वरण कर अपने आप को कृतार्थ कर लो।

किन्तु रोहिणी ने धाय के इस वचन की कुछ परवाह न कर जरा-सन्ध की ओर दृष्टिपात न किया तो वह आगे कहने लगी कि प्रिय पुत्री! देखो, यह महाराज जरासन्ध के एक से एक बढकर पराक्रमीय

अत्यन्त सुन्दर पुत्र तुम्हारी ओर ललचाई हुई दृष्टि से देख रहे है। तुम इन में से यथेच्छ किसी एक का वरण कर सकती हो। पर राजकन्या ने उन सब के प्रति भी सहज उपेक्षा भाव प्रकट कर दिया। अब धाय और आगे बढ़ी और कहने लगी। देखो यह मथुरा के महाराज उग्रसेन हैं। यदि तुम चाहो तो इनके गले में वर माला डाल सकती हो। वहाँ से आगे चलते हुए राजपुत्री को वतलाया गया कि वे शौरीपुर के महाराज समुद्र विजय हैं। जो महाराज जरासन्ध के सब से बडे मांडलिक राजा हैं। ये दस भाई हैं जो दशार्ह के नाम से पुकारे जाते हैं। इस पर रोहिणी ने उनके प्रति गुरुजनोचित आदरभाव व्यक्त कर उन्हे कृताञ्जलि नमस्कार कर उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर दी। अब तो परिचय देने वाली धात्री और आगे बढ़ी और उसने क्रम से पाडु, विदुर दमघोष, यशोघोष, दतविक्रम, शल्य, शत्रजय, चंद्राभ, मुख्य, काल मुख, पॉड्रू, मत्सय, सजय, सोमदत्त, भाईयों से मडित सोमदत्त का पुत्र, भूरिश्रवा, अपने पुत्रों से युक्त राजा अशुमान कपिल, पद्मरथ, सोमक, देनक, श्री देव, आदि राजाओं के गुण और वंश का वर्णन कर कन्या को वर माला डालने के लिये प्रेरित किया। तत्पश्चात् उसके अन्य अनेक राजाओं का परिचय दिया।

पर जब उसने किसी के भी गले में वर माला न डाली तो धाय कहने लगी कि—वत्से! मैंने सभी प्रमुख गणों का परिचय दे दिया। तुम ने सब के रूप गुणों को भली-भांति जान लिया और उनको प्रत्यक्ष भी देख लिया अतः उन में से जिस पर तुम्हारा हृदय अनुरक्त हो उसी का सहर्ष वरण करते हुए उसके गले में वर माला डाल दो। देखो! ये समस्त नृपतिगण तुम्हारे सौभाग्य व रूप-गुणों पर मोहित हो यहा उपस्थित हुए हैं। इनमें से जो भी तुम्हारे हृदय के अनुकूल हो उसी को स्वीकार कर कृतार्थ करो।

धाय के ऐसे मधुर एवं प्रिय वचन सुन कर रोहिणी ने उत्तर दिया कि—आप ने जो कुछ कहा सब ठीक है। किन्तु जितने राजा महाराजा मुझे दिखाये गये हैं उनमें किसी पर भी मेरा मन नहीं टिकता। जिस के दर्शनमात्र से हृदय का अनुराग न उमड़ पड़े उसके वरण के लिए किसी को प्रेरणा करना व्यर्थ है।

यहां पर उपस्थित इन राजाओं के प्रति न मेरा राग है और न

द्वेष ही। मैं किसी का भी वरण न कर अविवाहित ही रहूँ, ऐसी भी मेरी इच्छा नहीं फिर भी न जाने क्यों मेरी इनके प्रति उपेक्षा की भावना है। अब यदि इनके अतिरिक्त अन्य कोई वर पुण्य विधाता ने मेरे भाग्य मे लिखा हो और वह यहां उपस्थित हो तो आप मुझे उसके पास ले चलिए, अन्त में होगा तो वही जो कर्म को स्वीकार है।

इधर धाय और राजकुमारी रोहिणी की इस प्रकार वातचीत हो रही थीं कि इतने में उधर से अत्यन्त मनमोहक हृदयधारी वेणु की मधुर ध्वनि सुनाई दी। उस ध्वनि के कानों मे पडते ही राजकुमारी और धाय दोनों के कान खडे हो गये। धाय ने तत्काल राजकुमारी से कहा—बेटी, इधर आओ। यह देखो यह वेणु की मधुर ध्वनि कह रही है कि 'तुम्हारे मन को मोहित करने वाला राजहस यहा बैठा है।' यह सुनते ही रोहिणी ने तत्काल उधर बढकर देखा कि साक्षात् विद्याधर या देवता के समान हृदय-हारी रूप वाला एक नवयुवक बैठा मधुर ध्वनि से वेणु बजा रहा है। बस फिर क्या था देखते ही दोनों की आँखें चार हुई, और आँखों ने आपस में दोनों के हृदयों का विनिमय कर डाला। अपने नेत्रों मे लज्जा तथा कर कमलों में जयमाला लिए रोहिणी आगे बढी और सब के सामने वह वरमाला उनके गले में डाल उनके साथ सिंहासन पर जा बैठी।

वसुदेव के गले में जयमाल पडते देख उस स्वयवर में उपस्थित न्याय के अनुयायी सुजन कहने लगे कि अहा! यह स्वयवर बहुत ही सुन्दर ढग से सम्पन्न हो गया है वर और वधू का मणी काञ्चन संयोग व रोहणि को साक्षात् चन्द्र समान पति ऐसा जोड़ा ससार में ढूढने पर भी अन्यत्र नहीं मिलता। यद्यपि इस वर का कुल ज्ञात नहीं है तथापि इसके तेजोमय मुखमडल से स्पष्ट लक्षित होता है कि यह महाभाग अवश्य किसी विशिष्ट राजवश का विभूषण है। यहा पर उपस्थित इतने बडे-बडे राजा महाराजाओं के रहते हुए भी राजकुमारी ने इस अज्ञात कुलशील व्यक्ति का वरण कर अपनी अनुपम चातुरी का ही परिचय दिया है।

इसके विपरीत उस स्वयवर सभा में दूसरों के उत्कर्ष को देख जल-भुन जाने वाले जो दुर्जन राजा लोग बैठे थे। वे कोलाहल मचाने लगे। कोई कहता कि राजकुमारी ने इस बाजे बजाने वाले को वर कर अत्यन्त अनुचित कार्य किया है। इसके ऐसा करने से यहा पर

उपस्थित सभी सम्भ्रान्त पुरुषों राजा महाराजाओं का घोर अपमान हुआ है। अत पर उपस्थित नृपगणों को चाहिए कि वे अपने इस अपमान की उपेक्षा न करें, क्योंकि यदि इस समय अपराधी को पूरा-पूरा परिचय न दिया गया और उपेक्षा कर दी गई तो समस्त ससार मे इस ही प्रकार के अनुचित और अन्याय पूर्ण कार्य होने लगेंगे। इस स्वयवर सभा में बडे-बड़े कुलीन राजा महाराजाओं की उपस्थिति में इस अकुलीन को राज कन्या अपनाने का क्या अधिकार है ?

कौशला नगरी का दन्तवक्र राजा तो वसुदेव के गले मे जयमाला पडते ही भयंकर आग बबूला हो उठा। वह रुधिर राजा की भर्त्सना करते हुए कहने लगा कि यदि तुम्हे अपनी पुत्री एक बाजे बजाने वाले के हाथों ही सौपनी थी तो तुम्हे इन सैकडों बड़े-बड़े राजा-महाराजाओ को निमन्त्रित कर यहाँ पर पहुँचने का कष्ट ही क्यों दिया। बालिका अपने भोलेपन या अज्ञान के कारण बाहरी रूप रग को देख कर किसी बाजे वाले पर आकर्षित हो सकती है किन्तु पिता को तो उचित-अनुचित कर्तव्य समझाने का सदा अधिकार है। जो पिता इसकी उपेक्षा करता है वह अपनी सन्तान का मित्र नहीं पूरा-पूरा शत्रु है। इस लिए आपको अपनी सन्तान के प्रति इस उत्तरदायित्व से बच कर भाग निकलने का प्रयत्न कदापि नहीं करना चाहिए। अब भी समय है कि आप अपनी बेटी को समझावे कि वह हम लोगो में से किसी का वरण कर स्वयवर सभा की मर्यादा की रक्षा कर ले। अन्यथा इसका दुष्परिणाम सब को भुगतना पड़ेगा।

इस पर रुधिर राजा ने उत्तर दिया कि--

हे राजन् ! तुम्हारे इस प्रकार के वचनों से मैं अपनी कन्या के स्वयवर में बाधक नहीं हो सकता। स्वयवर में तो कन्या स्वेच्छानुसार जिस का वरण कर ले वही उसका वर होता है। स्वयवर का यह सिद्धान्त अनादि काल से प्रचलित है।

यह सुन एक दूसरा राजा बोल उठा कि हे महाराज यद्यपि आपका कथन न्यायपूर्ण है तथापि वर के कुल शील का ज्ञान हुए बिनाह म कभी स्वयंवर को मान्यता नहीं देवेगे। यदि वह अपना कुल न बतलाये तो अभी इससे राजकन्या को छीन लेना चाहिये।

राजाओ को इस प्रकार आपस में कोलाहल तथा लड़ते झगडते

देख वसुदेव अब और अधिक चुप न रह सके और वे सबको ललकारते हुए कहने लगे कि—

हे ! मदोन्मत्त क्षत्रियों तुम लोग जरा मेरी बात ध्यान देकर सुनो ! स्वयंवर में कन्या स्वेच्छानुसार जिसका चाहे वरण कर सकती है। वहा कुलीन अकुलीन छोटे बडो का कोई प्रश्न ही उपस्थित नहीं हो सकता। इस समय आप लोग कन्या के पिता या भाई बन्धुओं को इस प्रकार जो डरा और धमका रहे हैं यह सर्वथा अनुचित है, कोई महा कुलीन होने पर भी गुणहीन हो सकता है और कोई साधारण कुलोत्पन्न होने पर भी सर्वगुण सम्पन्न सर्वथा अज्ञात कुल-शील होने पर भी यदि इस राजकुमारी ने मेरा अपनी इच्छा के अनुसार वरण किया है तो आप लोगो को इसमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए। फिर भी यदि आप लोगों को अपनी वीरता का घमंड हो और आप में से जो अपने बल की परीक्षा ही करना चाहते हों तो वे मेरे सामने आजाये। मैं उनके दर्प को अभी चूरचूर कर डालता हूँ।

वसुदेव के इस प्रकार निर्भीक और धृष्टता पूर्ण वचनों को सुनते ही जो जरासिन्ध अब तक अपनी रोषाग्नि को अपने ही हृदय में समाकर बैठा था सहसा भभक उठा। वह क्रोध से कांपता हुआ कहने लगा कि—

सर्व प्रथम तो इस अधम रुधिर राज ने स्वयंवर के बहाने हमें यहां बुला कर हम सब का घोर अपमान किया है। और साथ ही इस दुष्ट वेणु वादक ने ऐसे दुर्वचन रूपी आहुति डालकर हमारी क्रोधाग्नि को और अधिक बढ़ा दिया है इसलिए अब इन दुष्टों को कदापि क्षमा नहीं करना चाहिए। वीरो अब इन्हें तत्काल पकड कर बान्ध लो और इनका काम तमाम कर डालो।

जरासिन्ध के ऐसे क्रोध भरे वचन को सुनते ही [illegible] राजा वसुदेव और रुधिर राज आदि पर एकदम टूट पड़ने [illegible] करने लगे। यह देख युवराज हिरण्य नाभ ने राजकुमारी [illegible] रथ मे बैठाकर सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया [illegible] अपने सेना के वीरों का उत्साहित करते हुए [illegible] आपकी परीक्षा का समय आ गया है। [illegible] लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देनी [illegible]

रुधिर राजा अपने सामन्तों व [illegible] कर ही रहे थे कि वसुदेव ने उन्हें [illegible]

आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। मेरे समर क्षेत्र में पदार्पण करते ही इन दुष्टों के दल प्रचण्ड तूफान के सामने मेघ घटाओं की भांति देखते ही देखते छिन्न भिन्न हो जायेंगे। मुझे इन सब लोगों ने अकुलीन घोषित किया हुआ है, पर इन्हें अभी पता लग जावेगा कि इस अकुलीन के बाण कैसे घातक और शस्त्राशस्त्र कैसे पानी वाले हैं।

इसी समय वसुदेव कुमार का साला विद्याधर दधिमुख भी दिव्य शस्त्राशस्त्रों से सुशाभित एक रथ मे सवार हो वहां आ पहुँचा और बड़ी नम्रता से कुमार वसुदेव को कहने लगा कि

हे महाभाग! आप इस रथ में सवार होकर अपने समस्त शत्रुओं के दांत खट्टे कर डालिये। सारथी बनकर आपके रथ सचालन का कार्य मै स्वय करूगा। तब वसुदेव वेगवती की माता अगारवती के द्वारा प्राप्त धनुष-बाण, तूणीर आदि शस्त्राशस्त्रों से सुसज्जित होकर रथ म जा बैठे। अब तो महाराज रूधिर के दो हजार हाथी छ हजार गजारोही, चौदह हजार घुड़सवार और एक लाख पदाति सैनिकों के साथ वसुदेव कुमार शत्रु सेनाओं से भिड़ जाने के लिए आगे बढ़े। उधर शत्रुआ की सेना का कोई अन्त न था। कुमार की इस चतुरङ्गिणी सैना के समक्ष शत्रुओं ने अपनी अपार सैनाओं को भली भाँत व्यूह बद्ध कर लिया था। देखते ही देखते दोनों सैनायें एक दूसरे से भिड़ गई। रथ-रथों से, हाथी-हाथियों से, घुड़सवार घुड़सवारों से और पैदल-पैदलों से टक्कर लेने लगे।

दोनों पक्षों की ओर से हो रही अजस्र बाण वर्षा के कारण समग्र नभोमण्डल आच्छादित हो गया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि प्रचण्ड मार्तण्ड भी कुछ घन्टों के लिए छुट्टी मना गये हों। बाण वर्षा के कारण उत्पन्न हुए घनान्धकार मे एक दूसरे से टकराते हुए शस्त्राशस्त्र बिजलियों के समान कड़ते हुए चमक रहे थे। खड्ग-चक्र गदा-परिध आदि अनेक शस्त्रा से शत्रुओं पर आक्रमण हो रहा था। चारों ओर का वातावरण कट कट कर गिर रहे मदोन्मत्त हाथियों की चिंघाडो, और घायलों की कराहों से व्याप्त हो गया। कहीं वीर पुरुष अपन प्रतिपक्षियो को ललकार रहे थे, तो कहीं उत्साह भरे घोड़े हिनहिना रहे थे, कहीं एक दूसरे से टकराती हुई कृपाणों की कड़कड़ाहट, तो कहीं तीरों की तडतडाहट से अखण्ड दिग्-मण्डल गूंज उठा था। प्रतिभटों के बाणों तथा अन्य तोमर-गदाखड्ग आदि शस्त्रों से छिन्न-भिन्न हुए

सैनिकों के अग प्रत्यगों से प्रवाहित रक्त धारा में कहीं हाथ, कहीं पाव, कहीं धड, कहीं सिर, कच्छ मच्छ आदि जलचर जीवों के समान तैरते हुए दिखाई दे रहे थे।

कुमार वसुदेव को शस्त्र सचालन कुशलता को देखकर वडे वडे साहसियो के छक्के छूट गये। वे विद्युद् वेग से जिस ओर भी निकल जाते उसी ओर के सव शत्रुओं का बात की बात में सफाया कर डालते। इधर तो वसुदेव इस प्रकार शत्रु सेना सहार करने पर तुले हुए थे। उधर हिरण्यनाभ अपने शत्रु पौण्ड् के दात खट्टे कर रहा था। उसने देखते ही देखते अपने तीक्ष्ण-बाणों से पौण्ड्र के ध्वजा-छत्र सारथी रथ के घोडों को नीचे गिरा दिया। यह देखते ही पौण्ड्र ने भी क्रोध में भरकर हिरण्य-नाभ को रथहीन कर डाला। और ज्योंही दुष्ट-पौण्ड्र हिरण्यनाभ पर टूटना चाहता था कि सहसा वसुदेव वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने उसे अपने रथ में बैठाकर पौण्ड्र की सव आशाओं पर पानी फेर दिया।

पौण्ड्र को वसुदेव के बाणों से घायल हो गिरते देख शत्रु सेना के सव महारथी एक साथ वसुदेव पर टूट पडे। इधर अकेले वसुदेव इधर चारों ओर से उमड घुमड कर आगे बढ़ते हुए महापराक्रमी वीरों का लोमहर्षण युद्ध होने लगा। वसुदेव को इस प्रकार चारों ओर से घिरे देख कुछ न्यायशील राजा कहने लगे कि अरे! यह घोर अन्याय है। इस अकेले को घेर कर लडते हुए इन सब को लज्जा भी नहीं आती! जरा इसका साहस और पराक्रम तो देखो अकेला ही हम सबसे लोहा ले रहा है। यदि किसी ने मा का दूध पिया है और अपने आपको वीर कहलाने का अभिमान रखता है तो अकेला अकेला इसके सग क्यों नहीं जाता। हजारों मिल के एक पर टूट पडे यह कहाँ का न्याय है।

यह सुनकर जरासन्ध ने अपने वीर साथियो, सामन्तों, और सेनापतियों की परीक्षा लेने के विचार से कहा कि—

हे मेरे महा पराक्रमी साथियो! इस वीर योद्धा से आप लोगों में से एक एक करके युद्ध करो, जो इसको पराजित कर देगा, उस ही को राजकुमारी रोहिनी वरण करेगी।'

जरासन्ध के ऐसे शब्द सुनते ही सर्व प्रथम महाराज शत्रुजय वसुदेव के साथ युद्ध करने के लिये प्रस्तुत हुए। दोनों का आमना-सामना होते ही वसुदेव ने अपने विरोधी के बाणों को बीच ही में

काट डाला और उसे रथ व कवचहीन कर मूर्छित कर दिया। शत्रुञ्जय के पराजित हो जाने के पश्चात् मदोन्मत्त दन्तवक्र उनसे लोहा लेने के लिये आया, पर वह भी थोडी ही देर में अपना सा मुँह लेकर रह गया। अब तो युद्ध में शत्रुओं को काल के समान दिखाई देने वाला कालमुख कुमार के सामने आ डटा, पर वह भी थोड़ी ही देर मे रण-भूमि से पीठ दिखाकर भागता दिखाई पड़ा। राजा शल्य बाण विद्या मे बड़ा निपुण था, उसे अपने शस्त्र सचालन कौशल का बडा अभि-मान था। वह ललकारता हुआ वसुदेव के सामने आ डटा, किन्तु कुमार ने देखते ही देखते उसके छक्के छुड़ा दिये।

महाराज जरासन्ध ने इस प्रकार एक के बाद दूसरे बडे बड़े पराक्रमी राजा महाराजाओ को वसुदेव से पराजित होते देखा तो अन्त मे वसुदेव के बड़े भाई महाराजा समुद्र विजय से कहने लगे कि शस्त्रविद्या मे अपने उपमान आप ही हैं। हम लोगों ने उसे साधारण बाजा बजाने वाला समझ कर बड़ी भूल की। पहले तो ये सब राजा लोग बडी लम्बी चौडी डींग हाक रहे थे, पर इस वीर का सामना होते ही सबके छक्के छूट गये। अब तो आपके सिवाय ऐसा कोई महा पराक्रमी दिखाई नहीं देता। जो इसके दर्प का दलन कर सके। इसलिए उठिये और आप इसे दो दो हाथ दिखाकर हम सब लोगों की लाज रखिये। यह तो निश्चित ही है कि इसे पराजित कर देने पर राजकुमारी रोहिणी आप ही का वरण करेगी।

तब समुद्रविजय ने बड़े शान्त, वीर, धीर, और गम्भीर स्वर मे कहा—

हे राजन्! न्याय की दृष्टि से रोहिणी तो उसी की हो चुकी जिसका उसने स्वेच्छापूर्वक वरण किया। मुझे पर स्त्री की कामना नहीं है। फिर भी यहां उपस्थित सब क्षत्रियों की नाक रखने के लिए, कहीं यह ऐसा न समझ बैठ कि उसके जैसा कोई वीर उत्पन्न नहीं हुआ। मैं इस उद्धत युवक से युद्धार्थ सन्नद्ध हूं।

अब तो महाराज समुद्र विजय शस्त्रास्त्र और कवच से सुसज्जित हो एक बडे दृढ़ रथ पर जा बैठे। उनका सकेत पाते ही सारथी ने रथ आगे बढ़ा दिया। देखते ही देखते दोनो भाई आमने सामने आ डटे।

ज्योंही वसुदेव कुमार ने अपने बड़े भाई समुद्र विजय को अपने

समक्ष युद्धार्थ प्रस्तुत देखा तो वे अपने सारथी विद्याधर दधिमुख से कहने लगे कि देखो यह मेरे बड़े भाई महाराज समुद्र विजय हैं। इनके साथ युद्ध करते समय रथ इस प्रकार सावधानी से चलाना चाहिए कि इन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो। अब ही इस अवसर पर ही तुम्हारी रथ-सचालन निपुणता की परीक्षा होगी।

कुमार के ऐसे वचन सुन विद्याधर दधिमुख ने वसुदेव का रथ धीरे-धीरे महाराज समुद्रविजय के सामने बढाना शुरू किया।

वसुदेव को इस प्रकार वीर वेष में अपने सामने युद्धार्थ डटा हुआ देख समुद्रविजय अपने सारथी से कहने लगे कि—भाई आज इस सुभट को अपने समक्ष देख न जाने क्यों शत्रुत्व की भावना की अपेक्षा आत्मीयता की स्नेहमयी भावना मेरे हृदय में बरवस जागृत हो रही है। इच्छा होती है कि इस पर शस्त्र न चला कर इसे अपने हृदय से लगा लू, पर वीर शत्रुओं का हृदय भी बडा ही कठोर होता है, न चाहते हुए भी अपने को ललकाराने वाले प्रतिपक्षी पर शस्त्र चलाने के लिए उद्यत होना ही पडता है। इधर मेरी दाहिनी आँख और भुजा भी फडक रही है। इससे तो सूचित होता है कि अपने किसी बिछुडे हुए प्रिय बन्धु का समागम होगा। किन्तु यहाँ तो सामने यही विरोधी युद्ध के लिए डटा हुआ है। ऐसी परिस्थिति में भला किसी बन्धु के मिलन की सम्भावना कैसे हो सकती है। कुछ समझ मे नहीं आता हृदय में यह दुविधा कैसी है।

इस पर सारथी ने समझाया—'महाराज इस समय आप अपने प्रतिपक्षी के सम्मुख उपस्थित हैं। युद्ध मे विजय के पश्चात् निश्चित ही आपका किसी प्रियजन से समागम होगा। इस दुर्दान्त वीर को परास्त कर देने के पश्चात् आपकी सर्वत्र प्रसशा और ख्याति होगी, यही आपके दक्षिणागो के स्फुरण का तात्कालिक सम्भावित फल हो सकता है।

समुद्र विजय अपने सारथी के इन प्रिय वचनों का अनुमोदन कर धनुप हाथ में ले उस पर बाण चढाते हुए वसुदेव कुमार से कहने लगे कि—

प्रिय सुभट! तुमने सग्राम में जिस प्रकार अन्यान्य राजाओं के समक्ष अपनी वीरता दिखलाई है। उसी प्रकार अब मेरे सन्मुख भी

अपने धनुर्विद्या की कुशलता दिखलाकर मुझे सन्तुष्ट करो हे साहसी भूधर! तुम्हारे इस गर्वोन्नत शिखर को आज तक किसी ने आच्छादित नहीं किया है। अब मैं उसे अपने बाण रूपी मेघों से आच्छादित कर दिखाता हूँ। तुम नहीं जानते मेरा नाम समुद्रविजय है।

इसके उत्तर में वसुदेव ने अपने स्वर को बदल कर उत्तर दिया कि हे राजेन्द्र विशेष कुछ कहने कि क्या आवश्यकता है। वीरों की वीरता युद्ध भूमि मे छिपाये नहीं छिपती। यदि आप समुद्रविजय हो तो मैं भी युद्ध विजयी हूँ।

वसुदेव के ऐसे वचन सुनते ही समुद्रविजय का स्नेह भाव सहसा हवा हो गया, अब तो उन्होने क्रोध में भरकर बाण को धनुष में चढा कानों तक खींच जोर से प्रत्यञ्चा का शब्द करते हुए कहा कि सम्भल यह बाण आ रहा है। इस प्रकार समुद्रविजय के धनुष से ज्योंही बाण छूटा कि वसुदेव ने उस बाण को अपने बाण से बीच ही मे काट गिराया। इस प्रकार समुद्रविजय ने वसुदेव पर बाणों की झड़ी लगा दी। पर कुमार ने उनमें से एक भी बाण को उनके पास नहीं पहुचने दिया सबको बीच ही में काट गिराया। अब समुद्रविजय ने देखा कि यहां साधारण शस्त्रास्त्रो से काम चलने का नहीं। इसलिए उन्होंने वरुणास्त्र वायवास्त्र आदि अस्त्र छोडने आरम्भ कर दिये। वसुदेव भी बडी तत्परता के साथ उनके विरोधी अस्त्र छोडकर उनका निराकरण कर देते।

ज्योंही इधर से समुद्रविजय द्वारा छोड़ा गया आग्नेयास्त्र प्रलयाग्नि की ज्वलाएँ उगालने लगता कि उधर वसुदेव का वरुणास्त्र प्रलयशरों की वर्षा कर जल थल को एक कर देता। दोनों भाईयों के इस घमासान युद्ध को देखकर देव-दानव-गन्धर्व आदि सभी आश्चर्य चकित हो दांतों तले उगली दबाने लगे। चराचर मात्र के कभी एक की तो कभी दूसरे की प्रशसा करते न थकते। जब समुद्रविजय ने वसुदेव को किसी प्रकार भी पराजित होते न देखा तो क्रोध में भरकर उन्होंने एक क्षुरप्रणामक अत्यन्त तीव्र बाण फैंका। वसुदेव ने इस बाण को बीच ही में काट कर इसके तीन टुकड़े कर डाले और उसके तीन टुकड़ों से समुद्र विजय

के रथ सारथी और घोड़ों को ठिकाने लगा दिया। वसुदेव के इस अद्भुत रण कौशल को देख सब लोग शत् शत् मुख से उनकी प्रशसा करने लगे। किन्तु अपनी इस असफलता पर समुद्रविजय का मुख मारे क्रोध के तमतमा उठा। आव देखा ना ताव उन्होंने रौद्रास्त्र नामक हजार फलकों वाला बाण छोड दिया। वसुदेव ने भी इधर से उन समस्त शस्त्रों की शक्ति को निष्प्रभ कर देने वाला ब्रह्मशिर शस्त्र छोड़ दिया। उस शस्त्र ने छूटते ही समुद्रविजय के रौद्रास्त्र के टुकडे टुकड़े कर डाले।

वसुदेव अब तक समुद्रविजय के समक्ष ऐसा हस्त लाघव प्रदर्शित कर रहे थे कि जिसकी समता में ससार के बड़े बड़े युद्ध-विशारदों की कला भी नहीं टिक सकती थी। वे अब तक आक्रमणात्मक युद्ध न कर सुरक्षात्मक युद्ध ही करते रहे। और इस प्रकार अपना शस्त्र-संचालन कौशल भी साथ ही साथ दिखाते रहे। अन्त मे उन्होंने एक ऐसा बाण मारा जो सीधा समुद्रगुप्त के पैरों में जा गिरा। इस बाण पर लिखा हुआ था कि "आपका भाई वसुदेव जो विना पूछे घर से निकल गया आज सौ वर्ष के पश्चात् आपके चरणों में प्रणाम करता है।"

यह पढ़ते ही समुद्रविजय ने अपने शस्त्रास्त्र छोड दिये और वे तत्काल रथ से नीचे उतर कर अपने भाई की ओर चल पडे। उधर वसुदेव कुमार भी पैदल ही आगे बढ आये। और समुद्रविजय के चरणों में गिर पडे। समुद्रविजय ने उन्हे उठा गले से लगा कर उनके मस्तक को प्रेमाश्रुओं से तर कर दिया।

वसुदेव और समुद्रविजय इन दोनों भाइयों को इस प्रकार परस्पर प्रेम पास मे आबद्ध हो एक दूसरे को आलिंगन करते देखा तो उनके अक्षोभ्य आदि दूसरे भाई भी तत्काल वहाँ आ पहुचे। इस प्रकार सब भाई एक दूसरे से मिल कर स्नेहाश्रुओं की वर्षा करने लगे।

जरासन्ध को यह ज्ञात हुआ कि वसुदेव समुद्रविजय का छोटा भाई है उसका क्रोध भी शान्त हो गया। इस प्रकार कुछ समय पूर्व जहां मारकाट और सघर्ष की बाते हो रही थीं, वहीं अब चारों ओर शान्ति का अखण्ड साम्राज्य स्थापित हो गया। हर्ष और आनन्द के बाजे बजने लगे। रोहिणी तो वसुदेव की इस वीरता और विजय का समाचार सुन मारे खुशी के फूली नहीं समाती थी। जहाँ देखो वहीं आनन्द बधाइया और खुशी के गीत गाये जा रहे थे। ऐसे ही हर्ष

और आमोद के वातावरण मे रूधिरराज ने जरासन्ध आदि सब सब राजा महाराजाओं की उपस्थिति मे शुभ लग्न और मुहूर्त देख रोहिणी का वसुदेव के साथ बडी धूमधाम से विवाह कर दिया। उपस्थित नृपतिवृन्द वर-वधु को आशीर्वाद देकर तथा नाना प्रकार के उपहारों से सम्मानित कर अपनी अपनी राजधानियो को विदा होने की तैयारियां करने लगे। विदाई से पूर्ण रोहिणी के पिता महाराज रूधिरराज ने विवाहोत्सव के अवसर पर उपस्थित सब राजा महाराजाओं व अन्य अथितियो को खूब आदर सत्कार से प्रसन्न किया। सब लोगों के चले जाने के पश्चात् भी उन्हो ने आग्रह करके वसुदेव तथा उनके समुद्र विजय आदि भाइयों व कस आदि अन्य यादवों को अपने यहाँ एक वर्ष तक ठहराये रक्खा। वर्ष के ३६५ ही दिन नित्य नये आनन्द मंगल और नृत्यगान आदि उत्सव होते रहे।

एक बार वसुदेव ने रोहिणी से पूछा कि प्रिये स्वंयवर सभा में देश देशान्तरो के एक से एक बढ़ कर रूपवान, गुणवान, शूरवीर राजा महाराजा उपस्थित थे किन्तु तुमने उनमे से किसी को भी पसन्द न कर मेरे ही गले मे वर माला क्यों डाली। मै तो उस समय एक साधारण वेणु-वादक के रूप में ही वहाँ उपस्थित था।

तब रोहिणी ने उत्तर दिया कि—हे नाथ मैं प्रज्ञप्ति विद्या की आराधना किया करती थी उसी से मुझे ज्ञात हो गया कि मेरा पति दसवां दशार्ह होगा और वह स्वबर में वेणु बजावेगा। यही उसकी पहचान होवेगी इसी लिए मैंने आपको पहचान कर आपके गले मे वर माला डाल दी।

एक समय वसुदेव अपने समुद्रविजय आदि बन्धुओं के साथ रूधिर राज के राजा प्रसाद की छत पर बैठे सुख-पूर्वक गोष्ठि कर रहे थे कि एक दिव्य विद्याधरी ने आकाश से उतर कर सब लोगो को यथोचित् आह्लादित किया। तदुन्तर वह वसुदेव को सम्बोधित कर इस प्रकार कहने लगी—

हे देव, आपकी पत्नी वेगवती और मेरी पुत्री बालचन्द्रा आपके चरणों मे प्रणाम कर प्रार्थना करती है कि आप उनकों दर्शन देकर कृतार्थ करें। क्यों कि इस समय मेरी पुत्री बालचन्द्रा के प्राण आपके

ही के हाथ मे है। अतः आप मेरे साथ चल उससे विवाह कर उसके हृदय को आनन्दित कीजिए।

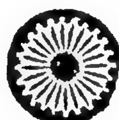
विद्याधरी के यह वचन सुन वसुदेव अपने बड़े भाई समुद्रविजय की ओर देखने लगे कि इस विषय में उनकी क्या सम्मति है। अपने छोटे भाई के हृदय को बात जान समुद्रविजय ने भी "शीघ्र लौट आना" कहकर उन्हे जाने की अनुमति दे दी बड़े भाई की सहमति प्राप्त होते ही वह विद्याधरी वसुदेव को अपने साथ लेकर आकाश में उठती हुई गगन वल्लभपुर की ओर चल पड़ी। वसुदव के विद्याधरी के साथ चले जाने पर समुद्र विजय तथा उनके अन्य भाई बन्धु भी शोरीपुर आकर अपना राज्य काज देखने लगे।

उधर वसुदेव उस विद्याधरी के साथ गगन वल्लभपुर पहुँच सर्व प्रथम अपनी प्राणप्रिया वेगवती से मिले फिर उसकी सहमति से उन्होंने बालचन्द्रा के साथ भीविवाह कर लिया।

कुछ दिनों तक वे उन दोनों पत्नियों के साथ स्वच्छन्द विहार करते हुए वहीं रहे। तत्पश्चात् वसुदेव के हृदय में वापिस घर लौटने की जब इच्छा जागृत हुई तो एणी पुत्र की पूर्व भव की मा देवी ने तत्काल वहाँ पहुच कुमार के लिए रत्नजटित विमान प्रस्तुत कर दिया। यह देख बालचन्द्रा के पिता राजा कञ्चनदंष्ट्र ने और वेगवती के बड़े भाई मानसवेग ने भी बड़े उत्साहपूर्वक दोनों पत्नियों को वसुदेव के साथ विदा कर दिया। यहाँ से चल कर वसुदेव अपनी दोनों पत्नियों सहित अरिञ्जय आ पहुचे। वहा महाराज विद्युद्वेग से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी पुत्री मदनवेगा और उसके पुत्र अनावृष्टि को ले उसी विमान से गधसमृद्ध नगर की ओर चल दिये। गध समृद्ध नगर के राजा गाधार की पुत्री प्रभावती से मिले और उसे परिवार सहित विमान मे बिठा असित पर्वत नगर आ पहुँचे। वहाँ महाराज सिंहदष्ट्र ने वसुदेव व उनकी सब पत्नियों आदि का बड़े उत्साह से स्वागत किया। तत्पश्चात उन्होंने अपनी पुत्री नीलयशा को भी वसुदेव के साथ कर दिया। यहाँ पर से वे लोग श्रावस्ती आ पहुचे जहाँ से प्रियगु सुन्दरी और बन्धुवती को साथ ले महापुर आये। वहाँ से सोमश्री को इलावर्धन नगर से रत्नावती तथा चारुहासिनी पौंड्र भद्रसेना, पद्मावति, कपिला, मित्रश्री, धनश्री आदि पत्नियों को लेते

हुए द्वितीय सोमश्री, गन्धर्व सेना, विजय सेना, पद्मश्री अनवन्त सुन्दरी शूरसेना आदि सभी पत्नियों को साथ लेकर शौरीपुर नगर की ओर चल पड़े।

नगर के पास पहुँच वह एक रमणीय उद्यान में जा उतरा। उसकी संरक्षिका वनवती देवी ज्वलन-प्रभ-नाग-वल्लभा ने महाराज समुद्र विजय को जाकर वसुदेव के आगमन का समाचार सुनाया। उनके आगमन का समाचार सुनते ही समुद्र विजय अपने परिजन व पूर्वजों के साथ वसुदेव को लेने के लिए आ पहुचे। उधर नगर वासियों ने उनके स्वागत में नगर के राजपथों चत्वरों व प्रमुख द्वार आदि को नववधू की भांति सजा दिया।



महाभारत नायक बलभद्र और श्री कृष्ण

"श्री कृष्ण और बलराम का जन्म"

इस प्रकार वसुदेव सौ से भी अधिक वर्ष बाहर बिताकर अब वापिस अपने घर शौरीपुर में आ पहुंचे। वे अपने जीवन की देश-देशान्तरों में भ्रमण आदि की मनोरंजन कथायें सुना सुना कर अपने भाई बन्धुओं का मनोरंजन करने लगे।

--बलराम जन्म--

कुछ समय बीतने के पश्चात एक दिन रोहिणी अपनी हिम धवल शैय्या पर सानन्द शयन कर रही थी कि रात्री बीतते बीतते रजनी के अन्तिम पहर के आरम्भ की पवित्र वेला में उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई चन्द्रमा के समान शुभ्र गजराज, पर्वत के समान ऊंची उठती हुई तरंगों से सुशोभित गम्भीर गर्जन करता हुआ सागर, पूर्ण चन्द्र, और कुन्द के पुष्प के समान शुभ्र सिंह, उसके मुख में क्रम से प्रविष्ट हो रहे हैं। आंख खुलने पर प्रात काल होते ही अपने इन चारों स्वप्नों का वृत्त अपने प्राणनाथ वसुदेव से निवेदन कर पूछने लगी कि हे नाथ! इन स्वप्नों का फल कृपा कर मुझे बतलाइये।

तब वसुदेव ने इन चारों स्वप्नों का फल बतलाते हुए कहा कि—

प्रिये! तुम्हारे ये चारों स्वप्न अत्यन्त शुभ और हितप्रद हैं। शीघ्र ही तुम्हारे एक ऐसा पुत्र उत्पन्न होने वाला है जो जगराज के समान उन्नत, समुद्र के समान गम्भीर और अलघ्य, चन्द्रमा के समान निर्मल यश व अनेक कलाओं का धारक, तथा सिंह के समान अद्वितीय बलवान और समस्त प्रजा प्रिय होगा।

अपने प्राणनाथ के मुख से इन स्वप्नों का ऐसा शुभ और सुन्दर फल सुन कर रोहिणी का अंग प्रत्यंग आनन्दोल्लास से विकसित हो उठा। उसका मुख चन्द्र, मानो सम्पूर्ण-कलाओं से सुशोभित हो दिव्य

कान्ति से जगमगाने लगा। इसी समय सामानिक जाति का देव महा-शुक्र स्वर्ग से च्यव कर आया, और वह पृथ्वी की मनोहर मणी के समान रोहिणी उदर मे अवस्थित हो गया। क्रमशः सवा नौ मास समाप्त हो जाने पर व समस्त दौहद (गर्भाभिलाषाए) पूर्ण हो जाने पर सुन्दरी रोहिणी ने एक अत्यन्त रूपवान् पुत्र को जन्म दिया। इस बालक के जात कर्म नाम करण आदि सभी संस्कार यथाविधि बड़ी धूम धाम से सम्पन्न हुए। इस जन्मोत्सव के समारोह में जरासन्ध आदि अनेक राजा महाराजाओ ने सोत्साह भाग लिया। महाराज समुद्रविजय और वसुदेव ने भी इस शुभावसर पर उपस्थित अपने सम्मानित अतिथियों की आवभगत मे किसी प्रकार की कोई कसर उठा न रखी। यह बालक परम अभिराम-सुन्दर था इसी लिए इसका नाम राम रक्खा गया। आगे चलकर अत्यन्त बलवान और पराक्रमी सिद्ध होने पर राम के साथ "बल" विशेषण और लग गया और वह बलराम, बलदेव, [1] बलभद्र, बल आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध हुआ। अपने हल नामक एक विशेष शस्त्र के धारण करने से उसे लोग हली या हलधर भी कहने लगे। अब तो बलराम अपने माता पिता और अन्य बन्धुओं की गोद में लालित पालित हो कर नवोदित इन्दुकला की भाँति बढ़ने लगा।

जैसा कि प्रारम्भ मे बतलाया गया है कि कस का बचपन वसुदेव के साथ बीता था। वे उसके सखा होने के साथ साथ शस्त्रादि विद्याओं के शिक्षक और गुरु भी थे। उन्हीं के सहयोग से सिंहरथ जैसे महा पराक्रमी योद्धाओं को परास्त करने का यश और श्रेय उसे प्राप्त हुआ था। तब तक वह एक अनाथ की भांति वसुदेव औप समुद्रविजय के आश्रय मे रहता था; किन्तु अब वह जरासन्ध की कृपा से उसकी पुत्री जीवयशा का भर्ता बन कर मथुरा का अधिपति हो चुका था, और उसने अपने पिता उग्रसेन से बदला लेने के लिए उसे बन्दीगृह में डाल दिया था। जरासन्ध और कस ने मिलकर इस समय समस्त पृथ्वी पर अपना पूर्ण आतंक जमा रक्खा था। किन्तु वसुदेव के प्रति

---

१ बलदेव जैन शास्त्र की दृष्टि से एक पद विशेष भी है। अर्थात् वासुदेव का बड़ा भाई बलदेव कहलाता है। ये स्वर्ग या मोक्षगामी होते हैं। बलराम नौवे बलदेव थे। इन बलदेव एव वासुदेव का प्रेम ससार में अद्वितीय होता है।

कंस के हृदय में अभी तक पुरानी श्रद्धा भावना विगलित नहीं हुई थी, विगलित होना तो दूर रहा वह उत्तरोत्तर दृढ़ और बलवती होती जा रही थी। उसके मन में ऐसी बात समाई रहती थी कि कोई ऐसा कार्य करूं जिससे वसुदेव के बड़े भारी उपकारों के ऋण से उऋण हो सकूं। और साथ ही उस प्रेम बन्धन को और दृढ़ और पवित्र बना डालूं किन्तु रात दिन सोचने पर भी उसे कोई उपयुक्त उपाय दिखाई नहीं देता था कि वह वसुदेव के उपकार के बदले में क्या प्रत्युपकार करे। अन्त में एक दिन बैठे बैठे उसे एक उपाय सूझ ही गया।

एक बार मथुरा अधिपति महाराज कंस देश भ्रमण करता हुआ शौरीपुर आ पहुँचा। उन्हें अपने यहाँ आया देख समुद्रविजय आदि भाइयों ने उसका यथोचित स्वागत सत्कार किया। कुछ दिन उनका आतिथ्य-ग्रहण करने के पश्चात् वापिस मथुरा जाने की अभिलाषा व्यक्त करते हुए उसने महाराज समुद्रविजय से कहा कि—देव ! अब मैं अपनी राजधानी को लौटना चाहता हूँ। मेरे हृदय की प्रबल अभिलाषा है कि मेरे प्रिय वयस्क और गुरु वसुदेव कुमार भी मेरे साथ मथुरा चलें और कुछ दिन मेरे यहाँ रह कर मुझे कृतार्थ करें।

इस पर समुद्रविजय ने सहर्ष अनुमति दे दी। अब तो कंस वसुदेव को अपने साथ लेकर मथुरा आ पहुँचा। वहां पर कुछ दिन दिल खोल कर स्वागत सत्कार आतिथ्य सम्मान करने के पश्चात् वह वसुदेव से कहने लगा कि—हे महाभाग ! मेरा हृदय वर्षों से आप के उपकारों से उऋण होने की प्रबल अभिलाषा कर किये हुए है। अभी तक उस इच्छा की पूर्ति का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था; किन्तु अब एक उपाय अचानक सूझ गया है। मेरे काका देवक की पुत्री देवकी अत्यन्त रूपवती, गुणवती, सुशील और सब कलाओं में निपुण है। मेरी इच्छा है कि आप उसका पाणिग्रहण कर अपने पारस्परिक प्रेम की नींव को और भी अधिक गहरा व दृढ़ बनाने की अनुमति प्रदान करें।

कंस के ऐसे मधुर और प्रिय वचन सुन वसुदेव ने उत्तर दिया कि आप जैसा उचित समझें कीजिए; पर इस सम्बन्ध में पूर्व मेरे अग्रज समुद्रविजय आदि गुरुजनों की अनुमति तो ले ही लेनी चाहिए। क्यों कि छोटों को कोई भी कार्य विशेषतः विवाह आदि सम्बन्ध जैसे महत्व-पूर्ण कार्य तो अपने बड़े बूढ़े से पूछे बिना कभी नहीं करना चाहिए।

इस पर कस ने तत्काल दूत भेजकर महाराज समुद्रविजय से इस सम्बन्ध के सम्बन्ध मे स्वीकृति प्राप्त कर ली । उनकी स्वीकृति प्राप्त होते ही कस वसुदेव को अपने साथ ले अपने चाचा देवक की राजधानी मृत्तिकावृत्ति नगरी की ओर चल पडा । वे दोनों चले जा रहे थे कि मार्ग मे सयोग वश नारद मुनि से उनकी भेंट हो गई । मुनिराज को अपने समक्ष देखते ही दोनों ने रथ से उतर कर उनको प्रणाम किया। नारद जी ने दोनों से कुशल प्रश्न पूछन के पश्चात् पूछा कि आज दोनो मित्र एक साथ किधर जा रहे हो । इस पर कस ने निवेदन किया कि—

भगवन् ! मेरे चाचा देवक की पुत्री देवकी का सम्बन्ध मैं वसुदेव के साथ करना चाहता हूँ । इस लिए इन्हे अपने साथ ले मैं अपने चाचा की राजधानी मृत्तिकावृत्ति नगरी की ओर जा रहा हूँ ।

यह सुन नारद जी ने उत्तर दिया कि जिस प्रकार वसुदेव पुरुषों में सर्व श्रेष्ठ है उसी ही प्रकार देवकी रमणी रत्नो की शिरोमणी है। प्रतीत होता है कि इस दिव्य ज्योति को मिलाने के लिए विधाता ने तुम दोनो को उत्पन्न किया है।

यह कह कर उन्होंने वसुदेव को सम्बोधित कर कहा कि वत्स ! इस सम्बन्ध को अवश्य स्वीकार कर लेना, क्योंकि देवकी ही ससार में तुम्हारे नाम को अमर और यशस्वी बनाएगी।

यह कह नारद मुनि आकाश मार्ग से उसी समय महाराज देवक के यहाँ जा पहुचे । सर्व प्रथम वे अन्त·पुर मे जा राजकुमारी देवकी के सामने उपस्थित हुए । अपने समक्ष सहसा देवर्षि नारद को देख देवकी अत्यन्त विस्मित व परम हर्षित हुई । तथा उन्हे प्रणाम कर अर्घ्य प्रदान आदि के द्वारा मुनिराज का यथोचित स्वागत सत्कार व पूजन आदि किया।

इस पर प्रसन्न हो नारद मुनि ने कहा कि वत्से ! तुम्हारी श्रद्धा भावना को देखकर मे अत्यन्त प्रसन्न हूँ । मै तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि शीघ्र ही तुम्हे अनुरुप वर की प्राप्ति हो । और वह वर इस समय ससार मे वसुदेव के सिवाय और कोई नहीं है । वसुदेव को पाकर तुम्हारा जीवन धन्य हो जायगा । तुम्हारा नाम अनन्त काल तक इस ससार में बना रहेगा ।

यह सुन देवकी ने सलज्ज भाव से पूछा-भगवन! वे वसुदेव कौन हैं? नारद ने कहा- अपने अनुपम रूप लावण्य की छटा से कामदेव को भी लज्जित करने वाले अनेक विद्याधरियों के प्राणाधार रमणी हृदय वल्लभ दसवें दशार्ह वसुदेव का नाम भी तुमने अभी तक नहीं सुना। यह बड़े आश्चर्य की बात है। उनका नाम तो इस समय ससार का बच्चा बच्चा जानता है। आज इस भूमण्डल पर दूसरा ऐसा कोई पुरुष नहीं जो रूप गुणों में उनकी समता कर सके। इसी लिए तो उनके अनुपम सौभाग्य पर देवता भी सिहाते हैं।

वहां जाकर वे देवकी की उपस्थिति में रानी से कहने लगे कि आज कंस ने देवकी का विवाह वसुदेव के साथ करने के लिए मुझे प्रेरित किया, पर मै इस विषय को टाल आया हूँ, क्योंकि मै नही चाहता हूँ कि मेरी प्राण प्रिय पुत्री इतनी जल्दी मेरे घर से विदा हो। मुझे इसका वियोग असह्य लगता है।

यह सुनकर देवकी की अवस्था प्राप्त रत्न के खोये हुए दरिद्र की भाँति विचित्र हो गई। उनके नेत्र सजल हो गये। रानी ने बड़े प्यार भरे शब्दों मे कहा नाथ! आपको यह सम्बन्ध सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। देवकी की अवस्था विवाह योग्य है। इसे हम अपने घर में कब तक रख सकते हैं। आखिर एक न एक दिन तो इसे श्वसुर गृह भेजना ही होगा। और इसका वियोग सहन करना ही पड़ेगा। लड़की के लिए सुयोग्य वर ढूढते ढूढते थक जाते हैं, पर हमारे सौभग्य से हमें घर बैठे सुयोग्य वर मिल रहा है अतः हमें इस सु अवसर को हाथ से न जाने देकर इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लेना चाहिए।' तब देवक ने कहा—मै तो तुम्हारा मन देख रहा था। जब तुम लोगों को यह सम्बन्ध स्वीकार है तो मुझे भला क्या आपत्ति हो सकती है।

इस प्रकार सबके सहमत हो जाने पर देवक ने अपने मन्त्रि मण्डल से मन्त्रणा कर कस को इस सम्बन्ध में अपनी स्वीकृति से सूचित कर दिया। देवक की अनुमति प्राप्त कर कस और वसुदेव मथुरा और शौरीपुर लौट आए। पश्चात् महाराज देवक ने समुद्रविजय के पास यथाविधि विवाह का निमन्त्रण भेजा। तदनुसार समुद्रविजय अपने सब सगे सम्बन्धियों को एकत्रित कर बड़ी धूमधाम के साथ बरात लेकर मृत्तिकापुर जा पहुँचे। इस प्रकार शुभ लग्न और शुभ मुहूर्त मे वसुदेव और देवकी का विवाह सानन्द सम्पन्न हो गया। देवक ने दहेज मे बहुत से स्वर्णाभूषण अनेक बहुमूल्य रत्नालंकार और कोटि गायों सहित इस गोकुल के स्वामी नन्द को प्रदान किया। इस प्रकार विवाह की धूम धाम के समाप्त हो जाने पर समुद्रविजय वर-वधू वसुदेव-देवकी को साथ ले अपने सब सम्बन्धियो तथा कस व नन्द आदि के सहित अपनी राजधानी की ओर चल पड़े। मार्ग मे मथुरा आयी वहाँ इन सब लोगों को रोक कर अपने मित्र व बहिन के विवाहोपलक्ष मे मथुरा नरेन्द्र कस ने एक बड़े भारी महोत्सव का

आयोजन किया। इस महोत्सव की [धूम कइ महीनो तक चलती रही। सब लोग नाना प्रकार के रगरेलियो मे मग्न दिखाई देते थे। नाना प्रकार के राग रग, कहीं नृत्य गान व भोज्यपान आदि की व्यवस्था कर खुशिया मनाई जाती रही। नगर निवासियों का भी इस अवसर पर उत्साह दर्शनीय था। मथुरा नगरी इस समय सचमुच-देवराज इन्द्र की पुरी अमरावती के समान सब प्रकार के सुख विलास वैभव धन धान्य और आनन्द भोग से परिपूर्ण दिखाई देती थी।

* एक अद्भुत घटना *

इसी बीच एक दिन मासोदवासी अतिमुक्त अणगार पारण के लिये कस के यहाँ आ गये। उस दीर्घ तपस्वी को देखते ही मद मे उन्मत्त हुई कस पत्नी जीवयशा तत्काल उन्हे पहचान गयी। और बोली देवर बहुत अच्छा हुआ जो इस अवसर तुम आ गए, यह तुम्हारी बहिन देवकी का विवाहोत्सव ही मनाया जा रहा है अतः आओ हम और तुम इस आयोजन का आनन्द लूटे' यह कहती हुई उनके गले मे लिपट गई।

मुनिराज को उसकी इस प्रवृत्ति पर महा आश्चर्य हुआ। वे उसके भविष्य को जानते थे अत तत्क्षण उसकी आलिगन पाश से अपने को मुक्त करते हुए उन्होंने कहा—हे जीवयशा तू क्यों अभिमान मे भूल रही है 'यन्निमित्तोऽयमुत्सव तद्गर्भ सप्तमो हतापति पित्रोस्त्यदीययो" अर्थात जिस देवकी के विवाहोपलक्ष्य में यह उत्सव मना रही है उसका सातवां गर्भ ही तेरे पति और पिता का निघातक होगा।'

मुनिराज का यह दु:खमय वचन सुन कर जीवयशा का सारा नशा उतर गया और दुखद भविष्य की आशका से वह थर थर कॉपने लगी। अन्त में मुनिराज के चले जाने पर उसने तपस्वी के आने आदि का सारा विवरण कह सुनाया।

यह सारा वृत्तान्त सुन कर कस अत्यन्त चिन्तित हुआ। उसकी आखों के आगे अन्धेरा छा गया उसे कुछ भी नहीं सूझ रहा था कि क्या किया जाय, और क्या न किया जाय, क्योंकि उसे विश्वास था कि मुनिराज का वचन कभी असत्य नहीं हो सकता। उन्होंने जो कुछ कहा है वह एक न एक दिन होकर ही रहेगा। किन्तु कस बड़ा साहसी और क्रूर प्रकृति का व्यक्ति था ऐसी छोटी मोटी बातों से निराश होना

वहां जाकर वे देवकी की उपस्थिति मे रानी से कहने लगे कि आज कंस ने देवकी का विवाह वसुदेव के साथ करने के लिए मुझे प्रेरित किया, पर मै इस विषय को टाल आया हूँ, क्योंकि मै नही चाहता, हूँ कि मेरी प्राण प्रिय पुत्री इतनी जल्दी मेरे घर से विदा हो। मुझे इसका वियोग असह्य लगता है।

यह सुनकर देवकी की अवस्था प्राप्त रत्न के खोये हुए दरिद्र की भाँति विचित्र हो गई। उनके नेत्र सजल हो गये। रानी ने बड़े प्यार भरे शब्दों में कहा नाथ! आपको यह सम्बन्ध सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। देवकी की अवस्था विवाह योग्य है। इसे हम अपने घर में कब तक रख सकते है। आखिर एक न एक दिन तो इसे श्वसुर गृह भेजना ही होगा। और इसका वियोग सहन करना ही पड़ेगा। लड़की के लिए सुयोग्य वर ढूढंते ढूढते थक जाते है, पर हमारे सौभग्य से हमें घर बैठे सुयोग्य वर मिल रहा है अतः हमें इस सु अवसर को हाथ से न जाने देकर इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लेना चाहिए।' तब देवक ने कहा—मैं तो तुम्हारा मन देख रहा था। जब तुम लोगों को यह सम्बन्ध स्वीकार है तो मुझे भला क्या आपत्ति हो सकती है।

इस प्रकार सबके सहमत हो जाने पर देवक ने अपने मन्त्रि मण्डल से मन्त्रणा कर कस को इस सम्बन्ध में अपनी स्वीकृति से सूचित कर दिया। देवक की अनुमति प्राप्त कर कस और वसुदेव मथुरा और शौरीपुर लौट आए। पश्चात् महाराज देवक ने समुद्रविजय के पास यथाविधि विवाह का निमन्त्रण भेजा। तदनुसार समुद्रविजय अपने सब सगे सम्बन्धियो को एकत्रित कर बड़ी धूमधाम के साथ बरात लेकर मृत्तिकापुर जा पहुँचे। इस प्रकार शुभ लग्न और शुभ मुहूर्त मे वसुदेव और देवकी का विवाह सानन्द सम्पन्न हो गया। देवक ने दहेज मे बहुत से स्वर्णाभूषण अनेक बहुमूल्य रत्नालंकार और कोटि गायो सहित इस गोकुल के स्वामी नन्द को प्रदान किया। इस प्रकार विवाह की धूम धाम के समाप्त हो जाने पर समुद्रविजय वर-वधू वसुदेव-देवकी को साथ ले अपने सब सम्बन्धियों तथा कस व नन्द आदि के सहित अपनी राजधानी की ओर चल पड़े। मार्ग मे मथुरा आयी वहाँ इन सब लोगो को रोक कर अपने मित्र व बहिन के विवाहोपलक्ष मे मथुरा नरेन्द्र कस ने एक बड़े भारी महोत्सव का

आयोजन किया। इस महोत्सव की [धूम कइ महीनों तक चलती रही। सब लोग नाना प्रकार के रगरेलियों में मग्न दिखाई देते थे। नाना प्रकार के राग रग, कहीं नृत्य गान व भोज्यपान आदि की व्यवस्था कर खुशिया मनाई जाती रही। नगर निवासियों का भी इस अवसर पर उत्साह दर्शनीय था। मथुरा नगरी इस समय सचमुच-देवराज इन्द्र की पुरी अमरावती के समान सब प्रकार के सुख विलास वैभव धन धान्य और आनन्द भोग से परिपूर्ण दिखाई देती थी।

* एक अद्भुत घटना *

इसी बीच एक दिन मासोदवासी अतिमुक्त अणगार पारण के लिये कस के यहाँ आ गये। उस दीर्घ तपस्वी को देखते ही मद मे उन्मत्त हुई कस पत्नी जीवयशा तत्काल उन्हें पहचान गयी। और बोली देवर बहुत अच्छा हुआ जो इस अवसर तुम आ गए, यह तुम्हारी बहिन देवकी का विवाहोत्सव ही मनाया जा रहा है अतः आओ हम और तुम इस आयोजन का आनन्द लूटें' यह कहती हुई उनके गले में लिपट गई।

मुनिराज को उसकी इस प्रवृत्ति पर महा आश्चर्य हुआ। वे उसके भविष्य को जानते थे अत तत्क्षण उसकी आलिंगन पाश से अपने को मुक्त करते हुए उन्होंने कहा—हे जीवयशा तू क्यों अभिमान में झूम रही है 'यन्निमित्तोऽयमुत्सव तद्गर्भ सप्तमो हतापति पित्रोस्त्यदीययो" अर्थात् जिस देवकी के विवाहोपलक्ष्य में यह उत्सव मना रही है उसका सातवां गर्भ ही तेरे पति और पिता का निघातक होगा।'

मुनिराज का यह दुःखमय वचन सुन कर जीवयशा का सारा नशा उतर गया और दुखद भविष्य की आशका से वह थर थर कॉपने लगी। अन्त में मुनिराज के चले जाने पर उसने तपस्वी के आने आदि का सारा विवरण कह सुनाया।

यह सारा वृत्तान्त सुन कर कस अत्यन्त चिन्तित हुआ। उसकी आखों के आगे अन्धेरा छा गया उसे कुछ भी नहीं सूझ रहा था कि क्या किया जाय, और क्या न किया जाय, क्योंकि उसे विश्वास था कि मुनिराज का वचन कभी असत्य नहीं हो सकता। उन्होंने जो कुछ कहा है वह एक न एक दिन होकर ही रहेगा। किन्तु कस बड़ा साहसी और क्रूर प्रकृति का व्यक्ति था ऐसी छोटी मोटी बातों से निराश होना

वहां जाकर वे देवकी की उपस्थिति में रानी से कहने लगे कि आज कंस ने देवकी का विवाह वसुदेव के साथ करने के लिए मुझे प्रेरित किया, पर में इस विषय को टाल आया हूँ, क्योंकि मै नही चाहता, हूँ कि मेरी प्राण प्रिय पुत्री इतनी जल्दी मेरे घर से विदा हो। मुझे इसका वियोग असह्य लगता है।

यह सुनकर देवकी की अवस्था प्राप्त रत्न के खोये हुए दरिद्र की भाँति विचित्र हो गई। उनके नेत्र सजल हो गये। रानी ने बड़े प्यार भरे शब्दो मे कहा नाथ! आपको यह सम्बन्ध सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। देवकी की अवस्था विवाह योग्य है। इसे हम अपने घर में कब तक रख सकते है। आखिर एक न एक दिन तो इसे श्वसुर गृह भेजना ही होगा। और इसका वियोग सहन करना ही पड़ेगा। लड़की के लिए सुयोग्य वर ढूढंते ढूढते थक जाते है, पर हमारे सौभग्य से हमें घर बैठे सुयोग्य वर मिल रहा है अतः हमें इस सु अवसर को हाथ से न जाने देकर इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लेना चाहिए।' तब देवक ने कहा—मैं तो तुम्हारा मन देख रहा था। जब तुम लोगों को यह सम्बन्ध स्वीकार है तो मुझे भला क्या आपत्ति हो सकती है।

इस प्रकार सबके सहमत हो जाने पर देवक ने अपने मन्त्रि मण्डल से मन्त्रणा कर कस को इस सम्बन्ध में अपनी स्वीकृति से सूचित कर दिया। देवक की अनुमति प्राप्त कर कस और वसुदेव मथुरा और शौरीपुर लौट आए। पश्चात् महाराज देवक ने समुद्रविजय के पास यथाविधि विवाह का निमन्त्रण भेजा। तदनुसार समुद्रविजय अपने सब सगे सम्बन्धियो को एकत्रित कर बड़ी धूमधाम के साथ बरात लेकर मृत्तिकापुर जा पहुँचे। इस प्रकार शुभ लग्न और शुभ मुहूर्त मे वसुदेव और देवकी का विवाह सानन्द सम्पन्न हो गया। देवक ने दहेज मे बहुत से स्वर्णाभूषण अनेक बहुमूल्य रत्नालंकार और कोटि गायों सहित इस गोकुल के स्वामी नन्द को प्रदान किया। इस प्रकार विवाह की धूम धाम के समाप्त हो जाने पर समुद्रविजय वर-वधू वसुदेव-देवकी को साथ ले अपने सब सम्बन्धियों तथा कस व नन्द आदि के सहित अपनी राजधानी की ओर चल पड़े। मार्ग मे मथुरा आयी वहाँ इन सब लोगो को रोक कर अपने मित्र व बहिन के विवाहोपलक्ष मे मथुरा नरेन्द्र कस ने एक बड़े भारी महोत्सव का

आयोजन किया। इस महोत्सव की धूम कइ महीनो तक चलती रही। सब लोग नाना प्रकार के रगरेलियों में मग्न दिखाई देते थे। नाना प्रकार के राग रग, कहीं नृत्य गान व भोज्यपान आदि की व्यवस्था कर खुशिया मनाई जाती रही। नगर निवासियों का भी इस अवसर पर उत्साह दर्शनीय था। मथुरा नगरी इस समय सचमुच देवराज इन्द्र की पुरी अमरावती के समान सब प्रकार के सुख विलास वैभव धन धान्य और आनन्द भोग से परिपूर्ण दिखाई देती थी।

* एक अद्भुत घटना *

इसी बीच एक दिन मासोदवासी अतिमुक्त अणगार पारण के लिये कस के यहाँ आ गये। उस दीर्घ तपस्वी को देखते ही मद में उन्मत्त हुई कस पत्नी जीवयशा तत्काल उन्हें पहचान गयी। और बोली देवर बहुत अच्छा हुआ जो इस अवसर तुम आ गए, यह तुम्हारी बहिन देवकी का विवाहोत्सव ही मनाया जा रहा है अतः आओ हम और तुम इस आयोजन का आनन्द लूटे' यह कहती हुई उनके गले में लिपट गई।

मुनिराज को उसकी इस प्रवृत्ति पर महा आश्चर्य हुआ। वे उसके भविष्य को जानते थे अत तत्क्षण उसकी आलिंगन पाश से अपने को मुक्त करते हुए उन्होंने कहा—हे जीवयशा तू क्यों अभिमान में झूम रही है 'यन्निमित्तोऽयमुत्सव तद्गर्भ सप्तमो हतापति पित्रोस्त्यदीययो" अर्थात् जिस देवकी के विवाहोपलक्ष्य में यह उत्सव मना रही है उसका सातवां गर्भ ही तेरे पति और पिता का निघातक होगा।'

मुनिराज का यह दुःखमय वचन सुन कर जीवयशा का सारा नशा उतर गया और दुखद भविष्य की आशका से वह थर थर कॉपने लगी। अन्त में मुनिराज के चले जाने पर उसने तपस्वी के आने आदि का सारा विवरण कह सुनाया।

यह सारा वृत्तान्त सुन कर कस अत्यन्त चिन्तित हुआ। उसकी आखों के आगे अन्धेरा छा गया उसे कुछ भी नहीं सूझ रहा था कि क्या किया जाय, और क्या न किया जाय, क्योंकि उसे विश्वास था कि मुनिराज का वचन कभी असत्य नहीं हो सकता। उन्होंने जो कुछ कहा है वह एक न एक दिन होकर ही रहेगा। किन्तु कस बडा साहसी और क्रूर प्रकृति का व्यक्ति था ऐसी छोटी मोटी बातों से निराश होना

उसने सीखा ही नहीं था। उसका जीवन ही विषम परिस्थितियों मे बीता था वह भला इस छोटी मोटी सम्भावित आपत्ति की क्या परवाह करता उसने अपने बाहुबल और बुद्धि बल से तत्काल इस विपत्ति से छुटकारा पाने का उपाय ढूढ निकाला। उसने मन ही मन सोचा कि यदि मैं किसी प्रकार सातों गर्भों को अपने वश में कर लूं तो उन सब का किसी प्रकार से काम तमाम कर डालूगा 'न रहेगा बॉस न बजेगी बांसुरी' के अनुसार यदि देवकी के गर्भ से उत्पन्न बालको को मै जीते ही न रहने दूंगा तो वह भला मुझे मारेगा ही कैसे ? इस प्रकार सोचते सोचते वह वसुदेव के पास जा पहुंचा। उसे इस प्रकार अनायास, असमय में आया देख वसुदेव बड़े चकित हुए कि आज यह पूर्व सूचना दिये बिना ही न जाने क्यों यहां आया है। फिर भी उन्होंने उसका यथोचित स्वागत सत्कार कर बड़े प्रेम से अपने पास बिठाया और पूछने लगे कि:—

मित्रवर ! क्या बात है आज तुम्हारी मुखाकृति पर चिन्ता की रेखाये झलक रही हैं, ऐसे प्रतीत होता है कि अवश्य तुम किसी भारी चिन्ता में पड़े हुए हो। मुझे तो ऐसी किसी चिन्ता का कोई कारण दिखाई नहीं देता। पर फिर भी यदि कोई चिन्ता की बात हो और उसका निदान कारण मै कर सकता हूँ तो अवश्य बताओ मुझ से जो कुछ भी हो सकेगा तुम्हारे लिए अवश्य करूंगा।

वसुदेव के ऐसे प्रेम भरे वचन सुन कर कस बहुत प्रसन्न हुआ। और बड़े विनय के साथ निवेदन करने लगा कि बचपन से लेकर आज तक मुझ पर तुमने बहुत अधिक उपकार किये हैं; मै पहिले ही उन उपकारों के भार से दबा हुआ हूं किन्तु अब एक और प्रार्थना करना चाहता हूँ आशा है तुम मेरी प्रार्थना को भी अवश्य स्वीकार करोगे और मेरा मनोरथ पूर्ण कर मुझे जन्मजन्मान्तरों तक के लिए कृतज्ञ बना लोगे। हे मित्र ! मेरी इच्छा है कि देवकी के सातो गर्भ आप मुझे दे दे। क्या आप मेरी यह इच्छा पूर्ण न करेगे ?

यह सुन वसुदेव पहले तो बड़े चकित हुए उनकी कुछ समझ मे न आया कि आखिर मामला क्या है ? इसकी इस अनोखी मॉग का क्या रहस्य है ? किन्तु थोड़ा विचार करने पर वसुदेव को कस की उस मॉग मे दुर्भिसधि दिखाई न दी, बात तो यह है कि यह सरल हृदय

रूप सारे ससार को अपने ही समान सदाशय समझता है इसी लिये वसुदेव ने उसमें कुछ बुराई न समझी और देवकी के साथ परामर्श करने के पश्चात् उन्हों ने कस की प्रार्थना को स्वीकार करते हुए कहा कि हे भाई। तुमने यह कौन सी बडी चीज चाही है? जैसे मेरे बच्चे वैसे तुम्हारे, मैं तो अपने में और तुम मे कोई भेदभाव नहीं देखता फिर तुम्हें इस छोटी सी बात में इतना संकोच क्यों हुआ? तुमने ही हमारा विवाह करवाया है इस लिए हम पर और हमारी सतान पर तुम्हारा पूरा अधिकार है, तुम हमारे बच्चों को अपना ही समझो। तुमने हमें आपस में मिलाकर हम पर जो उपकार किया है उसके प्रत्युपकार में हम जो कुछ भी कर सकें सो थोडा है।'

वसुदेव और देवकी के ऐसे वचन सुन कर कपटी कस मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ उसने कहा मेरा तो जीवन आप लोगों पर ही निर्भर है आपकी बडी दया है। इस पर वसुदेव ने देवकी से कहा अब अधिक सोचने और कहने की आवश्यकता नहीं तुम प्रत्येक सन्तान को उत्पन्न होते ही कस के हाथों सौंप दिया करो, फिर इनकी जैसी इच्छा हो वैसा करें। उनके लालन-पालन भरण-पोषण या जीवन-मरन से हमें कोई प्रयोजन नहीं है।

इस प्रकार वसुदेव और देवकी के वचनों से आश्वस्त हो कस अपने स्थान को विदा हो गया, आज मारे खुशी के उसके पाँव धरती पर नहीं पड़ रहे थे वह मदोन्मत्त की भांति यह सोचता चला जा रहा था कि अब तो ससार में कोई मार ही नहीं सकता, मैं अपने विघातक का जन्मते ही वध कर डालूगा, फिर भला ससार में मैं किसी के हाथों कैसे मारा जा सकता हूँ।

उधर कस के चले जाने के पश्चात् जब वसुदेव को अतिमुक्त मुनि के वृतान्त का पता लगा और यह ज्ञात हुआ कि उन्हों ने जीवयशा को बताया है कि देवकी का पुत्र ही कस और जरासंघ का वध करेगा' तो वे बहुत चिन्तित और दुखी हुए। अब तो कस की कपट योजनाओं का सारा चित्र उनकी आखों के सामने घूम गया किन्तु अब पछताने से क्या हो सकता था क्योंकि महापुरुष अपने दिये हुए वचन से कभी पीछे नहीं हटते चाहे उनके प्राण ही क्यों न चले जायें वसुदेव भी ऐसे ही सत्यभक्त, दृढ़ प्रतिज्ञ मानव थे उन्होंने भाग्य पर भरोसा रखते हुए यह सोच कर कि यदि मेरी सन्तान के हाथों ही कस की मृत्यु लिखी

है तो अवश्य होकर रहेगी उसे कोई टाल नहीं सकता, वे अपने वचन पर डटे रहे। देवकी को भी उन्होंने इसी प्रकार के वचनों से सान्त्वना दिलाते हुए अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ बने रहने के लिए उत्साहित कर लिया।

कृष्ण-बलदेव का पूर्वभव—

इसी भरतक्षेत्र में हस्तिनापुर नामक एक अत्यन्त रमणीक नगर था। वहां महामति नामक एक सेठ रहता था। उसके ललित नामक पुत्र था। इस पुत्र की माता इसे बहुत अधिक प्यार करती थी, ललित जब चार वर्ष का हो गया तो सेठ के एक दूसरा पुत्र और उत्पन्न हुआ इस दूसरे पुत्र की उत्पत्ति से पूर्व गर्भ के दिनों में सेठानी बड़े भारी कष्ट का अनुभव करती रही। अतः इस गर्भ को अत्यधिक सतानदायक जानकर सेठानी ने अपना गर्भ गिराने के कई प्रयत्न किये किन्तु किसी में सफल न हो सकी। यथा समय उसके सुन्दर एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस पुत्र के उत्पन्न होते ही सेठानी अपने पहले द्वेष के कारण उसे अपने पास न रख सकी और वह उस बच्चे को दासी को सौंपते हुए बोली कि 'जाओ इसे मार कर कहीं एकान्त में फेंक आओ।'

सेठानी की आज्ञा पाते ही दासी बच्चे को लेकर चल पड़ी ज्यों ही वह बच्चे को लिये हुए घर के द्वार से बाहर निकली कि मार्ग में उसे सेठ जी मिल गये दासी के हाथों में नवजात-शिशु को देख उन्होंने उसके बारे में पूछ-ताछ करनी आरम्भ कर दी अब तो दासी को सारा सच्चा-सच्चा वृतान्त बताना ही पड़ा। सारा समाचार सुन कर और उस सुन्दर बालक को टुकुर टुकुर अपनी ओर निहारते देख सेठ के पितृ-हृदय में स्नेह की धारा फूट निकली उसने स्नेह सिक्त नेत्रों से दासी के हाथों से अपने पुत्र को ले लिया। सेठ ने अपने इस दूसरे पुत्र के लालन-पालन की व्यवस्था गुप्त रूप से कर दी। इस बालक का नाम गंगदत्त रक्खा गया। यथा समय ललित को भी अपने जीवित रहने का वृतान्त ज्ञात हो गया। इस लिये वह भी गुप्त रूप से कभी कभी खेलने कूदने जाया करता था। एक दिन ललित ने अपने पिता से कहा पिता जी! क्या ही अच्छा हो कि इस वसन्तोत्सव के दिन गंगदत्त भी हम लोगों के साथ ही भोजन करे।

यह सुनकर सेठ ने उत्तर दिया बेटा तुम्हारा विचार तो बहुत

सुन्दर है किन्तु भोजन करते समय कहीं गगदत्त का पता तुम्हारी माता को लग गया तो अनर्थ हो जायेगा।

ललित ने उत्तर दिया पिता जी आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें मैं इस प्रकार की व्यवस्था करूगा कि गगदत्त हमारे साथ भोजन भी करले और माता जी को उसका पता भी न लगे। तदनुसार महामति सेठ ने एक साथ भोजन करने की अनुमति दे दी। भोजन का अवसर उपस्थित होने पर ललित ने गंगदत्त को एक वस्त्रावर्ण पर्दे के पीछे बिठा दिया और पिता पुत्र दोनों पर्दे के बाहर बैठ कर कर भोजन करने लगे। भोजन करते समय वे अपनी थाली में से पकवान उठा उठा कर पर्दे के पीछे बैठे हुए गगदत्त को भी देते जाते थे। इतने ही में दैवयोग से हवा के कारण पर्दा उड गया अब क्या था पर्दे के उडते ही उसके पीछे बैठा हुआ ग गदत्त सेठानी को दिखायी दे गया। अपने उस पुत्र को जीवित देख जिसे उसने अपनी समझ से मरवा डाला था, सेठानी के तन बदन मे आग लग गई। उसने आव देखा न ताव गंगदत्त को पकड कर इस प्रकार पीटना आरम्भ किया कि मारे लातों घूसों के उसे बेहोश कर डाला। इस प्रकार उसे मरा जान एक दम नौकरों को आज्ञा दे उसे नदी में फिंकवा दिया। किन्तु सेठ ने उसे तत्काल नदी मे से निकलवा कर उसका यथोचित्त उपचार कर फिर एकान्त गुप्त रूप से उसकी सब व्यवस्था कर दी।

कुछ दिनों पश्चात् उसी नगर में घूमते घूमते अवधिज्ञानी संत आ गये। महामति को मालूम होने पर वह अपने पुत्र ललित को साथ लेकर उसके पास जा पहुँचा और यथाविधि वदन नमस्कार के अनन्तर बडी विनय के साथ उनसे पूछा कि महाराज! गतदत्त की माता इसके प्रति ऐसा वैर भाव क्यों रखती है?

सेठ के ऐसे जिज्ञासा भरे वचन सुन ज्ञानी ने उत्तर दिया कि "ललित और गगदत्त पिछले जन्म मे सगे भाई थे। ललित बड़ा और गगदत्त छोटा था एक बार वे दोनो गाडी लेकर जगल में लकडियॉ लेने गये। गाड़ी में लकड़ियों भर कर जब वे जगल से लौट रहे थे तव मार्ग में बड़े भाई को एक नागिन दिखाई दी उसे देखते ही उसने अपने छोटे भाई को जो गाड़ी चला रहा था कहा कि देखो मार्ग में नागिन पडी हुई है इस लिए गाडी को बचाकर निकालो कहीं यह पहिये के नीचे आकर कट न जाये। बड़े भाई की यह बात सुनकर

नागिन बहुत प्रसन्न हुई किन्तु वह बचे ही बचे इतने में कुटिल प्रकृति वाले छोटे भाई ने उस नागिन पर से गाड़ी निकाल ही दी फिर क्या था देखते ही देखते वह नागिन वहीं छटपटाती हुई मर गई। इस जन्म मे वह नागिन ही तुम्हारी सेठानी बनी है वह बड़ा भाई जिसने नागिन को बचाने का प्रयत्न किया था ललित है, इसी लिए यह उसे इतना प्रिय है। छोटा भाई गगदत्त है। पिछले जन्म में इसने उसके प्राण लिए थे इसलिए सेठानी उससे इतना बैर रखती है इसलिए स्मरण रक्खा कि पूर्व जन्म के कर्मों के बिना बैर या प्रीति आदि कुछ भी नहीं हो सकता"।

साधु के द्वारा पूर्व जन्म का वृतान्त जान कर ललित और सेठ को कर्मों की विचित्रता के कारण ससार से वैराग्य हो गया और उन्होंने तत्काल दीक्षा ले ली। उस जन्म में वे शरीर त्याग कर महाशुक्र देव-लोक मे गये वहीं पर स्वर्गीय सुखों का उपभोग करने लगे। इधर गंग-दत्त ने भी माता के अनिष्ट का स्मरण कर विश्व वल्लभ होने का निदान बाँधा। वहां से शरीर छोड़ कर वह भी महाशुक्र देवलोक का अधिकारी हुआ।

ललित का जीव ही रोहिणी के गर्भ से बलदेव के रूप में अवतरित हुआ और उधर गगदत्त का जीव देवकी के गर्भ से कृष्ण के रूप में आया।

श्री कृष्ण जन्म

उधर जिस समय वसुदेव और देवकी ने अपनी सब सन्तान कँस को देने की प्रतिज्ञा कर ली उसी समय भद्दिलपुर मे नाग नामक एक सेठ रहता था उसकी सुलसा नामक पतिपरायणा पत्नी थी। एक बार नैमितिक ने वचपन मे सुलसा को बताया कि वह मृतवत्सा होगी यह सुन कर सुलसा वहुत चिन्तित और दुःखी हुई और वह तभी से हरिणैगमेषी देव की आराधना करने लगी। इस आराधना से देव के प्रसन्न हो जाने पर सुलसा ने उससे पुत्र की याचना की इस पर देव ने अवधि ज्ञान वल से विचार कर कहा कि अतिमुक्त मुनि का वचन मिथ्या नहीं हो सकता तुम्हारी कोख से जितनी भी सन्तान होगी वह सब मरी हुई ही होगी किन्तु तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मैं एक उपाय कर सकता हू वह यह कि प्रसव के समय में तुम्हारे मृतक शिशु को देवकी के पास

देवकी के नवजात शिशु को तुम्हारे यहां लाकर रख दूंगा। इस परिवर्तन से देवकी की कोई हानि न होगी और तुम्हारी मनोकामना भी पूर्ण हो जायेगी क्योंकि देवकी के बच्चे तो अन्त में कंस के हाथों मारे ही जायेगें। उसके बच्चे तुम्हें मिल जाने से उसके बच्चों की भी रक्षा हो जायेगी और तुम्हारा मृतवत्सा योग भी टल जायेगा।

यह कह कर वह हरिणैगमेषी देव वहा से अदृश्य हो गया। समय आने पर वे दोनों एक ही साथ रजस्वला हुई जिससे उन दोनों ने एक साथ ही गर्भ धारण किया। दोनों के प्रसव भी एक ही समय हुआ। प्रसव समय हरिणैगमेषी देव ने आकर सुलसा और देवकी के जातकों में परिवर्तन कर दिया। इस प्रकार क्रमश प्रसवों का उसने परिवर्तन कर दिया। परिणाम स्वरुप देवकी के मरे हुए बालकों को कस ने शिला पर पटकवा दिया।

उधर सुलसा की कुक्षि से छः पुत्र रत्न उत्पन्न हुए जिनके नाम क्रम से अनीकसेन, अनन्तसेन, अजितसेन, अनिहतरिपु, देवसेन और शत्रसेन रक्खे गये। इन छहों ही श्रेष्ठी पुत्रों के क्रमश उत्पन्न होने पर भी ये समान वय वाले ही प्रतीत होते थे। सरोवर में नीलोत्पल विकसित वर्ण के समान इनके शरीर त्वचा तथा अलसी के पुष्प के मानिन्द प्रकाशवान उनके मुखमण्डल की कान्ति थी। जन्म से ही उनके वक्षःस्थल पर स्वस्तिक चिन्ह अकित था जो उनके सुन्दर भविष्य का परिचायक था। इस प्रकार की दिव्य कान्ति युक्त वे नव जात शिशु पर्वत कन्दरा में स्थित मालती व चम्पक वृक्ष की भाँति पाच धात्रियों द्वारा लालित-पालित होते हुए द्वितीया के चन्द्रकला सदृश परिवृद्ध होने लगे।

इधर एक बार रात्रि को अपने शयन कक्ष में पुष्प शैय्या पर सोती रानी देवकी अपने मृतक पुत्रों के उत्पन्न होने तथा कस द्वारा वध करने की बात को बार बार स्मरण कर अपने भाग्य को कोसती है। इस प्रकार दुख की स्वासों के भरते २ करवटें बदलते २ रजनी तीन पहर वीत गई। चतुर्थ प्रहर में इन सकल्प विकल्पों से अलग हो सोयी ही थी कि उसकी अन्तिम पवित्र वेला में अर्धनिन्द्रित अवस्था में गजसिंह सूर्य, ध्वजदेव, विमान; पद्मसरोवर और निधूर्म अग्नि ये सात महा शुभ स्वप्न दिखाई दिये। ये महा स्वप्न अत्यन्त मगलिक थे जो भावी वसुदेव के जन्म के सूचक थे। इन स्वप्नों के देखने के वाद तत्काल गंगदत्त का जीव महाशुक्र देवलोक से च्युत होकर देवकी के गर्भ

में आगया। देवकी ने दरिद्र की निधि की भाँति उस गर्भ की बड़ी सावधानी से रक्षा की। दोहद [1]काल के पूर्ण होने पर श्रावण कृष्णा अष्ठमी को रात्रि के समय शुभ मुहूर्त में देवकी के उदर से श्री कृष्ण का जन्म हुआ।

देवकी के आग्रह पर उसके सप्तम पुत्र के जीवन रक्षा की योजना बन चुकी थी। और इस बालक के लिये महान् त्याग तथा बलिदान करने वाला संरक्षक वसुदेव को मिल गया था। शिशु के मुख पर अपूर्व कॉति थी। वसुदेव ने मुख देखा तो हृदय पुलकित हो गया। उन्होंने एक क्षण भी व्यर्थ जाने देना अनुचित जान कर बालक को गोद में उठा लिया। और खर्राटे भरते पहरेदारो को वहीं निद्रामग्न छोड़ बालक को लेकर चल पड़े।

सड़कें सुनसान थीं। अंधकार व्याप्त था, पर इस घोर काली रात्रि का सीना चीरती हुई तड़ित की रेखा प्रकाश उन्हे रास्ता दिखाने लगा। वसुदेव मथुरा के द्वार पर पहुंचे। लौह के ऊचे और मजबूत द्वार पर जाकर देखा कि भारी भरकम ताले लटक रहे है, श्रखलाए जकड़ी हुई है। वसुदेव चिन्तित हो गए—हाय अब वे कैसे निकलेगे? पर उसी क्षण बालक के हाथ पावों की हरकत हुई, पैर फाटक से जा भिड़े और "तड़ाक, तड़ाक" समस्त ताले, शृंखलाए आदि एक क्षण मे टूट गए। और फाटक स्वय "चर्ट—चर्ट" होकर खुल गया। इस आश्चर्य जनक घटना को देख कर वसुदेव आश्चर्य चकित रह गए। द्वार श्रखलाएं और ताले स्वयं रास्ता दे रहे थे।

द्वार पर रखे पिंजरे में बन्दी उग्रसैन ने ताले टूटने की आवाज सुनीं, वे घबराकर जाग उठे। पूछा--

---

१ उत्तर भारत की दृष्टि से भाद्रपद कृष्ण। यूं तो वसुदेव का पुत्र वासुदेव कहलाता है किन्तु जैन शास्त्रो में वसुदेव एक पद विशेष माना गया है। श्रीकृष्ण नवें वासुदेव थे। वासुदेव के कतिपय लक्षण हैं जो इनके परिचायक हाते हैं। जैसे -कोटि मन प्रमाण वाली प्रस्तर शिला का उठाना प्रति वासुदेव को रणक्षेत्र में पछाडना, भरत क्षेत्र के तीन खण्डो पर पूर्ण आधिपत्य का होना, सोलह हजार राजाओ का आधिपत्य होना सोलह हजार देवो का आश्रित रहना, रणक्षेत्र में विना शस्त्र के दस हजार योद्धाओ के दमन की शक्ति का होना सुदर्शन चक्र यह चिह्न विशेष हैं।

---"कौन ?"

"कोई नहीं"

"कोई तो है"

वसुदेव मौन रह गए।

"यह ताले कैसे टूट गए ?" उग्रसेन ने कहा।

वसुदेव समझ गए कि उग्रसेन को बताए बिना पीछा नहीं छूटेगा। रात्रि के समय उसे चुप करना ही श्रेयस्कर है। अतएव वे धीरे से बोले---"घबराइये नहीं ताले जिसके लिए टूटे हैं, वह एक पुण्यात्मा है, कन्हैयालाल, जो कस का काल है, और आपकी विपत्तियों का सहारक। आपका मुक्तिदाता।"

उग्रसेन जो मुनि की भविष्यवाणी जानते थे। बहुत प्रसन्न हुये। उसने पुण्यात्मा को बारम्बार आशीर्वाद दिया और बोला---"धन्य-धन्य देवकी, धन्य वसुदेव।"

तब वसुदेव धीरे से वहाँ से खिसक गए। उग्रसेन को आत्मविभोर होते छोड गए। नगरी की समाप्ति के उपरान्त जगल आ गया, भयानक वन, जिसमें हिंसक पशु दहाड़ रहे हैं, कहीं सिंह गर्जना है, कहीं हाथी की चिंघाड सारे वन का हृदय कम्पित कर रही है। चारों ओर भयानक शब्द हो रहे हैं, नन्हीं नन्हीं बूंदें पड रही हैं, ऊबड़ खाबड़ रास्ता है, पर तड़ित बारम्बार एक भयानक ध्वनि के साथ रास्ते को प्रशस्त कर देती है। वसुदेव इस भयानक वातावरण को चीरते हुए तीव्र गति से चले जा रहे हैं। उन्हे न सिंह गर्जना ही भयभीत कर पाती है, न हाथियों की चिंघाड़ ही। उन्हें यह भी पता नहीं चारों ओर क्या है ? कहां हिंसक पशु है, कहाँ विषैले कीड़े फुंकार रहे हैं, वे तो इस चिन्ता में कि कहीं पहरेदार न जाग उठे तेजी से पग उठाते हुए जा रहे है।

आगे यमुना नाग की भांति टेढ़ी-मेढी बह रही थी। आज उसका हिया भी गद्गद् हो रहा है, वह भी हर्ष विभोर होकर अपने आपे में नहीं है। तरुण तरगें किलोल कर रही हैं। किनारों तक भरा हुआ अथाह जल बहता चला जा रहा है, साय साय की ध्वनि आ रही है, लहरें उछल रही हैं। मानो आज यमुना अपने यौवन पर है, उसका हृदय प्रसन्नता के मारे उछल पड़ा है, उबल पड़ा है। वह मस्त होकर

में आगया। देवकी ने दरिद्र की निधि की भाँति उस गर्भ की बड़ी सावधानी से रक्षा की। दोहद [1]काल के पूर्ण होने पर श्रावण कृष्णा अष्ठमी को रात्रि के समय शुभ मुहूर्त में देवकी के उदर से श्री कृष्ण का जन्म हुआ।

देवकी के आग्रह पर उसके सप्तम पुत्र के जीवन रक्षा की योजना बन चुकी थी। और इस बालक के लिये महान् त्याग तथा बलिदान करने वाला संरक्षक वसुदेव को मिल गया था। शिशु के मुख पर अपूर्व काँति थी। वसुदेव ने मुख देखा तो हृदय पुलकित हो गया। उन्होंने एक क्षण भी व्यर्थ जाने देना अनुचित जान कर बालक को गोद मे उठा लिया। और खर्राटे भरते पहरेदारो को वहीं निद्रामग्न छोड़ बालक को लेकर चल पड़े।

सड़के सुनसान थीं। अंधकार व्याप्त था, पर इस घोर काली रात्रि का सीना चीरती हुई तड़ित की रेखा प्रकाश उन्हे रास्ता दिखाने लगा। वसुदेव मथुरा के द्वार पर पहुंचे। लौह के ऊंचे और मजबूत द्वार पर जाकर देखा कि भारी भरकम ताले लटक रहे हैं, श्रखलाए जकड़ी हुई है। वसुदेव चिन्तित हो गए—हाय अब वे कैसे निकलेगे? पर उसी क्षण बालक के हाथ पावों की हरकत हुई, पैर फाटक से जा भिड़े और "तड़ाक, तड़ाक" समस्त ताले, शृंखलाए आदि एक क्षण मे टूट गए। और फाटक स्वय "चर्ट—चर्ट" होकर खुल गया। इस आश्चर्य जनक घटना को देख कर वसुदेव आश्चर्य चकित रह गए। द्वार श्रखलाए और ताले स्वयं रास्ता दे रहे थे।

द्वार पर रखे पिंजरे में बन्दी उग्रसैन ने ताले टूटने की आवाज सुनीं, वे घबराकर जाग उठे। पूछा--

---

१ उत्तर भारत की दृष्टि से भाद्रपद कृष्ण। यू तो वसुदेव का पुत्र वासुदेव कहलाता है किन्तु जैन शास्त्रो में वसुदेव एक पद विशेष माना गया है। श्रीकृष्ण नवें वासुदेव थे। वासुदेव के कतिपय लक्षण हैं जो इनके परिचायक हाते हैं। जैसे -कोटि मन प्रमाण वाली प्रस्तर शिला का उठाना प्रति वासुदेव को रणक्षेत्र में पछाड़ना, भरत क्षेत्र के तीन खण्डो पर पूर्ण आधिपत्य का होना, सोलह हजार राजाओ का आधिपत्य होना सोलह हजार देवो का आश्रित रहना, रणक्षेत्र में विना शस्त्र के दस हजार योद्धाओ के दमन की शक्ति का होना सुदर्शन चक्र यह चिह्न विशेष हैं।

—"कौन ?"

"कोई नहीं"

"कोई तो है"

वसुदेव मौन रह गए।

"यह ताले कैसे टूट गए ?" उग्रसेन ने कहा।

वसुदेव समझ गए कि उग्रसेन को बताए बिना पीछा नहीं छूटेगा। रात्रि के समय उसे चुप करना ही श्रेयस्कर है। अतएव वे धीरे से बोले—"घबराइये नहीं ताले जिसके लिए टूटे हैं, वह एक पुण्यात्मा है, कन्हैयालाल, जो कंस का काल है, और आपकी विपत्तियों का संहारक। आपका मुक्तिदाता।"

उग्रसेन जो मुनि की भविष्यवाणी जानते थे। बहुत प्रसन्न हुये। उसने पुण्यात्मा को बारम्बार आशीर्वाद दिया और बोला—"धन्य-धन्य देवकी, धन्य वसुदेव।"

तब वसुदेव धीरे से वहाँ से खिसक गए। उग्रसेन को आत्मविभोर होते छोड़ गए। नगरी की समाप्ति के उपरान्त जंगल आ गया, भयानक बन, जिसमें हिंसक पशु दहाड़ रहे हैं, कहीं सिंह गर्जना है, कहीं हाथी की चिंघाड़ सारे वन का हृदय कम्पित कर रही है। चारों ओर भयानक शब्द हो रहे हैं, नन्हीं नन्हीं बूंदें पड रही हैं, ऊबड़ खाबड़ रास्ता है, पर तड़ित बारम्बार एक भयानक ध्वनि के साथ रास्ते को प्रशस्त कर देती है। वसुदेव इस भयानक वातावरण को चीरते हुए तीव्र गति से चले जा रहे हैं। उन्हे न सिंह गर्जना ही भयभीत कर पाती है, न हाथियों की चिंघाड़ ही। उन्हे यह भी पता नहीं चारों ओर क्या है ? कहां हिंसक पशु है, कहाँ विषैले कीड़े फुंकार रहे हैं, वे तो इस चिन्ता में कि कहीं पहरेदार न जाग उठे तेजी से पग उठाते हुए जा रहे है।

आगे यमुना नाग की भांति टेढ़ी-मेढी बह रही थी। आज उसका हिया भी गद्‌गद्‌ हो रहा है, वह भी हर्ष विभोर होकर अपने आपे में नहीं है। तरुण तरगें किलोल कर रही हैं। किनारों तक भरा हुआ अथाह जल बहता चला जा रहा है, साय सायं की ध्वनि आ रही हैं, लहरें उछल रही हैं। मानो आज यमुना अपने यौवन पर है, उसका हृदय प्रसन्नता के मारे उछल पडा है, उबल पड़ा है। वह मस्त होकर

बालक के मुंह पर अलौकिक दिव्य कांति देख देख कर हर्षित हुईं। सभी प्रफुल्लित हो, उल्लास से नाचने गाने लगीं।

"गोकुल मे आय गयो नन्दलाल"

सारा ग्राम हर्ष विभोर हो गया, नन्द के घर पर सारा ग्राम एकत्रित हो गया, लोगों ने नारियों से सुना था कि बालक के मुख पर अलौकिक आभा व तेज है अतः सभी बालक को देखने के लिए उतावले हो गए। जो देखता वही हर्ष विभोर हो जाता। सभी भाति भांति की प्रसशाएं करते, कोई मुख की, कोई आंखो की, कोई शरीर की, कोई तेज की और कोई बालक के अधरो पर खेल रही मुस्कान की भूरि भूरि प्रशंसा करता, ऐसा लगता मानों सारे ग्राम की गोद रत्नो से भर गई है। इतना हर्ष था कि ग्रामीण स्वय चकित थे कि आखिर घर घर मे इस बालक के लिए क्यो खुशी मनाई जा रही है। पर यह प्रसन्नता हृदय की थाह से स्वमेव ही उपजी थी।

बालक का नाम उनके श्याम वदन को देख कर श्री कृष्णचन्द्र रख दिया गया। दूज के चांद कृष्ण धीरे धीरे वृद्धि की ओर अग्रसर होने लगे। उनकी मुस्कान कमल के पुष्प की भॉति खिलने लगी। वे शीघ्र ही पैरों चलने लगे और अपनी चचलता से सभी का मन लुभाने लगे। दूसरी ओर देवकी अपने लाल को देखने के लिए तड़पने लगी। गौ पूजन का बहाना करके वह एक दिन यशोदा के घर गई। आगन मे कृष्ण कन्हाई खेल रहे थे। देखते ही उसका मन आनन्दातिरेक से उछलने लगा। जाते ही दौड़ कर कृष्ण को उठा लिया, बारम्बार चूमा और प्यार से सिर पर हाथ फेरती रही, हर्ष के मारे उसके नेत्रों मे अश्रु छलछला आये। यशोदा को सम्बोधित करके कहने लगी "बहन यशोदा! तू बड़ी सौभाग्यवती है। तू ने इतना सुन्दर बालक पाया है, कि इसे देख कर ही मन ललचाता है। तू ने इस सर्वविधि मनहर, अनुपम, सुन्दर और चचल बालक को जन्म देकर अपने को धन्य कर लिया है। देख इस के पंकज समान लोचन, हाथ पांव के चक्रादि लक्षण इसके आरक्त ओठ, आरक्त हथेलियां, और चंचलता कितनी मन लुभावनी है। सिर पर रत्न जटित टोपी, लाल झगला, नैनों में काजल यह सब इस पर कितना सजता है, बहन! तुम्हारा बालक तो बहुत ही सुन्दर है।"

इसी प्रकार देवकी यशोदा से कृष्णचन्द्र की प्रशसा करती रही। कितनी ही देर तक वह कृष्ण को देखती रही। पर नेत्र तृप्त न हुआ। उसने बारम्बर प्यार किया, मिठाई और फल दिए। और वहा से वापिस चली आई। इसी प्रकार वह प्रतिदिन गौ पूजन के बहाने आ जाती, कृष्ण को खिलाती और वापिस हो जाती। कृष्ण धीरे धीरे वृद्धि की ओर जाने लगे।

× × ×

कृष्ण दूध, दही बड़े चाव से खाते। यशोदा प्रतिदिन उन्हें मक्खन और दही खिलाती, पर वे तृप्त न होते। कभी कभी स्वय भी उठा कर खा लेते। यशोदा प्रतिक्षण उन्हें अपनी आँखों के सामने ही रखना चाहती, पर वे माता की नजर बचा कर घर से बाहर आकर खेलने लगते। सभी बालक उनके चारों ओर एकत्रित हो जाते, मनोविनोद व क्रीडा में कृष्ण को मुख्य स्थान देते और उनसे स्नेह करते। वे बालकों और वृद्धों सभी के प्रिय बन गए।

वैष्णवों में एक कथा आती है। बडी गूढ़ है वह कथा। कृष्ण को बालपन में मिट्टी खाने की लत पड़ गई। यशोदा जब भी उन्हें मिट्टी खाता देख लेती तुरन्त दौड़ कर मिट्टी मुंह से निकाल कर मक्खन दे देती। पर कृष्ण को जब अवसर मिलता पुन मिट्टी मुंह में रख लेते। एक दिन यशोदा ने उन्हें मिट्टी खाते देखा। वह दौड कर उनके पास पहुँची, उस ने कृष्ण का मुंह खोल कर देखा, मिट्टी निकालने लिए, पर जब उस ने मु ह खोला और अन्दर देखा तो क्या देखती है कि वहाँ सारा ब्रह्माण्ड है। सारा विश्व कृष्ण के मु ह में विद्यमान है। बस वह समझ गई कि कृष्ण साधारण बालक नहीं वह तो भगवान् है।

इस कथा का अर्थ है कि मनुष्य तुझ में ही सारा ब्रह्माण्ड है। तेरी आत्मा में सभी आत्माओं का रूप है।

+ + +

बालक कृष्ण ज्यों ही कुछ बडे हुए वे गौ वंश से बहुत प्रेम करने लगे। वे गौ की गर्दन से चिपट जाते, बछड़ों से क्रीड़ा करते। स्वय उन्हें चराने जंगल चले जाते। वहां सारे ग्वाले उनके चारों ओर एकत्रित हो जाते। वे सभी के सरताज बन गए, सभी के स्नेह पात्र।

बाल्यकाल की यूं तो कितनी ही कथाएं प्रचलित हैं। परन्तु कुछ

विशेष हैं। कहते हैं जब असुरो ने देखा कि कृष्ण कन्हाई संसार में जन्म ले चुके हैं और असुरो का साम्राज्य पृथ्वी पर नहीं चल सकेगा तो वे उन्हे समाप्त करने की युक्ति सोचने लगे।

एक दिन कृष्ण खेलते फिर रहे थे। शकुन और पूतना असुरी आईं, उन्होंने यशोदा का रूप धर लिया और स्तनो पर जहर लगा कर उन्हें पिलाया, कृष्ण ने बड़े चाव से दूध पिया। पर विष उनका कुछ न बिगाड़ सका। कहते हैं कृष्ण ने उनके स्तनों से उन की सारी जीवन शक्ति ही खींच ली और वे वहीं ढेर हो गई।

× × ×

एक बार कृष्ण बालको के साथ खेल रहे थे। उनकी गेंद पानी मे जा पड़ी। जल मे शेषनाग रहता था, किसी को उस जल से गेंद निकालने का साहस न हुआ। श्री कृष्ण तुरन्त जल में कूद गए। शेष-नाग उन्हे डसने के लिए आया, पर कृष्ण ने उन्हे नाथ लिया। उस की शैया बना कर खड़े हो गए। बालको और अन्य दर्शकों को इस अभूत पूर्व साहस को देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। पर कृष्ण खेलते हुए बाहर आये।

× × ×

उन्हे बांसुरी बजाने का बड़ा शौक था, इतना माधुय था उनकी बांसुरी की तान मे कि सभी नर नारी उस पर आसक्त हो जाते। उनकी गऊएं भी उनकी तान को पहचान गई थीं। बासुरी की तान पर ही गऊए दौड़ कर कृष्ण कन्हाई के पास आ जातीं। ग्वाले उन के संगी साथी थे, वे कृष्ण की सभी आज्ञाओ का पालन करते। ग्वाल कन्याए उनकी ओर आकर्षित थीं, वे सभी उनसे ठिठोलियां करती रहतीं। वे सभी को प्रिय थे इस लिए किसी की मटकी से मक्खन ले कर खा लेते। व्यंग्य और हास्य उनकी वाणी मे भरा था, पर उनके व्यगों से कोई भी रुष्ट न होती।

ग्वाले उनके चारों ओर नाचते गाते। कृष्ण उन्हे शिक्षा देते, वे निर्भीकता का पाठ पढ़ाते।



नेमिनाथ का जन्म

—o—

कार्तिक मास की कृष्णा द्वादश की रात्रि थी। शौरीपुर नरेश समुद्रविजय की महारानी सेवा देवी जी अपने शयन कक्ष में पलग पर निद्रामग्न थीं चारों ओर सुगन्धी फैल रही थी। पुष्प मालाओं से कमरा सजा हुआ था। बारीक रंग बिरगे परदे होले होले पवन के सहारे हिल रहे थे। महारानी सुख स्वप्न देखने लगीं। उन्होंने स्वप्नों में हाथी, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, फूलमाला, चन्द्र, सूर्य, ध्वज, कुम्भ, पद्म सरोवर क्षीर सागर, विमान, रत्न पु ज, निर्धूम, अग्नि देखी। विचित्र स्वप्न के भग होते ही उनकी आंखे खुली तो भोर हो चुकी थी, पूर्व दिशा लाल हो रही थी। वह तुरन्त उठी, दैनिक कर्मों से निवृत्त होकर समुद्रविजय के पास गई और उन्हे अपने स्वप्नों का वृत्तान्त कह सुनाया अन्त में बोली "भोर के समय आज इन अद्भुत स्वप्नो को देख कर मुझे न जाने क्यों स्वाभाविक प्रसन्नता हो रही है, जैसे मुझे कल्प वृक्ष मिल गया हो। आखिर इसका क्या कारण है ? आप गुणवान हैं, कुछ बताइये तो ?"

समुद्रगुप्त ने रानी के स्वप्नों का वृत्तान्त सुनकर कहा—"जहा तक मुझे याद पड़ता है, भगवान ऋषभवेद की पूज्य माता जी ने भी ठीक यही स्वप्न देखे थे, जिनका फल हुआ था कि वह भगवान की माता बनी थी। क्या वास्तव में तुमने भी यही स्वप्न देखे हैं ?"

'हाँ, हॉ, मैं अक्षरश. सत्य कह रही हूँ।" भगवान ऋषभदेव की माता के स्वप्नों की बात सुन कर आश्चर्य से महारानी ने कहा।

समुद्र विजय पुलकित हो गया। कहने लगा, महारानी ! तुम धन्य हो। यह स्वप्न बता रहे हैं कि हमारे घर तीर्थङ्कर जन्म लेगें। अहो भाग्य कि हमें एक पुण्यात्मा के पालन पोषण का सौभाग्य प्राप्त होगा। तभी ! खुशिया मनाओ, गाओ, मुक्त हस्त से दान दो। तुम्हारा नाम ससार में अमर होने वाला है, तुम भगवान की माॅ बनोगी।"

नृप हर्षातिरेक में कहता गया, और रानी के कानों मे जैसे उसने अमृत घोल दिया, वह गदगद हो गई, पर उसी क्षण वह बोल उठी—कहीं हमें कोई भूल न हो जाए। आप मुनिगण से तो पूछिए।"

"हॉ, ठीक है। तुम ठीक कहती हो, मुनिगण से पूछ लिया जाये।" प्रफुल्लित नप का हृदन बेकाबू हो गया था, हर्ष के मारे।- -वह तुरन्त

एकता, प्रेम, स्नेह, धर्म निष्ठा मे वृद्धि और समृद्धि के रूप में प्रकट हो रहा था।

धीरे-धीरे गर्भ के दिन पूरे हो गए। श्रावण शुक्ला पंचमी का दिन व्यतीत हो गया और रजनी की अवनिका धीरे से वसुन्धरा पर आ पड़ी। पर इस पीड़ा में एक अनोखा ही माधुर्य था। सारा राज-परिवार नवागन्तुक के स्वागत के लिए फड़कता दिल लिए प्रतीक्षा में था। अर्ध रात्रि के समय, चित्रा नक्षत्र में महारानी ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। आकाश से पुष्पों की वर्षा आरम्भ हो गई। स्वर्ग से छप्पन दिशा कुमारी आई और मांगलीक गीतों की स्वरलहरी वातावरण में घोल दी। इन्द्र सुधर्मा निज परिवार सहित समुद्र विजय के महल में आये। उन्होंने प्रभु के दर्शन किए और इन्द्र ने उन्हे उठा लिया, देवता उन पर चंवर ढोलने लगे। सुमेरगिरि पर लाकर उन्हे स्नान कराया गया और देवी, किन्नर वीरांगनाएँ और चौसठ महिलाओं ने भगवान् के चारों ओर नृत्य किया। कुछ ही देर मे सभी देवता अपनी अपनी रानियों के साथ प्रभु दर्शन को आ गए। एक विराट उत्सव मनाया गया। सभी ने नाच गाकर मंगल मनाया स्तुति की और एक विशाल महोत्सव के बाद उन्हे फिर मां की गोद मे ले जाकर रख दिया गया।

स्त्रियां मगल गान करने लगीं, समुद्र विजय ने रत्नों के थाल भर-भर कर वितरित करने आरम्भ कर दिये, चारों ओर हर्ष ठाठे मारने लगा। सारा नगर दुल्हन की भाति सज गया, नूपुरों की ध्वनि गूज उठी। राग, मस्त, गीत, मांगलीक भजन वातावरण में घुल गए। नगर के प्रत्येक नर नारी के मन में उत्साह और हर्प था शिशु में १००८ सुलक्षण थे। स्वर्ग मे भी पृथ्वी पर जन्म लिए भगवान् की चर्चा हो रही थी। विद्वानों ने उन्हे अरिष्टनेमि का नाम दिया। समुद्र विजय और रानी भी बालक के दिव्य कान्तिवान मुख को देख देखकर तृप्त न होते। अन्य लोगो की तो बात ही क्या। जो देखता, वह एक टक देखता ही रह जाता।

अरिष्टनेमि जी जिन का शरीर अलसी पुष्प के समान था, काल-चक्र के साथ-साथ वृद्धि की ओर पग बढ़ाने लगे। एक दिन प्रभु उपवन मे क्रीड़ा कर रहे थे। इन्द्र ने अवधि ज्ञान से पता लगाया कि

प्रभु कहाँ है, जब उसे उनकी क्रीडा का पता चला वह तुरन्त अन्य देवताओं के साथ भगवान् की बाल्य क्रीडा लीला देखने चल पड़ा। वहां आकर देवतागण उनके पास खेलने लगे। कोई अगुली पकड कर उन्हें चलाता, कोई उनके चारो ओर नाच कर उनका मन प्रसन्न करता, कोई हसता और हसाता, कोई गोदी लेकर कूदने फादने लगता। इन्द्र बोला—"प्रभु आयु में कितने ही छोटे सही, उन का शरीर कितना ही छोटा सही, पर उनमें है अपारबल।"

एक देवता को यह बात स्वीकार न हुई। उस ने प्रभु को गोद में उठा लिया और आकाश की ओर ले चला, स्वर्ग ले जाने के लिए। प्रभु ने जब अवधि ज्ञान से भाप लिया कि यह देव मुझे छलने आया है, उन्होंने पैर का अगूठा उसके ऊपर जमा दिया। जैसे पूरी पर्वत शिला ही उसके शरीर पर आ पड़ी हो, भार से देव दबने लगा और वह पीड़ा के मारे चीत्कार करने लगा। सोते सिंह को ठोकर मार कर जगाने और अहि के मुख में हाथ डालने वाले को पीड़ा के अतिरिक्त और क्या मिलता है, देव ने प्रभु को छेडा था वह भी अपने किए का फल भोगने लगा। देव के चीत्कार सुन कर इन्द्र दौड आया और बोला—प्रभो! आप इस मूर्ख को क्षमा कर दें। आप की शक्ति पर इस ने सन्देह किया। यह इस की भारी भूल थी।'

इन्द्र की विनती स्वीकार कर प्रभु ने पैर का अगूठा हटा लिया, तब देव के प्राण में प्राण आये। इन्द्र ने प्रभु को लाकर पालने में सुला दिया और सभी देवगण इन्द्र के नेतृत्व में भगवान् की स्तुति करके सुरधाम चले गए।×

×भगवान् नेमिनाथ जी का पूरा जीवन चरित्र जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में पढिये। कल्प सूत्र में भी यह वर्णन मिल सकता है।



❀बारहवां परिच्छेद❀

महाराणी गंगा

गगा के सुरम्य तट पर एक परम सुन्दरी, षोड्शी खड़ी थी कदाचित् गगा जल में अपनी अभूतपूर्व काति को देख कर स्वय अपने रूप पर ही मोहित हो रही थी।

राजा शान्तनु अनायास ही उस ओर निकल आये, और इस परम-सुन्दरी के रूप पर बिल्कुल उसी भान्ति मोहित हो गए जैसे कोई भ्रमर सुन्दर पुष्प पर। वे उस लावयण्वती सुन्दरी के रूप की चमक में खो गए और भूल गए कि वे आये हैं शिकार खेलने, और यहाँ तक एक मृग का पीछा करते-करते आ पहुँचे हैं। वे उस मृग को बिल्कुल ही भूल गए जिस का शिकार करने हेतु वे कितने ही समय से परेशान हो रहे हैं, वह मृग उन्हें बहुत पसन्द आया। उस की सुन्दरता उनके मन में खुब गई, उस की चचलता और उद्दण्डता ने उन्हे अपनी ओर आकर्षित किया और वे इस उच्छृङ्खल मृग का शिकार करने के लिए लालायित हो उठे। पर वह मृग भी पूरा नटखट निकला, महाराज शान्तनु को उस ने खूब छकाया, उन्हें अपनी तीर अन्दाजी पर अभिमान था पर वह मृग उछलता, कूदता बिजली की भान्ति इधर से उधर छलागें लगाता रहा।

महाराज शान्तनु को इतना भी अवसर न मिल सका कि वे धनुष पर तीर चढ़ा कर एक वार निशाना लगा सकें और मृग को बता दें कि उस का वास्ता एक महान् तीरन्दाज से पड़ा है; जिस शिकार पर

उनकी दृष्टि गई है उस का वध किए बिना वे माने नहीं। हां! एक वार उस मृग ने उनकी ओर याचना भरी दृष्टि से देखा अवश्य था, पर उस समय उस की आँखों में, प्यारे-प्यारे सुन्दर एवं भोले नेत्रों में, न जाने क्या था कि उस से प्रभावित होकर महाराज शान्तनु अपने धनुष पर तीर चढाना भूल गए थे। कदाचित् वह मृग उनसे प्राणों की भिक्षा मांग रहा था। कदाचित् उस ने कहा था "महाराज शान्तनु! मुझे भी अपने प्राणों से उतना ही मोह है जितना आपको अपने प्राणों के प्रति? आप ही बताइये कि कोई आप के प्राणों को हरने का प्रयास करे तो आपके हृदय पर क्या बीतेगी? यदि कोई आपसे अधिक बलवान काल रूप धर कर आये, जबकि नि शस्त्र हों, आ आक्रमण करे, जबकि आप निरपराधी हों, जबकि आपका उससे दूर का भी वास्ता न हो, तब आप उसे क्या कहेंगे, न्याय अथवा अन्याय। कदाचित् उसने आंखों ही आँखों में मौन प्रश्न किया था कि यदि कोई हत्या के अपराध में आपके दरबार में पहुँचता है, तो आप उसे प्राण दण्ड देते हैं; क्योंकि उसने हत्या जैसा जघन्य अपराध किया पर आप स्वयं निरपराधियों का वध करते फिर रहे हैं, आप अपने प्रति न्याय क्यों नहीं करते? उस मूक मृग ने कहा था राजन? आप में आत्मा है तो आत्मा मेरे अन्दर भी है? आप मेरा वध करके जितना जघन्य पाप कर रहे हैं विश्वास रखिये उसका आपको भयकर फल भोगना पड़ेगा? आप एक योग्य राजा हैं, अपने चरित्र को कलकित न कीजिए। क्षण भर में मानो यह सारी बातें उसने अपनी आँखों की मूक वाणी से कह डाली थीं। पर शान्तनु जिन में शिकार खेलने का अन्यायपूर्ण व नीचतम, दुर्व्यसन पड़ गया था कुछ न समझ पाए थे और उसका पीछा करते करते वे गगावट पर खड़ी एक सुन्दरी के मादक लावण्य के अनुरागी हो गए थे।

वे कुरुवश के एक प्रसिद्ध राजा थे, जो भगवान ऋषभदेव के पुत्र कुरु के नाम पर बने कुरुवश के द्वितीय रत्न हस्ती नृप द्वारा बसाये गए हस्तिनापुर के राज्य सिंहासन को सुशोभित करते थे। पदम रथ के पश्चात् क्रमानुसार पदमनाभ, महापदम, कीर्ति, सुकीर्ति, वसुकीर्ति, वासुकी, आदि बहुत से राजा हुए, उनके पश्चात् ही इस वश के

विख्यात नृप शान्तनु हुए थे। जो उस दिन मृग की कृपा से एक परम सुन्दरी के दर्शन कर रहे थे।

"सुन्दरी ! तुम कौन हो" महाराज शान्तनु ने उसे सम्बोधित करके प्रश्न किया।

सुन्दरी ने एक बार शान्तनु की ओर देखा और सकुचाई सी खड़ी रह गई।

"मैं आप ही से पूछ रहा हूँ ?" शान्तनु फिर बोले।

"मेरा नाम गंगा है" सुन्दरी ने उत्तर दिया। पर उसके मुख पर लालिमा उभर आई थी।

"ओह ! गगा कितना सुन्दर नाम, पवित्रता और गुणों को अपने उदर मे छिपाए, कलकल बहती गगा का स्त्री रूप।" शान्तनु ने प्रशंसा पूर्वक कहा—गंगा के मुख पर लज्जा ने लालिमा को और भी गहरा रग दे दिया। साक्षात् अप्सरा समान सुन्दरी को वह देखते ही रह गए। परन्तु गंगा वहाँ न ठहर सकी। वह एक ओर को चल पड़ी। शान्तनु के मुख से निकल पड़ा "सुन्दरी ! आपके पिता का नाम ?"

"जन्हू" गंगा ने बिना पीछे देखे ही उत्तर दिया और फिर पग उठाया।

"स्थान ?"

"रत्नपुर" सूक्ष्म सा उत्तर मिला।

दुष्ट परामर्श दाताओं के सयोग से उत्पन्न हुए शिकार के व्यसन के शिकार शान्तनु उसकी ओर भूखी नजरों से देखते रह गए और गंगा वहाँ से चली गई। जैसे कोई अप्सरा आकाश से अवतरित हुई और एक झलक दिखा कर वायु मे विलीन हो गई हो।

शान्तनु जो अप्सरा समान गंगा के रूप तथा यौवन के शिकार हो गए थे, उसी के सम्बन्ध में सोचनें लगे "काश ! मैं इस पवित्र एव गुणवती सुन्दरी को प्राप्त कर सकता।

"महाराज की जय हो" एक आवाज ने उनके विचारों की उड़ान को भंग कर दिया।

महाराज शान्तनु ने मुड़ कर देखा। एक व्यक्ति हाथ जोड़े खडा था। "कहो! क्या बात है ?" शान्तनु ने नवागन्तुक से पूछा।

"महाराज! निमित्त ज्ञानी की भविष्य वाणी कदाचित सत्य सिद्ध होना चाहती है—आप कदाचित उसी रूपवती सुन्दरी के सम्बन्ध में सोच रहे हैं, जो अभी अभी यहाँ खडी थी।" नवागन्तुक ने कहा।

"हाँ, हाँ, गगा के बारे में ही सोच रहा था। निमित्त ज्ञानी की वाणी क्या है ?" बिना यह पूछे ही कि आगन्तुक अनायास ही इस प्रकार की बाते क्यो कर रहा है, शान्तनु ने कहा। वे अपने मनोभाव छुपा न सके। यह था गगा के प्रति उनके हृदय में अकुरित अनुराग का प्रभाव।

'महाराज! गगा के पिता ने एक बार सत्यवाणी नामक निमित्त ज्ञानी से गगा के विवाह के सम्बन्ध में प्रश्न किया था, उन्हों ने बताया था कि गगा महाराज शान्तनु की धर्म पत्नी बनेगी" आगन्तुक, जो विद्याधर था ने उत्तर दिया।

महाराज शान्तनु को प्रोत्साहन मिला और उन्हे अपना स्वप्न साकार होता प्रतीत हुआ, उन्हें अपनी इच्छा कार्य रूप में परिणत हो जाने की आशा हो गई। वे तुरन्त रत्नपुर की ओर चल पड़े।

+ × ×

राजा होकर मैं आपके पास एक प्रार्थना लेकर आया हूँ" शान्तनु ने जन्हू से कहा।

"प्रार्थना कैसी ? महाराज! जन्हू बोला, आप आज्ञा दीजिए।"

"राज्य काज होता तो आज्ञा दी जा सकती थी, पर इस समय तो मैं अपनी एक इच्छा की पूर्ति के लिए आप के पास निवेदन करने आया हू" शान्तनु निवेदक की शैली में विनय पूर्वक बोले।

"कहिए! क्या आज्ञा है।"

"मैं आपकी पुत्री, रूपवती, गुणवती और पवित्र गगा को अपनी जीवन सहचरी बनाने को उत्सुक हूँ" शान्तनु ने अपनी इच्छा प्रगट की।

जन्हू ने कुछ देर तक विचार किया, उसके लिए इस से अधिक प्रसन्नता की और कौन सी बात हो सकती थी।

"आप की ओर से कुछ उत्तर नहीं मिला ?" शान्तनु ने कुछ देर तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त कहा।

"मेरी इच्छा का जहाँ तक प्रश्न है, आपको अपनी कन्या सौंप कर मै निश्चिन्त हो सकता हूँ। परन्तु ··महाराज बीच ही मे बोल पडे "परन्तु ··क्या ? कहिए।"

"परन्तु इसके लिये गंगा की स्वीकृति भी आवश्यक है" जन्हू विद्याधर बोला।

"तो फिर आप उससे परामर्श कर लीजिए" शान्तनु बोले।

थोड़ी ही देर के उपरान्त गगा उनके सामने थी। उसने महाराज को करबद्ध प्रणाम किया। कहने लगी—

"महाराज की दासी बनना मेरे लिए सौभाग्य की बात होगी। पर जब बाजार से दो पैसे की हंडिया को खरीदते समय भी उसे ठोक-बजा कर देख लेते हैं, तो यह तो जीवन साथी चुनने का प्रश्न है, एक गम्भीर एव महत्वपूर्ण प्रश्न है। आप भली प्रकार सोच समझ लीजिए। और मुझे भी यह अनुभव करने दीजिए कि आप मेरे रूप को ही नहीं चाहते, वरन मुझे हृदय से स्वीकार कर रहे हैं।"

"देवि ! मैं क्षत्रिय हूं। अपने वचन को प्रत्येक दशा में निभाने वाला क्षत्रिय ! मैं तुम्हे हार्दिक रूप से माँग रहा हूं" शान्तनु बोले।

"आपके महल में आपकी अन्य रानियाँ भी तो होंगी" गङ्गा ने प्रश्न किया।

"हाँ, एक रानी है, सबकी।"

"और उससे कोई पुत्र भी होगा ?"

"एक कुमार है, पारासर" शान्तनु बोले।

"फिर मैं आपको वर रूप में स्वीकार करके कैसे प्रसन्न रह सकती हूं। मेरी सन्तान तो पारासर की इच्छा की दास रहेगी" गङ्गा बोली।

"नहीं, मैं तुम्हें पटरानी बनाऊँगा और तुम्हारी सन्तान को ही राज्य सिंहासन मिलेगा। पारासर तो राज्यकाज में रुचि ही नहीं लेता

वह तो योगी जीवन का भक्त है, पता नहीं कब पंच महाव्रती साधु हो जाय" "मेरी एक शर्त स्वीकार कीजिए" गंगा बोली।

"एक वर दीजिए, जिसे मैं जब चाहे माँग सकूं। और यदि आप मेरे उस वर को पूर्ण न करेंगे तो अपनी सन्तान को लेकर मैं अपने पिता के यहा चली आऊगी।"

शान्तनु ने बात स्वीकार कर ली। गङ्गा प्रसन्नता पूर्वक विवाह के लिए तैयार हो गई, और कुछ दिनों बाद गगा पटरानी बन कर शान्तनु के महल में जा पहुची। शान्तनु गङ्गा जैसी परम सुन्दरी गुणवती और पवित्र नारी को पाकर बहुत सन्तुष्ट हुआ। आनन्द से दिन व्यतीत होने लगे। पारासर एक मुनि के उपदेश से प्रभावित होकर मुनि हो गया। और कुछ दिनों बाद गंगा से एक चांद सा पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। सारा महल दुल्हन की भांति सज गया। जन्म महोत्सव अभूत पूर्व रूप से मनाया गया। चारों ओर राग रग की महफिलें, दान और दावतों का जोर। जयजय कारो से सारा महल गू ज उठा। वाद्य मन्त्रों के स्वर वातावरण में घुल-मिल गए।

❀ गागेय कुमार ❀

नवोदित शिशु का गागेय कुमार नाम रखा गया। गगा जिस पर शान्तनु पूरी तरह आसक्त थे, पुत्ररत्न की प्राप्ति के उपरान्त, वैभवपूर्ण वातावरण में हर्ष पूर्वक रहने लगी। शान्तनु का प्रेम और भी अधिक हो गया, वे राजकुमार पर अधिकाधिक प्रेम दर्शाने लगे। पालन पोषण का सुन्दर प्रबन्ध कर दिया गया। प्रेम और सन्तोष के इस सयुक्त वातावरण में राजा और रानी, शान्तनु और गगा जीवन के स्वर्णिम दिन व्यतीत करते रहे। एक दिन कुछ मुनिगण के आगमन की सूचना मिली। शान्तनु गगा और गागेय कुमार को साथ लेकर दर्शनार्थ गए। मुनि ने अपने उपदेश मे कहा कि यह ससार असार है, इस में कृत्रिम सुख तो बहुत है, पर वास्तविक सुख, आत्मिक सुख आगार और अणगार धर्म का पालन करने से ही प्राप्त हो सकता है। यह वैभव और लक्ष्मी द्वारा खरीदा जाने वाला सुख तो क्षण भगुर है, आत्मा की

शुद्धि के लिए जिस ने संसार में कुछ नहीं किया उनका मनुष्य जीवन व्यर्थ ही गया समझो।

उन्होंने धर्म की व्याख्या करते हुए यह भी उपदेश दिया कि बिना अपराध के किसी भी जीव की हत्या करना, किसी निरपराधी को सताना भयंकर पाप है, अतः गृहस्थ जीवन में रह कर निश्चय हिंसा का तुरन्त त्याग कर देना चाहिए। मिथ्या शिक्षा और मिथ्या भाषण न कभी सुनना चाहिए और न अपने मुख से निकालना ही चाहिए। नीतिवान व्यक्ति को बिना दिए किसी की कोई वस्तु नहीं लेनी चाहिए। यह सब शील धर्म के ही सोपान हैं, जो कि शिरोमणि धर्म है, जो इसे धारण करता है वही पुण्यवान है। किसी व्यक्ति के उच्च आसन अथवा उच्च पद पर विराजमान हो जाने से ही वह महान् एवं श्रेष्ठ नहीं हो जाता। बल्कि श्रेष्ठता धर्म में निहित है। जो धर्म का पालन करता है वही श्रेष्ठ है, वही आदरणीय है।

मुनि जी के उपदेश का बालचन्द्र से वृद्धि की ओर जाते गांगेय कुमार पर बहुत प्रभाव हुआ और गंगा को तो जैसे सुजीवन पथ पर चलने के लिए दीप शिखा मिल गई थी उसका हृदय आलोकित हो गया। वापिस आकर गंगा ने विवाह से पूर्व शान्तनु द्वारा दिए गए वचन का स्मरण कराया।

शान्तनु ने कहा—"बोलो क्या मांगती हो?"

"आप निश्चय हिंसा का परित्याग कर दें।"

"अर्थात्?"

"अर्थात शिकार खेलने के दुर्व्यसन का परित्याग कर दें"

शान्तनु चक्कर में पड़ गए। बोले "तुम ने यह वर नहीं मांगा एक अंकुश मारा है।"

"आप अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करें।"

"मैंने यह थोड़े ही कहा था कि तुम मुझ पर प्रतिबन्ध लगा देना, जो वस्तु तुम मांगो मैं दे सकता हूँ। पर तुम तो मुझ से मेरी कला

छीनना चाहती हो। इस प्रकार पगु बनाने की इच्छा कर रही हो" शान्तनु ने तनिक उत्तेजित हो कर कहा।

"इस मे पगु होने की क्या बात है ? गगा ने कहा, क्या आप शिकार खेले बिना पगु हो जायेगे ? यह तो बड़ी थोथी दलील है। न शिकार खेलना कोई कला ही है।"

"तीरन्दाजी तो कला है।"

"हा है, पर क्या इसका अभ्यास जीव हत्या करके ही किया जा सकता है ?" गगा ने प्रश्न किया।

"और क्या ईंट पत्थरो पर बाण चलाने का अभ्यास करू ?"

"सीधी सीधी तरह आप कह दीजिए कि मैं अपना वचन पूर्ण नहीं करना चाहता और तुम्हे धोखा दिया गया था, वह वचन नहीं मन बहलावा था ?"

"गगा ! तुम मुझ पर सन्देह कर रही हो और मुझे झूठा कह कर मेरा अपमान कर रही हो" शान्तनु बिगड पडे।

"महाराज ! इस में बिगडने की क्या आवश्यकता है। यदि सत्य से आप का अपमान ही होता हे तो इस के कारण भी आप ही हैं" गगा ने तनिक आवेश मे आकर कहा।

"गगा ! मुझे आशा नहीं थी कि तुम मेरा इस प्रकार उपहास करोगी, इस प्रकार अपमानित करने का प्रयत्न करोगी" शान्तनु अधिक उत्तेजित हो गए। "आप तो क्षत्रिय हैं, गगा ने तुनक कर कहा, क्षत्रियों की रीति और परम्परा को तोड कर आप अपना मान चाहते है और वह भी एक सन्नारी द्वारा ?"

बात बढ गई। शान्तनु रुष्ट हो गये और गगा भी। वह अपने पूर्व निश्चयानुसार गागेय कुमार को साथ लेकर अपने पिता के यहाँ चली गई। इस से शान्तनु क्षुब्ध हो गए।

× × ×

शान्तनु सिंहासन पर विराजमान थे। कई अनुचर वहाँ पहुच गए। उचित सम्मान प्रदर्शित करते हुए उन्होंने महाराज की जय हो का नाद बुलन्द किया।

"आइये, आइये ! कहो कुशल तो है ?" महाराज शान्तनु ने पूछा।

'महाराज की दया है तो अकुशलता का प्रश्न ही कहां है ?" सभी बोले।

महाराज के अधरों पर मुस्कान खेल गई।

"महाराज ! महल की चहार दीवारी में तो आप का मन सुमन कुम्हला सा गया होगा, कहाँ आप बन उद्यानों के भ्रमण के शौकीन। कहाँ यह बन्दी समान जीवन" अनुचरों ने कहा—

"हां, हम भी कहीं भ्रमरणार्थ जाने के इच्छुक हैं। पर कहाँ जायें ?" शान्तनु बोले।

"महाराज ! हस्तिनापुर से कुछ दूर नदी तट पर विशाल उद्यान है, बडा ही सुरम्य स्थान है, अनुचर कहने लगे, उधर चलें तो प्राकृतिक सौन्दर्य भी देख सकेंगे, आप का मन भी बहलेगा, और इच्छा हो तो शिकार भी अच्छा मिल सकेगा, बहुतेरे पशु पक्षी वहाँ मिलते हैं। आप की इच्छा के अनुरूप ही वहाँ सब कुछ है।"

"नहीं भाई ! हम शिकार नहीं खेलना चाहते। इस एक बात से मेरा गृहस्थ जीवन ही कंटक पूर्ण होता जा रहा है।" शान्तनु ने कहा।

"महाराज ! शिकार खेलना तो राजाओं की प्रिय क्रीड़ा है। इसे त्याग कर क्या मक्खी मारा कीजिएगा" एक अनुचर बोला।

"महाराज ! हर अच्छी वस्तु, अच्छे कार्य और अच्छी क्रीड़ा को बुरा बताने वाले संसार में मिल ही जाते हैं। कहीं कौवों के कहने से हंस अपना स्वभाव थोड़े ही बदल देता है ?"

दूसरा बोल पड़ा।

और फिर तीसरे ने भी कहा "महाराज ! इस प्रकार हिंसा और अहिंसा का आप विचार करेंगे तो आप अपने राज्य काज भी नहीं निभा सकेंगे। यह तो मुनियो के चोचले हैं, जिन्हें न कुछ करना है न धरना। आप तो राजा हैं। राजा तो भगवान् का दूसरा रूप होता है।'

इसी प्रकार सभी अनुचर पीछे लग गए और महाराज शान्तनु उन के साथ हो लिए। उद्यान मे पहुंचे। पहले प्राकृतिक सुरम्य दृश्यों को देखते हुए घूमते रहे। अनायास ही सामने से एक उछलता हुआ मृग आ निकला।

"यह दुष्ट समझता है इधर कोई तीरन्दाजी में निपुण व्यक्ति

नहीं है, मूर्ख कैसे उछलता हुआ निकल रहा है, बडा गर्व है इसे अपने पर ?" एक अनुचर बोल पड़ा ।

"अजी ! अगर महाराज ने धनुष उठा लिया तो सारी उछल कूद क्षण भर में भूल जायेगा ।" दूसरा बोला, और तीसरे ने तीर ठीक निशाने पर मारते हुए कहा, "महाराज का एक ही बाण देखिए कैसे इसे शान्त करता है ।"

और महाराज के हाथ में उसी क्षण धनुष आ गया, चल पड़े उस के पीछे । निकट ही में गांगेय कुमार घूम रहे थे, ज्यों ही सामने महाराज शान्तनु को धनुष बाण सम्भाले मृग का पीछा करते उन्हें देखा, निकट आकर बोल उठा "महाराज ! इस मृग बेचारे ने भला आप का क्या बिगाड़ा है, निरपराधी के प्राण लेते आप को तनिक लज्जा नहीं आती, आप के हृदय की करुणा और दया क्या सभी लुप्त हो गई ?"

महाराज ने मृग पर ही दृष्टि जमाए हुए कहा "किसी के काम मे विघ्न डालते हुए तुम्हे लज्जा नहीं आती ?"

"मेरा कर्तव्य है कि अनिष्ट और अन्याय करते हुए मनुष्य को रोकूं ।" गांगेय कुमार बोला।

महाराज शान्तनु को क्रोध आ गया, उन्होंने उसकी ओर मुख करके कहा "मेरे रास्ते में रोढ़ा मत बनो । अपनी खैर चाहते हो तो यहाँ से चले जाओ । मै अपने काम में किसी का विघ्न सहन नहीं कर सकता।"

"तो भी सुन लीजिए, गांगेय कुमार उत्तेजित होकर बोला, यहाँ आप शिकार नहीं खेल सकते ।"

महाराज शान्तनु के नेत्रों में लाली दौड़ गई "हट जाओ कहीं ऐसा न हो कि मृग के बजाय मुझे तुम्हीं पर निशाना साधना पडे ।"

युवक गांगेय कुमार की रगों में दौड़ते रक्त में गर्मी आ गई । उस का मुखमण्डल जलने लगा "आप यह मत भूलिये कि मैं क्षत्रिय पुत्र हूँ । मैं किसी की चुनौती सहन नहीं कर सकता ।"

"—और मैं तुम जैसे सिर फिरों को बाणों से बींध डालने में अभ्यस्त हूँ" महाराज शान्तनु ने गरज कर कहा ।

दूसरी ओर से गांगेय कुमार भी मुकाबले के लिए तैयार हो गया,

बातों बातों में ही ठन गई। दानों ओर से एक दूसरे को धूली धूसरित करने की डींगें हॉकी जा रही थीं। गागेय ने धनुष उठाया और नृप की ध्वजा गिरा दी। दूसरे बाण से सारथी को मूर्च्छित कर दिया। शान्तनु तीर पर तीर चलाने लगे, पर गागेय उनके तीरों को अपने बाणों द्वारा बीच मे ही गिरा देते। इतने ही मे शान्तनु के एक अनुचर ने कुमार को घेर लिया, बलिष्ट गागेय शूरवीर ने उसे पछाड़ दिया, शान्तनु क्रोधित हो अपनी पूरी शक्ति से धनुष पर बाण चढ़ाने लगे। कुमार ने तुरन्त ऐसा तीर मारा कि उनके धनुष की डोरी कट गई। ज्यो ही गागेय कुमार ने महाराज शान्तनु पर वार करना चाहा, पीछे से आवाज आई "गांगेय! ठहरो" यह थी एक स्त्री कण्ठ से निकली आवाज। गांगेय ने पीछे मुड़ कर देखा, गगा चली आ रही थी। गंगा जो उनकी मा थी और महाराज शान्तनु ने गांगेय का नाम सुना और गगा को देखा तो आश्चर्य चकित रह गए, यह मेरा ही पुत्र है। ओह! इतना शूरवीर और रणवीर महाराज शान्तनु सोचने लगे।

"क्या है माँ ?" गांगेय को उस समय माता द्वारा इस प्रकार रोका जाना रुचि कर न लगा था।

"बेटा, यह तुम क्या कर रहे हो ?" दूर से आती गगा ने पुकार कर कहा।

"मां! यह श्रीमन् निरपराधी पशुओ का वध कर रहे हैं, मैंने इन्हे शिकार खेलने को मना किया तो मुझ पर धौंस जमाने लगे। अब देखता हूँ इनका पौरुष जिस पर इन्हें अभिमान है।" गागेय कुमार ने कहा।

गगा पास आ गई थी, उसने अपने स्वामी को प्रणाम किया, गागेय के नेत्रों मे आश्चर्य खेल गया।

'बेटा! आप ?—आप भी निरपराधी का वध करते हैं।" गगा ने आश्चर्य से कहा।

शान्तनु ने गागेय को छाती से लगा लिया और उसकी वीरता की भूरि भूरि प्रशसा की।

"महाराज! देखा इस दुर्व्यसन का परिणाम! आज मै यहां ठीक समय पर न पहुँचती तो या तो मैं विधवा हो जाती अथवा गोद खाली

हो जाती, निपूती बन जाती। मेरा सुहाग जाता या गोद खाली हो जाती।"

"हां देवी! तुमने आज एक भयानक काण्ड को होने से बचा लिया।" शान्तनु ने कृतज्ञता प्रगट की। गांगेय अपनी माता के साथ चला गया और हृदय में एक पीड़ा लिए शान्तनु अपने महल को लौट आये।

कहते हैं कुछ दिनों पश्चात् शान्तनु ने अपने शूरवीर महान बलवान शुद्ध विचार और पवित्र चरित्र गांगेय को अपने पास बुला लिया।

× × + +

गांगेय की भीष्म प्रतिज्ञा

नृप शान्तनु एक दिन यमुना की ओर जा निकले। तट पर खड़ी एक परम सुन्दरी कन्या पर उनकी दृष्टि गई। साक्षात देव लोक की अप्सरा समान वह कन्या सौंदर्य में अद्वितीय थी। महाराज शान्तनु ने उसे देखा तो उस के प्रति अनुराग ने उनके हृदय में जन्म लिया और वे चित्र लिखित से उसकी ओर टकटकी लगाए देखते रहे। न जाने कितनी देरी तक वे उसी के अंगों पर दृष्टि जमाए रहे। मद भरे नयन, गुलाबी कपोल, पुष्प पखुड़ियों से आरक्त अधर, गोल चेहरा, नितम्बों से नीचे तक लटके गहरे काले केश, गर्वित कुच, जिनकी नाक बाण की भांति उभरी, पतली सी मुट्ठी भर कर, सभी कुछ शान्तनु के विषयोन्माद को उत्तेजित करने के लिए पर्याप्त था। वह एक परम सुन्दरी थी, ऐसी सुन्दरी का रूप कितने ही लोगों के चित्त को चचल करने में सफल हो सकता था। सुन्दरी ने तो इन्द्र तक को अपने वश में किया, फिर मनुष्य की तो बात ही क्या। शान्तनु उसके मदवाले यौवन का तीर खाकर घायल हो गए। एक नाविक से पूछा "यह सुन्दरी कौन है?" "राजन्! यह कन्या मेरी है, इसका नाम सत्यवती है।'

"नाविक की कन्या और इतनी रूपवती! आश्चर्य की बात है" शान्तनु सोचने लगे। उन्होंने अपने मंत्री को एकान्त में कुछ समझाया और मंत्री से नाविक को कहलाया कि वह सत्यवती का विवाह महाराज शान्तनु के साथ कर दे।—

नाविक ने उस समय कोई उत्तर न दिया।

महाराज शान्तनु उसके मकान पर गए और स्वयं उसका विचार पूछा।

नाविक बोला "महाराज! आपके साथ मुझे अपनी कन्या का विवाह करने में कुछ आपत्ति है।"

"वह क्या ?"

"सत्यवती को एक नाविक की कन्या समझ कर आप उसे महल में उचित आदर भी दे सकेंगे, इसमें मुझे सन्देह है" नाविक बोला।

"तुम विश्वास रखो! सत्यवती हमारी रानी बनने के पश्चात रानी ही समझी जायेगी। उसका "मान हमारा मान होगा" शान्तनु ने विश्वास दिलाया।

"पर महाराज! सत्यवती की सन्तान को तो आपके पुत्र गांगेय कुमार का दास ही बन कर रहना पड़ेगा" नाविक बोला।

तो क्या तुम यह चाहते हो कि सत्यवती से उत्पन्न हुए पुत्र को ही युवराज का पद मिले ?"

महाराज शान्तनु ने प्रश्न किया।

"जी हाँ, आप मुझे क्षमा करें। सत्यवती का इसी शर्त पर आप से विवाह सम्पन्न हो सकता है" नाविक ने उत्तर दिया।

"क्या सत्यवती और उसकी सन्तान के लिए इतनी ही बात पर्याप्त नहीं है कि वह और उसकी सन्तान नाव खेने का कार्य न करके राज महलों का सुख भोगें" महाराज शान्तनु की बात में एक व्यंग छिपा था।

"महाराज! दासता चाहे किसी की हो, दासता ही है। पक्षी को सोने के पिंजरे में रखिये या लकडी के में, पर है वह बन्दी ही और किसी ने कहा है:—

मिले खुश्क रोटी जो आजाद रहकर।
वह है खौफ़ व जिल्लत के हलवे से बेहतर॥

नाविक की बात सुनकर महाराज शान्तनु को दुख हुआ वे बोले "तुम उन्हें दास कैसे कह सकते हो। राज्य परिवार का हर सदस्य ही राजा होता है, यह बात दूसरी है कि राज्य सिंहासन पर एक ही बैठता है। सत्यवंती के पुत्र भी तो गांगेय कुमार के भाई ही होंगे। उनकी दासता का तो प्रश्न ही नहीं उठता"

"महाराज! सम्भव है आपकी ही बात सच हो, नाविक कहने लगा, पर भविष्य के बारे में कौन जानता है? क्या पता गांगेय कुमार का व्यवहार उनके साथ कैसा हो। जब तक आप जीवित हैं तब तक वे राज कुमारों जैसा सुख भोगेंगे पर आपके बाद की बात तो अनिश्चित है। यह भी तो हो सकता है कि गांगेय कुमार उन्हें महल से ही निकाल बाहर करे।"

"तुम कैसी बातें कर रहे हो, मेरा गांगेय ऐसा कदापि नहीं हो सकता।" महाराज शान्तनु ने दृढ़ शब्दों में कहा।

"मनुष्य को बदलते देरी नहीं लगती महाराज!"

"पर मैं जो विश्वास दिलाता हूँ? क्या मुझ पर तुम्हे विश्वास नहीं है" शान्तनु ने जोर देकर कहा।

"आपका तो हमें विश्वास है पर क्षमा कीजिए राजन् आप भविष्य की गारटी कैसे दे सकते हैं। आप अमर तो नहीं हैं"

"मुझे दुख है कि मैं गांगेय को युवराज पद दे चुका हूँ और अब मैं उस निर्णय को बदल नहीं सकता" शान्तनु ने विवशता प्रकट की।

"तो मुझे भी बहुत दुख है कि मैं सत्यवती को इस प्रकार आपको नहीं दे सकता। माना कि वह प्रतिदिन नाव चलाती है, परिश्रम करके रोटी कमाती है, और यदि किसी नाविक के घर गई तो इसकी सन्तान को परिश्रम करके रोटी कमानी होगी। पर उनके साथ केवल इस लिए तो उपेक्षा भाव नहीं बरता जायेगा कि वे सत्यवती के बालक हैं, उन्हे इस बात का तो दण्ड भोगना नहीं पड़ेगा कि उन्होंने सत्यवती जैसी रूपवती की कोख से जन्म लिया है। सत्यवती का पुत्र केवल इस लिये तो अपने पिता की सम्पत्ति से अधिकार च्युत नहीं होगा क्योंकि वह एक ऐसी मां की सन्तान होगा जिसका विवाह ऐसे पति से हुआ जो जिसके घर में पहले से एक नारी थी और इसी कारण उसकी सन्तान को पिता की सम्पत्ति पर अधिकार मिल गया। सत्यवती का विवाह यदि किसी श्रमजीवि से होगा तो उसकी सन्तान को किसी दूसरे को देख कर हाथ नहीं मलने होंगे, आहें नहीं भरनी होंगी" नाविक ने लम्बा-सा एक भाषण दे डाला।

शान्तनु ने बहुत समझाया, बहुतेरी दलीलें दीं, कितने ही दृढ़

शब्दों में विश्वास दिलाया कि सत्यवती की सन्तान के साथ अन्याय नहीं होगा, पर नाविक न माना। महाराजा निराश लौट आये। पर उनकी निराशा उनके मुख मण्डल पर मलीनता के रूप मे पुत गई थी। उनकी गर्दन लटकी हुई सी थी। उनके नेत्रो में दुख झांक रहा था, वे व्याकुल थे। महल में आने पर, वैभव के समस्त साधन उपलब्ध होने पर और मन लुभावने कार्यक्रम चलने पर भी उनको शान्ति न मिली। वे उदास थे, रह रह कर दीर्घ निश्वास छोड़ रहे थे। उनकी आवाज डूबी हुई सी थी। उनका उत्साह लुप्त हो चुका था। वे कृत्रिम हसी हसने की चेष्टा भी करते तो उनके हृदय की पीड़ा मुह पर प्रतिविम्बित हो जाती। गांगेय ने जब पिता जी को देखा वह समझ गया कि कोई बात है जो उनके मन में काटे की भॉति खटक रही है, जिसके कारण वे व्याकुल है। "क्या किसी ने उनकी अवज्ञा की है? क्या किसी ने कोई धृष्टता की है? क्या कोई उपद्रव हुआ है?" कितने ही प्रश्न उसके मस्तिष्क में उठे। उससे न रहा गया, सुपुत्र था वह, पिता के मुख को मलिन देखना उसे सहन नहीं था। पूछ बैठा "पिता जी! मैं देख रहा हू कि आप कुछ उदास तथा व्याकुल से हैं। क्या कारण है?"

शान्तनु ने पुत्र से अपने मनोभाव छुपाने का प्रबल प्रयत्न किया, और अधरों पर कृत्रिम मुस्कान लाने की चेष्टा करते हुए वे बोले "नहीं तो ऐसी बात तो नहीं है। हम तो अन्य दिन की भाति ही हैं, तुम्हे भूल हुई है।"

"नहीं पिता जी, आप तो वास्तव मे कुछ दुखी से प्रतीत होते हैं। आप मुझे बताइये। क्या कारण है आपकी व्याकुलता का। फिर यदि मैं आपकी व्याकुलता को किसी भी प्रकार दूर कर सका तो अपने को धन्य समझू गा" गांगेय कुमार बोला "गागेय! तुम्हे भूल हुई है, मुझे कोई भी तो चिन्ता नहीं, दुख भला किस बात का हो सकता है?"

शान्तनु ने मनकी बात न बताई। पर गांगेय भाप गया कि बात कुछ अवश्य है पर पिता जी बताना नहीं चाहते। उसने मत्री जी से महाराज के व्याकुल होने का कारण पूछा। मत्री जी ने साफ साफ सारी बाते बता दीं। गागेय ने सारी कहानी सुन कर कहा "इतनी-सी

बात के लिए पिता जी इस प्रकार तडप रहे हैं ? यह तो बहुत ही छोटी-सी बात है। मैं अभी इसको सुलझाये देता हूँ" इतना कह कर गांगेय यमुना तट की ओर चल पडे।

× × ×

"आज आपने महाराज का अनादर करके अच्छा नहीं किया उनका दिल तो टूक हो गया है और वे बुरी तरह व्याकुल हैं। कन्या का आपको विवाह तो करना ही है फिर महाराज के साथ विवाह करने मे दोष ही क्या है ?" गांगेय ने नाविक से कहा।

"कुमार ! मैं स्वय बहुत लज्जित हूँ कि महाराज की इच्छा पूर्ण नहीं कर सकता" नाविक ने खेद प्रगट करते हुए कहा।

"क्यों ?"

"कुमार ! जो सौत का पुत्र होते हुए भी अपनी कन्या को देता है वह जानबूझ कर उसे और उसकी भावी सन्तान को अंधेरे कुए मे धकेलता है—तुम्हारे जैसे पराक्रमी, बुद्धिमान और अनेक विद्याओं में निपुण सौत पुत्र के होते, तुम्हीं बताओ, मेरी कन्या की सन्तान कैसे सुखी रह सकती है ? क्या वन में गर्जना करते हुए सिंह के होते कभी मृग गण सुखी रह सकते हैं ? कदापि नहीं। राजकुमार ! मेरी कन्या से जो सन्तान होगी वह कभी राज्यपाट को नहीं प्राप्त कर सकती प्रत्युत उसे आपत्ति में ही फस जाना पडेगा।" नाविक ने कहा।

"आपने जो कल्पना की है, वह भ्रम मात्र है। राजकुमार कहने लगे, हमारे वश का अन्य वशों से भिन्न स्वभाव है। कौवों और हसों को समान मत समझो। हमारे वशजों के विचार ही दूसरों से भिन्न है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सत्यवती को अपनी माता से अधिक आदर की दृष्टि से देखूगा।"

"केवल आदर सम्मान से ही क्या होता है ? मैं तो सत्यवती की सन्तान के सम्बन्ध मे भी चिन्तित हूँ" नाविक ने कहा।

"इसके लिए भी आप चिन्ता न करें, गांगेय कुमार बोले, मैं आपके सम्मुख हाथ उठाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि सत्यवती की भावी सन्तान ही राज्यपाट की भोक्ता होगी, मैं नहीं—अब तो आपको विश्वास आया।"

"आपका तो मुझे विश्वास पहले से ही है, वह विश्वास दृढ़ अब हो गया, नाविक बोला, पर इसकी क्या गारंटी है कि आपकी सन्तान आपके पदचिन्हों पर चलेगी ? कहीं आपकी सन्तान ने उनसे राजपाट छीन लिया तो क्या होगा ? क्योंकि वह कैसे दूसरे के राज काज को सहन कर सकेगी ?—नहीं कुमार मेरी कन्या की सन्तान निष्कंटक राज्य के सुख को न भोग पायेगी।"

चतुर गांगेय नाविक के मनोगत भाव ताड़ गये। और बोले "मैं सुपूत हूँ, और एक सुपूत अपने पिता को सन्तुष्ट एव सुखी देखने के लिए अपने प्राणों तक की बलि दे सकता है—मैं आपकी इस चिन्ता को भी अभी ही दूर किये देता हूँ।" इतना कह कर वे रुके और पहले आकाश फिर पृथ्वी और फिर चारों दिशाओं की ओर मुख करके हाथ ऊचा उठा कर बोले "आज मैं आकाश, पृथ्वी, चारों दिशाओं, उपस्थित जीवों को साक्षी बना कर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं आजीवन ब्रह्मचारी रहूंगा" इतनी कठोर प्रतिज्ञा की, इतना कठिन व्रत लिया, गांगेय ने कि सुन कर सभी लोग आश्चर्य चकित रह गए। गांगेय कुमार इस भीष्म प्रतिज्ञा के उपरान्त ही भीष्म पितामह के नाम से पुकारे गए।

"एक बात और ?" नाविक ने कहा, आप जीवन भर सत्यवती की सन्तान का पक्ष लेंगे ? नाविक की इच्छा पूर्ति के लिये गांगेय कुमार ने यह भी प्रतिज्ञा की। नाविक को पहले तो यह विचित्र सी प्रतिज्ञा लगी और फिर अपनी सफलता पर बहुत ही प्रसन्न हुआ। गद्‌गद् होकर वह बोला "राजकुमार! तुम वास्तव मे सुपुत्र हो, तुम जैसे गुणवान, पितृभक्त और आदर्श पुत्र पर महाराज जितना भी गर्व करें कम ही है। तुमने आज पितृभक्ति का उच्चादर्श प्रस्तुत कर ससार में अपने को अमर कर लिया। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। आओ इस प्रसग में मैं तुम्हें एक कहानी सुनाऊं।"

इतना कह कर वह गांगेय को कहानी सुनाने लगा वह कहानी थी सत्यवती की।

सत्यवती

बहुत दिनों की बात है। एक दिन नाव खेते खेते मैं बुरी तरह थक गया और विश्राम करने हेतु यमुना तट पर एक अशोक वृक्ष के नीचे

चला गया। वहाँ जाकर क्या देखता हूं? कि एक उसी समय उत्पन्न हुई कन्या पड़ी है। बड़ी ही सुन्दर चन्द्रमा की छवि उसके मुख पर विद्यमान थी। मेरे कोई सन्तान नहीं थी। इसलिए निशि दिन सन्तान की चिन्ता में ही घुलता रहता था, इतनी सुन्दर कन्या को देख कर मेरा मन प्रफुल्लित हो गया। मुझे अनायास ही एक अनुपम रत्न मिल गया था। उस कन्या को मैंने उठा लिया, प्यार किया। इतने में ही आकाश में एक आवाज सुनाई दी, "रत्नपुर के राजा रत्नागद की रानी रत्नवती के गर्भ से इस कन्या का जन्म हुआ है। नृप रत्नागद का शत्रु एक विद्याधर इसे उठा कर यहां डाल गया है। इसका लाड प्यार से पालन पोषण करो। एक दिन यह कन्या कुरुवंश की स्त्री रत्न बनेगी।"

मैंने आकाश वाणी सुनी। अपने घर के निस्सतान पन को दूर करने के लिए मैं उसे अपने घर ले गया और वहां बड़े लाड़ प्यार से पाला सत्यवती वही कन्या है। यह राज परिवार की सन्तान है, मैंने तो बस इस का पालन पोषण भर किया है— •

गांगेय कुमार ने यह कथा सुनी तो बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें इस बात का सन्तोष हुआ कि उनके पिता एक ऐसी कन्या से विवाह कर रहे हैं जो किसी राज्य परिवार का का ही रत्न है।

नाविक सत्यवती का विवाह शान्तनु से करने को तैयार हो गया। इस शुभ सन्देश को लेकर गांगेय कुमार (भीष्म) अपने पिता के पास गए, उनके चरण छू कर वह शुभ सन्देश सुनाया। राजा को आश्चर्य हुआ कि नाविक विवाह के लिए तैयार कैसे हो गया। उन्होंने पूछ ही तो लिया कि नाविक की शंकाओं का समाधान कैसे हुआ। तब गांगेय कुमार (भीष्म) ने अपनी भीष्म प्रतिज्ञा की बात कह सुनाई। शान्तनु को भी प्रतिज्ञा पर विस्मय हुआ उनके नेत्रों में अश्रु बिन्दु छलछला आये। छाती से लगा कर बोले "गांगेय! तुमने अपने पिता के लिए इतनी भीष्म प्रतिज्ञा की है कि, मैं आज तुम्हारे सामने तुच्छ रह गया, मेरी प्रसन्नता के लिए तुमने अपने भावी जीवन को एक कठोर व्रत में बांध दिया मैं तुम्हारे इस त्याग के बोझ से दबा जा रहा हूँ। मैं कभी उऋण नहीं हो सकूंगा।"

"नहीं पिताजी! यह तो मेरा कर्तव्य था। आप मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं अपने व्रत को दृढता पूर्वक निभा सकूं"

"बेटा! तुम में आत्मबल है। तुम महान हो। तुम्हे किसी के आशीर्वाद की आवश्यकता नहीं"

शान्तनु का विवाह इसके उपरान्त बहुत ही ठाट बाठ से सम्पन्न हुआ। सत्यवती को प्राप्त करके महाराज शान्तनु इतने प्रसन्न हुए मानो उन्हें स्वर्ग मिल गया हो। उन्होंने सोचा कि जब गगा का पुत्र इतनी भीष्म प्रतिज्ञा कर सकता है तो क्या मै शिकार न खेलने की प्रतिज्ञा नहीं कर सकता? अवश्य कर सकता हूं। क्यो न इस प्रतिज्ञा के द्वारा पवित्र गगा को भी अपने महल मे ले आऊं? उन्होंने यही सोच कर शिकार न खेलने की प्रतिज्ञा की। किन्तु गंगा उस समय तक जिनार्चन में लग निवृत्तिभाव धारण कर चुकी थी।
ले आये।

सत्यवती से दो वीर पुत्रो ने जन्म लिया। जिनमे से एक का नाम चित्रॉगद और दूसरे का विचित्र वीर्य था। उन दोनो राजकुमारों का पालन पोषण विशेष ठाठ बाट के साथ हुआ ताकि सत्यवती को कभी यह शिकायत न हो सके कि उसके पुत्रो के साथ उपेक्षा भाव बरता जा रहा है।

महाराज शान्तनु आयु के अन्तिम चरण मे श्रेष्ठ एव पवित्र जीवन व्यतीत करने लगे। उन्होंने समस्त प्रकार के व्यसन त्याग ही दिये थे वह धर्म ध्यान मे रहने लगे और उन्हीं त्यागमय कार्यों के द्वारा वे इहलोक लीला समाप्त करके स्वर्ग मे गए।

भीष्म का भ्रातृत्व

भीष्म प्रतिज्ञा के उपरान्त गांगेय कुमार (भीष्म) ने अपना जीवन त्यागमय बना लिया, वे गृहस्थ जीवन मे रहते हुए भी धर्म ध्यान और सत्कर्मों में अपना समय व्यतीत करते। महाराज शान्तनु की मृत्यु के उपरान्त भीष्म की प्रतिज्ञा के अनुसार सत्यवती के पुत्र चित्रॉगद को को राज्यसिंहासन पर बैठाया गया। वह सिंहासन पर बैठते ही अपने राज्य की सीमाओ का विकास करने और भरत क्षेत्र मे एक छत्र राजा कहलाने के लिए उत्सुक रहने लगा। उसने नीलॉगद भूप पर आक्रमण करने का बीडा उठाया। भीष्म को जब इस निर्णय की सूचना मिली, उन्होंने तुरन्त चित्रॉगद को परामर्श दिया कि चाहे जो हो युद्ध लिप्सा को त्याग दो। रक्त की नदियॉ बहाने में कोई लाभ नहीं है। शॉति पूर्वक राजपाट सम्भालो शुभ कर्मों से अपनी कीर्ति का प्रसार करो।

पर चित्रांगद न माना और उसने स्पष्ट कह दिया कि आप हमारे भाई हैं। महान बलवान और रण कौशल में निपुण हैं, हमारा साथ दीजिए, वरना शाँत रहिए।

चित्रांगद भीष्म के परामर्श को ठुकरा कर नीलांगद पर जा चढ़ा। घमासान युद्ध हुआ और उस युद्ध में ही नीलांगद ने चित्रांगद को मार डाला। भीष्म को यह सुनकर बहुत दुख हुआ। किन्तु उन्हें चित्रांगद की आत्मा सहायता के लिए पुकार रही है। चित्रॉगद के हत्यारे से बदला लेने के लिए जो पुकार आई, उस पर वे चुप न रह सके और आगे बढ़ते नीलॉगद के विरुद्ध जा डटे। भीष्म तथा नीलॉगद के मध्य भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में विजय भीष्म की ही हुई और नीलाँगद युद्ध के में ही काम आया। इस प्रकार भाई की हत्या का बदला लेकर उन्होंने भ्रातृ भक्ति का आदर्श उपस्थित किया।

राज्य सिंहासन पर विचित्र वीर्य को बैठा दिया गया। और भीष्म अपने जीवन को साधारणतया निभाते रहे। समय समय पर जब कभी आवश्यकता होती तो वे विचित्र वीर्य को परामर्श देते और सदा ही सहायता के लिए भी तत्पर रहते। वे अपने लघु भ्राता के मान को अपना मान समझते और उसकी रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते।

काशी से सूचना मिली कि काशी नृप अपनी अम्बा, अम्बिका, और अम्बालिका, तीनों कन्याओं का स्वयंवर रचा रहा है। सभी राजाओं तथा राजकुमारों को स्वयंवर में निमन्त्रित किया गया है। पर हस्तिनापुर सन्देश नहीं भेजा गया। विचित्र वीर्य ने भीष्म को बुला कर कहा, भ्राता जी! आपके होते हुए क्या हस्तिनापुर सिंहासन का इतना अनादर?"

"मेरी समझ में तो यह नहीं आता कि आखिर हस्तिनापुर निमन्त्रण भेजने में काशी नरेश को आपत्ति क्या है" भीष्म बोले।

"वे हमें हीन जाति का बताते हैं" कहते समय विचित्र वीर्य की आंख जल रही थीं।

"यह उनकी भूल है।" भीष्म बोले।

"भूल नहीं, उद्दण्डता है, दुष्टता है। इस अपमान को हम सहन नहीं कर सकते"

"तो विरोध पत्र भेज दीजिए।"

"भाई साहब ! आप भी क्या बातें करते हैं। लातों के भूत कभी बातों से माना करते हैं ?" विचित्र वीर्य ने आवेश में आकर कहा।

"ऐसा करके तो वे अपने को लोगो की दृष्टि में गिरा रहे हैं। आप विश्वास रखें कोई नृप उनके इस कृत्य की प्रशंसा नहीं करेगा" भीष्म शाँति पूर्वक कह रहे थे। "भ्राता जी ! आप तो इतनी बडी चोट सह कर भी शांत हैं। मेरा विचार तो यह था कि हस्तिनापुर के सिंहासन के अपमान से आपका रक्त खौल उठेगा" विचित्र वीर्य ने भीष्म को उत्तेचित करने की चेष्टा की।

"उत्तेचित होने से काम नहीं चला करता। यदि कोई गधा हमारे लात मारे तो उसका उत्तर यह नहीं कि हम भी उस के लात ही मारें। शठता के प्रति शठता की नीति ठीक नहीं है। विचार कीजिये अवसर आने पर उन्हे उनके कुकृत्य का मजा चखा दिया जायेगा" भीष्म ने गम्भीरता से कहा।

"नहीं ! हमें इसी समय कुछ करना होगा" विचित्र वीर्य ने सिहासन पर मुक्का मारते हुए कहा।

"तो सोच लीजिए क्या करना है" इतना कह कर वे वहाँ से चले गए। विचित्र वीर्य को उनका इस प्रकार चला जाना अच्छा नहीं लगा। पर वह उन के बिना कुछ कर भी तो नहीं सकता था।

× × + +

"नृप आजकल बहुत परेशान एवं दुखी हैं" मंत्री ने भीष्म (गांगेय कुमार) से कहा। वे एकान्त में बैठे कुछ पढ़ रहे थे। मन्त्री जी आज्ञा लेकर वहीं पहुंच गए थे।

"क्यों ?" पुस्तक से दृष्टि हटा कर मंत्री जी की ओर देखते हुए उन्होंने पूछा।

"वे काशी नृप द्वारा अपमान किये जाने से इतने ही व्याकुल हैं, जितना कोई मनुष्य विषैला बाण खाकर होता है।"

"इतनी सी बातों पर इतना व्याकुल होने से काम नहीं चला करता आप उन्हें परामर्श दीजिए कि वे शाँत रहे। समय आने पर देखा जायेगा।" भीष्म बोले।

"मेरे परामर्श का क्या उठता है। वे तो आपके बारे में भी शिकायत कर रहे हैं"

"क्या ?"

"वे कहते हैं कि राज्य सिंहासन पर चूंकि वे हैं अत आपने सिंहासन के अपमान पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया, आप होते तो अवश्य आप भी व्याकुल होते और कुछ कर गुजरते।" मन्त्री जी ने कहा।

बात सुनते ही भीष्म बहुत ही गम्भीर हो गए। कहने लगे "अच्छा! तो बात यहाँ तक पहुँच गई है?—उनसे जाकर कह दो कि गद्दी पर चाहे विचित्र वीर्य ही क्यों न है फिर भी सिंहासन के सन्मान का इतना ही मुझे ध्यान है जितना मेरे सिंहासन पर आरूढ होने के समय होता है।"

मंत्री जी सुन कर चल दिए। अभी दो तीन पग ही रखे थे कि भीष्म ने गरजती हुई गम्भीर वाणी में कहा "ठहरो! उनसे जाकर कहो, कि मैं उन्हें एक नहीं तीनों कन्याएँ लाकर दूंगा। वे निश्चित रहें।"

—और भीष्म (गांगेय कुमार) योद्धा के रूप में आ गए। अपने शस्त्र अस्त्र सम्भाले। रण के वस्त्र धारण किये और रथ पर सवार होकर काशी की ओर चल पड़े। वे चल पडे हस्तिनापुर राज्य की मान मर्यादा की रक्षा और विचित्र वीर्य की इच्छा पूर्ति के लिए। भ्रातृत्व का अनुपम आदर्श प्रस्तुत करने के लिए वे भीष्म जो स्वय विवाह न करने की भीष्म प्रतिज्ञा ले चुके थे काशी नृप की कन्याओं को अपने भ्राता के लिए लेने जा रहे थे।

काशी में जब पहुँचे तो स्वयवर के लिए चारों ओर से नृप और राजकुमार आ चुके थे। स्वयवर की पूर्ण तैयारी हो चुकी थीं। तीनों कन्याए अपने अपने वर को चुनने का अधिकार पा चुकी थीं। सभी निमन्त्रित राजे, महाराजे और राजकुमार अपना भाग्य आजमाने के लिए उपस्थित थे-अनेक अस्त्र शस्त्रों से सज्जित, विभिन्न प्रकार की वेष भूषा को धारण किये कितने ही शूरवीर उपस्थित थे। काशी सारी की सारी दुल्हन के रूप में सजी थी। पर किसी को ज्ञात नहीं था हस्तिनापुर के जिसके नृप को जो हीन जाति का समझकर निमन्त्रित नहीं किया गया था, सिंहासन की मान मर्यादा की रक्षा के लिए अद्वितीय वीर महाबली भीष्म काशी में पहुँच चुके हैं।

स्वयवर के समय पर भीष्म को वहाँ देख कर सभी को बहुत आश्चर्य हुआ। काशी नृप ने कहा कि भीष्म ने तो आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा की है? क्या वे अपनी प्रतिज्ञा को भग करने यहां आये है? उन्हें तो निमन्त्रित भी नहीं किया गया बिना निमत्रण के आना तो भयकर धृष्टता है। जब तीनो कन्याएं वरमाला लिए स्वयवर मण्डप में आई। भीष्म उठे और उन्होने बलपूर्वक उन्हे उठा लिया। रथ पर डाल कर चलने लगे। काशी नृप ने शस्त्र सम्भाले और भीष्म के मुकाबले पर आ डटे। किन्तु भीष्म महाबलि थे। उन्होंने अपने अस्त्र शस्त्रो का प्रयोग आरम्भ किया तो काशी नरेश की सारी सेना भी न ठहर सकी। उनकी तलवार के सामने जो आता वही ढेर हो जाता। क्षण भर में ही हाहाकार मच गया। उत्सव भंग हो गया। जय जयकारों और नृत्य तथा अन्य समारोह का स्थान शस्त्रों की झकारों और हताहतो के चीत्कारो ने ले लिया। काशी नरेश की सेना परास्त हो गई। तब आगन्तुक नरेशो और राजकुमारो ने इसे अपना अपमान समझ कर, सबके सब, भीष्म पितामह पर टूट पड़े।

एक भीष्म सभी की खडगों का मुकाबला करते रहे। वे स्वयं चलते समय भी इस सकट को समझते थे और उन्होने जानबूझ कर ही सकट मोल लिया था। उन्हे अपनी भुजाओ और अपने रण कौशल पर गर्व था। उस गर्व का साक्षात प्रमाण उस युद्ध ने प्रस्तुत कर दिया। सभी नरेश पूरी शक्ति से लडे पर भीष्म को परास्त न कर पाये। वे काशी नरेश की कन्याओ को यह कह कर ले जाने मे सफल हो गए कि "हस्तिनापुर के सिंहासन की उपेक्षा सहज नहीं है। हम अपने अपमान का बदला लेना जानते है।"

अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका को लेकर वे शीघ्र ही हस्तिनापुर पहुँच गए। बड़े भ्राता को इस प्रकार विजय पताका फहराते हुए आते देख कर विचित्र वीर्य के हर्ष का ठिकाना न रहा। उसने उन्हे बारम्बार बधाई दी। भीष्म जी ने तीनो कन्याए उसे सौपकर कहा "यह तुम्हारी भूल है कि तुम्हारे सिंहासन पर होने के कारण मैं सिंहासन की मान मर्यादा की चिन्ता नहीं करता। मैं इसके लिये प्राण भी दे सकता हू। मैंने काशी नरेश ही नहीं समस्त राजाओं को बता दिया है कि हस्तिनापुर नरेश की अवहेलना करना कितने बड़े सकट को मोल लेना है। आपके सिंहासन की धाक जमा आया हूँ। अब आप

अपनी जीती बाजी को जीती रखने की चिन्ता कीजिए। इन तीनों को पत्नी रूप में स्वीकार कीजिए।"

तीनों कन्याओं का विवाह विचित्र वीर्य के साथ कर दिया गया। वे अपनी तीनों रानियों सहित सुख पूर्वक रहने लगे। कुछ दिनों के पश्चात महारानी अम्बिका से धृतराष्ट्र, अम्बाली से पाण्डु और अम्बा से विदुर कुमार उत्पन्न हुए। विचित्रवीर्य की रोग के कारण मृत्यु हो गई और पुण्यवत पाण्डु को राज्य सिंहासन पर बैठा दिया गया।

एक दिन गन्धार देश के नरेश शकुनि कुमार हस्तिनापुर पधारे और उन्होंने भीष्म जी से भेंट की। अन्य बातों के अतिरिक्त मुख्य बात यह थी कि धृतराष्ट्र के साथ उनकी आठ बहनों का जिनमें गंधारी बड़ी और मुख्य थी विवाह कर दिया जाय। भीष्म पितामह ने सम्बन्ध स्वीकार कर लिया और गांधारी सहित आठों बहनों का विवाह धृतराष्ट्र से सम्पन्न हो गया।



❀तेरहवां परिच्छेद❀

कुन्ती और महाराज पाण्डु

पाण्डु नृप भ्रमणार्थ उद्यान की ओर जा निकले। प्राकृतिक सौन्दर्य किसको अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकता। पाण्डु तो ठहरे रूप और कला के अनुरागी। वे उद्यान में उपस्थित सौदर्य और प्रकृति की अनुपम एव अद्भुत कला को देखते देखते मुग्ध हो गए। चारों ओर फैले सुगन्ध और नयनाभिराम मादक सौदर्य ने पाण्डू के चित्त को हर लिया। वे इस अद्भुत कला को देख कर प्रशसा पूर्ण नेत्रो से मूक भाषा में मौन खड़े पुष्पों और पत्तों से बाते करने लगे। वे पूछने लगे कि हे पुष्पो ? तुम मौन हो, किसी को कुछ कहते सुनते भी नही, निर्जीव से निश्चित अविकल खड़े हो, पर खिलखिला कर हसे जा रहे हो। तुम्हारा यह अट्टहास आखिर किस लिए, किस पर बिखर रहा है ? वह कौन सी बात है जिसने तुम्हें अट्टहास करने पर विवश कर दिया है। हंसना आरम्भ किया तो तुम हंसते ही चले गए और हसते ही रहोगे, तुम्हारा जीवन खील-खील करके बिखर जायेगा और तुम मुस्कान के लिये ही ससार से चले जाओगे। एक समय तक तुम मौन रहते हो, फिर हस पड़ते हो, इतना दीर्घ अट्टहास कैसे बन पड़ता है। तनिक इसका रहस्य हमें भी तो बताओ। पर पाण्डु नृप के प्रश्न को सुन कर वे हसते रहे। क्योंकि उनका कर्म ही हसना है, उनका धर्म ही हंसना है। लोग उन्हे बेदर्दी से तोड़ लेते हैं, फिर भी उनकी मुस्कान लुप्त नहीं होती, वे मुस्कराते मुस्कराते ही मुर्झा जाते हैं। उनकी इस अज्ञात हसी, अज्ञात सुख पर किसे इर्ष्या न होगी। राजा पाण्डु सोचने लगे "मानव दुनिया भर की सम्पत्ति और वैभव को एकत्रित करके भी इतना सुखी नहीं हो पाता, जितने सुखी हैं यह

पुष्प जिनके पास रूप और सुगन्ध के अतिरिक्त और कुछ भी तो नहीं। यह सभी को अपने रूप और सुगध से लाभान्वित करते हैं, वे वे पृथ्वी से भोजन लेते है और पृथ्वी को उसके बदले में सुगन्ध तथा सुन्दरता प्रदान करते हैं, लोगों को सुगन्ध और सौंदर्य मुफ्त मे ही देते हैं" पास ही में खडी एक कली अनायास ही चटकी, और उसके अधरों पर खेलती मन्द मन्द मुस्कान एक अट्टहास के रूप में परिणत हो गई। मानो वह राजा पांडु के प्रश्न पर उनके विचारों पर खिलखिला पडी हो। यह कलिया दूसरों को सुखी और प्रफुल्लित देख कर स्वय अपना सीना खोल कर हसने लगती हैं, इनमें ईर्षा हो तो वे खिल न सकें। यही है उनके जीवन का रहस्य। वह कली जो अभी अभी पुष्प बनी थी, हस रही थी और कदाचित अपनी मूक भाषा में कह रही थी "रे नृप! तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तुम्हारे ही विचारों में निहित है। मन की आखे खोलो। वहाँ तुम्हें सब कुछ मिल जायेगा, हाँ सब कुछ।

हमारा जीवन त्यागमय है। हम जितना जिससे लेते हैं उसको उससे अधिक दे देते हैं पृथ्वी से भोजन लिया, सुगन्ध और सौंदर्य दिया। और सारे जगत को सुगधित एव रूपवान बनाने मे अपना जीवन लगा देते हैं। हम किसी मे कोई भेद नहीं करते। हमारे लिये सारा ससार समान है। हमारा कोई वैरी नहीं, हम सभी को अपना मित्र समझते हैं, उन्हे भी जो हमारी मुस्कान पर मुग्ध होकर हमारी प्रशसा करते हैं और उन्हे भी जो प्रशसात्मक दृष्टि डालकर हमे तोड़ लेते हैं और इस प्रकार अपनी खुशी के लिए हमारा जीवन समाप्त कर डालते हैं, हमारी हत्या कर देते हैं। हमें किसी से द्वेष नहीं, किसी से घृणा नहीं, उनसे भी नहीं जो पापी हैं। हमारी सुगन्ध और हमारा रूप सभी के लिए है। यही है हमारे त्यागमय जीवन का रहस्य और यही है हमारी जीवन पर्यन्त मुस्कान बल्कि अट्टहास का रहस्य। जो गुणी हैं, वे हमारे जीवन का रहस्य समझ कर अपने जीवन को त्यागमय बनाते हैं और अन्त मे चिर सुख प्राप्त करते हैं। जो अज्ञानी हैं वे भोगों मे लिप्त रहते है और एक दिन हमारी पंखुडियों की भांति धूल मे मिल जाते हैं।"

किन्तु राजा पाण्डु उस समय कली, अभी अभी विकसित हुई

कली की मूक वाणी को न समझ सके। वे प्रशंसापूर्ण नेत्रों से देखते रहे। रंग बिरंगे पुष्पों को देखते हुए वे आगे बढे। अनायास ही उन्हे एक अप्सरा सी दिखाई दी। वे उसे देखते ही ठिठक गए। उन्होंने नजरें गड़ा दीं। अप्सरा की आकृति मुस्करा रही थी उसके अधर पल्लव मुस्कान से तनिक से खिले थे। उसके कपोलो पर गुलाबी रग, गुलाब पुष्पो के सौंदर्य को चुनौती दे रहे थे। उसके अधरो की लालिमा कमल के रूप को चुनोती दे रही थी। उसके घने काले केश रात्रि की घोर कालिमा को भी मात कर रहे थे। वे काले रेशम की भांति चमक रहे थे। उसकी साड़ी रग बिरगे पुष्पों के सौंदर्य को अपने दामन मे छिपाये थी और उसके उन्नत वक्षस्थल गर्वित सेवों से प्रतीत होते थे जो रेशमीन कपड़े मे से झॉक रहे थे। वह खड़ी थी अचल। एक बार पाण्डू नृप ने देखा और सभ्यता के नाते गर्दन झुका ली। फिर पुन. उसे एक टक निहारने की आकांक्षा उनके मन में बलवती हो गई। अनायास ही दृष्टि उस ओर गई, और उस पर जा टिकी। वह फिर भी मुस्करा रही थी। पाण्डू नृप चाहते हुए भी उस की ओर से दृष्टि न हटा सके। क्योंकि उनका मन तो उस अप्सरा की आकृति पर मुग्ध हो गया था। उनकी दृष्टि को उसके रूप ने बन्दी बना लिया था, अपने रूप की उसने शृंखलाएं पहना दी थीं उसके नेत्रो को। वे सुध-बुध खो कर उसके रूप पर मोहित हो गए थे। सारा उद्यान उन्हे उस एक आकृति के सामने हेच प्रतीत होने लगा। जो रूप उस में था वह सहस्रों खिले और अधखिले पुष्पों मे भी नही था। वे नेत्र अंजुलि से उस का रूप पान कर रहे थे। कितनी ही देरि तक वे उसे देखते रहे। पर वह मुस्कराती ही रही। मुस्कराती रही, न मुस्कान अट्टहास में परिवर्तित हुई और न अधरों से लुप्त ही हुई। उसकी पलके जैसे खुली थीं वैसे खुली ही रही। "ओह! यह तो पलक भी नहीं झपकती।" इस बात पर जब उनका ध्यान गया वे चकित रह गए। घण्टो कौन बिना पलक झपकाए इस प्रकार एकाग्रचित्त, चित्र लिखित सा खड़ा रह सकता है? उन्हे आशका हुई। कहीं यह मूर्ति तो नहीं। हां मूर्ति ही होगी। निर्जीव मूर्ति। वे आगे बढ़े तो देखा कि उस अप्सरा आकृति के चरणों में एक व्यक्ति बैठा है, उनकी ओर पीठ किए। उसके हाथ में थी तूलिका और कुछ पात्र साथ में रखे थे। यह तो चित्रकार है।

और यह है चित्र। अब तक पुष्प लताओं मे छिपे इस चित्रकार को न देख सकने के कारण वे उस चित्र को सजीव समझते रहे। कितना अनुपम चित्र है यह। वे अपनी भूल पर स्वय ही लज्जित होकर रह गए।

आगे बढे। और वृक्ष के नीचे चित्र पूर्ण करते चित्रकार के निकट पहुच कर वे चित्र को एक टक देखते रहे और मन ही मन प्रशसा करते रहे। वह चित्र था, फिर भी था कितना सजीव।

"चित्रकार! कितनी सुन्दर कल्पना है आपकी। कदाचित अप्सराएँ भी इतनी सुन्दर न होती हो।"

राजा पाण्डु की बात सुन कर अपने कार्य मे लगा चित्रकार चौक पडा। पीठ पीछे देख कर उसने पाण्डु नृप पर एक दृष्टि डाली और वस्त्रों तथा नखशिख को देख कर उसने अनुमान लगाया कि वह कोई नृप ही है। प्रणाम कर के बोला "राजन्! यह कल्पना नहीं एक सुन्दरी का चित्र है।"

"क्या इतनी सुन्दर भी कोई सुन्दरी है इस भूमि पर?" नृप विस्मित हो बोले।

"जी हां, यह कुन्ती का चित्र है। अधकवृष्णि की कन्या कुन्ती का।"

"क्या वह इतनी रूपवती है?"

"जी हा वह अपने रूप में अद्वितीय है। अप्सराएँ भी उस के सामने हीन हैं।"

चित्रकार की बात सुन कर पाण्डु ने चित्र को अतृप्त नेत्रों से बारम्बार देखा और इस महान् सुन्दरी को प्राप्त करने की इच्छा लेकर वह चित्रकार को अपने साथ ले महल में लौट आया। चित्र को सामने रख कर घण्टों तक उसे देखता रहा। और कितना ही बहुमूल्य उपहार देकर चित्रकार को विदा किया। चित्रकार तो चला गया पर पाण्डु को एक तडफ दे गया, ज्यों पानी बिन मीन, और चन्द्र बिन चकोर तडपती है, इसी भाति कुन्ती के लिए पाण्डु तडपने लगे। साग वैभव खेल, तमाशे, महफिले, राग रग राज्यपाट और अन्य मित्रगण उन के हृदय मे बसी पीडा को समाप्त नहीं कर पाए। वे व्याकुल थे। और

कली की मूक वाणी को न समझ सके। वे प्रशसापूर्ण नेत्रों से देखते रहे। रंग बिरगे पुष्पों को देखते हुए वे आगे बढ़े। अनायास ही उन्हे एक अप्सरा सी दिखाई दी। वे उसे देखते ही ठिठक गए। उन्होंने नजरे गड़ा दीं। अप्सरा की आकृति मुस्करा रही थी उसके अधर पल्लव मुस्कान से तनिक से खिले थे। उसके कपोलो पर गुलाबी रग, गुलाब पुष्पों के सौंदर्य को चुनौती दे रहे थे। उसके अधरो की लालिमा कमल के रूप को चुनोती दे रही थी। उसके घने काले केश रात्रि की घोर कालिमा को भी मात कर रहे थे। वे काले रेशम की भांति चमक रहे थे। उसकी साड़ी रग बिरगे पुष्पो के सौंदर्य को अपने दामन मे छिपाये थी और उसके उन्नत वक्षस्थल गर्वित सेवों से प्रतीत होते थे जो रेशमीन कपड़े मे से झाँक रहे थे। वह खड़ी थी अचल। एक बार पाण्डू नृप ने देखा और सभ्यता के नाते गर्दन झुका ली। फिर पुन. उसे एक टक निहारने की आकांक्षा उनके मन मे बलवती हो गई। अनायास ही दृष्टि उस ओर गई, और उस पर जा टिकी। वह फिर भी मुस्करा रही थी। पाण्डू नृप चाहते हुए भी उस की ओर से दृष्टि न हटा सके। क्योंकि उनका मन तो उस अप्सरा की आकृति पर मुग्ध हो गया था। उनकी दृष्टि को उसके रूप ने बन्दी बना लिया था, अपने रूप की उसने शृ खलाए पहना दी थीं उसके नेत्रों को। वे सुध-बुध खो कर उसके रूप पर मोहित हो गए थे। सारा उद्यान उन्हे उस एक आकृति के सामने हेच प्रतीत होने लगा। जो रूप उस मे था वह सहस्रों खिले और अधखिले पुष्पों मे भी नहीं था। वे नेत्र अजुलि से उस का रूप पान कर रहे थे। कितनी ही देरि तक वे उसे देखते रहे। पर वह मुस्कराती ही रही। मुस्कराती रही, न मुस्कान अट्टहास में परिवर्तित हुई और न अधरो से लुप्त ही हुई। उसकी पलके जैसे खुली थीं वैसे खुली ही रही। "ओह! यह तो पलक भी नहीं झपकती।" इस बात पर जब उनका ध्यान गया वे चकित रह गए। घण्टो कौन बिना पलक झपकाए इस प्रकार एकाग्रचित्त, चित्र लिखित सा खड़ा रह सकता है? उन्हे आशका हुई। कहीं यह मूर्ति तो नहीं। हां मूर्ति ही होगी। निर्जीव मूर्ति। वे आगे बढ़े तो देखा कि उस अप्सरा आकृति के चरणों में एक व्यक्ति बैठा है, उनकी ओर पीठ किए। उसके हाथ में थी तूलिका और कुछ पात्र साथ में रखे थे। यह तो चित्रकार है।

और यह है चित्र। अब तक पुष्प लताओं मे छिपे इस चित्रकार को न देख सकने के कारण वे उस चित्र को सजीव समझते रहे। कितना अनुपम चित्र है यह। वे अपनी भूल पर स्वय ही लज्जित होकर रह गए।

आगे बढ़े। और वृक्ष के नीचे चित्र पूर्ण करते चित्रकार के निकट पहुच कर वे चित्र को एक टक देखते रहे और मन ही मन प्रशसा करते रहे। वह चित्र था, फिर भी था कितना सजीव।

"चित्रकार! कितनी सुन्दर कल्पना है आपकी। कदाचित अप्सराएँ भी इतनी सुन्दर न होती हो।"

राजा पाण्डु की बात सुन कर अपने कार्य मे लगा चित्रकार चौक पड़ा। पीठ पीछे देख कर उसने पाण्डु नृप पर एक दृष्टि डाली और वस्त्रों तथा नखशिख को देख कर उसने अनुमान लगाया कि वह कोई नृप ही है। प्रणाम कर के बोला "राजन्। यह कल्पना नहीं एक सुन्दरी का चित्र है।"

"क्या इतनी सुन्दर भी कोई सुन्दरी है इस भूमि पर?" नृप विस्मति हो बोले।

"जी हां, यह कुन्ती का चित्र है। अधकवृष्णि की कन्या कुन्ती का।"

"क्या वह इतनी रूपवती है?"

"जी हा वह अपने रूप मे अद्वितीय है। अप्सराएँ भी उस के सामने हीन हैं।"

चित्रकार की बात सुन कर पाण्डु ने चित्र को अतृप्त नेत्रों से बारम्बार देखा और इस महान् सुन्दरी को प्राप्त करने की इच्छा लेकर वह चित्रकार को अपने साथ ले महल मे लौट आया। चित्र को सामने रख कर घण्टो तक उसे देखता रहा। और कितना ही बहुमूल्य उपहार देकर चित्रकार को विदा किया। चित्रकार तो चला गया पर पाण्डु को एक तड़फ दे गया, ज्यों पानी बिन मीन, और चन्द्र बिन चकोर तड़पती है, उसी भाति कुन्ती के लिए पाण्डु तड़पने लगे। सारा वैभव खेल, तमाशे, महफिलें, राग रग, राज्यपाट और अन्य मित्रगण उन के हृदय मे बसी पीड़ा को समाप्त नहीं कर पाए। वे व्याकुल थे। और

दिन में ही, जागृत अवस्था में भी कुन्ती के स्वप्न देख रहे थे। कुन्ती उनके रोम में बस गई थी वह चित्र उनके नयनों में नाच रहा था।

× × ×

कुन्ती और उसके पिता बैठे थे चित्रकार वहां पहुंचा। चित्र, जो आदम कद था, अधकवृष्णि नृप के सामने प्रस्तुत कर दिया। उन्होंने चित्र पर दृष्टि डाली। ऊपर से नीचे तक देखा और फिर एक दृष्टि कुन्ती पर डाली। कह उठे। "कुन्ती! लो देखो यह चित्र और तनिक मुझे बताओ तो तुम में और इस में क्या अन्तर है।"

कुन्ती ने निकट पहुच कर चित्र देखा और उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह दर्पण के सामने खड़ी हो। मन ही मन चित्रकार की कला की प्रशंसा करने लगी और स्वमेव ही अपने चित्र पर मुग्ध हो गई। बोली कुछ नहीं।

"यही अन्तर है न कि तुम सजीव और चित्र वाली कुन्ती निर्जीव है। पर लगता यही है कि अभी अभी बोल पड़ेगी।"

कुन्ती की वैसे ही गर्दन स्वीकारोक्ति मे हिल गई, जैसे हम विवश होकर किसी बात पर न चाहते हुए भी स्वीकृति दे डालने पर विवश हो जाते है।

"कितना रूप है कुन्ती पर। चित्रकार! तुम ने साक्षात् कुन्ती को इस पट पर उतार दिया है" नृप बोले।

"महाराज! मेरी कला से आप सन्तुष्ट हैं, मुझे इस का अपार हर्ष है" चित्रकार बोला।

"मागो, जो चाहो। हम तुम्हारी कला से बहुत प्रभावित हुए। अब तुम ने हमारे एक दुःख को दूर कर डाला। नृप ने कहा, हम सोचा करते थे कि जब कुन्ती अपने पति के घर चली जायेगी। हम किसे देख कर आत्म विभोर हुआ करेंगे? पर अब वह चिन्ता दूर हो गई। बस यही चित्र है जो हमें दुखी न होने देगा।"

"महाराज! मेरी कला की आप के मुख से प्रशंसा हुई। बस मुझे बहुत कुछ मिल गया, आप की सेवा कर सका, बस यही मेरे लिए बहुत है।" चित्रकार बोला। "नहीं। हम तुम्हें तुम्हारी इच्छानुसार पुरस्कार देना चाहते हैं।"

"पुरस्कार चाहे कितना ही कम मूल्य का हो, फिर भी बहुमूल्य होता है, आप से मैं क्या मांगू? चित्रकार ने कहा। "अच्छा। तो तुम

नहीं मागते, तो हम तुम्हें निहाल कर देंगे। नृप की बात सुन कर चित्रकार को अपार हर्ष हुआ। थोड़ी देर तक नृप उस चित्र को देखते रहे और देखते ही देखते उन के मुख से निकल पडा।" बस उन्हे एक ही चिन्ता और रह गई। कुन्ती को ऐसा वर मिले जो अपने रूप और पौरुष में अद्वितीय हो। हम चारों ओर खोज चुके। राज्य परिवारों मे अभी तक हमें ऐसा कोई राजकुमार या नृप दिखाई नहीं दिया जिस के साथ कुन्ती जैसी रूपवती कन्या का विवाह किया जा सके।"

विवाह की बात सुन कर कुन्ती के मुख पर स्वाभाविक लज्जा छा गई।

किन्तु चित्रकार बोल उठा। "कुन्ती के विवाह के सम्बन्ध मे मुझे बोलना तो नहीं चाहिए। पर अभय दान दें तो कुछ कहूँ।"

"हा, हाँ, निर्भय होकर कहो"

चित्रकार समस्त साहस बटोर कर कहने लगा —

"महाराज अब की बार मुझे एक रूपवान और महाबली नृप के दर्शन हुए कि आज तक कहीं ऐसा व्यक्ति नजरों से गुजरा ही नहीं। उसका रंग सेब के समान है। उसके मस्तक पर तेज विद्यमान है। उसके नेत्रों में अलौकिक चमक है। वीरता उसके मुख मण्डल पर झलकती है। हर व्यक्ति उसकी ओर आँख उठा कर देखने का साहस नहीं कर सकता। वह कला का प्रेमी और गुणी पुरुषों का हितैषी है। वह अपने रूप मे अद्वितीय है। बस यू समझ लीजिए कि कुन्ती और उस नृप को पास पास खडा कर दिया जायेगा तो ऐसा प्रतीत होगा मानो यह दोनों देव और देवांगना स्वर्ग से अभी अभी अवतरित हुए हैं।--सबसे मुख्य बात तो यह है कि कुन्ती का यह चित्र देख कर वे हर्ष विभोर हो गए।—बात यह है कि मैं उद्यान मे बैठा इस चित्र पर अन्तिम कार्य कर रहा था कि वे वहीं आ धमके और बहुत देर तक चित्र देख कर मुझ से कह बैठे कि आपकी यह कल्पना प्रशंसनीय है। अप्सरा भी तो कदाचित इतनी रूपवती नहीं हो सकती। जब मैंने उन्हें बताया कि यह कुन्ती का चित्र है तो वे विस्मय पूर्ण नेत्रों से देखने लगे। उनके नेत्र बता रहे थे कि कुन्ती के चित्र ने ही उन्हें पूरी तरह आकर्षित कर लिया है।"

इसी प्रकार चित्रकार ने पाण्डु की भूरि भूरि प्रशंसा की। कुन्ती

प्रशंसा सुनते सुनते ही आत्म विभोर हो गई और अनायास ही निश्चय कर बैठी कि वह विवाह करेगी तो उसी नृप से नहीं तो आजीवन अविवाहित रहना पसन्द करेगी।

"कौन है वह नृप' अंधक वृष्णि ने पूछा।

"वह हैं हस्तिनापुर नरेश महाराजा पाण्डू राजा ने सुना और मौन रह गए। परन्तु कुन्ती ने पाण्डू को अपने स्वप्नो का देवता मान लिया। वह चाहती थी कि पिता जी भी तुरन्त ही हाँ कह दे। किन्तु वे तो मौन थे। चित्रकार को भी उन्हे मौन देखकर कुछ निराशा सी हुई। वह तो समझता था कि नृप कुछ न कुछ उत्तर अवश्य देंगे। पर अब यह सोच कर मौन रह गया कि सम्भव है नृप विचार कर रहे हो।—नप ने चित्रकार को वहुमूल्य उपहार, पुरस्कार देकर विदा किया।

व्याकुल पाण्डू को कहीं चैन नहीं, न महल में, न मित्रो मे, और न क्रीड़ा स्थल मे। उनकी वही दशा थी—

दिल में आता हे कि ए दोस्त मयखाने में चल
फिर किसी शहनाजे लाला रुख के काशाने में चल
गर वहाँ मुमकिन नहीं तो दोस्त वीराने मे चल।
ऐ गमे दिल क्या करूं, ऐ वह शतेदिल क्या करुं

उनका मन कहीं नहीं लगता, अतः व्याकुल हृदय लोगो की अन्तिम मजिल बन की ओर चल पड़े। उद्यान को छोडकर बन की ओर, मन बहलाने और एकान्त मे कुन्ती के लिए तड़पने के लिए—बन में पहुंचे। चारो ओर दृष्टि डाली—पर ऐसी कोई वस्तु नहीं दिखाई दी जिसमे उन का मन खो जाये और वह भूल जाय अपनी व्याकुलता और टीस को।

किसी के चीत्कार सुनाई दिये। उनके पग उस ओर उठ गए। एक घायल खेचर (विद्याधर) चीत्कार कर रहा था। दुखी जन को देख कर उनकी सहायता के लिए दौड़ पड़ने वाले परोपकारी जीव कम ही है। हां किसी को पीड़ित देखकर सहानुभूति के दो बोल कह देने वाले अथवा शाब्दिक करुणा दर्शाने वाले अधिक संख्या मे मिल जायेंगे। परन्तु व्याकुल पाण्डू किसी दुखी व पीड़ित व्यक्ति के चीत्कार सुन कर शाब्दिक सहानुभूति दर्शाने वाले नहीं थे, वे उसके पास पहुँचे।

उसकी सेवा सहायता में लग गए। खेचर ने संकेत से अपने पास रखी जड़ी बूटियों को बताया। पाण्डु ने उन्हें उचित विधि पूर्वक लगाया जिससे उसकी पीड़ा शान्त हुई। जब वह ठीक हुआ तो पूछने लगे-"यदि आपको आपत्ति न हो, तो क्या मैं जान सकता हूं कि आप को किसने घायल किया ?"

"भद्र ! एक व्यक्ति मेरी स्त्री को ले उड़ा। मैंने उसका पीछा किया जिसके परिणाम स्वरूप मुझे यह घाव आये। किन्तु वह उसे लेकर भाग जाने में सफल हुआ।—आप ने अचानक पहुंच कर मेरा जो उपकार किया है, यदि अपने चर्म के जूते भी आप को पहनाऊं तो भी आपके ऋण से उऋण नहीं हो सकता"

"नहीं, श्रीमन ! मैंने अपना कर्तव्य निभाया है। आप मेरी सेवा से स्वस्थ हो गए। इसका मुझे अपार हर्ष है" पाण्डु नृप बोले।

आपको कष्ट तो होगा ही। पर क्या करूं मैं अभी अधिक चल फिर नहीं सकता। मेरी एक अंगूठी इसी झंझट में खो गई है। आप इसे तलाश करादें तो आपका और भी एहसान हो। मैं आपका गुण जीवन भर नहीं भूलूंगा"

खेचर की प्रार्थना पर वे अंगूठी खोजने लगे। कुछ ही देर पश्चात् वे एक अंगूठी लिए वापिस आये "देखिये यही तो नहीं है आपकी अंगूठी"

खेचर देखकर बोला "जी हां, यही है। बारम्बार धन्यवाद !

' पर यह तो इतनी मूल्यवान प्रतीत नहीं होती जिसके लिए आप चिन्तित थे। नृप ने कहा।

"भद्र ! आप नहीं जानते ! यह अंगूठी धातु के सम्बन्ध में तो अधिक मूल्यवान यद्यपि नहीं है। पर अपने गुण के कारण यह बहुत ही मूल्यवान है। खेचर बोला

"क्या गुण है इसमें "

'इस अंगूठी को पहनकर व्यक्ति जहां चाहे वहां क्षण भर में पहुंच सकता है और इस अंगूठी के रहने पर दूसरे को दिखाई नहीं देगा। खेचर ने कहा तो पाण्डु को आश्चर्य हुआ।

वे पूछ ही बैठे "श्रीमन ! आप यह अंगूठी मुझे दे दें तो मैं आप का जीवन भर कृतज्ञ रहूं।

खेचर ने उनका परिचय पूछा। उसे यह जान कर और भी प्रशसा हुई कि उसकी सेवा करने वाला पाण्डू नृप है। उसने वह अगूठी और दो जडी औषधि उन्हे दी। वे दोनो जड़ियाँ, घाव मिटाने और रूप बदलने के काम आती थीं। नृप ने खेचर को सहस्त्र वार धन्यवाद दिया।

+ + + +

कुन्ती निश्चय कर चुकी थी कि या तो पाण्डू के साथ विवाह होगा अथवा वह अविवाहित रहेगी। पाण्डव नृप के दर्शन करने के लिए वह तड़फती रहती। पर उसे कोई उपाय नहीं मिला। एक दिन उद्यान में मन वहलाने जा पहुंची। वहां विभिन्न पुष्पों को देखकर मन बहलाने के स्थान पर और भी व्याकुल हो गया, वह चारो ओर पाण्डू को ही देखती। "ओह इस समय यदि कहीं से पाण्डू आ जाएं तो कितना अच्छा हो

धीरे कही हुई बात भी दासी के कान मे पड़ गई वह वोली 'राजकुमारी! आप ने महाराज की बात नहीं सुनी। वे कह रहे थे कि पता चला है पाण्डू नृप को पाण्डू रोग है अतः कुन्ती का उनसे विवाह नहीं किया जायेगा।

कुन्ती के हृदय पर भयंकर वज्रापात हुआ। अवरुद्ध कण्ठ से पूछा "तू ने कब सुना?

"कल ही तो महाराज धतराष्ट्र का सन्देश आया था, उन्होंने पाण्डू के लिए आपको मांगा था, पर महाराज महारानी जी से कह रहे थे कि हम कुन्ती का विवाह रोगी से नहीं कर सकते?

दासी की बात सुन कर कुन्ती के नयनो से अविरल अश्रुधारा फूट निकली। उसने अपने हृदय मे कहा कि बस अब एक ही रास्ता है कि मै अपने जीवन का अत कर डालू। पाण्डू रोगी भी हों, पर वे मेरे पति हैं, मै उन्हें एक बार हृदय से स्वीकार कर चुकी हूं। और क्षत्राणि एक ही बार अपना पति चुनती हैं जिसे एक बार हृदय से स्वीकार कर लेती है, उसी के साथ जीवन पर्यन्त निभाती हैं। इस समय पाण्डू के अतिरिक्त अन्य सभी पुरुष मेरे भ्राता व पिता के समान है"

कुन्ती ने ऊपर की ओर देखा और सोचने लगी बस इसकी डाल में रस्सी डाल कर मैं अपना जीवन समाप्त कर सकती हूँ।—पर आत्म

हत्या तो महा पाप है।—हां महापाप तो है किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता भी तो नहीं। मैं किसी दूसरे को भी तो नहीं स्वीकार कर सकती और पाण्डु बिन अब जीवन भी नहीं व्यतीत नहीं कर सकता। फिर मैं क्या करू ?—कुछ देर बाद वह सोचने लगी क्या पाण्डु भी मेरे लिए इसी प्रकार व्याकुल होंगे ?

उल्फत का जब मजा है जब दोनों हो बेकरार।
दोनों तरफ हो आग बराबर लगी हुई॥

कुन्ती का मन सुलग रहा था, उसके नेत्रों से गंगा जमुना बह रही थीं।—

अनायास ही निकट में एक व्यक्ति नजर आया। चन्द्रमा समान कुन्ती उस सूर्य समान प्रताप युक्त मुख कमल को देखकर आश्चर्य चकित रह गई। अश्रुधार न जाने कहा लुप्त हो गई। वह आंखें फाड़ फाड़ कर देखने लगी। वह उसकी सुन्दरता देख कर विचारने लगी कि यह कोई देवता है या कोई और ? पर और कौन ? इसका तो ललाट ही इतना सुन्दर है मानो अष्टमी का आधा चन्द्र ही अंकित हो गया है। इसके सिर पर यह केश-पास है या काम अग्नि से निकली हुई धूम्र की शिखा ? इसके सुन्दर वक्षस्थल को देखकर मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसके वक्ष स्थल में हार के छल से जय लक्ष्मी ने ही निवास कर लिया है। इसी लिए तो लोग इस देव के हृदय में स्थान पा कर लक्ष्मी पति हो जाते होंगे। इसी की दो भुजाए तो कामदेव की उन भुजपाशों के समान ही पतीत होती है जो नारी को बांधने के लिए ही होती हैं।

दूसरी ओर खेचर द्वारा दी गई अंगूठी के सहारे अनायास वहां पहुंचने वाले पाण्डु भी उसे देख कर समझने लगे कि यह तो कोई किन्नर देवांगना ही है जिसके मुख पर चन्द्रमा की आभा विद्यमान है, कुचों और नितम्बों के भार से जिसकी कमर लचक रही है यह मद के उन्माद से विलक्षण उन्मादिनी सी प्रतीत होती है। यह लावण्यमयी परम सुन्दरी किन्नर देवांगना के अतिरिक्त हो ही कौन सकती है।

"आप कौन हैं और इस नारी उद्यान में आप कैसे चले आये। यहां तो पुरुषों का आना वर्जित है" कुन्ती ने साहस कर पूछ ही तो लिया।

"देवि ! अपनी धृष्टता के लिये क्षमा प्रार्थी हूँ। मैं हस्तिनापुर नृप पाण्डू हूँ और अपनी विलक्षण गुणवान मुद्रिका के सहारे कुन्ती की खोज मे आया हूँ।"

पाण्डू की बात सुन कर कुन्ती को अपार हर्ष हुआ। वह किन्नर देव नहीं बल्कि उसके स्वप्नो का राजा पांडू था। कुन्ती ने उन्हे नमस्कार किया। "कहिए क्या आज्ञा है" हर्ष और लज्जा के सयुक्तभाव लिए कुन्ती ने पूछा।

"तो क्या मै किन्नर देवांगना को नहीं, कुन्ती का देख रहा हूँ ?"

कुन्ती ने सिर हिला दिया—फिर क्या था पाडू ने दासी को दूसरी ओर जाने का सकेत दे, आगे बढ़ कर कुन्ती को अपने बाहुपाश मे बांध लिया।

"मैं आपको हृदय से स्वीकार कर चुकी हूँ। फिर भी अभी कुमारी हूँ। अपने कौमार्य की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। अतः आप मेरे साथ कोई ऐसी बात न कीजिए जो कौमार्य की पवित्रता को भग करती हो" कुन्तो ने हाथ जोड़कर विनय पूर्वक कहा "कुन्ती ! जब से चित्र-कार द्वारा मैंने तुम्हारे रूप की प्रशसा सुनी है, मै तुम्हारे रूप पान के लिए व्याकुल हूं, कामासक्त पाडू बोले, और आज जब तुम्हारा रूप मैं अपने नेत्रों से देख रहा हूं मेरा मन चचल हो उठा है। मै तुम्हारे सहवास के लिये आतुर हो चुका हूँ। इसमे गलती मेरी नहो, तुम्हारे रूप की है। तुम्हारे मादक रूप ने मुझे उत्तेजित कर दिया है। मेरे हृदय की धड़कनों की ध्वनि सुन रही हो ? एक एक धड़कन में, कुन्ती तुम्हारे नाम के दो शब्द गूंज रहे है। मेरी हृदय गति तीव्र हो गई है। अब मैं अपने काबू से बाहर हो गया हू"

यद्यपि कुन्ती का मुखमण्डल तमतमा आया था, उसकी स्वांसों में गर्मी आ गई थी, तथापि स्त्री सुलभ लज्जा और सकोच, तथा कौमार्य की मर्यादा को अपने ध्यान मे रखकर वह बोली "मैं अपने हृदय को चीर कर तो नहीं दिखा सकती। पर आप विश्वास रखें आपके लिए मेरी धडकनों मे अपार प्रेम है। मैं आपकी हो चुकी हूं। पर अपने कौमार्य की रक्षा के लिये मै बाध्य हूँ। यदि इस समय आपके साथ संगम करूगी तो संसार में बड़ी अकीर्ति फैल जायेगी। मै बदनाम हो जाऊगी। कुल कलकनी के नाम से पुकारी जाऊंगी। आप विधि-पूर्वक मुझ से विवाह कर लीजिए।

"प्रिये ! विवाह दो हृदयों के पवित्र बंधन को कहते हैं। हमारे हृदय एक दूसरे को स्वीकार कर चुके हैं पाण्डु नृप ने कहा, अतः अब संसार भले ही कुछ कहे, हम एक दूसरे के लिये पति पत्नी हैं।"

"नहीं, नृप नहीं ! आप मेरा सर्वनाश न कीजिये पिता जी मुझे पापिन जान कर जीवित न छोड़ेंगे' कुन्ती ने विनय पूर्वक कहा। पर पाण्डु नृप पर तो काम भूत सवार था वह न माने। कहने लगे "कुन्ती ! तुम यदि इस बार मुझे निराश कर दोगी तो मैं कहीं का न रहूंगा। मेरा हृदय दो टूक हो जायेगा। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि जो हो, तुम्हें अवश्य ही अपनी अर्धाङ्गनी बनाऊँगा और इस प्रकार तुम्हें कोई दोष नहीं लगने दूंगा।

"जहां तक मेरे हृदय की स्वीकृति का प्रश्न है, कुन्ती बोली, मैंने आपको स्वीकार कर लिया, पर पिता जी आपको मेरा पति बनाने से इन्कार कर रहे हैं। मैं अभी अभी अपने जीवन में निराश होकर चिन्ता मग्न थी कि आप आ गए। आप इन बातों को छोड़िये और पहले पिता जी से निर्णय कीजिए।"

"मेरी समझ में यह नहीं आता कि तुम्हारे पिता जी मेरे साथ तुम्हारा विवाह करने से इन्कार क्यों करते हैं ?

"नृप ! अब मैं तुम्हें क्या बताऊं ! एक वहम है जो उनके मस्तिष्क पर छाया हुआ है। कुन्ती ने कहा।

'वह क्या ?

"उन्हें पता चला है कि आप पाण्डु रोग से पीड़ित हैं।

"ओह ! मेरे शत्रुओं ने ही उन्हें इस भ्रम में फंसाया है। मैं चाहता हूँ कि तुम मेरी कामना पूर्ति के लिए तैयार हो जाओ तो इस वहम की पोल खुल जायेगी पाण्डु बोले।

"क्यों"

"प्रश्नोत्तर में समय मत व्यतीत करो। जिसके हृदय में प्रेम की छोटी सी भी चिनगारी होती है वह अपने प्रेमी के लिए सारे ससार को लात मार देती है पाण्डू की बात कुन्ती के हृदय में चुभ गई।

"मैं आपके लिए प्राण तक दे सकती हूं, कुन्ती प्रेमातिरेक में बोली पर मुझे कौमार्य के धर्म का उल्लंघन करने पर विवश न कीजिए

पाण्डू नृप कुछ सोच में पड़ गए। उन्हें यह बात खटकी 'हॉ, कुन्ती के कौमार्य की रक्षा होनी चाहिए, अपने किसी कार्य से यदि मैं उसे बदनामी का शिकार कराता हूँ तो इसमें, तो मेरी अपनी भी अकीर्ति है। यह सोच तो गए पर कामवासना उन्हे चैन नहीं लेने दे रही थी। अतएव अपनी इच्छा पूर्ति के लिए उपाय खोजने लगे। अनायास ही मन में एक बिजली सी कौंधी। बोल उठे "कुन्ती तुम मुझ से गंधर्व विवाह कर लो। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि शीघ्र ही तुम्हें संसार की दृष्टि में अपना बना लूंगा। प्राणों पर खेल कर भी तुम से विवाह कर लूंगा"

कुन्ती पहले तो इकार करती रही। पर वह अपने प्रेमी को जिसके लिए वह कितने ही दिनों से व्याकुल थी निराश न कर पाई। दासी से तुरन्त कुछ आवश्यक सामान मंगाया। दोनों ने गंधर्व विवाह किया। इस प्रकार वे पति पत्नी के रूप में आ गए और फिर प्रेमातिरेक से, आत्म विभोर होकर रति क्रिया में मस्त हो गए।

चलते समय कुन्ती के नेत्रों में अश्रु छलछला आये। "मैं आपको विदा दूं तो कैसे ? मेरा हृदय आपके वियोग में तड़फता रहेगा।"

"शीघ्र ही हम एक दूसरे के हो जायेंगे। विवाह का शीघ्र ही प्रबन्ध होगा तुम विश्वास रखो और मुझे कुछ दिनों के लिए विदा दो।—यह ठीक है कि वियोग के दिन पहाड़ से प्रतीत होंगे, तुम्हें भी और मुझे भी। पर इस समय और कोई चारा भी तो नहीं" पाण्डू ने उसके नयनों मे झांकते हुए कहा।

"आप तो चले जा रहे हैं कुन्ती बोली, पर आपकी इच्छा पूर्ति का जो प्रसाद मुझे मिला है, उसके लिए मैं लोगों की कितनी बातों का निशाना बनूंगी, इसका विचार आते ही मेरा रोम रोम कांप रहा है। लोग कैसे विश्वास करेंगे कि मैंने पाप नहीं किया"

उसी समय पाण्डु ने अपनी मुद्रिका उतार कर देते हुए कहा "लो यह है वह निशानी जिसे दिखा कर तुम कह सकती हो कि यह जो कुछ तुम्हें मिला है मेरे मिलन और मेरे साथ गंधर्व विवाह द्वारा ही। मैं बदनाम होने का अवसर दिये बिना ही, तुम्हें इस चिन्ता से मुक्त करने का प्रबन्ध करूंगा।"

कुछ देर तक इसी प्रकार बातें होती रहीं। कुन्ती के अश्रुओं की झलक पाण्डु के नेत्रों में भी झलक पड़ी।—और पाण्डु वहां से हस्तिनापुर की ओर चल पड़े।



सुधार का कोई तो मार्ग निकालो। मैं तो लोक लज्जा से अपने प्राण दे दूंगी। मैं अपने कुल का कलंक नहीं बनना चाहती। मैं जग हंसाई सहन नहीं कर सकती।"

कुन्ती के नेत्रों से सावन भादों की झड़ी लग गई। इस दशा को देख कर धाय का भी दिल भर आया "बेटी!

अब पछताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गईं खेत।

इस प्रकार रुदन करने से अब क्या लाभ! जो होना था सो हो चुका। अब तो धैर्य रखो। मैं तुम्हारे कल्याण के लिए जो भी उपयुक्त उपाय बन पड़ेगा अवश्य करूंगी। तुम शान्त रहो। सावधानी से दिन व्यतीत करो।" इस प्रकार धाय ने धैर्य बंधाया। कुन्ती आशा की एक किरण पा कर सन्तुष्ट हो गई।

धाय बड़े यत्नों से कुन्ती के इस दोष को छुपाए रही। पर यह दोष आखिर कब तक छिप सकता है। गर्भ बढ़ता रहा। मुंह की आकृति पीली पड़ गई, थूक अधिक आने लगा, शरीर में सुस्ती छा गई। चंचलता लुप्त हो गई। पेट कड़ा हो गया। त्रिबली भग हो गई। नेत्र सुहावने दीखने लगे। कुचकुम्भ उन्नत एव सुवर्ण की कांति सरीखे हो गए। अब भला इन सब लक्षणों पर पर्दा कैसे डाला जा सकता था। कितने ही यत्न करने के पश्चात् भी एक दिन कुन्ती को उसके माता-पिता ने देख लिया। वे भॉप गये। धाय को बुलाया गया। उनके नेत्रों में आश्चर्य भी था और क्रोध भी। पर धाय के सामने आते ही आश्चर्य की अपेक्षा क्रोध की मात्रा अधिक हो गई। बोले—"तू बड़ी दुष्टा, पापिन, नीच निकली! बता तू ने कुन्ती से यह नीच कृति किस पुरुष के समागम से कराई। किस पुरुष को तू यहां लाई। दुष्टा! तुझे रखा तो गया था इस लिए कि कुन्ती की रक्षा करना, पर तू ने खूब रक्षा की?"

धाय मुंह लटकाये खड़ी रही। कुन्ती के पिता अंधक वृष्णि चीख उठे "ओ पापिन! क्या तू नहीं जानती कि नदी और स्त्री में कोई अन्तर नहीं है। जैसे नदी वर्षा ऋतु में अपने उन्माद से अपने ही तट को नष्ट भ्रष्ट कर डालती है उसी प्रकार स्त्री उन्माद में अपने कुल—किनारों को नष्ट कर देती है। क्या तू नहीं जानती कि कन्या और पुत्र वधु को सम्भाल कर रखना चाहिए क्योंकि यह चाहे कितने ही उच्च

कुल में क्यों न जन्म ले किन्तु स्वतन्त्र व उच्छृङ्खल होने पर जार-पुरुष के संसर्ग से कुल को दोष लगा देती हैं। तू ने जो यह पाप कराया है, इस से यदुवंश कलंकित हो गया। हम राजाओं की सभा में बैठने लायक नहीं रहे। हम किसी को मुंह दिखाने योग्य नहीं रहे। हमारे कुल की मर्यादा मिट्टी में मिल गई। हमारी नाक कटा दी तू ने।

अंधक वृष्णि के नेत्र जल रहे थे। वे दुखी हो कर कहने लगे। इसी लिए तो कहा है कि नागिनी, सर्पिणी, नख वाले पशु पक्षी, सिंहादि और नारी पर दुष्ट का विश्वास नहीं करना चाहिए। हम ने तुझे कुन्ती की रक्षा के लिए रखा था पर तू तो भूखी बिल्ली निकली। जिसे दूध की रखवाली पर रखा तो वह दूध स्वयं ही खा गई। तू पापिन और डायन निकली, जी में आता है कि अभी ही खड्ग से तेरा गला काट डालूं। तू ने हमें कहीं का न रखा।"

तभी कुन्ती की माता भी भभक पड़ी "तुम जैसी विश्वासघातिनों के कारण ही तो नारी जाति अपमानित होती है। तू ने वह पाप किया है जिस का दण्ड वध भी कम ही है। अब तू ही बता हमारे कुल की नाक कटा कर तुझे क्या मिला?"

धाय का रोम रोम कम्पित हो रहा था, शरीर पसीने से लथपथ हो गया, मुँह मलिन हो गया। वह जैसे तैसे अपने को सम्भाल कर और समस्त साहस बटोर कर बोली "राजन् आप अशरण के शरण हैं। यदुकुल के पालक हैं, "गुणवान तथा विद्वान् हैं। कृपा कर मेरे वचनों को सावधान होकर सुनें।"

"अब कहने सुनने के लिये धरा ही क्या है। पापिन!" "मेरी बात तो सुन लीजिये।"

धाय कांपते हुए बोली "कुरु जांगल देश मे कौरव वश में उत्पन्न हुआ, अतुल विभूति का स्वामी पाण्डू नामक एक शूरवीर नृप है। वह कुन्ती के रूप एवं गुण पर अत्यन्त आसक्त था। उसने आपसे कुन्ती के लिये याचना भी की पर आपने ध्यान न दिया। तब वह स्वयं कुन्ती से प्रार्थना करने के लिये यहां आ पहुँचा।"

"परन्तु वह यहाँ पहुंचा कैसे ?" अंधक वृष्णि ने विस्मित होकर पूछा।

"वह कुन्ती से भेट करने का इच्छुक था, और आप जानते ही है कि चाह है तो राह है। उसे कहीं से एक ऐसी अगूठी मिल गई जो व्यक्ति को उसके एच्छिक स्थान पर पहुँचा देती है और वह व्यक्ति दूसरों को देखता है, पर दूसरों को दिखाई नहीं देता। एक दिन वह अवसर पाकर राज उद्यान में उसी अंगूठी के सहारे पहुँच गया, वहाँ कुन्ती ही थी। दोनों एक दूसरे पर आसक्त हो गये। मनकी छुपी इच्छा फूट पड़ी। आग और घास पास आने पर जल ही पड़ते है, युवावस्था थी ही, बिना परिणाम पर विचार किये दोनो ने गधर्व विवाह किया और यह सब कुछ हो गया जो आप देख रहे हैं। कुन्ती ने यह सब मुझे बता दिया, जो कि आपके सामने ज्यों का त्यों मैं सुना चुकी। इसमे मेरा कोई दाष नहीं है।"

अंधक वृष्णि और उनकी रानी रानी सारी बात सुनकर पछताने लगे। "इससे तो अच्छा था कि कुन्ती का पहले ही पाण्डू के साथ विवाह कर दिया जाता" ऐसा सोचकर व पश्चाताप करने लगे। पर अनायास ही पूछ बैठे "इस का प्रमाण क्या है कि पाण्डू यहाँ पहुँचे।

इसके प्रमाण स्वरूप कुन्ती के पास उनकी अंगूठी है।

"जो हो, अच्छा नहीं हुआ।" नृप के मुँह से निकला। अब तो एक ही उपाय है कि कुन्ती का विवाह पाण्डू से तुरन्त कर दिया जाय। माता बोली।

गर्भ के दिन पूर्ण होने लगे और यह बात नगर तक पहुच गई। पर राजकन्या की बात थी, कोई भी खुल कर कह नहीं सकता था। अंधक वृष्णि ने हस्तिनापुर विवाह का सन्देश भिजवा दिया। पर राजकन्या का विवाह था, कोई साधारण बात तो थी नहीं। पाण्डू नृप

ने यह सारी बातें भीष्म जी से बता दी थी उन्होंने स्वीकार कर लिया। पर ऐसी स्थिति में विवाह होना अच्छी बात नहीं समझी गई। तैयारियां होने लगीं ६ मास पूर्ण होने पर कुन्ती ने एक अत्यन्त कान्ति युक्त प्रातः सूर्य की भाँति, पुत्र रत्न को जन्म दिया। गुप्त रूप से सभी कार्य किये गए। पर कानों कान सभी को ज्ञात हो गया। अतः उस शिशु का नाम 'कर्ण' + रख दिया गया। कर्ण के कानों में कुण्डल और भिन्न भिन्न आभूषण, रत्न कवच आदि पहन कर तथा स्वर्ण मुद्राओं के साथ उसे एक सन्दूक में रख दिया। उसमें एक पर्चे पर उसका नाम लिख कर सुरक्षित रख दिये गये और उसे यमुना जी में बहा दिया गया। जिसे आगे एक रथवान ने निकाल लिया और उसका पालन पोषण किया।

अंधक वृष्णि के घर एक सन्यासी आये, कुन्ती ने उनकी बहुत सेवा की। जिससे सन्यासी बहुत प्रसन्न हुये और कुन्ती को उन्होंने वर दिया कि वह जिस देवता का भी स्मरण करेगी वही उसके पास आ जायेगा। सन्यासी जी के चले जाने के उपरान्त कुन्ती के मन में यह शंका उत्पन्न हुई कि सन्यासी जी ने जो वरदान दिया है क्या वह सच है? क्या उस द्वारा किसी भी देवता को स्मरण करने पर वह देवता उसके सामने आ उपस्थित होगा? शंका उठी तो वह सोचने लगी कि सन्यासी जी के वरदान में कितना सत्य है इसकी परीक्षा लेकर देखा जाय। अतः आकाश में दीप्तिमान, कान्तिवान सूर्य पर उसकी दृष्टि गई और सूर्य देवता को ही उसने स्मरण किया। सन्यासी जी का वरदान सफल हुआ। सूर्य देवता तुरन्त आकाश से उतर कर कान्तिवान पुरुष रूप में कुन्ती के सामने आ गये। उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारे स्मरण पर आया हूँ और जब मैं आता हूँ अपनी कामना शान्ति किये बिना नहीं लौटता। अतः मेरी इच्छा पूर्ति करो। कुन्ती बोली कि मैं तो अभी कुमारी हूँ। अविवाहिता किसी के साथ सहवास नहीं कर सकती। अतएव आप मुझे क्षमा करें। मैंने तो सन्यासी जी के वरदान की परीक्षा के लिये ही आपका स्मरण किया था। कह

आप कृपा कर लौट जायें। परन्तु सूर्य देवता यू मानने वाले न थे। उन्होंने कहा कि अब तो बिना इच्छा पूर्ति के मैं लौट नहीं सकता, हॉं, ऐसा कर सकता हूँ कि तुम्हारे कौमार्य की भी रक्षा हो जाय और मेरी इच्छापूर्ति भी हो जाय। मैं तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हारा कौमार्य भंग नहीं होगा। मेरे वीर्य से जो पुत्र जन्म लेगा वह तुम्हारे कान से होगा। इस प्रकार कर्ण कान से उत्पन्न हुआ और कुन्ती कुमारी की कुमारी ही रही।

यह बात स्वयं कितनी हास्यास्पद है कि एक शिशु कन्या के कान से उत्पन्न हुआ बताया गया। आज भी तो स्त्रियों के नाक कान आदि होते ही हैं पर किसी ने नहीं सुना कि आज तक किसी के भी कान से कोई शिशु उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार गाय के सींग से कभी दुग्ध नहीं निकलता, जिस प्रकार आकाश में कभी फूल नहीं खिलते, गधे के सींग नहीं होते, पत्थर पर अन्न उत्पन्न नहीं होता, सर्प के मुख मे अमृत उत्पन्न नहीं होता, जिस प्रकार यह सब बाते असम्भव हैं इसी प्रकार यह भी सम्भव नहीं है कि स्त्री के कान, या आंख नाक से शिशु उत्पन्न हो। बल्कि बात यह है कि कारण भानु सुत कहलाता है, क्योंकि भानु नामक रथवान ने उसका पालन पोषण किया। भानु सूर्य को भी कहते हैं अतएव अज्ञानियों ने उसे सूर्य देवता का पुत्र बता दिया। और कर्ण चूंकि कान को भी कहते हैं अतः कान से उसकी उत्पत्ति बता दी गई। बात जो है वह ऊपर बताई जा चुकी है।

एक बात यह भी है कि देवताओं के वीर्य में सन्तानोत्पत्ति के कीटाणु ही नहीं होते। न देवांगनाओं के साथ उनके सम्भोग से ही सन्तान होती है और न किसी स्त्री के साथ संभोग होने पर ही सन्तान हो सकती है।



पौंदहवां परिच्छेद

कौरव पाण्डवों की उत्पत्ति

कुछ दिनों पश्चात अन्धक वृष्णि के सन्देशानुसार राजा पाण्डु बारात लेकर शौरीपुर की ओर चले। उस समय उनके गले में नाना प्रकार के गहने पड़े थे, उनके सिर पर सफेद छत्र लगा हुआ था, जिस से नृप इन्द्र समान प्रतीत होते थे। आगे आगे नाना प्रकार के बाजे बज रहे थे, जिनके शब्दों से दिशाएं गूंज रही थीं भाट लोग विरुदावली गाते हुए चल रहे थे। नट नाना प्रकार के नृत्य करते हुए चल रहे थे। कामनी मंगल गीत गा रही थीं। साथ में कितने ही नरेश और राजकुमार हाथियों, और घोड़ों पर सवार थे। सेवक सभी पर सुगन्ध वर्षा कर रहे थे।

रास्ते में प्रकृति की शोभा देखते और नृप पाण्डु को रिझाते हुए बराती गण आनन्द से जा रहे थे। कोई नदी को देख कर कह देता देखिये पाण्डु महाराज! कमलों से परिपूर्ण, कलरव करती यह नदी सुन्दर स्त्री के समान प्रतीत होती है। और उधर पर्वत देखिये यह भी आपके समान उन्नत वंश वाला है। (ऊंचे बांस को उन्नत वंश कह कर उपमा दी गई है।) कोई कह उठता कुमार! आपके विवाह की खुशी में यह मयूर अपनी प्रिया के साथ कितना सुहावना नृत्य कर रहा है। और वह देखिये यह सघन फल और फूलों वाले वृक्ष झुके जा रहे हैं मानो आपके अभिनन्दन में इन्होंने अपने सिर झुका लिए हों और भेंट में आपको फल और फूल समर्पित कर रहे हैं।'

बारात ज्यों ही शौरीपुर पहुंची अन्धक वृष्णि कितने ही राजाओं, राजकुमारों और अपनी परिषद के साथ स्वागत सत्कार के लिए नगर से बाहर आया। उस समय नगर की शोभा अनुपम था, स्थान स्थान पर तोरण बंधे हुए थे, जो कि बहुत सुहावने प्रतीत होते थे। घरों पे

अन्दर अभिमान सावन भादो की घटाओं के समान छा गया। उसे अपने गर्भवती होने का इतना अभिमान हुआ कि वह अन्य बन्धुओं को कुछ समझती ही नहीं थी। वह दूसरों को तुच्छ समझती और अपने आप में फूली न समाती।

एक रात्रि को कुन्ती अपनी शय्या पर निन्द्रामग्न थी कि वह स्वप्न लोक में जा पहुची। उसने स्वप्न में एक अद्भुत स्वप्न देखा। आंख खुली तो देखा कि प्राची लाल हो उठी है। जब सूर्य की किरणे पृथ्वी को आलोकित करने लगीं उसने पति से अपने स्वप्नों का वृत्तात सुनाया और पूछा कि हे जगपति! इस अद्भुत स्वप्न का क्या कोई विशेष अर्थ है?

पाण्डु नृप ने स्वप्न सुनकर हर्षित हो कहा "प्रिये! तुमने बहुत ही सुन्दर स्वप्न देखा है। इसका अर्थ यह है कि तुम्हारे एक शशि समान सुन्दर पुत्र होगा, जो मेरु समान महान, सागर समान गम्भीर और गहन विचारों वाला, रवि समान दैदीप्यमान, कॉतिवान, और अपार धन राशि का स्वामी लक्ष्मीपति, दानवीर और प्रभावशाली होगा।

कुन्ती पाण्डु द्वारा वर्णित स्वप्न फल सुन कर बहुत ही आनन्दित हुई। उसने जिन धर्म के पालन में विशेष रुचि लेनी आरम्भ कर दी, देव गुरु को प्रतिदिन वन्दना करके शुभ कर्मों में मन लगाना आरम्भ कर दिया, दीन दुखियों के प्रति करुणा का प्रदर्शन करती, परोपकार में विशेष रुचि लेती। प्रतिदिन धर्म कथा सप्रेम सुनती। कुन्ती में तो वैसे ही कितने गुण थे पर गर्भवती होने के पश्चात उसमें कितने ही अन्य सदगुणों का प्रादुर्भाव हुआ और इनके कारण वह सारे परिवार दास दासियों की प्रिय हो गई। सभी उसकी ओर विशेष प्रेम और श्रद्धा से देखने लगे।

मंगलवार को शुभ मुहूर्त और शुभ लग्न में उसने एक दिव्य-कुमार को जन्म दिया। शिशु के मुख पर अलौकिक काति थी। जैसे उसके ललाट पर बालचन्द्र उत्तर आया हो। सूरत देखकर सारे परिवार को अपार हर्ष हुआ। ज्यों ही शिशु का जन्म हुआ अन्तरिक्ष से देव वाणी हुई कि यह शिशु अपने जीवन में महान बलवान, दानी, पराक्रमी, विनयवान, गम्भीर, धीर, पुण्यात्मा, धर्मवीर, मतवान,

गुणों की खान, सतधारी और कुल के मस्तक को उच्च करने वाला होगा, इस परम प्रतापी से पाण्डू नृप का वश जगत प्रसिद्ध होगा। जीवन के अन्तिम परिच्छेद में यह सयम धारी होगा और मोक्ष पद प्राप्त करेगा। अन्तरिक्ष की वाणी सुनकर भीष्म पितामह बहुत ही प्रसन्न हुए। और पाण्डू के हर्ष का तो ठिकाना ही न था। दस दिन व्यतीत होने के पश्चात् पाण्डू ने दसोटन किया सारी नगरी को निमत्रण दिया गया, मिष्ठान्न और फलों से सभी को छका दिया गया, मुक्त हस्त से दान दिया। विद्वान पडितों ने शिशु को युधिष्ठिर का नाम दिया।

कुछ विद्वानों ने माता पिता के धर्मी जन होने के कारण धर्मराज कहकर पुकारा और बहुत से शिशु को अजीतारि कहकर पुकारने लगे। कुन्ती रानी को अपार हर्ष हुआ था, उसने स्वय अपने हाथों से बहु मूल्य द्रव्य दान में दिए। उस कातिवान शिशु को देख कर लोग आनन्दित हो जाते। वाल चन्द्र, वाल रवि वृद्धि की ओर जाने लगा, तो उस की काति और भी बढ़ने लगी।

युधिष्ठर के पिता पाण्डू क्रियाकांड के अच्छे पण्डित थे, इसलिए उन्होंने अपने वालक का अन्ताशन, सचौल, उपनयन आदि सभी संस्कार शास्त्रविधि अनुसार कराये। युधिष्ठिर ने जव वाल्यकाल से युवावस्था में पग रखा, उसकी वाणी में ओज आ गया, उसमें कला के प्रति अनुराग, विज्ञान के प्रति आसक्ति और शील स्वभाव तथा सदगुणों के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया। मद का भाख रच मात्र भी नहीं आया। उसके मस्तक पर उस समय निर्मल मणियों से जड़ा हुआ मुकुट अत्यन्त शोभा देता था। मानो शिखर सहित सुमेरु पर्वत की चोटी हो। उसका मुख मण्डल चन्द्र मण्डल को भी मात करता था, चन्द्रमा तो घटता बढ़ता भी है और उसमें एक दाग भी है पर उसके मुख में घटने बढ़ने तथा दाग जैसी कोई बात नहीं थी उसके कानों में पड़े हुए कुण्डल अत्यन्त शोभा देते थे, नेत्र सूक्ष्मदर्शी और मनोहर थे। उसकी नाक चम्पा के समान शोभा युक्त थी। सुन्दर किंपाक फल के समान आरक्त थे उसके होंट। भृकुटि चचल थी। उसके कण्ठ में हीरे का हार पड़ा हुआ था। जिससे उसकी शोभा अत्यन्त अद्भुत हो गई थी। युधिष्ठिर का वक्षस्थल बहुत विस्तृत था, भुजाएं

अन्दर अभिमान सावन भादों की घटाओं के समान छा गया। उसे अपने गर्भवती होने का इतना अभिमान हुआ कि वह अन्य बन्धुओं को कुछ समझती ही नहीं थी। वह दूसरों को तुच्छ समझती और अपने आप में फूली न समाती।

एक रात्रि को कुन्ती अपनी शय्या पर निन्द्रामग्न थी कि वह स्वप्न लोक में जा पहुंची। उसने स्वप्न में एक अद्भुत स्वप्न देखा। आंख खुली तो देखा कि प्राची लाल हो उठी है। जब सूर्य की किरणे पृथ्वी को आलोकित करने लगीं उसने पति से अपने स्वप्नों का वृत्तात सुनाया और पूछा कि हे जगपति! इस अदभुत स्वप्न का क्या कोई विशेष अर्थ है?

पाण्डू नृप ने स्वप्न सुनकर हर्षित हो कहा "प्रिये! तुमने बहुत ही सुन्दर स्वप्न देखा है। इसका अर्थ यह है कि तुम्हारे एक शशि समान सुन्दर पुत्र होगा, जो मेरु समान महान, सागर समान गम्भीर और गहन विचारों वाला, रवि समान दैदीप्यमान, कॉतिवान, और अपार धन राशि का स्वामी लक्ष्मीपति, दानवीर और प्रभावशाली होगा।

कुन्ती पाण्डू द्वारा वर्णित स्वप्न फल सुन कर बहुत ही आनन्दित हुई। उसने जिन धर्म के पालन में विशेष रुचि लेनी आरम्भ कर दी, देव गुरु को प्रतिदिन वन्दना करके शुभ कर्मों में मन लगाना आरम्भ कर दिया, दीन दुखियों के प्रति करुणा का प्रदर्शन करती, परोपकार में विशेष रुचि लेती। प्रतिदिन धर्म कथा सप्रेम सुनती। कुन्ती में तो वैसे ही कितने गुण थे पर गर्भवती होने के पश्चात उसमें कितने ही अन्य सदगुणों का प्रादुर्भाव हुआ और इनके कारण वह सारे परिवार दास दासियों की प्रिय हो गई। सभी उसकी ओर विशेष प्रेम और श्रद्धा से देखने लगे।

मंगलवार को शुभ मुहूर्त और शुभ लग्न में उसने एक दिव्य-कुमार को जन्म दिया। शिशु के मुख पर अलौकिक काति थी। जैसे उसके ललाट पर बालचन्द्र उत्तर आया हो। सूरत देखकर सारे परिवार को अपार हर्ष हुआ। ज्यों ही शिशु का जन्म हुआ अन्तरिक्ष से देव वाणी हुई कि यह शिशु अपने जीवन में महान बलवान, दानी, पराक्रमी, विनयवान, गम्भीर, धीर, पुण्यात्मा, धर्मवीर, मतवान,

गुणों की खान, सतधारी और कुल के मस्तक को उच्च करने वाला होगा, इस परम प्रतापी से पाण्डु नृप का वंश जगत प्रसिद्ध होगा। जीवन के अन्तिम परिच्छेद में यह संयम धारी होगा और मोक्ष पद प्राप्त करेगा। अन्तरिक्ष की वाणी सुनकर भीष्म पितामह बहुत ही प्रसन्न हुए। और पाण्डु के हर्ष का तो ठिकाना ही न था। दस दिन व्यतीत होने के पश्चात् पाण्डु ने दसोटन किया सारी नगरी को निमन्त्रण दिया गया, मिष्ठान्न और फलों से सभी को छका दिया गया, मुक्त हस्त से दान दिया। विद्वान पण्डितों ने शिशु को युधिष्ठिर का नाम दिया।

कुछ विद्वानों ने माता पिता के धर्मी जन होने के कारण धर्मराज कहकर पुकारा और बहुत से शिशु को अजीतारि कहकर पुकारने लगे। कुन्ती रानी को अपार हर्ष हुआ था, उसने स्वय अपने हाथों से बहु मूल्य द्रव्य दान में दिए। उस कांतिवान शिशु को देख कर लोग आनन्दित हो जाते। बाल चन्द्र, बाल रवि वृद्धि की ओर जाने लगा, तो उस की कांति और भी बढ़ने लगी।

युधिष्ठर के पिता पाण्डु क्रियाकांड के अच्छे पण्डित थे, इसलिए उन्होंने अपने बालक का अन्नाशन, सचौल, उपनयन आदि सभी संस्कार शास्त्रविधि अनुसार कराये। युधिष्ठिर ने जब बाल्यकाल से युवावस्था में पग रखा, उसकी वाणी में ओज आ गया, उसमें कला के प्रति अनुराग, विज्ञान के प्रति आसक्ति और शील स्वभाव तथा सदगुणों के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया। मद का भाख रच मात्र भी नहीं आया। उसके मस्तक पर उस समय निर्मल मणियों से जड़ा हुआ मुकुट अत्यन्त शोभा देता था। मानो शिखर सहित सुमेरु पर्वत की चोटी हो। उसका मुख मण्डल चन्द्र मण्डल को भी मात करता था, चन्द्रमा तो घटता बढ़ता भी है और उसमें एक दाग भी है पर उसके मुख में घटने बढने तथा दाग जैसी कोई बात नहीं थी उसके कानों में पडे हुए कुण्डल अत्यन्त शोभा देते थे, नेत्र सूक्ष्मदर्शी और मनोहर थे। उसकी नाक चम्पा के समान शोभा युक्त थी। सुन्दर किंपाक फल के समान आरक्त थे उसके होंट। भृकुटि चचल थी। उसके कण्ठ में हीरे का हार पड़ा हुआ था। जिससे उसकी शोभा अत्यन्त अद्भुत हो गई थी। युधिष्ठिर का वक्षस्थल बहुत विस्तृत था, भुजाएं

कर्मचारी कहने लगा "महाराज! भीमसेन कुमार नीचे कन्दरा में पड़े खेल रहे थे। मैं उधर से आ निकला। मुझे उन्हें अकेले पड़े देख कर बहुत आश्चर्य हुआ, और उठाकर यहाँ ले आया।"

जब नृप ने बताया कि भीमसेन गिर पड़ा था, कर्मचारी को वहुत आश्चर्य हुआ, और नृप तो असीम आश्चर्य में डूबे भीमसेन के शरीर से धूल साफ कर रहे थे। फिर तनिक गौर से उस स्थान को और उससे नीचे दृष्टि डाली जहाँ से भीमसेन गिरा था, उन्होंने देखा कि कई शिलाएं टूट गई थीं और कई पत्थर अलग जा पड़े थे, छोटे छोटे पाषाण खण्ड चूर्ण हो गये थे। नृप ने उसी क्षण उसको शिला चूर्ण नाम दिया। और उन्होंने समझ लिया कि वास्तव मे बालक वज्र शरीर है। वापिस आकर नगर में महोत्सव किया और कितना ही दान दिया।

कुन्ती रानी रजनी में सेज पर निद्रामग्न थी। उन्होने ऐरावत आरूढ़ इन्द्र का स्वप्न देखा। ज्योंही आंखें खुली नृप से अपना स्वप्न कह सुनाया। नृप ने आनन्दित होकर कहा "प्रिये! तुम्हारा यह स्वप्न इस बात की ओर संकेत कर रहा है कि अबकी बार तुम्हारे गर्भ से एक परम ओजस्वी, तेजस्वी और धुरन्धर धनुषधारी पुत्र उत्पन्न होगा। यह बालक हाथ में धनुष लेकर अन्याय को समाप्त करेगा, जगत के जीवों की रक्षा करेगा और यमराज का निग्रह करके उपद्रवों को दूर करेगा—गर्भ के दिन पूर्ण होने पर एक दिव्य कांति युक्त पुत्र रत्न को जन्म दिया। जिसका अर्जुन नाम रखा गया। क्योंकि कुन्ती ने गर्भ धारण करते समय इन्द्र का स्वप्न देखा था अतः उसे इन्द्र सुत अथवा शक्रसुत के नाम से भी पुकारते है। जब अर्जुन का जन्म हुआ तो आकाशवाणी हुई कि यह बालक भ्रातृवत्सल, धनुषधारी सौम्य, गुरु भक्त, सर्वजन कृपापात्र, शत्रुनाशक होगा अन्तिम आयु में अष्ट कर्मों को नष्ट करके मोक्ष प्राप्त करेगा।" देवों ने आकाश से उसके जन्मोत्सव पर गीत गाये। जिन्हे सुनकर दुर्योधन मन ही मन कुढता रहा। पाण्डु नृप ने जन्मोत्सव पर बहुत धन धान्य व्यय किया। सहस्रों दान पात्रों को दान दिया। सारे नगर में खुशियां मनाई गईं।

कुछ दिनों के पश्चात् माद्री रानी के गर्भ से युगल पुत्र उत्पन्न

हुए। जिनमें से पहले का नाम नकुल, शत्रुओं के कुल का नाश करने वाला रखा गया, और दूसरे को सहदेव की सज्ञा दी गई। यह दोनों ही गुणवान, तेजवान थे। आगे जाकर दोनों ही शस्त्र तथा शास्त्र विद्या में विशारद हुए। इस प्रकार पाण्डु नृप के पाँच पुत्र हुए। जिस प्रकार निरोगी, स्वस्थ पुरुष अपनी पाँचों इन्द्रियों का सुख भोगता है। इसी प्रकार पाण्डु नृप स्त्रियोचित सम्पूर्ण गुणों से युक्त कुन्ती और सुन्दरी माद्री सहित, पाँचों परम प्रतापी पुत्रों के साथ आनन्द पूर्वक सांसारिक सुखों को भोगता है।

इधर परम प्रीति को प्राप्त हुई धृतराष्ट्र की प्यारी गांधारी वैभव में रहकर एश्वर्य में लिप्त थी। धृतराष्ट्र गाधारी के मुख कमल पर भ्रमर के समान केलि-क्रीड़ा करते हुए तृप्त नहीं होते थे। वे एक दूसरे का वियोग क्षण भर को भी सहन नहीं करते थे। अन्य सात रानियां भी धृतराष्ट्र को प्रिय थीं पर गांधारी का जो स्थान था वह अन्य को कहाँ प्राप्त था। गांधारी ने दुर्योधन के पश्चात दुश्शासन को जन्म दिया। धृतराष्ट्र के कुल मिलाकर सौ पुत्र हुए। शेष ९८ के नाम इस प्रकार हैं:—दुर्द्धर्षण २—दुर्मर्षण, ३—रणश्रांत ४—सुमाद्य ५—विन्द ६—सर्वसह ७—अनुविंद ८—सभीम ९—सुवन्हि १०—दु सह ११—दुरुल १२सुगात्र १३—दु कर्ण १४—दु श्रव १५—वरवश १६—अवकीर्ण १७—दीर्घदर्शी १८—सुलोचन १९—उपचित्र २०—विचित्र २१—चारुचित्र २२—शरासन २३—दुर्मद २४—दु प्रगाह २५—युयुत्सु २६—विकट २७—ऊर्णनाभ २८—सुनाम २९—नद, ३०—उपनन्द ३१—चित्रवाण ३२—चित्रवर्मा ३३—सुवर्मा, ३४—दुर्विमोचन ३५—अयोबाहु ३६—महाबाहु, ३७—श्रुतवान ३८—पद्मलोचन ३९—भीमबाहु ४०—भीमबल ४१—सुषेण ४२—पण्डित ४३—श्रुतायुध ४४—सुवीर्य ४५—दण्डधर ४६—महोदर ४७—चित्रायुध ४८—नि षगी ४९—पाश ५०—वृ दारक ५१—शत्रु जय ५२—सतृसह ५३—सत्यसध ५४—सुदुःसह ५५—सुदर्शन ५६—चित्रसेन ५७—सेनानी ५८—दु पराजय ५९—पराजित ६०—कुण्डशामी ६१—विशालाक्ष ६२—जय ६३—दृढ़हस्त ६४—सुहस्त ६५—वातवेग ६६—सुवचस ६७—आदित्यकेतु ६८—वह्वासी ६९—निवध ७०—प्रियोदी ७१—कवाची ७२—रणशौंड ७३—कु ण्डधार ७४—धनुर्धर ७५—उग्ररथ ७६—भीमरथ ७७—शूरबाहू ७८—अलोलुप

७६—अभय ८०-रौद्रकर्मा ८१—दृढ़रथ ८२—अनाधृष्य ८३-कुंडभेदी ८४-विराजी ८५—दीर्घलोचन ८६—प्रथम ८७--प्रमाथी ८८---दीर्घालाप ८६—वीर्यवान ६०—दीर्घबाहु ६१—महावक्ष ६२—विलक्षण ६३—दृढ़वक्षा ६४ —कनक ६५—कांचन ६६—सुध्वज ६७—सुभज ६८—अरज। कुल मिला कर सौ पुत्र थे सभी यशस्वी, बुद्धिमान और पराक्रम शाली थे। किन्तु यह सभी अभिमानी थे।

पाण्डू के पॉच पुत्र और धृतराष्ट्र के सौ पुत्र, यह कुल १०५ एक साथ ही क्रीड़ा किया करते थे। एक दिन धृतराष्ट्र ने पाण्डू आदि सभी भ्राताओं को बुलवाया और नैमित्तिक को भी बुलवा लिया और पूछा कि राज्य सिंहासन पर सभी युधिष्ठर को बैठाने के पक्ष मे है। परन्तु मैं चाहता हूं कि मेरा पुत्र दुर्योधन भी राज्य सिंहासन पर बैठे। जिस समय धृतराष्ट्र ने यह बात कही पृथ्वी कॉप गई। उसी समय सिवा पक्षी की आवाज आई। आकाश पर बादल छा गए। बादलों ने भयंकर आर्तनाद किया। नैमित्तिक बोला "राजन्! जिस समय आपने प्रश्न पूछा है उस समय के लक्षण बता रहे है कि दुर्योधन राज्य सिंहासन पर बैठ कर कुल नाशक सिद्ध होगा, उसके कारण भयकर उत्पात उठेंगे और हस्तिनापुर राज्य पर उल्लू बोलने लगेंगे।"

बात सुन कर सभी स्तब्ध रह गए। विदुर जी बोल उठे "यदि ऐसा ही है तो दुर्योधन को राजसिंहासन देने की बात भूल कर भी मत सोचो। जो कुल नाशक है उसे भला राज्य सिंहासन सौंपा जा सकता है?

एक तो ज्योतिषि की बात से ही धतराष्ट्र के हृदय पर भयकर आघात हुआ था, पर विदुर जी की बात ने और भी भारी घाव कर दिया। वे कुछ न बोल पाए। क्या कहते? मौन रहे, पर पीड़ा और क्रोध से उनका हृदय धड़कने लगा। पाण्डू सहनशील, उदार चित्त, और बड़ी सूझ बूझ के व्यक्ति थे। वे तुरन्त बोल पड़े "नहीं! नहीं! जो भी हो पहले युधिष्ठर और उसके पश्चात दुर्योधन गद्दी पर बैठेगा। हम किसी के अधिकार को भविष्य वक्ता के कथन पर ही नहीं छीन सकते। किसी का पुण्यवान अथवा पतित होना उसके पूर्व कर्मों पर निर्भर है। हमारे वशज यदि ऐसे ही है कि उन्हें नष्ट होना चाहिए तो उसे कोई नहीं बचा सकता"

पाण्डु की बात से धृतराष्ट्र को बहुत सन्तोष हुआ और विदुर आदि मौन रह गए।

× × × ×

गाँधारी ने एक कन्या दुशल्या को भी जन्म दिया था, उसके युवा होने पर उसका विवाह धूमधाम से सिन्धुपति जयद्रथ के साथ कर दिया गया। तदुपरान्त सारा परिवार सहर्ष रहने लगा। पाँच पाण्डव और १०० कौरव प्रेम से साथ साथ रहने लगे। सभी प्रात ही उठकर पाण्डु धृतराष्ट्र, विदुर और भीष्म जी के चरण छूते, उनके पश्चात् सभी रानिया प्रणाम करतीं और पाण्डव तथा कौरव क्रीड़ा के लिए निकल पड़ते।



❀ पन्द्रहवां परिच्छेद ❀

विरोध का अंकुर

कौरव पाण्डव हिल मिलकर परस्पर भ्रात समान, प्रेम और स्नेह के साथ क्रीड़ा किया करते थे एक दिन सभी ने मिलकर निश्चय किया कि गगा तट पर जाकर क्रीड़ा की जाय। निश्चय होना था कि सभी अपने अपने वस्त्र आदि लेकर गंगा तट की ओर चल पड़े। पथ पर चलते चलते हास्य उपहास से मनोरजन करते जाते। किसी के मन में मैल नहीं था, एक दूसरे के साथ भ्राता समान व्यवहार करते।—आखिर गगा तट पर पहुंच गए। १०५ भ्राताओं की टोली का गंगा तट पर पहुंचना था कि ऐसा प्रतीत होने लगा मानो राजकुमारों की भीड़ कोई पर्व मनाने गंगा तट पर आ गई है। सभी ने सुन्दर वस्त्र उतार दिये और क्रीड़ा करने लगे। भीम सभी में अधिक चचल और हृष्ट पुष्ट था। वह कौरव भ्राताओ के साथ क्रीडा करने लगा। कभी किसी की टांग पकड़कर रेती मे घसीटता, कभी किसी को कधे पर उठाकर फेंक देता, किसी को जल मे डाल देता, और फिर स्वय ही छलांग लगाता, पानी मे से निकालकर, तट पर ला पटकता। कभी दो कुमारो को पकड़ कर उनके सिर, लगा देता। कुमार चीत्कार कर उठते किसी के नेत्रों मे अश्रु छलछला आते तो भीम खिलखिला पड़ता पर उसका मन पवित्र था। वह इसी प्रकार की क्रीड़ा मे आनन्द लेता था। एक बार कौरव कुमार एक वृक्ष पर जा चढ़े, फल खाने हेतु। भीम को जो उद्दण्डता सूझी उसने वृक्ष को इतने जोर से हिलाया कि सारे कुमार पके आमो की भाँति धड़ाधड़ नीचे आ टपके। पर किसी को भी उसके प्रति कोई रोष न हुआ क्यो कि सभी जानते थे कि भीम तो मन बहलाने के लिए खेल कर रहा है, किसी को जानबूझ कर कष्ट देने की उसकी इच्छा नहीं है।

फिर भीम ने सभी कौरवों को कुश्ती लड़ने को निमन्त्रित किया, बारी बारी से कौरव उसके साथ मल्ल युद्ध के लिए डटने लगे। पर वह किसी को दो तीन मिनट से अधिक न लगने देता, प्रत्येक को परास्त कर देता। बीच बीच में रुक रुक कर दण्ड बैठक भी लगाता रहता। कोई कौरव कुमार उसको परास्त करने का बीड़ा उठाकर अकड़ता हुआ उस से जा भिडता तो भीम एक ही दाव में पटक कर अट्टहास करने लगता। इस प्रकार सभी को वह पटक चुका, पर दुर्योधन दूर खड़ा हुआ ही भीम को देखता रहा। इतने में भीम को क्या सूझ कि वह दूर से दौड़ता हुआ आया और किसी कौरव से आकर टक्कर मारता, कौरवों को ढेले की नाई गिरता और भीम भागा चला जाता। यह दृश्य देखकर दुर्योधन के हृदय में दुष्टता अंकुरित हुई। वह सोचने लगा कि भीम अपने बल से मेरे समस्त भाइयों को परेशान करता है। वह अपनी उद्दण्डता से सभी कौरवों को पीड़ा पहुँचाता है। उसे अपने बल पर अभिमान है। यह हमारा शत्रु है"

यह सोच कर दुर्योधन दांत पीसने लगा। उसके नेत्रों में लाली आ गई और भीम को हराने का निश्चय कर लिया। उसने ललकार कर कहा "ओ भीम! इन बेचारों पर क्यों बेकार रोब दिखा रहा है। अपने से छोटे कुमारों को परेशान करता है किसी बराबरी के कुमार से अभी तेरा पाला नहीं पड़ा। वरना सारी अकड भूल जाता तेरी भुजाओं में बहुत खुजली उठ रही है। आ! मुझ से कुश्ती लड़ तब तुझे पता चलेगा कि वीरता किसका नाम है! आज तेरी सारी अकड ढीली किए देता हूँ।"

"आपको मना किसने किया है, आइये लंगोट खींच कर मैदान में तो उतरिये। या यूं ही गीदड़ भबकी दिये जाओगे" भीम बोला।

"ऊण्ट जब तक पहाड के नीचे से नहीं गुजरता, तब तक वह यही समझता है कि मुझ से ऊंचा तो संसार में कोई नहीं, दुर्योधन कपड़े उतारता हुआ बड़बड़ाता गया, मैं तो अब तक समझता था कि तू खुद ही होश में आजायेगा, पर तेरा तो अहंकार बढ़ता जा रहा है"

"भ्राता जी! मैं तो मनोरंजन के लिए क्रीड़ा किया करता हूं, भीम ने नम्रता पूर्वक कहा, अहंकार तो रंच मात्र भी मुझ में नहीं है। न कभी मैं इस विचार से ही किसी कुमार से कुश्ती लडा हूँ कि मुझे उसे

परास्त ही करना है। पर जब यह हैं ही गोबर गनेश तो फिर डहेंगे नहीं तो और क्या करेंगे। यह तो हाथ लगाते ही लुढ़क पड़ते हैं"

भीम ने तो सीधे स्वभाव से नम्रता पूर्वक बात कही थी उसे क्या पता था कि उसका एक एक शब्द दुर्योधन को बाण की भाति चुभ रहा है। दुर्योधन क्रोधित होकर बोला "इतनी डींग मत हांक ! मुझ से लड़ेगा तो लड़ना भिड़ना सदैव के लिए भूल जाएगा, अपने हाथ पॉव की खैर मना। तू भी गोबर गनेश से कुछ ज्यादा नहीं"

"भ्राता जी ! आप तो रुष्ट हो गए। कुश्ती ही तो लड़नी है कोई युद्ध थोड़े ही करना है।" भीमसेन किंचित मुस्करा कर बोला।

"अच्छा, पहले ही से डरने लगा ?" दुर्योधन ने व्यंग किया।

"तनिक सामने आइये। सब कुछ पता चल जायेगा।"

"अच्छा तो फिर आ जा" दुर्योधन ने जघा पीटते हुए कहा, तू ने मेरे भाइयों को परेशान कर रखा है आज सारा नजला ढीला करता हूँ।

"भ्राता जी ! आप को भ्रम हो गया, भीम फिर भी नम्रता से बोला, मैं तो सभी कौरव कुमारों को अपने चारों पाण्डव भ्राताओं के समान ही समझता हूँ। मैं किसी को दुःख पहुचाने की नियत से तो नहीं खेलता। हाथी क्रीड़ा में वृक्ष तोड़ देता है तो कहीं वह वृक्ष का शत्रु थोड़े ही होता है।"

"कायर का स्वभाव ऐसा ही होता है। वीर पुरुष को सामने देखा और गिड़गिड़ाने लगे" दुर्योधन ने आँखें तरेर कर कहा।

"भ्राता ! आपको अभिमान और अहंकार से बोलना शोभा नहीं देता। आप से कुश्ती लडने को मैंने कब इंकार किया। सामने तो हूँ आ जाइये। अभी ही पता लग जायेगा कौन कायर और कौन वीर है। भीम गम्भीरता से बोला।

"भीम ! जवान सम्भाल कर बात कर। तू यह मत भूल कि आज दुर्योधन से वास्ता पड़ा है, छोटे बालकों से नहीं।"

"आप तो भभक रहे है, ओह ! आप वास्तव मे लड़ने को तैयार नजर आते हैं, पर तनिक सोच समझ कर आगे बढ़िये कहीं पछताना ही न पड़े" भीम ने व्यग कसे। दुर्योधन जघा और भुजदंड पीटता

हुआ आ गया और भीम शांत भाव से सामने जा खड़ा हुआ। दुर्योधन का मुख मण्डल कमल की भांति लाल हो रहा था क्रोध से, और भीम के अधरों पर मुस्कान थी। दोनों भिड़ गए। कुश्ती आरम्भ हो गई। अपने अपने दॉव पेंच चलाने लगे। कुछ ही क्षण उपरान्त भीम ने दुर्योधन को उठा कर पटक दिया और सीने पर जा बैठा। युधिष्टिर ने देखा तो दूर ही से भीम को कुश्ती छोड देने को कहा। पर भीम अब न रुकने वाला था। दुर्योधन ने भीम के नीचे से निकलने के बहुत हाथ पाँव मारे, पर सब व्यर्थ गए। भीम उस पर चोट पर चोट किये जा रहा था। आखिर दुर्योधन परास्त होकर हापने लगा और फिर न चाहते हुए भी उसके मुख से चीत्कार निकल गया। भीम छोड़ कर अलग हो गया और अपने भ्राताओं के पास चला गया, दुर्योधन कौरवों से जा मिला। चारों भ्राताओं ने धूल मे सने भीम को झाड़ना आरम्भ कर दिया और फिर अर्जुन उसके शरीर को दाबने लगा, नकुल और सहदेव दुपट्टे से हवा करने लगे। युधिष्ठिर कपड़े से उनके शरीर को साफ करता रहा। दुर्योधन ने जब यह दृश्य देखा तो उसका हृदय दग्ध हो गया। उसका अंग अंग दर्द कर रहा था पर किसी कुमार ने उसकी सेवा न की। एकान्त मे जाकर वह गर्दन लटका कर बैठ गया। सोचने लगा यह पॉच हैं। और पाँच ही हम सौ भ्राताओं से अधिक बलशाली हैं। एक दिन धर्मराज युधिष्ठिर राज्य सिंहासन पर बैठेगा। उसके चारों भाई भी उसके साथ मौज उड़ायेंगे। हमारी कोई बात भी न पूछेगा। आखिर बलिष्ट के सामने कमजोरों की क्या चलती है। यह तो जो चाहेंगे हमारा वही बनायेंगे ?" इस बात को सोचकर ही उसके हृदय मे जलन की ज्वाला धू धू करके धधकने लगी। उसके नेत्र जलते रहे, अनायास ही उसके मन मे विचार आया कि क्यों न राज्य सिंहासन पर मैं ही बैठूं। परन्तु भीम और अर्जुन जैसे बलिष्ट भाइयों के रहते मैं भला कैसे सिंहासन पर अधिकार कर सकता हू। भीम और अर्जुन में भी भीम ही ऐसा है जिसे परास्त करना दुर्लभ है। अतः भीम का काम तमाम करदू तो फिर हम सौ मिलकर सिंहासन पर अधिकार कर लेंगे" ऐसा विचार आना था कि वह भीम को को समाप्त करने की युक्ति सोचने लगा।

× × ×

एक दिन गंगा तट पर ही भीम अधिक भोजन करने के कारण

सो गया। दुर्योधन ने अच्छा अवसर देख उसे एक लता से बांध दिया और दूसरों की आँख बचाकर गगा जी में फेंक दिया। ज्योंही बंधा हुआ निद्रासन भीम गगाजल में पहुंचा, उसकी आंख खुल गई और तुरन्त लता तोड़कर अपना शरीर बधन मुक्त करके गगा से बाहर आकर मुस्कराने लगा। दुर्योधन जो अभी यह सोच रहा था कि चलो अच्छा हुआ, भीम से तो तनिक से प्रयत्न द्वारा ही छुट्टी मिली, उसे गंगा तट पर देखते ही सुन्न हो गया। उसके मन में आशंका जमी कि अब जरूर भीम उसकी हड्डी पसली तोड़ डालेगा। परन्तु उसकी शंका निर्मूल सिद्ध हुई जब भीम ने हसकर कहा "दुर्योधन! अब तो आप सोते हुए से भी हंसी करने लगे। अपनी बार को रुष्ट मन होना।"

मैं तो इसी प्रतीक्षा मे खड़ा था कि यदि कहीं जल मे भी तुम्हारी आँख न खुलीं, तो मुझे ही निकालना पड़ेगा, दुर्योधन ने भीम की भूल से लाभ उठाने के लिए उसकी भूल को विश्वास में परिणत करने की इच्छा से कहा।

"तो आप समझते हैं कि मैं कोई कुम्भकरण की नींद सोता हूं।" भीम ने हंसकर कहा।

"तुम खाते ही इतना क्यों हो कि खाने के बाद सुधि ही नहीं रहती। देखो अब से अधिक मत खाना (मैंने यही पाठ पढ़ाने के लिए तो हंसी की थी)।

"तो भाई साहब! खाता जितना हूँ उतना ही बल भी रखता हूं। आपको इस प्रकार कोई बॉधकर गंगा में फेंक देता तो सुरधाम सिधार गए होते" भीम आँखें नचा कर बोला—और बात समाप्त हो गई।

एक दिन चुपके से दुर्योधन ने भीम के भोजन मे विष मिला दिया और बड़े प्रेम से उसे बुला कर भोजन कराने लगा भीम भोजन करने बैठा तो कहता जाता "भाई साहब कदाचित आज पहली बार ही आप हमें भोजन करा रहे हैं। क्या मेरी ओर से जो आपको रोष था वह सारा थूक दिया? क्या अब आप समझ गए कि मैं कभी भी कोई उद्दण्डता इस लिए नहीं करता कि आप या आपके भ्राता मुझे अच्छे नहीं लगते, बल्कि मेरा तो स्वभाव ही ऐसा है। ··· ओहो! आज के भोजन मे जो स्वाद है वह तो कभी नहीं आया। खूब छक कर खाऊँगा, हाँ बुरा मत मानना।"

गेंद बिन्ध गई। फिर एक और तीर मारा, एक और, एक और। इस प्रकार तीर पर तीर मारते रहे। और तीरों का ऊंचा स्तम्भ सा बनता चला गया। कितने ही तीर मारे और अन्त में एक तीर का सिरा कुएं से बाहर निकल आया। ब्राह्मण ने उसे पकड़ा और ऊपर खींच लिया। सारे तीर गेंद सहित ऊपर खिंच आये। गेंद को बाहर फेंक कर बोले "अब समझ गए न कि गेंद के कुए में गिरने और धनुष बाण का क्या सम्बन्ध है?"

सभी कुमार आश्चर्य चकित होकर देख रहे थे, सभी के सिर स्वीकारोक्ति में हिल गये—और फिर सभी उनके चरणों में झुक गए। कहने लगे "धन्य, धन्य! आप की धनुष कला। आप ने अद्भुत कला दिखाई है। आप महान् हैं। हम सब आप को प्रणाम करते हैं। आप हमें आशीर्वाद दीजिए कि हम भी इस विद्या में निपुण हों।"

केवल आशीर्वाद से ही काम नहीं चलता। आशीर्वाद तो मैं सभी को देता हूँ। मैं चाहता हूँ सभी विद्याओं में प्रवीण हो। पर विद्या प्राप्त होती है साधना से, लगन से, गुरु सेवा से।" वृद्ध ब्राह्मण ने सभी कुमारों को समझाया।

"हम तो सभी अपने गुरुदेव को प्रसन्न रखते हैं, एक कुमार कहने लगा, और गुरुदेव हम सभी को बहुत अच्छी तरह शिक्षा देते हैं। वे बहुत ही अच्छे हैं।"

"कौन हैं तुम्हारे गुरुदेव! तनिक हमें भी तो मिलाओ।" ब्राह्मण की बात सुन कर सभी कुमार उन्हें अपने साथ ले चले, अपने गुरु के पास।

× — ×

"अहो भाग्य! आज तो हमारे यहां द्रोणाचार्य पधार रहे हैं।" दूर से ही द्रोणाचार्य को कुमारो के साथ आता देख कर कृपाचार्य हर्षित होकर कहने लगे। वे उन के स्वागतार्थ द्वार तक आये। नमस्कार किया और आदर सत्कार के साथ अन्दर ले गए।

एक कुमार ने गुरुदेव कृपाचार्य के चरण स्पर्श करके कहा "गुरुदेव इन वृद्ध ब्राह्मण ने हमें आज अद्भुत कला दिखाई।"

"यह तो द्रोणाचार्य हैं, धनुषविद्या के धुरधर विद्वान्? प्रसिद्ध गुरु!" कृपाचार्य बोले। सभी कुमार उनकी ओर श्रद्धापूर्ण दृष्टि से देखने लगे।

"आज आपने दर्शन देकर हमें कृत्य कृत्य कर दिया। आपके तो दर्शन ही दुर्लभ है। पर अनायास ही आप आ निकले, हम जैसा सौभाग्यशाली भला और कौन होगा। आज तो ऐसा प्रतीत होता है मानों हमारे आँगन में कल्पवृक्ष प्रगट हुआ है।" कृपाचार्य ने गद्‌गद् होकर कहा, और फिर कुमारों को सम्बोधित करके बोले "तुम भी बड़े सौभाग्यशाली निकले, जो इनके दर्शन कर पाये। इनकी सेवा करके पुण्य कमाओ। यह जिस पर प्रसन्न होंगे उसका जीवन सफल हो जायेगा।"

सभी राजकुमारो ने उनके चरणों में शीश झुका दिया। अर्जुन और कर्ण ने तुरन्त आकर उनके पैर धोये। जिस समय अर्जुन पैर धो रहा था, कृपाचार्य ने कहा "बेटा अर्जुन! द्रोणाचार्य जी का पुत्र यह अश्वत्थामा! धनुष विद्या में प्रवीण है, धनुष विद्या ही क्यों, सभी विद्याओं में निपुण है। बड़ा योद्धा और बलवान है।" कृपाचार्य ने अश्वत्थामा की ओर संकेत करके बात कही थी, अतः अपनी प्रशंसा सुनकर अश्वत्थामा ने कृपाचार्य जी के चरण छुए। उन्होंने अश्वत्थामा को उठाकर छाती से लगा लिया। और कुमारों को सम्बोधित करके बोले कुमारों! यह धनुर्वेद विद्या में सारे जगत में विख्यात हैं और इनके पूज्य पिता जी धनुर्वेद विद्या का विधान तैयार करने के लिए सर्व विख्यात हैं।"

द्रोणाचार्य की सेवा में गुरु और शिष्य सभी लग गए और उन्हें वहीं अतिथि रूप में रहने पर प्रसन्न कर लिया। द्रोणाचार्य के शुभागमन का सन्देश जब भीष्म जी को मिला वे तुरन्त उनकी सेवा में आये और कुमारों को शिक्षा देने की प्रार्थना की। कृपाचार्य, कुमारों और भीष्म जी सभी की विनती को वे स्वीकार न कर सके। और स्वयं ही शिक्षा देने लगे।

गुरु शिक्षा वर्षा के समान होती है। आकाश से पृथ्वी पर एक ही गति से समान जल ही गिरता है। पर भूमि के किसी भाग में तो कितना ही जल एकत्रित हो जाता है। और कुछ स्थान ऐसे होते हैं जहां जल ठहर ही नहीं पाता। गुरु की शिक्षा भी सभी शिष्यों के लिए समान ही होती है, पर कुछ शिष्य तो गुरु शिक्षा को तुरन्त ग्रहण कर लेते है और कुछ बारम्बार प्राप्त करने पर भी लाभान्वित नहीं हो पाते। इसी

है, मुझे तो आप भी दिखाई नहीं दे रहे; मुझे स्वयं अपना अस्तित्व मालूम नहीं।"

गुरुदेव के संकेत पर बाण छुटा और वह काली मिर्च लेकर नीचे आ गिरा। गुरुदेव अर्जुन को शाबाशी देकर अनुत्तीर्ण शिष्यों से हंसकर बोले—

"अपने लक्ष्य को छोड़कर जो दूसरी ओर दृष्टिपात करता है, वह सफल नहीं होता। मोक्ष लोलुप ससार को भी देखे तो मोक्ष कैसे पाये ? गुण, गुणी, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय और ध्यान, ध्येय, ध्याता, तू और मैं, यह और वह का अन्तर्द्वन्द्व जब आत्मा में मचा हो, तब आत्मा के परम लक्ष्य परमात्मा पद की प्राप्ति कहाँ ? तुम लोग मिर्चों को न देखकर टहनी, पत्ते ही देख सके, अतः जो तुम्हारा लक्ष्य था, उसी को भेद सके, यदि अर्जुन की भाँति तुम्हारा लक्ष्य काली मिर्च पर होता तो तुम भी उसे भेदने मे सफल होते।"

बात सुनकर सभी ने गर्दन झुका ली। दुर्योधन की भी गर्दन झुकी थी पर हृदय में अर्जुन के प्रति डाह भयकर रूप मे तूफान की भाँति उभर रहा था और कर्ण, वह भी दिल ही दिल में अर्जुन से जल रहा था।

गुरु दक्षिणा

एक दिन अर्जुन वन मे जा निकले। हाथ में धनुष और कंधे पर बाण लटक रहे थे। उन्हे सिंह समान उन्नत कुत्ता दिखाई दिया, जिसका मुंह बाणों से भरा हुआ था। यह अद्‌भुत दृश्य देखकर वे ठिठक गए। सोचने लगे "कौन है ऐसा धनुर्धारी जिसने इतनी सफलता से इस सिंह समान कुत्ते का मुह बाणों से भर दिया ?—यह काम तो विना शब्द-वेध जाने नहीं हो सकता। कितनी चतुरता से बाण चलाये गए हैं कि कुत्ते का मुह भरा हुआ है पर वह विना किसी पीड़ा के चला जा रहा है। वास्तव में बाण चलाने वाला कोई धनुष विद्या में अद्वितीय है, ऐसी बात तो न आज तक देखी और न सुनी ही।..." अद्वितीय शब्द का मस्तिष्क में उभरना था कि उन्हें गुरुदेव द्रोणाचार्य का वह वाक्य याद आ गया कि "मैं तुम्हे विश्व में अद्वितीय धुरन्धर धनुर्धारी बना दूंगा।" और उसी समय उन्हे वह बात

भी याद आई जो उन्होंने शब्द वेध की शिक्षा देते हुए कही थी कि "अर्जुन ! अब विश्व में कोई भी ऐसा धनुर्धारी नहीं, जो तुम्हारा मुकाबला कर सके"—किन्तु वह वीर जिसने इस कुत्ते का मुंह अपने बाणों से भरा है, वह वास्तव मे ऐसा है कि उसका मुकाबला करना मेरे बस की बात नहीं है।—वह सोचने लगे, कुत्ते का मुंह भरा कैसे गया ?—मस्तिष्क पर जोर देने से बात समझ मे आ गई। अवश्य ही कुत्ते के भौंकते समय उसकी ध्वनि को लक्ष्य बना कर बाण चलाये गए होंगे। पर वह है कौन ?"

चारों ओर दृष्टि उस वीर की खोज करने लगी। पर कोई मानव दिखाई नहीं दिया। वे उसकी खोज में उस ओर चल पड़े, जिस ओर से कुत्ता आया था। कुछ ही दूर जाने पर उन्हे एक व्यक्ति दिखाई दिया। वह था एक भील, उसके बायें हाथ मे धनुष और दाए में बाण थे, कमर से तरकश बधा था। उसका शरीर एक दम काला था, मुंह नीचे को था, नाक का अग्रभाग बाण की नोक के समान था, नेत्र अरुण थे, बाल चढ़े हुए, भोजपत्र का लगोट पहने था। अर्जुन ने निकट जाकर पूछा "भद्र ! क्या मै जान सकता हूँ कि आप वही तो नहीं है जिसने कुत्ते का मुंह बाणों से भर दिया है।"

विनम्रता पूर्वक वह बोला—"जी हां ! आपका विचार सही है"

अर्जुन ने उसे एक बार ऊपर से नीचे तक देखा। बोले—"आप की कला प्रशसनीय है। आपका शुभ नाम ?"

"एक लव्य"

"कुत्ते का मुंह बाणों से भरने का कारण ?"

"मैं शान्तचित्त कहीं जा रहा था। एकाग्र चित्त होकर अपने गुरु का ध्यान कर रहा था कि वह सिंह समान भयानक कुत्ता भयानक शब्द करता हुआ आता दिखाई दिया। कितनी ही देर तक भौंकता रहा। मुझे इसका भौंकना न सुहाया और उसका मुंह बाणों द्वारा भरकर चुप कर दिया।" भील युवक ने बताया।

'आपके गुरु कौन हैं ?'

"जी मेरे गुरु द्रोणाचार्य हैं। मैंने उन्हीं के पुण्य प्रसाद से यह विद्या सीखी है"

भील युवक की बात सुनकर अर्जुन को और भी अधिक

"सम्भव है उसने अपना नाम बदल दिया हो।"

"पर शब्दबेधी बाण चलाने की शिक्षा तो मैंने किसी को दी ही नहीं। देता भी किसे तुम जैसा बुद्धिमान, चतुर तथा तुम जैसा वीर युवक आज तक मेरा शिष्य हुआ ही नहीं" द्रोणाचार्य ने जोर देकर कहा।

"यह तो बड़े आश्चर्य की बात है, वह कहता है मै द्रोणाचार्य का शिष्य हूँ, आप कहते हैं वह मेरा शिष्य है ही नहीं फिर इस का निर्णय कौन करे ?" अर्जुन ने विस्मित हो कहा।

"तुम्हारे मन में बसी शका का निवारण करना मैं आवश्यक समझता हूँ, द्रोणाचार्य ने कहा, अतः अच्छा यही है कि तुम चल कर उसे मुझे दिखाओ। रहस्य अपने आप निवारण हो जायेगा।"

अर्जुन द्रोणाचार्य को साथ लेकर एकलव्य के निवास स्थान की ओर चला। रास्ते में ही धनुष चलाने की ध्वनि आई। अर्जुन ठिठक गया, देखा तो एकलव्य एक चट्टान के पास बैठा एक वृक्ष के पत्ते पर बाण चला रहा था। उसने द्रोणाचार्य से उसकी ओर सकेत करके कहा "वही है एकलव्य। अब आप अच्छी तरह पहचान लीजिए।"

द्रोणाचार्य एक वृक्ष की ओर से उसे देखने लगे। एकलव्य ने क्षण भर में ही कितने तीर चलाकर एक पत्ते को पूरी तरह छलनी बना दिया। द्रोणाचार्य उसकी ओर बढ़े। जब वे निकट पहुँचे तो एकलव्य उन्हें देखकर तुरन्त दौड़ा और चरणो मे सिर रख दिया। कहने लगा "अहोभाग्य ! मैं आज अपने गुरुदेव के दर्शन कर रहा हूँ।"

द्रोणाचार्य ने उसे उठाया, बारम्बार उसकी प्रशसा की, पीठ थपथपाई और पूछा "युवक ! हमने तो तुम्हे शिक्षा नहीं दी। फिर तुम हमें गुरुदेव कैसे कहते हो ?"

"नहीं गुरुदेव। मैंने तो आपकी कृपा से ही विद्या प्राप्त की है"

"किन्तु हमे तो याद नहीं पड़ता कि हमने तुम्हें कभी शिक्षा दी हो" द्रोणाचार्य बोले।

"बात यह है, गुरुदेव, एकलव्य रहस्योद्घाटन करने लगा, आप को कदाचित याद हो कि मैं आपके पास विद्याभ्यास के लिए गया था। परन्तु आपने मुझे इसलिए शिक्षा देने से इंकार कर दिया था कि मैं भील जाति (नीच जाति) का युवक हूं ×। मैंने बारम्बार विनती की

× सर्वज्ञ देव का सिद्धान्त तो ऊच नीच का भेद नही मानता। परन्तु द्रोणाचार्य ने इसलिए उसे शिक्षा देने के इकार कर दिया था वह मासाहारी था और उन्हे भय था कि शस्त्र विद्या प्राप्त करके वह जीवहत्या करेगा।

थी, परन्तु आप ने गुरु बनना स्वीकार न किया था। मुझे तो विद्या अभ्यास की लगन थी, मैं निराश लौट आया और आपको हृदय से गुरु स्वीकार कर लिया, एकाग्रचित हो, आपका ध्यान लगाकर इस चट्टान के पास मैं बैठ जाता और बाण चलाने लगता। मेरा निशाना चूक जाता तो स्वय ही अपने गाल पर थप्पड़ मार लेता। और जब थप्पड़ जोर से लग जाता तो आँखों में अश्रु भरकर मैं कहता, गुरुदेव अबकी बार क्षमा कर दो। भविष्य में ऐसी भूल न होगी' और फिर स्वय ही अभ्यास करने लगता। जितनी देर अभ्यास करता हृदय में आपको बसाये रहता, आपकी ओर ध्यान लगाये रहता, इसी प्रकार अभ्यास करते करते कई वर्ष व्यतीत हो गए, तब कहीं जाकर मैं इतना जान पाया हूँ। अतः हे गुरुदेव आप ही के पुण्य प्रसाद से मैंने यह विद्या प्राप्त की है। आप ही मेरे गुरुदेव हैं।"

एकलव्य की बात सुनकर द्रोणाचार्य ने अर्जुन की ओर देखा। जैसे कि मूक वाणी से कह रहे हों कि "देखा अर्जुन! यह है इसकी विद्या का रहस्य—" फिर एकलव्य को सम्बोधित करते हुए कहा "एकलव्य! तुम्हें यह भ्रम है कि मैंने तुम्हें इस लिए शिक्षा देने से इकार कर दिया था कि तुम भील जाति के युवक हो। परन्तु वास्तविकता यह है कि मैं नहीं चाहता कि कोई शस्त्रविद्या सीख कर बेजबान जीवों पशु पक्षियों का शिकार करने में प्रयोग करे। मासाहारी को धनुष विद्या सिखाने में सबसे बड़ा यही भय बना रहता है।

"गुरुदेव! हमारा तो जीवन ही जगलों में कटता है। शिकार खेलना ही हमारा पेशा है और इसी से हम अपनी उदर पूर्ति करते हैं।" एकलव्य ने कहा।

द्रोणाचार्य ने कहा—

"एकलव्य! तुम्हारी धनुष कला को देख कर मुझे अपार हर्ष हुआ। जी चाहता है कि तुम्हें इस अनुपम कला के लिये पुरस्कार दूं। परन्तु जब देखता हूँ कि मुझे गुरु स्वीकार करने वाला एकलव्य मासाहारी है, वह निरपराध जीवों को उदर पूर्ति के लिए मार डालता है, मुझे अपने से भी घृणा होने लगती है। तुम आज तक मेरे नाम पर धनुष विद्या का अभ्यास करते रहे। तुम्हारे पाप में मेरा नाम भी सहायक बना यह सोच कर मैं रोमाचित हो उठता हूँ। तुमने वास्तव में इस पवित्र

विद्या को भी कलकित कर दिया। कुमार! तुम यह मत समझना कि मैं तुम्हें भील समझकर ऐसा कह रहा हूँ। बल्कि बात यह है कि तुम्हारी कला ने जितना स्थान मेरे हृदय मे बनाया है उतना ही तुम्हारे द्वारा इस कला के सहयोग से की गई जीवहत्या ने मुझे यह कठोर शब्द कहने पर विवश किया। काश! तुम मुझे अपना गुरु न मानते। लोग क्या सोचेंगे, जब वे सुनेगे कि एकलव्य जीव हत्यारा, द्रोणाचार्य का शिष्य है जो मांसभक्षण को पाप नहीं समझता है।"

"गुरुदेव! मुझ से बड़ा पापी भला विश्व मे और कौन होगा? एकलव्य दुखित होकर बोला, जिसके पुण्य प्रसाद से मुझे विद्या प्राप्त हुई, मेरे कार्यों से उसी का हृदय दुखित हुआ। मैं इसका प्रायश्चित करने को तैयार हूं, गुरुदेव! आप प्रायश्चित करवाइये।"

"प्रायश्चित, तो मैं तभी करवाऊं जब तुम मेरे सच्चे अर्थों में में शिष्य बनो' द्रोणाचार्य ने कहा, तुम एक ओर तो अपने को मेरा शिष्य कहते हो, मुझे गुरु मानते हो, पर तुमने न तो गुरु भक्ति का ही प्रमाण दिया है, और न गुरु दक्षिणा ही दी है।"

"गुरुदेव! गुरु दक्षिणा के लिए मैं प्रत्येक समय तैयार हूँ। आप माँग लीजिए जो आपको माँगना है। मेरे पास जो कुछ है मैं सभी आपको दे सकता हूँ सर्वस्व आपके चरणों में रखने को तैयार हूं।" एकलव्य ने श्रद्धा एवं भक्ति पूर्ण शैली में कहा।

"एकलव्य! तुम मे इतने गुण प्रतीत होते हैं कि तुम जैसे होनहार शिष्य को पाकर मैं अपने को धन्य समझता, यदि बस एक ही दोष तुम में न होता, द्रोणाचार्य ने एकलव्य की प्रशसा करते हुए कहा। तुम मांसाहारी हो, निरपराधी जीवों पर धनुष विद्या का प्रयोग करते हो, बस एक यही काँटे की तरह खटकती है। वरना तुम अपनी बुद्धि और लगन से विद्या मे इतने निपुण हो गये हो कि मेरा यह शिष्य अर्जुन, जिस पर मै गर्व कर सकता हूं, जिसे मैंने शस्त्र विद्या में अद्वितीय बनाने का वचन दिया था, जिसे शब्दवेधी बाण चलाने मे मै अद्वितीय समझा था, वह भी महान गुणवान, सुशील, कांतिवान, चरित्रवान और मेरा सुशिष्य स्वय को तुम से बहुत ही तुच्छ समझ बैठा है। काश! तुम्हारे स्थान पर अर्जुन होता? या तुम ही अर्जुन होते। खैर इन बातों को जाने दो मेरी हार्दिक कामना है कि तुम इस धनुष

विद्या को जो तुम ने मुझे गुरु समझ कर प्राप्त की है जीवहत्या के लिए प्रयोग न करो। कभी किसी निरपराधी को इससे आहत न करो। यह विद्या तो देशव्रती में रहते हुए धर्म की रक्षा, न्याय की रक्षा और अन्याय के नाश के लिये प्रयोग की जानी चाहिए। तुम आज गुरु-दक्षिणा के इस अवसर पर मेरे इस उपदेश को हृदयंगम करो और मुझे गुरुदक्षिणा में कुछ ऐसी ही वस्तु दो जिससे कि मैं निश्चित होकर समझ सकूं कि यह पवित्र विद्या तुम शिकार के लिये प्रयोग नहीं करोगे। सुशिष्य वही है जो गुरू की इच्छा की पूर्ति के लिए सर्वस्व न्योछावर कर दे।"

द्रोणाचार्य का उपदेश सुनकर एकलव्य बहुत प्रभावित हुआ। उस ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की "हे गुरुवर! आप जो चाहे मांग लें मैं वही आप के चरणों में अर्पित कर दूंगा कि एकलव्य एक शुभ विचारों के महान् विद्वान का सुशिष्य है। आप दक्षिणा निमित्त कोई भी वस्तु पसन्द कर लें। चाहे प्राण भी मॉग ले मैं वहीं दूंगा और मुझे जीव हत्या के लिए प्रायश्चित करायें।"

"वत्स! गुरु दक्षिणा, दक्षिणा है, यह कोई भीख तो नहीं है जो हम स्वय तुम से मांगे। जो चाहो दो। भक्ति व श्रद्धा पूर्वक दी हुई राख भी हमारे लिए मूल्यवान् है। पर श्रद्धालु सुशिष्य अपने गुरु को सोच समझ कर ही दक्षिणा देते हैं। एक प्रकार से इस में भी शिष्य की बुद्धि परीक्षा होती है।" द्रोणाचार्य ने कहा।

एकलव्य ने गुरुदेव की बात सुनकर सोचना आरम्भ किया कि क्या दूं जिस से गुरुदेव सन्तुष्ट हो? कुछ ऐसी वस्तु दी जाय जिस से गुरुदेव को यह भी विश्वास हो जाय कि उनके नाम पर प्राप्त की गई विद्या का प्रयोग अब कभी भी जीव हत्या के लिए नहीं होगा, साथ ही मेरे किए का प्रायश्चित भी हो जाय। मैं भील युवक हूं उतना धन नहीं दे सकता जितना राजकुमार देते हैं, फिर वह कौन सी वस्तु है

विद्या को भी कलंकित कर दिया। कुमार! तुम यह मत समझना कि मैं तुम्हे भील समझकर ऐसा कह रहा हूँ। बल्कि बात यह है कि तुम्हारी कला ने जितना स्थान मेरे हृदय मे बनाया है उतना ही तुम्हारे द्वारा इस कला के सहयोग से की गई जीवहत्या ने मुझे यह कठोर शब्द कहने पर विवश किया। काश! तुम मुझे अपना गुरु न मानते। लोग क्या सोचेगे, जब वे सुनेगे कि एकलव्य जीव हत्यारा, द्रोणाचार्य का शिष्य है जो मांसभक्षण को पाप नहीं समझता है।"

"गुरुदेव! मुझ से बड़ा पापी भला विश्व मे और कौन होगा? एकलव्य दुखित होकर बोला, जिसके पुण्य प्रसाद से मुझे विद्या प्राप्त हुई, मेरे कार्यों से उसी का हृदय दुखित हुआ। मै इसका प्रायश्चित करने को तैयार हूं, गुरुदेव! आप प्रायश्चित करवाइये।"

"प्रायश्चित, तो मैं तभी करवाऊं जब तुम मेरे सच्चे अर्थों में में शिष्य बनो' द्रोणाचार्य ने कहा, तुम एक ओर तो अपने को मेरा शिष्य कहते हो, मुझे गुरु मानते हो, पर तुमने न तो गुरु भक्ति का ही प्रमाण दिया है, और न गुरु दक्षिणा ही दी है।"

"गुरुदेव! गुरु दक्षिणा के लिए मैं प्रत्येक समय तैयार हूँ। आप माँग लीजिए जो आपको माँगना है। मेरे पास जो कुछ है मै सभी आपको दे सकता हूँ सर्वस्व आपके चरणों मे रखने को तैयार हूं।" एकलव्य ने श्रद्धा एवं भक्ति पूर्ण शैली में कहा।

"एकलव्य! तुम मे इतने गुण प्रतीत होते हैं कि तुम जैसे होनहार शिष्य को पाकर मैं अपने को धन्य समझता, यदि बस एक ही दोष तुम में न होता, द्रोणाचार्य ने एकलव्य की प्रशसा करते हुए कहा। तुम मांसाहारी हो, निरपराधी जीवों पर धनुष विद्या का प्रयोग करते हो, बस एक यही काँटे की तरह खटकती है। वरना तुम अपनी बुद्धि और लगन से विद्या में इतने निपुण हो गये हो कि मेरा यह शिष्य अर्जुन, जिस पर मै गर्व कर सकता हूं, जिसे मैने शस्त्र विद्या मे अद्वितीय बनाने का वचन दिया था, जिसे शब्दवेधी बाण चलाने मे मैं अद्वितीय समझा था, वह भी महान गुणवान, सुशील, कांतिवान, चरित्रवान और मेरा सुशिष्य स्वयं को तुम से बहुत ही तुच्छ समझ बैठा है। काश! तुम्हारे स्थान पर अर्जुन होता? या तुम ही अर्जुन होते। खैर इन बातों को जाने दो मेरी हार्दिक कामना है कि तुम इस धनुष

जो सिद्ध कर दे कि भील युवक भी विद्या के लिए सुपात्र हो सकते हैं, वे गुरु के लिए त्याग भी करना जानते हैं, और पापों का प्रायश्चित भी। आज बुद्धि की परीक्षा ही नहीं, गुरु भक्ति, श्रद्धा, त्याग और साहस की भी परीक्षा है। इतना सोच कर उसने अपनी हर उस वस्तु पर गहरी दृष्टि डाली जो उसकी अपनी थी जिसे देने का उसे अधिकार था और वह कितनी ही देर विचार मग्न रहा।

"बोलो ! एकलव्य क्या देते हो।" द्रोणाचार्य ने कुछ देर बाद कहा।

एकलव्य ने निश्चय किया और कहा, "गुरुदेव ! ऐसा लगत है कि यह अवसर मेरे जीवन का एक विशेष अवसर है। आज मैं अपने गुरुदेव को ऐसी वस्तु दूंगा जो आज तक विश्व मे किसी ने ना दी हो। उस वस्तु के देने के तीन कारण हैं। १. मैं प्रायश्चित करना चाहता हूं। २. मैं वीर अर्जुन को शस्त्र विद्या मे अद्वितीय देखना चाहता हूं, क्योंकि उसमें वे सभी गुण हैं जो इस पवित्र विद्या में अद्वितीय वीर में होने चाहिये। मेरे एक ही दोष के कारण मुझे यह पदवी शोभा नहीं देती, दूसरे वह मेरा गुरु भाई है। मैं गुरु भाई के स्नेह क्षेत्र मे एक नया उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूं। ३. मैं अपने गुरुदेव को दृढ़ विश्वास दिलाना चाहता हू कि भविष्य में इस पवित्र विद्या को मैं जीव हत्या में प्रयोग न करूंगा। यह शपथ द्वारा नहीं वरन् अपनी गुरु दक्षिणा द्वारा विश्वास दिलाया जायेगा।

द्रोणाचार्य भी एकलव्य की बात सुन कर चकित रह गए। वे सोचने लगे "भला वह कौन सी वस्तु यह मुझे दक्षिणा में दे रहा है, जो इन तीन उद्देश्यों की पूर्ति करती हो।" पर उन की भी समझ में उस समय न आया कि एकलव्य ने कौन सी वस्तु दक्षिणा के लिए चुनी है।

एकलव्य ने तुरन्त एक कटार ली और अपने दांये हाथ के अगूठे को

काटने लगा। यह देख द्रोण चिल्ला पडे तुम यह क्या कर रहे हो एकलव्य ! अगूठा काट कर तुम अपने आपको धनुष चलाने से सर्वथा अयोग्य करने लगे।

"गुरुदेव ! इस अगूठे के द्वारा आप अब विश्वास कर सकेंगे कि मैं कभी किसी निरपराधी जीव पर बाण नहीं चलाऊगा, मेरे पाप का प्रायश्चित यही है, कि उस अगूठे को जिस के द्वारा मैं ने निरपराधी अबोध जीवों की हत्या की, मैं उसे नष्ट करना चाहता हू। एकलव्य ने विनय पूर्वक कहा।

सम्पूर्ण शक्तियाँ जीवन सिद्धि के लिये साधनभूत है किन्तु उसके प्रयोग मे अन्तर होता है, मनुष्य जब इन्द्रियादि प्राप्त शक्तियों का सदुपयोग करने लगता है तो वे ही शक्तियां जीवन साफल्य के साधन भूत हो जाती हैं और जब उसका दुरुपयोग करने लग पडता है तो जीवन पतन का कारण बन जाती है। अतः एकलव्य तू इन शक्तियों का सदुपयोग कर भविष्य में तेरे को सुखी बनाने में समर्थ होगी। अंगुष्ठ को काट देने से कोई लाभ नहीं, यह एक सहायक शक्ति है, जो शक्ति दूसरों का नाश कर सकती है वह निर्माण भी कर सकती है ।

जिसकी सहायता से तूने जीवहिंसा की है, उसी से तू उनकी रक्षा भी कर सकेगा। अत। प्रकृतिप्रदत्त शक्ति का व्यर्थ नष्ट कर देना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है।

यदि तू अगूष्ठ का दान देना चाहता है तो अगुष्ठ के रहते हुए तू धनुषादि में इसका प्रयोग मत करना। यह अगुष्ठ अब तेरा नहीं मेरा हो चुका है।

क्योंकि मेरी दक्षिणा का संकल्प करने के हेतु ही इसे काटने लगा था अत. इस पर मेरा अधिकार है। द्रोणाचार्य ने शिक्षा एव अधिकार पूर्ण शब्दों मे कहा।

जो सिद्ध कर दे कि भील युवक भी विद्या के लिए सुपात्र हो सकते है, वे गुरु के लिए त्याग भी करना जानते हैं, और पापो का प्रायश्चित भी। आज बुद्धि की परीक्षा ही नहीं, गुरु भक्ति, श्रद्धा, त्याग और साहस की भी परीक्षा है। इतना सोच कर उसने अपनी हर उस वस्तु पर गहरी दृष्टि डाली जो उसकी अपनी थी जिसे देने का उसे अधिकार था और वह कितनी ही देर विचार मग्न रहा।

"बोलो! एकलव्य क्या देते हो।" द्रोणाचार्य ने कुछ देर बाद कहा।

एकलव्य ने निश्चय किया और कहा, "गुरुदेव! ऐसा लगत है कि यह अवसर मेरे जीवन का एक विशेष अवसर है। आज मैं अपने गुरुदेव को ऐसी वस्तु दूंगा जो आज तक विश्व मे किसी ने ना दी हो। उस वस्तु के देने के तीन कारण हैं। १. मै प्रायश्चित करना चाहता हूं। २. मैं वीर अर्जुन को शस्त्र विद्या में अद्वितीय देखना चाहता हूं, क्योंकि उसमे वे सभी गुण हैं जो इस पवित्र विद्या में अद्वितीय वीर में होने चाहिये। मेरे एक ही दोष के कारण मुझे यह पदवी शोभा नहीं देती, दूसरे वह मेरा गुरु भाई है। मैं गुरु भाई के स्नेह क्षेत्र मे एक नया उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूं। ३. मैं अपने गुरुदेव को दृढ़ विश्वास दिलाना चाहता हूं कि भविष्य में इस पवित्र विद्या को मैं जीव हत्या में प्रयोग न करूंगा। यह शपथ द्वारा नहीं वरन् अपनी गुरु दक्षिणा द्वारा विश्वास दिलाया जायेगा।

द्रोणाचार्य भी एकलव्य की बात सुन कर चकित रह गए। वे सोचने लगे "भला वह कौन सी वस्तु यह मुझे दक्षिणा में दे रहा है, जो इन तीन उद्देश्यों की पूर्ति करती हो।" पर उन की भी समझ में उस समय न आया कि एकलव्य ने कौन सी वस्तु दक्षिणा के लिए चुनी है।

एकलव्य ने तुरन्त एक कटार ली और अपने दांये हाथ के अंगूठे को

काटने लगा। यह देख द्रोण चिल्ला पडे तुम यह क्या कर रहे हो एकलव्य ! अगूठा काट कर तुम अपने आपको धनुप चलाने से सर्वथा अयोग्य करने लगे।

"गुरुदेव ! इस अगूठे के द्वारा आप अब विश्वास कर सकेंगे कि मैं कभी किसी निरपराधी जीव पर बाण नहीं चलाऊगा, मेरे पाप का प्रायश्चित यही है, कि उस अगूठे को जिस के द्वारा मैं ने निरपराधी अबोध जीवों की हत्या की, मैं उसे नष्ट करना चाहता हू। एकलव्य ने विनय पूर्वक कहा।

सम्पूर्ण शक्तियाँ जीवन सिद्धि के लिये साधनभूत है किन्तु उसके प्रयोग मे अन्तर होता है, मनुष्य जब इन्द्रियादि प्राप्त शक्तियों का सदुपयोग करने लगता है तो वे ही शक्तियां जीवन साफल्य के साधन भूत हो जाती हैं और जब उसका दुरुपयोग करने लग पडता है तो जीवन पतन का कारण बन जानी है। अतः एकलव्य तू इन शक्तियों का सदुपयोग कर भविष्य मे तेरे को सुखी बनाने में समर्थ होगी। अगुष्ठ को काट देने से कोई लाभ नहीं, यह एक सहायक शक्ति है, जो शक्ति दूसरो का नाश कर सकती है वह निर्माण भी कर सकती है ।

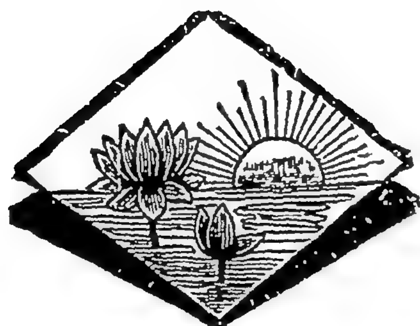
जिसकी सहायता से तूने जीवहिंसा की है, उसी से तू उनकी रक्षा भी कर सकेगा। अत। प्रकृतिप्रदत्त शक्ति को व्यर्थ नष्ट कर देना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है।

यदि तू अगूष्ठ का दान देना चाहता है तो अगुष्ठ के रहते हुए तू धनुषादि में इसका प्रयोग मत करना। यह अगुष्ठ अब तेरा नहीं मेरा हो चुका है।

क्योंकि मेरी दक्षिणा का सकल्प करने के हेतू ही इसे काटने लगा था अत. इस पर मेरा अधिकार है। द्रोणाचार्य ने शिक्षा एव अधिकार पूर्ण शब्दों मे कहा।

गुरु भक्ति कुछ भी तो नहीं। मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं भी इतना ही गुरु भक्त सिद्ध हूं और आप को सन्तुष्ट कर सकूं।"

अर्जुन सोचने लगे "एकलव्य ! महान् त्यागी गुरु भक्त है इसी लिए उस ने इतनी विद्या प्राप्त की यदि मैं भी गुरुदेव के लिये तन, मन, धन बल्कि अपना सर्वस्व अर्पित कर दूं तो एकलव्य की श्रेणी को पहुंच सकता हूँ। इतना सोच कर वे उस दिन से गुरु सेवा पूर्ण श्रद्धा-पूर्वक करने लगे और गुरुदेव की समस्त कृपा दृष्टि उन्होने अपने पक्ष में कर ली।



✻सोहलवां परिच्छेद✻

गुरु द्रोणाचार्य

द्रोणाचार्य भारद्वाज के पुत्र थे। उनके पिता के नाम पर भारद्वाज वंश प्रचलित हुआ। द्रोण के युवावस्था में प्रवेश करते ही उनके पिता ने उन्हें विद्या अध्ययन के लिए गंगा तट पर अग्निवेष ऋषि के पास भेज दिया था। जिन दिनों वे विद्याध्ययन कर रहे थे, उनके साथ राजकुमार द्रुपद भी अग्निवेष ऋषि के आश्रम में ही शिक्षार्थी के रूप में थे। एक ही गुरु के आधीन शिक्षा ग्रहण करते करते राजकुमार द्रुपद और द्रोण में घनिष्ट मित्रता हो गई मानो राज तेज और ब्रह्म तेज का समन्वय हो गया हो। दोनों में अपने अपने तेज की वृद्धि होती रही, पर साथ साथ घनिष्ट मित्रों के रूप में रहते रहते अन्तःकरण एक समान हो गया। तीव्र बुद्धि दोनों के पास थी ही लगन भी थी, और परिश्रम के कारण दोनों विद्याओं में पारंगत हो गए, परन्तु द्रोण का कौशल असाधारण था। वर्षों तक साथ साथ रहने के पश्चात वे एक दूसरे के इतने निकट आ गए थे कि जब विद्या प्राप्ति के उपरान्त अपने अपने घर लौटने लगे, तो विदाई के समय दोनों के ही नेत्र डलछला आये।

द्रोण ने अवरुद्ध कंठ से कहा—"बन्धु! आज तक मुझे कभी यह ध्यान भी नहीं आया कि हम दो, जो दो शरीर और एक प्राण हो चुके हैं, एक दिन एक दूसरे से विलग हो जायेंगे। आज तुमसे विदा होते हुए मेरा हृदय फटा सा जाता है। मैं एक निर्धन ब्राह्मण का पुत्र हूँ और तुम एक राजकुमार। परन्तु तुम्हारे व्यवहार ने कभी मुझे यह अनुभव ही न होने दिया कि मुझ में और तुम में भूमि और आकाश का अन्तर है। हम दो सगे भ्राताओं से भी अधिक प्रेम के साथ रहे। तुम से अलग होकर मैं कितना दुखी होऊंगा बस कह नहीं सकता।

इतनी विनती है कि राज्य सिंहासन पर बैठकर अपने इस मित्र को भूल मत जाना। बोलो, भूलोगे तो नहीं ?"

द्रुपद द्रोण की बात सुनकर रो दिए, उनके शब्द कंठ में ही अटक कर रह जाते, बड़े प्रयत्न के पश्चात वे बोल पाए "द्रोण ! तुम्हारे मन में यह बात आई ही क्यों ? मैंने तो कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा कि तुम में और मुझ में किसी प्रकार का भी कोई अन्तर है। मैं तुम्हे भूल जाऊ, यह तो कभी हो ही नहीं सकता तुम विश्वास रखो कि मैं राज-महल में जाकर भी तुम्हारे लिए तड़फता रहूंगा। तुम्हारा प्रेम मुझे सदा याद आया करेगा रही राज्य सिंहासन की बात। सो मित्र याद रखो कि जब मैं सिंहासन पर बैठूंगा तो तुम्हें अपने पास ही बुला लूंगा और आधा राज्य तुम्हें देकर अपने ही अनुरूप बनालूंगा। तभी मुझे चैन आयेगा।

द्रुपद ! मुझ जैसे अकिंचन ब्राह्मण पुत्र के लिए तुम्हारे स्नेह का मूल्य ही बहुत है, द्रोण कहने लगे, मैं तुम्हारे सद्भाव के लिए कृतज्ञ हूँ। परन्तु राज्य देने की प्रतिज्ञा मत करो। हम ब्राह्मण हैं, तुम्हारे राज्य के भूखे नहीं हैं। राज्य मिला तो क्या, न मिला तो क्या ? हमारे लिए यही बहुत हैं कि सिंहासन पर बैठ कर स्मरण रखे। यही बहुत है कि मैं यह कह सकूंगा कि राजा द्रुपद मेरे मित्र है, यही गर्व बहुत है। यह ठीक है कि मेरे प्रति तुम्हारा भी उतना ही स्नेह है जितना मेरा तुम्हारे प्रति, पर स्नेह के आवेश में कोई दुर्लभ प्रतिज्ञा करना ठीक नहीं है"

"नहीं मित्र ! मैंने आवेश में ही यह प्रतिज्ञा नहीं की, द्रुपद ने उत्तर दिया, मै तो कितने ही दिनों से यह सोचा करता था, तुम्हे आधा राज्य देकर मुझे जितनी प्रसन्नता होगी तुम कदाचित उसका अनुमान न लगा पाओ।"

"बन्धु ! प्रतिज्ञा करना सरल है उसे निभाना सरल नहीं है, मैं तुम्हे ऐसी परीक्षा मे नहीं डालना चाहता कि उसके परिणाम की चिन्ता में मेरा हृदय दुविधा से धड़कता रहे" द्रोण ने बात समझाने की चेष्टा की। पर द्रुपद ने उनकी बात स्वीकार न की। कहने लगा—"तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध पथिकों के परिचय जैसा उथला नहीं। जिनके न होने में देरी लगती है और न बिगड़ने में ही। तुम्हारा स्थान तो मेरे हृदय में है जो मेरे सम्पूर्ण हृदय पर अधिकार जमाए है; उसे आधा

राज्य देने में कौन बडी बात है ? मैं अपनी प्रतिज्ञा अवश्य निभाऊंगा, तुम विश्वास रखो।

"द्रुपद ! लोग यू कहेंगे कि ब्राह्मण पुत्र ने अपने चातुर्य से क्षत्री पुत्र मे राज्य ले लिया। कोई कहेगा कि द्रोण ने मित्रता ही राज्य ठगने के लालच में की थी। मैं ऐसी किसी बात को उत्पन्न नहीं होने देना चाहता जो हमारे और तुम्हारे पवित्र स्नेह पर धब्बा लगाती हो, तुम नहीं समझते द्रुपद ! राज्य, सम्पत्ति, नारी आदि झगड़े का कारण बन जाती हैं। इन के कारण मित्र परस्पर वैरी बन जाते हैं, भाई भाई के प्राण ले लेता है। ऐसी वस्त को मैं अपनी मित्रता के बीच में नहीं लाना चाहता जिसके कारण कभी भी एक हुए दो दिलों में कोई भी अन्तर आने का भय हो। अत. तुम राज्य की बात लाकर अच्छा नहीं कर रहे।" द्रोण ने द्रुपद को आने वाले सकट की चेतावनी दी।

"नहीं द्रोण तुम भूल रहे हो, सम्पत्ति और राज्य के प्रश्न पर झगड़ते वे हैं जिन्हें यह पता नहीं कि सम्पत्ति या राज्य आनी जानी वस्तु है, इनका मित्रता और मनुष्यत्व के सामने कुछ भी तो मूल्य नहीं मैं अपने उस मित्र के लिए राज्य देने की प्रतिज्ञा कर रहा हू जिसके लिए मैं अपने प्राण तक दे सकता हू" उत्साह से द्रुपद बोला।

मैं तो नहीं चाहता कि ऐसी प्रतिज्ञा करो, पर जब तुम्हारी हठ है, तो जो सोचो करना। हॉ एक बात अवश्य कहूंगा कि मुझे भूल मत जाना" द्रोण बोले।

"तुम बार बार ऐसी बातें करके मेरा दिल क्यों दुखाते हो। विश्वास रखो, सोते जागते, हर समय तुम्हारी मधुर याद सताया करेगी। द्रुपद ने विश्वास दिलाया।

—और दोनों ने एक दूसरे से अश्रुधार बहाते हुए विदा ली। दोनों अपने अपने घर चले गए।

× × ×

पांचाल देश के राजा वृद्ध हो गए थे और अब वे भार मुक्त होना चाहते थे। उनका पुत्र द्रुपद जब विद्या और कला में पारगत होकर वहा पहुचा, उन्हें बहुत सन्तोष हुआ और राज्य भार उसे सौंप दिया। द्रुपद राज्य सिंहासन पर बैठ गया और अपने राज्य का सचालन करने लगा।

वे फिर दुखी रहने लगे। अब वे अधिक विद्वान हो गये थे, पर अपनी विद्वता को रोटी की भांति तो नहीं खा सकते थे। पेट विद्या तो नहीं मांगता, वह तो रोटी मॉगता है। पर रोटी दूर दूर तक नहीं थी। पेड़ पर लटकी होती तो वे तोड़ भी लाते।

× × ×

अश्वत्थामा बालकों में खेल रहा था। खेलते खेलते मध्यान्ह का समय हो गया। दूसरे बालको ने खेल बन्द कर दिया और अपने-अपने घर को चल दिये। अश्वत्थामा एक बालक को रोककर पूछ बैठा "भई, खेल में तो आनन्द आ रहा था, तुम लोग घर क्या करने चल दिए।"

"पहले दूध पी आयें, फिर खेलेंगे" बालक बोला।

"क्या तुम रोज दूध पीते हैं।"

"हां! हम रोज दोपहर को भी दूध पीते हैं" बालक ने कहा और घर की ओर जाते जाते इतना और भी कहता गया—"तुम भी दूध पी आओ फिर खेलेंगे।"

अश्वत्थामा घर चला आया और आते ही अपने पिता जी, द्रोण से विनयपूर्ण भाव से कहा "पिता जी! हम तो दूध पियेंगे।"

द्रोण के हृदय पर एक आघात लगा।

अश्वत्थामा फिर बोला "पिता जी! सारे बालक रोज दोपहरको दूध पीते हैं। मुझे फिर दूध क्यों नहीं पिलाते। आज तो हम भी दूध पियेंगे।"

"बेटा! दूध बहुत बुरी चीज होती है। अच्छे बच्चे दूध नहीं पिया करते।" द्रोण ने अश्वत्थामा को बहलाने का प्रयत्न किया।

"नहीं! नहीं! हम तो दूध पियेंगे।" अश्वत्थामा अपनी जिद पर ही डटा रहा।

द्रोण का मन रो उठा। अब वह बच्चे को कैसे बहलायें। जिस समय किसी का बालक किसी वस्तु की जिद करता हो। और वह अपनी विवशता के कारण बालक की हठ पूर्ण न कर पाये तो उसके मन पर क्या बीतती है, यह वही जानता है जिस पर ऐसी विपदा पड़ी हो। कहने को इतना कहा जा सकता है कि उस समय पिता की छाती फटी सी जाती है। उस समय का कट हार्दिक कष्ट असह्यनीय हो

जाता है। उस समय की विवशता बडी गहरी होती है। मानों कलेजे पर किसी ने करौंत चला दी हो। बड़े बडे साहसी भी उस समय पचल हो उठते हैं। उन्हें अपने से घृणा होने लगती है और वे जिस समाज में रहते हैं उस समाज के विरुद्ध विद्रोह करने पर उतारु हो जाते हैं।

अश्वत्थामा की याचना से द्रोण का हृदय द्रवित हो गया। दुःख असह्य होने पर भी वे विवश थे। वे सोचने लगे—"मेरी विद्या और बुद्धि का क्या लाभ, जब मैं अपने बालक को दो छटाक दूध भी नहीं पिला सकता? मैंने अपना जीवन विद्याध्ययन में बिता दिया और एक गाय तक का प्रबन्ध नहीं कर सकता। कितना दरिद्र हू मैं? क्या मेरी विद्या व बुद्धि मिट्टी के समान नहीं। पर मिट्टी का भी तो कुछ मोल होता है। मेरी विद्या तो उस से भी गई। यह ससार भी कैसा निष्ठुर है। विद्या की प्रशंसा करते करते नहीं अघाता पर विद्वानों को रोटी के दो सूखे टुकडे उनके बालकों को दो छटांक दूध भी नहीं देता। लोगों को यह क्यों नहीं सूझता कि विद्या विद्वानों के सहारे टिकी हुई है, उन का जीवन मूल्यवान है। यदि उन्हें रोटी नही मिलेगी, उन के बच्चे एक छटाक दूध के लिए तरसेंगे तो कैसे टिकेगी विद्या? विद्वानों का कर्तव्य तो नवीन विद्या का उपार्जन करना और समाज को विद्यावान बनाना है। दाल रोटी की चिन्ता में वे पड़े रहे तो कैसे रहेगी विद्या? कैसे नवीन विद्या का उपार्जन चल सकेगा? धनी लोग चाहते हैं कि विद्यावान उन के सामने माथा टेकें, उनकी दासता करें। पर क्या मैं अपनी विद्या का अपमान होने दूंगा? नहीं! मैं अपने पेट के लिए अपने बालक के जीवन के लिए भी विद्या को धातु के सामने, पैसे के लिए नाक नही रगड़ने दूगा। मैं विद्या को अपमानित नहीं होने दूगा।" इसी प्रकार के विचारों का ज्वार भाटा उन के मन सागर में आ रहा था। उन के अन्दर अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था। तभी अश्वत्थामा ने रो कर फिर आग्रह किया "पिता जी! आप कैसे हैं। सब बालकों के पिता तो दूध पिलाते हैं। और आप ·· नहीं, मैं तो दूध पिऊगा।"

द्रोण के शरीर में जैसे एक साथ सैकड़ों बिच्छुओं ने डंक मारा। वे तिलमिला उठे। उन्होंने सोचा "बालक की हठ है। उसे किसी प्रकार

बहलाना ही होगा।" अश्वत्थामा ने अपनी माता का दूध पिया था परन्तु उसे कभी गाय अथवा भैंस का दूध न मिला था। अतएव उसे किसी प्रकार बहलाया ही जा सकता था। द्रोण बोले "अच्छा तो तू दूध पियेगा। रो मत, मैं तुझे अभी ही दूध लाता हूं।" और वे अन्दर घर मे गये और जौ का आटा पानी में घोल कर ले आये 'ले दूध पी।" बालक बेचारा क्या जाने कि यह दूध नहीं है। वह उसी को पी कर सन्तुष्ट हो गया। उसे इस बात का अपार हर्ष हुआ कि आज उस ने दूध पिया। परन्तु द्रोण का हृदय रो रहा था। अपनी विवशता पर वे झुंझला रहे थे। अश्वत्थामा प्रसन्न चित्त हो फिर खेलने चला गया और बालकों मे जाकर डींग हांकी कि आज उस ने बहुत सारा दूध पिया है। किन्तु द्रोण ? द्रोण तो अपनी दुर्दशा पर खिन्न हो रहे थे। वे सोच रहे थे कि क्या इन पीड़ाओं का भी कहीं अन्त है। वे शस्त्र-विद्या और शास्त्र विद्या मे अद्वितीय है। उन्हे अपने पर गर्व हो सकता है पर जिसे पेट भर रोटी न मिलती हो क्या वह भी अपने पर गर्व कर सकता है ? नहीं ? वह गर्व करे तो किस बात पर ? द्रोण महान् विद्वान् होने पर भी दरिद्र थे। वे जीवन यापन का उपाय सोचने लगे। वे कोई छोटा मोटा कार्य भी कर सकते थे। पर उन की विद्या तो उस कार्य में फंस कर चमकने के बजाय अन्धकार मे जा पड़ती। जिस का पुनरोद्धार दुर्लभ हो जाता।

क्या वे किसी प्रकार इस अमूल्य निधि की रक्षा कर सकते है ? क्या विद्या का समुचित आदर कायम रखने में वे सफल हो सकते है ? क्या वह अपने परिवार की इस शानदार परम्परा की रक्षा कर सकते हैं कि प्राण भले ही जायें पर विद्या और उसके सम्मान को बट्टा न लगने देंगे। क्या किया जाय ? इसी प्रश्न में वे उलझे रहे। उन्हें एक ही रास्ता दिखाई दिया कि राजदरबार मे जाकर उपयुक्त कार्य की खोज करें। सर्वज्ञदेव भाषित शास्त्रों में लिखा है कि अन्तराय कर्म जो प्राणी पॉच प्रकार से बांधता है, उसके सामने विघ्न अन्तराय कर्म आता है, उदय मे जीव जो चाहता है वह नहीं होता, किन्तु सर्वज्ञ भाषित मे इसका उपाय भी बताया है, कि उद्यम से आत्मा उस अशुभ को टाल सकता है। आध्यात्म उद्यम के साथ साथ व्यवहारिक उद्यम भी होना चाहिए।

—और उसी समय उन्हें यह भी ध्यान आया कि उनका मित्र द्रुपद राज्य सिंहासन पर बैठ गया है। उसके रहते वृथा कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता है? उसने तो उन्हें आधा राज्य देने की प्रतिज्ञा की थी। वे क्यों न उसी के पास जायें। वह अवश्य ही उनके दुखों का निवारण करेगा। द्रुपद की याद आनी थी कि उनका चेहरा खिल उठा। मस्तिष्क से चिन्ताएं हवा हो गईं। सोचने लगे "वाह! मैं भी कितना मूर्ख हूँ, अपने ऐसे घनिष्ट मित्र जिसने आधा राज्य देने की प्रतिज्ञा की है, को भूल बैठा हू और बेकार ही चिन्ताओं एवं पीडाओं में घुल रहा हूँ। द्रुपद जैसे मित्र के रहते भला मुझे किस बात की कमी है।?"

उन्होंने उसी समय पांचाल की ओर प्रस्थान की तैयारी की। पति के मुर्झाए चेहरे को खिला हुआ देख और बाहर जाने की तैयारियां देख कर उनकी पत्नी पूछ बैठी—"आज तो आप ऐसे खिल रहे हैं मानो कहीं का राज्य ही आपको मिल गया हो।"

"हाँ, हाँ, राज्य ही तो लेने जा रहा हूं।"

"बस, बस राज्य और आपको? स्वप्न तो नहीं देख रहे?"

"नहीं, नहीं, स्वप्न नहीं। मैं द्रुपद के यहां जा रहा हूँ। जानती हो राजा द्रुपद तो मेरा घनिष्ट मित्र है। उसने प्रतिज्ञा की थी कि जब राज्य सिंहासन पर बैठूंगा तो आधा राज्य तुम्हे दे दूंगा। अब तक उसकी मुझे याद ही नहीं आई। बस आज उसी के पास जा रहा हू" द्रोण ने उत्साह पूर्ण शैली में कहा।

"तो यह बात है?—पत्नी कहने लगी—"आप समझ रहे हैं कि द्रुपद आपको आधा राज्य दे देगा? कहीं पागल तो नहीं हो गए। ऐसे राज्य देने वाले होते तो अब तक खबर न लेते? कितने दिन हो गए उसे राज्य सिंहासन पर बैठे?"

"इसमें भी तो मेरी ही भूल है। वह तो बेचारा मेरी प्रतीक्षा में होगा देखो वहां पहुंचने से कैसा भाग्य जागता है?" द्रोण बोले।

"नाथ! जब आपको ही उनकी याद न रही? और जब उन्हें आपकी याद तक न रही तो प्रतिज्ञा कौन सी याद रही होगी? आप तो भोले मानस हैं। राज्यपाट का स्वप्न छोडिए कोई काम ढूंढिये, पत्नी ने कहा।

"तुम तो सारी दुनियाँ को अविश्वास की दृष्टि से देखने लगी हो। सच है भूख और निर्धनता मनुष्य को निराशा के ऐसे गहरे गड्ढे में फेंक देती है जहाँ गिरकर वह सारे ससार मे अधकार समझने लगता है" द्रोण ने व्यग कसते हुए कहा।

"तो फिर आप जाकर प्रकाश देख लीजिए, पत्नी कहने लगी, मैं तो वास्तविकता की बात करती हूँ।"

"अच्छा तुम मुझे दो रोटियां तो बांध दो। लम्बी यात्रा है। मैं आकर बता दूंगा कि वास्तविकता क्या है?" द्रोण की बात सुन कर उसने कहा, "खैर राज्य की बात आप छोड़िये आपके मित्र हैं कोई काम तो दे ही देंगे। उन से काम मांगना। हमे राज्य नहीं चाहिए। भर पेट रोटी मिल जाय वही बहुत है।"

द्रोण ने पांचाल की ओर प्रस्थान किया। आज वे बहुत प्रसन्न थे। अनेक आशाएं मन में लिए पांचाल की राजधानी पहुँच गए। द्वारपाल से कहा "अपने राजा से जाकर कहो कि आपका मित्र द्रोण आप से भेंट करने आया है।"

द्वारपाल ने द्रोण को ऊपर से नीचे तक देखा। वह सोचने लगा, कि वस्त्रों से तो ऐसा नहीं लगता कि यह व्यक्ति राजा का मित्र होगा। उसी समय द्रोण ने फिर कहा "देख क्या रहे हो। मैं तुम्हारे राजा का घनिष्ठ मित्र हूं। मेरा नाम द्रोण है। जाकर अपने राजा से कह दो" द्वारपाल ने जाकर राजा को सूचना दी। द्रोण का नाम सुनकर वह सोचने लगा "कौन द्रोण? द्रोण शब्द का क्या अर्थ हुआ? 'इस नाम के व्यक्ति को क्या मैंने कभी देखा है? नहीं, सम्भव है देखा भी हो। सूरत देखकर कदाचित् याद आये" अतएव उसने द्वारपाल को आज्ञा दी "अन्दर ले आओ।"

द्वारपाल ने उन्हे अन्दर भेज दिया। वे कई द्वार पार करके एक बड़े सुसज्जित कमरे में पहुँचे, वह था दरबार खास। ऊंचे से सिंहासन पर मयूर पखों के समान बने अर्ध गोलाकार स्वर्ण पट से कमर लगाए पद विराजमान थे। अभी तक द्रोण को आश्चर्य हो रहा था कि पद दौड़ता हुआ द्वार पर ही उन्हे लेने क्यो नहीं आया? उन्हें तो आशा थी कि जब द्रुपद उनके आगमन का समाचार सुनेगा, स्वागत के लिये दौड़ा आयेगा, पर जब वह द्वार पर स्वयं नहीं आया तो उन्होंने

अपने को धैर्य बंधाने के लिये सोच लिया था कि द्रुपद राजा है। उनकी यह हैसियत नहीं कि वह किसी के लिये द्वार पर भागा जाय। पर ज्यों ही उन्होंने दरबार खास में प्रवेश किया और सामने द्रुपद को सिंहासन पर विराजमान पाया और उनके पहुँचने पर भी वह निश्चल सिंहासन पर ही बैठा रहा तो उन्हें असीम आश्चर्य हुआ। वे आगे बढ़े और सिंहासन के निकट पहुँच गए। उन्होंने स्वयं ही प्रणाम कर लिया, मित्र जानकर। पर उनके आश्चर्य की सीमा न रही जब द्रुपद अविचलित सा अपने सिंहासन पर बैठा रहा। उसके मुख से कुछ भी नहीं निकला।

मित्रता का जोड़ जिस प्रकार जुड़ सकता है, यह बात अभी खोल कर नहीं बता सकता।"

"ओह ब्राह्मण! अधिक बकवास मत कर। सीधी तरह से चला जा वरना धक्के देकर बाहर निकलवा दूंगा।" द्रुपद ने चीख कर कहा।

अब द्रोण से न रहा गया—"आज तुम सिंहासन पर बैठ कर मेरा अपमान कर सकते हो, पर यदि मुझ में तनिक सा भी पुरुषार्थ तथा विद्या बल है तो मैं तुझे अपने शिष्यों के द्वारा हाथ बंधवा कर मंगवालूंगा। तू मेरे पैरों में पड़ कर अपने अपराध के लिए पश्चाताप करेगा और गिड़गिड़ा कर क्षमा की भीख मांगेगा। यदि मैं ऐसा न कर पाया तो मेरा नाम भी द्रोण नहीं। यह द्रोण की प्रतिज्ञा है जो भूली नहीं जायेगी" इतना कह कर द्रोण लौटने को तैयार हो गए तभी द्रुपद ने अपने सिपाहियों को आदेश दिया "इस मूर्ख ब्राह्मण को धक्के मार कर बाहर निकाल दो।"

द्रोण ने रुक कर कहा "मुझे बल पूर्वक बाहर निकालने की आवश्यकता नहीं है। मैं स्वयं ही जा रहा हूँ। झूठे लोगों के साथ वार्तालाप करना या उनके यहाँ ठहरना मैं अपना अपमान समझता हूं" इतना कह कर वे तेजी से बाहर चले आये।

द्रुपद ने उत्तर में कहा तो यह था कि "जा, जा, तू हमारा क्या बिगाड़ सकता है?" पर द्रोण की प्रतिज्ञा को सुन कर वह कॉप उठा था, वह मन में सोचने लगा कि द्रोण बड़ा विद्वान है क्या पता क्या मुसीबत लाकर खड़ी कर दे। मैंने यह क्या किया? बड़ा अनर्थ हो गया।"

❀ * *

द्रोण चले आये। पर अब उनके सामने एक और चिन्ता आ खड़ी हुई। पहले तो केवल उदर पूर्ति के साधन की खोज थी अब अपमान का बदला लेने की भी चिन्ता सवार हो गई। रास्ते भर ...। मग्न चले आये। जीवन यापन और अपमान का बदला लेने ... समस्या मे उनका मस्तिष्क उलझा रहा। घर पहुचे तो पत्नी के ... वाणों से परेशान हो गये। बस यही कहते बना "कृपी! तुम ठीक कहती थीं। मेरा विचार गलत था।" फिर उन्होंने सारा वृत्तान्त

कर सुनाया। कृपी ने सुना तो उसके हिये में भी क्रोधाग्नि धधक उठी। भला वह यह कैसे सहन कर सकती थी कि उसके विद्वान पति को कोई अपमानित करे। दोनों सोचने लगे द्रुपद से बदला लेने का उपाय तभी उन्हे याद आया कि कृपाचार्य उनके साले कौरव पाण्डुओं के गुरु हैं और केवल हस्तिनापुर के नरेश के सहयोग से ही वे द्रुपद से बदला ले सकते हैं। अत कुछ दिनों बाद चले गये कृपाचार्य के आश्रम को। अब तक अश्वत्थामा अपने पिता की शिक्षा से धनुष विद्या में प्रवीण हो चुका था। द्रोण कृपाचार्य के पास जा रहे थे, हस्तिनापुर नरेश और उनके बीच सम्बन्ध स्थापित हो। भीष्म जी की ओर उनकी आँख लगी थी। वे तो हर समय द्रुपद द्वारा किए गए अपमान के बदले के लिए ही व्याकुल रहते।—

ठीक ही कहा है—

वाया दुरुत्ताणि दुरुद्धराणि।
वेराणुबन्धीणि महब्भयाणि॥

लोहे के तीर चुभ जाये तो निकाले जा सकते हैं। उनका घाव भी मिट जाता है। पर वचन रूपी तीर एक दम असहाय होते हैं वे जब चुभ जाए तो उनका निकालना बहुत कठिन होता है। वे वैर की परम्परा बढाते हैं। और ससार में परिभ्रमण कराने वाले हैं। अतः शास्त्रों ने भाषा-समिति पर जोर दिया है। बिना विचारे बोले हुए शब्द बड़े बड़े अनर्थ उत्पन्न कर देते हैं।

भीष्म और द्रोणाचार्य

द्रोणाचार्य के कृपाचार्य के आश्रम में आने का सम्वाद सुन कर भीष्म पितामह को अपार हर्ष हुआ। उन्होंने सुन रखा था कि वर्तमान युग में द्रोणाचार्य सा शस्त्र तथा शास्त्र विद्या का विद्वान् और कोई नहीं है। महाबली भीष्म प्रत्येक गुणवान और विद्यावान व्यक्ति का आदर करते थे अत द्रोणाचार्य के आगमन की बात सुन कर वे उन के दर्शनों के लिए लालायित हो गये और चल पड़े कृपाचार्य के आश्रम की ओर।

द्रोणाचार्य का नाम उन्होंने सुना था, पर भेंट कभी न हुई थी। किन्तु ज्यों ही उन्होंने द्रोणाचार्य को देखा उन के ललाट पर विद्यमान तेज को देख कर वे समझ गए कि वही हैं वे महान् विद्वान् जिन्हें

द्रोणाचार्य के नाम से सभी जानते हैं। वन्दना नमस्कार के उपरान्त उन्होने कहा "द्रोणाचार्य जी। आप के दर्शनों के लिए मै कितने दिनों से इच्छुक था, यह मैं ही जानता हूँ। अहो भाग्य जो आप स्वय ही इस ओर पधारे।"

"भीष्म जी! आप जैसे गुण ग्राहक लोगों की संसार में बहुत कमी है, द्रोणाचार्य कहने लगे, मुझे स्वयं आप से भेंट करने की इच्छा थी। आज आप ने स्वयं पधार कर मेरी अभिलाषा पूर्ण की। इस लिए मैं आप का धन्यवाद किए बिना नहीं रह सकता।

"अ प के इस ओर अनायास ही निकल आने का कोई कारण तो होगा!" भीष्म जी ने प्रश्न किया।

"बस यही कि मैं आप से भेंट करने को उत्सुक था।"

द्रोणाचार्य बोले।

"तो कोई सेवा, जो मेरे योग्य हो, बताइये" भीष्म जी ने कहा।

"मैं आप से एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ, द्रोणाचार्य ने अपने उद्देश्य को व्यक्त करना आरम्भ करते हुए कहा, प्रश्न यह है कि क्या ससार से विद्या और विद्वान समाप्त हो जायेगे? और विद्या तथा राज्य, सम्पत्ति में कौन आदरणीय है, कौन उच्च?"

"आचार्य जी! इस प्रश्न का उत्तर तो चमकते सूर्य के समान स्पष्ट है, सर्वविदित है, भीष्म जी को उनके प्रश्न पर कुछ आश्चर्य हुआ, पर वे प्रश्न के मूल मे किसी रहस्य के विद्यमान होने की आशा से बोले, विद्या कभी समाप्त नहीं हो सकती, जब तक आप जैसे विद्वान् हैं, विद्या की समाप्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। आप जैसे विद्वान् उस मशाल की भांति हैं जो कितनी ही दीप शिखाओं को प्रज्वलित करती है। आप के द्वारा कितने ही अन्य विद्यावान बनेंगे और उनके द्वारा फिर कुछ और। इसी प्रकार यह लड़ी चलती रहेगी। विद्या के बिना संसार अधकारमय हो जायेगा। अत विद्या को समाप्त नहीं होने दिया जायेगा। वह अमर है। इसे समाप्त करना किसी की भी शक्ति के बाहर की बात है। राज्य तथा विद्यावान में कौन बडा है, इस प्रश्न का उत्तर भी स्पष्ट है। नरेश चाहे ससार भर का ही क्यो न हो विद्वान् के सामने तुच्छ है। मेरी बुद्धि तो यही कहती है।"

"बुद्धि तो सभी की यही कहती है, पर यह सभी कहने पर की बातें

ही चाहिए" इतना कह कर द्रोण ने द्रुपद के साथ वीते सारे वृत्तान्त को कह सुनाया। और अन्त में कहा कि द्रुपद ने इतना घोर अपमान किया है कि उससे मैं व्याकुल हो उठा हूँ। यदि वह मेरे बाण मारता तो उससे कदाचित मैं इतना व्याकुल न होता जितना वचन के बाणों से मुझे आघात पहुँचा है। वे मेरे कलेजे में अब भी ज्यों के त्यों चुभे हुए हैं। भीष्म ने द्रुपद की धृष्टता की कथा सुनी तो उन्हें भी उस पर क्रोध आया पर वे विवेकशील महाबली थे। शाति पूर्वक बोले "हे विद्यावान्! द्रुपद के शब्दों से आप इतने व्याकुल क्यों हो गए। आप तो विवेकवान और विद्वान् हैं। कहीं गधे के लात मारने पर अपने विवेक से हाथ थोड़े ही धोलिए जाते हैं। आप को क्षमाशील होना चाहिए। उसे एक विवेकहीन व्यक्ति की दुष्टता समझ कर क्षमा कर देना चाहिये था। कहीं आपने उसकी दुष्टता के प्रतिशोध के लिए कोई प्रण तो नहीं कर लिया?"

"महाराज! कुछ भी हो, मैं एक मनुष्य हूं। उसके वाग्बाणों से जो मुझे असह्य दुख पहुंचा उसने मेरे हृदय को ज्वालामुखी की भांति धधका दिया और उसी समय मैंने प्रण भी कर लिया" द्रोण ने कहा। उस समय उनके मुख पर उत्तेजना के भाव नहीं थे। किन्तु वे गम्भीर थे जैसे अपने से उच्च व्यक्ति के सामने अपने किये कृत्य की कहानी सुना रहे हों।

"क्या है वह प्रण?" भीष्म जी पूछ बैठे।

"मैंने उसी दुष्ट के सामने प्रतिज्ञा की है कि उसे अपने शिष्यों से बंधवा कर मंगवाऊंगा और वह गिड़गिड़ाकर मुझ से क्षमा मांगेगा और कहेगा कि आप मेरे मित्र हैं, आधा राज्य आपका है। तब मैं उसे छोड़ूंगा। इस प्रतिज्ञा को पूर्ण किये बिना अब मुझे शांति नहीं मिलेगी।"

भीष्म जी ने सुना तो वे अधिक गम्भीर हो गये, कहा, विद्वद्वर! आपने यह प्रतिज्ञा करके अच्छा नहीं किया। इससे आपको आत्मिक शांति नहीं मिलेगी। प्रतिशोध की भावना ही हिंसा पर आधारित है। और हिंसा कभी शांति प्रदान नहीं करती। उससे तो वैर ही बढ़ता है और वैर अशांन्ति को जन्म देता है। यद्यपि हर उन्नति को अवनति

का मुख देखना पड़ता है। सूर्य उदय होता है तो अस्त भी होना ही है। जब वह अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच जाता है, अस्त होने चल देता है। इसी प्रकार द्रुपद का आज तेज बढ़ा हुआ है तो वह कभी घटेगा भी और आपकी प्रतिज्ञा भी पूरी हो जायेगी परन्तु इससे आपको वास्तविक शांति नहीं मिल सकती।"

"आप सच कहते हैं महाराज! पर अब ब्रह्म-प्रण बदल नहीं सकता, छूटा हुआ तीर वापिस नहीं आता। द्रुपद को एक बार नीचा दिखाना ही होगा।" द्रोणाचार्य ने कहा।

"जैसी आपकी इच्छा!" भीष्म जी ने उनके दृढ़ प्रण को सुनकर कहा, "अब मैं आपसे अपने काम की बात कहूँ। बात यह है कि कौरव पाण्डव कृपाचार्य से शिक्षा प्राप्त कर चुके। अब उन्हें उच्च शिक्षा की आवश्यकता है। मैं चाहता हूँ कि आप इस शुभ कार्य को सम्भालें। हमें आप जैसा विद्वान् नहीं मिलेगा, इसी लिये मैं आप से भेंट करने का इच्छुक था। क्या आप स्वीकार करेंगे।"

"अत्यन्त प्रसन्नता के साथ।" द्रोणाचार्य बोले, इन राजकुमारों से उपयुक्त पात्र और कौन मिलेगा, जिन्हें देने से मेरी विद्या सार्थक हो।"

"तो आज से आप आचार्य हुए।"

द्रोण ने मौन स्वीकृति दे दी। और कौरव पाण्डव शुभ मुहूर्त में द्रोणाचार्य को सौंप दिये गए।

सुशिष्य

एक दिन द्रोणाचार्य अपने आसन पर विराजमान थे उनके एक सौ सात शिष्य, कौरव पाण्डव, कर्ण और उनका पुत्र अश्वत्थामा (जो पुत्र होते हुए भी शिष्य था) सामने बैठे थे। धर्म शिक्षा चल रही थी। अन्त में द्रोणाचार्य बोले "माली पौधों को सींचता है, केवल इसी लिए ही नहीं कि इससे उसकी उदर पूर्ति होती है, पौधों के साथ उसकी कुछ भावनाएं भी दब जाती हैं। इसी प्रकार गुरु जो अपने शिष्यों को अपनी शक्ति भर शिक्षा देकर विद्वान बनाता है और सदा इस बात का प्रयत्न करता है कि उसके शिष्य बुद्धिमान, विद्वान, गुणवान, तेजवान और पराक्रमवान हों, केवल इसी लिए तो इतना परिश्रम नहीं

करता कि उसे पेट भर रोटी मिल जाया करे। वरन उसके हृदय में अपने शिष्यों के प्रति कुछ आशाएं होती हैं। वह एक सुन्दर स्वप्न देखता रहता है। वह अपनी अमूल्य निधि विद्या को शिष्यों में बखेर देता है, केवल रोटी के लिए नहीं बल्कि वह जानता है कि इस अमूल्य निधि के बीज से जो अंकुर निकलेंगे कभी वह उसकी सन्तान से भी बढ़ कर उसके काम आयेंगे। उसका सिर ऊंचा करायेंगे। जानते हो जिनका गुरू अपमानित होता है उन्हें दुनियां क्या कहती है?"

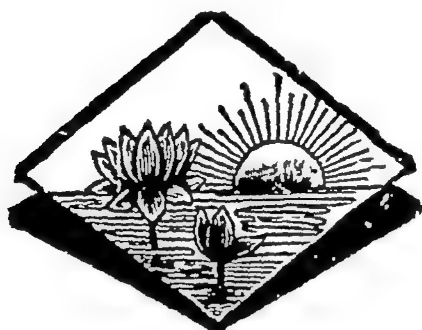
सभी शिष्य चुप रह गए। द्रोणाचार्य स्वय बोले "उन्हें सारा संसार कहता है कि यह तो उसी गुरु के शिष्य है जिसका कोई मान नहीं जिसकी कोई इज्जत नहीं, जो अपने स्वाभिमान का मूल्य नहीं जानता तो फिर उस गुरु के शिष्य स्वाभिमान की रक्षा भला क्या करेंगे। मैं तुम्हें शिक्षा दे रहा हूँ इस आशा से कि तुम सब भावी शूरवीर हो, महान् बलवान और जगत विजयी हो। तुम्हारे पौरुष्य से और मेरे द्वारा दी गई विद्या से तुम सारे ससार में अपनी श्रेष्ठता की ध्वजा ऊंची करोगे। तुम अपने पितृ कुल और गुरुकुल की लाज की रक्षा तथा अपने कुल और गुरु के शत्रुओ के मान को चूर्ण करोगे। गुरु का इतना बड़ा ऋण होता है कि शिष्यों का उससे उऋण होना दुर्लभ है। मैं तुम्हे समस्त विद्याओं में पारगत करने में प्रयत्न शील हूं ताकि तुम मेरी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर सको।

इतना कहकर वे चुप हो गए। कुछ देर तक उन्होंने अपने समस्त शिष्यों के मुख देखे, उन पर आये मनोभावों को पढ़ने की चेष्टा की और बोले---गम्भीर मुद्रा में मैंने एक प्रतिज्ञा की है, जो शिष्य अपने प्राणों का मोह न करता हो और मेरे लिए अर्थात् अपने गुरु के सम्मान के लिए अपना सर्वस्व देने को तैयार हो, वह शूरवीर मेरे सामने आये और मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करने का वचन दे। याद रखो मेरी प्रतिज्ञा सुशिष्य के पौरुष पर ही आधारित है।

गुरुदेव की बात सुन कर समस्त शिष्य विचार मग्न हो गए अधिकतर सोचने लगे "गुरुदेव का क्रोध बड़ा उग्र है। वह जिस बात को पकड़ लेते है छोड़ते नहीं क्या पता उन्होंने क्या प्रतिज्ञा कर रखी है। हम से पूर्ण भी होगी या नहीं यदि वचन दे दिया और पूर्ण न हुई तो गुरु के साथ विश्वास घात होगा।"

अर्जुन ने सोचा गुरुदेव के प्रति अपने कर्तव्य को निभाना मेरा धर्म है। उनके ऋण से उऋण होने का इससे बढ़कर और क्या उपाय हो सकता है कि मैं उन की प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए अपने प्राणों तक की बाजी लगा दूंगा। जब एक भील युवक (एकलव्य) गुरु दक्षिणा में अपना वह अंगूठा छोड़ सकता है, जिस के द्वारा गुरु प्रसाद से प्राप्त की विद्या सार्थक होती है। तो क्या मैं उस भील युवक से भी हीन हूं। नहीं, अहो भाग्य है आज मुझे गुरुदेव को सन्तुष्ट करने तथा गुरु भक्ति का आदर्श प्रस्तुत करने का जीवन में शुभ अवसर मिल रहा है।

दूसरे राजकुमार पश्चाताप करने लगे कि अर्जुन ने बाजी मारली। यदि वे ही वचन दे देते तो गुरु के प्रिय बन जाते। दुर्योधन भीतर ही भीतर जलता रहा। कर्ण के हृदय में भी ईर्ष्या धधक उठी और अश्वत्थामा तो चिढ़ गया। पर युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव को इतनी ही प्रसन्नता हुई जितनी अर्जुन को। उन्हे गर्व था कि उनका भाई गुरुदेव का प्रिय हो गया है।



अहङ्कारी है। किसी दूसरे को बदते ही नहीं। अब देखो तुम जैसे बलिष्ट और बुद्धिमान व्यक्ति के सामने इन पांचों में कोई भी तो नहीं ठहर सकता। पर अपनी चापलूसी से अर्जुन ने गुरुदेव का मन मोह लिया है और तुम से सदा ही कुढ़ता रहता है। यह पांचो भाई तुम्हे रथवान का पुत्र कहते रहते हैं और नीच समझते हैं। तुम्हारा सदा अपमान करते रहते हैं। पर मैं तो समझता हूँ कि व्यक्ति किसी परिवार में जन्म लेने से नीच अथवा उच्च नहीं होता। यह तो व्यक्ति के गुण होते हैं जो उसे उच्च अथवा नीच बनाते हैं। तुम चाहे किसी की गोद में भी पले हो पर तुम्हारे गुण तो राजकुमारों के समान हैं। अतएव मैं तो तुम्हारा हृदय से आदर करता हूँ। मेरे हृदय मे तुमने अपना वह स्थान बना लिया है जो मेरे किसी भाई ने भी प्राप्त नहीं किया। मैं तो तुम्हारे गुणों से इतना प्रभावित हुआ हूं कि आवश्यकता पड़े तो तुम्हारे लिए प्राण तक भी दे सकता हूँ"

दुर्योधन की मीठी बातें सुनकर कर्ण सोचने लगा—"दुर्योधन बड़ा ही सहानुभूति शील राजकुमार है। उसके विचार उच्च हैं। वह गुण ग्राहक है। इसके विपरीत पाण्डव जो प्रकट में मुझ से कोई वैरभाव नहीं रखते पर वे इतनी आत्मीयता नहीं दर्शाते। सम्भव है मेरे पीछे मेरा अनादर भी करते हों। दुर्योधन का स्नेह सराहनीय है।"

वह प्रकट रूप में बोला---"दुर्योधन कुमार। आपकी सहानुभूति के लिए धन्यवाद। आप वास्तव मे उच्च विचारों के राजकुमार हैं आप में आत्मीयता है। मैं आपके व्यवहार से बहुत प्रभावित हुआ हूं। आप यदि मेरे लिए प्राण तक दे सकते हैं तो विश्वास रखिए मैं भी आपके लिए प्राण दे सकता हूँ।'

इस प्रकार कर्ण दुर्योधन के कपट जाल में फस गया। उन दोनों की मित्रता घनिष्ट हो गई। पर दुर्योधन के भाव शुद्ध नहीं थे वह तो किसी स्वार्थ वश मित्रता दर्शा रहा था। किन्तु कर्ण उसे अपना

आत्मीय समझ बैठा और उसने अपने को पूर्णतया उनका बना दिया।

\+ \+ \+ \+

इधर अश्वत्थामा अर्जुन से चिढ़ने लगा। इसका कारण यह था कि वह समझता था अर्जुन उसके स्थान को छीन रहा है। वह सोचने लगा कि पिता जी (द्रोणाचार्य) का अर्जुन पर विशेष प्रेम है। जो विद्या अर्जुन को सिखाते हैं वह मुझे नहीं। उनका प्रेम अर्जुन पर अधिक और मुझ पर कम है। कुशल द्रोणाचार्य समझ गए कि अश्वत्थामा के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हो गई है।

एक दिन अश्वत्थामा उदास बैठा था। द्रोणाचार्य ने पूछ लिया "बेटा! तुम उदास दिखाई देते हो। क्या कारण है?"

"पिता जी! क्या आपको मेरी उदासी का कारण ज्ञात नहीं? अश्वत्थामा ने कहा, आप पक्षपात कर रहे हैं मैं आपका पुत्र हूं पर आप मुझ पर वह प्रेम नहीं दर्शाते जो अर्जुन पर दिखाते हैं। उसे बड़े प्यार से शिक्षा देते हैं विभिन्न विद्याएं उसे सिखाते हैं, मेरे साथ साधारण शिष्य सा व्यवहार करते हैं। यद्यपि मैं आपका उत्तराधिकारी हूं तथापि आप मेरी अवहेलना करते हैं। मैं भला अर्जुन से किस बात में कम हूं? आप मुझे भी उसी परिश्रम से विद्या सिखाया करें ताकि अर्जुन के समान हो जाऊं। पर आपकी उपेक्षा से मैं अर्जुन से पीछे रह गया हूं। क्या आपको मुझ से इतना प्रेम नहीं जितना प्रत्येक पिता को अपने पुत्र से होता है?"

आत्मा के गुणों को नष्ट कर देता है। ईर्ष्या को छोड़ो अपनी त्रुटियों को नष्ट करो, स्वच्छ हृदय से विद्या की साधना में लीन हो जाओ। यदि ऐसा तुमने कर लिया तो किसी दिन तुम भी अर्जुन सरीखे सुशिष्य और योग्य पात्र बन जाओगे। उस दिन तुम्हारे लिए जो प्रेम मेरे हृदय में होगा उसे अर्जुन भी प्राप्त न कर सकेगा।"

"अर्जुन योग्य पात्र है और मैं अयोग्य। यह निर्णय आपने कैसे कर लिया ?" अश्वत्थामा रोष से बोला।

"इसका उत्तर तुम्हें किसी और दिन दूंगा" द्रोणाचार्य इतना कह कर चुप हो गए।

कुछ दिन बीत जाने के बाद एक दिन द्रोणाचार्य ने अर्जुन और अश्वत्थामा, दोनों को बुलाया। अर्जुन को संकरे मुंह का और अश्वत्थामा को चौड़े मुंह का घड़ा देकर कहा कि जाओ इनमें जल भर लाओ। जो भर लायेगा तुम में वही सच्चा शिष्य होगा।

यह सुनकर अश्वत्थामा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सोचा मेरे उलाहने का पिता जी पर प्रभाव पड़ गया है इसी कारण वे मुझे योग्य पात्र सिद्ध करने के लिए प्रयत्नशील हैं तभी तो मुझे चौड़े मुंह का घड़ा दिया है ताकि शीघ्र भर जाये और अर्जुन को संकरे मुंह का घड़ा दिया है जिसे भरने में अधिक देर लगेगी। आज अर्जुन से बाजी मार कर उसे नीचा दिखाने का सुन्दर अवसर है।

किन्तु अर्जुन का हृदय स्वच्छ था, उसमें ईर्ष्या का नाम तक भी न था वह सोचने लगा कि पानी भरने की ही बात होती तो गुरुदेव इस काम को और से भी करा सकते थे। पर इस कार्य को हम दो को सौंप कर और साथ में सुशिष्य की परीक्षा की बात कह कर गुरुदेव ने संकेत किया है कि इस मे कोई रहस्य है। वह क्या रहस्य है ? जब इस पर विचार किया तो उसे यह समझते देर न लगी कि गुरु देव वरुण बाण की परीक्षा लेना चाहते हैं।

दोनों जल लेने के लिए दौड़े। अश्वत्थामा सोचता था कि आज अर्जुन को अवश्य ही हराऊंगा। मैं तो घड़ा भरकर तीन चक्कर लूंगा तब कहीं अर्जुन का घड़ा भरेगा। उसे कल्पना तक नहीं कि यह वरुण बाण की परीक्षा है। वह सरोवर की ओर भागा पर अर्जुन ने कुछ ही दूर जा कर एक वरुण बाण मारा और घड़ा भर

गया। अश्वत्थामा ने जो आगे भागता हुआ यह देखता जाता था कि अर्जुन कितना पीछे रह गया है, अर्जुन को बाण चलाते देख लिया था। जब वह वापिस लौटने लगा और रास्ते में अर्जुन कहीं न मिला तो सोचने लगा 'बस आज अर्जुन अवश्य हार गया, वह तो कहीं खेल में ही रह गया या किसी दूर की झील पर चला गया।"

प्रसन्न चित्त अश्वत्थामा जब द्रोणाचार्य के पास पहुँचा तो देखा कि अर्जुन बैठा है। उस का मुंह उतर गया फिर भी बोला "पिता जी! अर्जुन का घड़ा तो देखिए भरा है या खाली है। यह तो घड़े में तीर मार कर लौट आया है।"

द्रोणाचार्य मुस्कराते हुए उठे और अर्जुन के घड़े को देखा। वह तो जल से भरा था। अश्वत्थामा को सम्बोधित करके बोले "पुत्र! तू भी उठ कर देख ले। भरा है या खाली है।"

अश्वत्थामा का चेहरा फीका पड़ गया। तब उस की समझ में आया कि बाण चलाने का रहस्य क्या था। वह दुखित होकर बोला– अर्जुन ने वरुण बाण से घड़ा भरा है और मैं ने सरोवर से। मुझे मालूम होता कि आप वरुण बाण की परीक्षा लेना चाहते हैं तो मैं सरोवर पर क्यों जाता?"

द्रोणाचार्य बोले—"पुत्र मैंने कब कहा था कि सरोवर से भरना या वरुण बाण से। यह तो तुम्हारी बुद्धि की परीक्षा थी। यदि तू भी ऐसा ही करता तो कौन रोकता था।

आंखों भी नहीं सुहाते, तथापि उसके प्रति भी प्रकट रूप में वे कोई खिन्नता न दिखाते। बड़े ही प्रेम से व्यवहार करते।

× + ×

एक दिन द्रोणाचार्य अपने समस्त शिष्यों को लेकर यमुना तट पर गए। यह आयोजन शिष्यों के मनोविनोद के लिए किया गया था। सभी शिष्य क्रीड़ा करने लगे और द्रोणाचार्य यमुना जल में स्नान करने लगे। स्नान करते समय एक ग्राह ने उनका पैर पकड़ लिया। वे इतने शक्तिशाली थे कि चाहते तो स्वयं ही ग्राह से अपना पैर छुड़ा लेते, पर अपने शिष्यों की परीक्षा लेने का सुन्दर अवसर जान कर वे चिल्लाए—"दौड़ो, मुझे बचाओ, मुझे ग्राह ने पकड़ लिया।"

गुरुदेव की चिल्लाहट सुन कर सभी शिष्य तट पर आ गए और सोचने लगे कि गुरुदेव को कैसे बचाया जाय। यदि पानी में उतरे और ग्राह ने हमें ही पकड़ लिया तो क्या होगा? इतने ही में अर्जुन ने धनुष सम्भाला, बाण चढ़ाया और धड़ाधड़ ऐसे बाण चलाए कि ग्राह बुरी तरह घायल हुआ। और चीख मार कर द्रोणाचार्य को छोड़ भागा बाण द्रोणाचार्य को न लगे। यही बाण चलाने की दक्षता थी।

द्रोणाचार्य बाहर आये और कहने लगे "शिष्यों! आज तुम सभी यहां उपस्थित थे। मैंने सभी को सहायता के लिए पुकारा था, पर तुम सब हतप्रभ हो कर खड़े रहे, अकेले अर्जुन ने ही मुझे क्यों छुड़ाया?"

अर्जुन की पीठ थपथपाते हुए वे बोले "बेटा! तू वास्तव में मेरा सच्चा शिष्य है। यदि आज तू न होता तो यह पृथ्वी द्रोण रहित हो जाती। तू ने मेरे प्राण बचाए और इस प्रकार अपने और इन सब के गुरु की रक्षा की। यदि आज मैं समाप्त हो जाता तो सभी की विद्या अधूरी रह जाती।"

"गुरु जी! इस में मेरा क्या है। अर्जुन ने हाथ जोड़ कर कहा, यह विद्या तो आप की ही दी हुई है। आप की विद्या से आप का अनमोल जीवन बच गया तो इस में मेरी प्रशंसा की क्या बात है?"

द्रोण ने अर्जुन की बात से गद् गद् हो कर कहा—पुत्र! यही तो तेरी विशेषता है। यदि तेरे स्थान पर और कोई होता जिस ने वही विद्या सीखी है जो तुझे मैंने सिखाई है तो ऐसे तीर चलाता कि ग्राह

है साथ साथ मैं भी घायल हो जाता। पर तूने ऐसे हल्के हाथ से तीर चलाए कि जिस से मेरा पैर तो बच जाए और ग्राह छोड़ कर भाग जाय। यह है तेरी चतुराई और बुद्धिमत्ता। विद्या तो मैंने सभी को दी है पर यह सब हतप्रभ हो खड़े रहे। इसी से मैं कहता हूं कि इस समय तू ने ही मेरे प्राणों की रक्षा की।"

फिर सभी शिष्यों को सम्बोधित करते हुए कहा, मेरे साथ तुम्हें भी अर्जुन का उपकार मानना चाहिए। यदि अर्जुन मुझे आज न बचाता तो मैं तुम्हारा गुरु कैसे रह सकता था? दुर्योधन ने धीरे से कहा "अश्वत्थामा और कर्ण तो उसी समय तीर चलाने की सोच रहे थे पर जब लाडले अर्जुन ने धनुष चढ़ा लिया तो वे रह गए। अर्जुन यदि बीच में न आता तो अश्वत्थामा या कर्ण प्राण बचा ही लेते।" दुर्योधन की बात सुन कर। पास ही में खड़े कर्ण और अश्वत्थामा को बड़ा सन्तोष हुआ, पर भीम सुनते ही मुस्करा पड़ा। गुरुदेव बात न सुन पाये।



शिष्य परीक्षा-कर्ण की चुनौती

एक दिन द्रोणाचार्य भीष्म पितामह के पास पहुंचे । अनायास ही उन्हें आया देखकर भीष्म जी सोचने लगे कि आचार्यजी यहाँ आना किसी विशेष कारण से ही हुआ है अतएव वे कह बैठे—"आज आपका अकस्मात यहां आना इस बात का परिचायक है कि किसी विशेष उद्देश्य से आपने कष्ट किया है । अपने आने का प्रयोजन बताने की कृपा करें।"

"हां, मैं निष्कारण यहाँ नहीं आया, द्रोणाचार्य बोले, राज-काज करने वालों के पास निष्प्रयोजन जाना अच्छा नहीं होता ।"

भीष्म—"तो फिर कहिए, क्या आज्ञा है ?"

द्रोण—आपने मुझे राजकुमारों को विद्याभ्यास के लिए सौंपा था । मुझे प्रसन्नता है कि मैंने अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण कर दिया है । राजकुमारों ने शिक्षा प्राप्त कर ली है और यूं तो सभी राजकुमारों को लगभग सभी विद्याए दी गई हैं । परन्तु प्रत्येक कुमार समस्त विद्याओं का पात्र नहीं हो सकता । जो जिस योग्य था, वह उसी में निपुण हो गया है ।"

भीष्म--"अहो भाग्य है आप ने राजकुमारों को इतनी शीघ्र विद्वान् बना दिया । वास्तव में इस बात को सुन कर मुझे अपार हर्ष हुआ है । क्योंकि विद्याध्ययन का कार्य राजकुमारों के जीवन का एक मुख्य कार्य होता है और होता है संरक्षकों का विशेष उत्तरदायित्व आपने हमारे कंधों को इस उत्तरदायित्व से भार मुक्त कर दिया । यह बड़े सन्तोष की बात है । आप का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि प्रत्येक राजकुमार प्रत्येक विद्या में निपुण नहीं हो सकता और न प्रत्येक समस्त विद्याओं का पात्र ही होता है । इस सम्बन्ध में आपने जो भी

में राजकुमारों की परीक्षा हो। इससे दो लाभ होंगे, एक तो आप राजकुमारों की योग्यता आंक लेंगे दूसरे बहुत से दुष्ट राजकुमारों की शिक्षा और शक्ति को देखकर ही दब जायेंगे।"

भीष्म जी कुछ सोचने लगे, सोचने लगे वे परस्पर सहयोग की शर्त पर। किन्तु परम प्रतापी भीष्म को समझते देरि न लगी कि अवश्य ही राजकुमारो में कोई बात ऐसी है, जिसे देखकर द्रोणाचार्य को सन्देह है कि यह लोग परस्पर सहयोग से भी रह पायेंगे। जो भी हो, भविष्य बताएगा कि शंका समूल है अथवा निर्मूल। परीक्षा की बातें उन्हे पसन्द आई और उन्होंने कहा—आचार्य जी ! आप का विचार यथार्थ है। परीक्षा का विचार मेरे मन में भी उठा था, परन्तु यह सोचकर रह गया था कि जब तक आचार्य जी स्वयं परीक्षा की बात न उठायें तब तक शिक्षा के सम्बन्ध में मेरा कुछ भी कहना आपके अधिकार क्षेत्र मे हस्तक्षेप होगा और होगी यह अनधिकार चेष्टा। आप स्वय दक्ष हैं और इस सम्बन्ध में सर्व प्रकार से कुशल है। आपने अवसर देखकर ही बात कही है अत जब चाहे राजकुमारों की परीक्षा लीजिये।"

द्रोणाचार्य—"कौरवों पाण्डवों की शिक्षा के पूर्ण हो जाने पर तुरन्त ही मेरे मन में यह भाव उत्पन्न हुए अत मैंने सोचा कि अब समय व्यर्थ नष्ट करना उचित नहीं है। राजकुमारों ने जो शिक्षा ग्रहण की है उसकी परीक्षा मै स्वय तो कई बार ले चुका हूं। परन्तु यह भी आवश्यक है कि राजकुमार अपनी विद्याओं का प्रदर्शन करके जनता पर प्रभाव डाले और आप भी अपने नौनिहालों की योग्यता को परख लें। इसके अतिरिक्त इस प्रदर्शन से मेरे द्वारा दी गई शिक्षा को जब चार सभ्य और सुशिक्षित व्यक्ति देखेंगे तो मेरी शिक्षा की वास्तविकता का भी पता चल जायेगा। मैं चाहता हूँ कि शीघ्र ही परीक्षा मण्डप का निर्माण हो।"

द्रोणाचार्य की बात भीष्म जी ने स्वीकार कर ली और परीक्षा मण्डप की तैयारी के लिए राज कर्मचारियों को द्रोणाचार्य के साथ कर दिया। द्रोणाचार्य ने स्वयं ही परीक्षा स्थल का निश्चय किया और भूमि परिष्कृत करके अपनी देख रेख में मण्डप का निर्माण कराया। उस मण्डप मे कुछ मचान बंधवाए गए और ऐसी योजना की गई कि एक ओर राजपुरुष उन पर बैठकर देख सकें, दूसरी ओर उचित स्थान

में राजकुमारों की परीक्षा हो। इससे दो लाभ होंगे, एक तो आप राजकुमारों की योग्यता आंक लेंगे दूसरे बहुत से दुष्ट राजकुमारों की शिक्षा और शक्ति को देखकर ही दब जायेंगे।"

भीष्म जी कुछ सोचने लगे, सोचने लगे वे परस्पर सहयोग की शर्त पर। किन्तु परम प्रतापी भीष्म को समझते देरि न लगी कि अवश्य ही राजकुमारों में कोई बात ऐसी है, जिसे देखकर द्रोणाचार्य को सन्देह है कि यह लोग परस्पर सहयोग से भी रह पायेंगे। जो भी हो, भविष्य बताएगा कि शंका समूल है अथवा निर्मूल। परीक्षा की बातें उन्हें पसन्द आई और उन्होंने कहा—आचार्य जी! आप का विचार यथार्थ है। परीक्षा का विचार मेरे मन में भी उठा था, परन्तु यह सोचकर रह गया था कि जब तक आचार्य जी स्वयं परीक्षा की बात न उठायें तब तक शिक्षा के सम्बन्ध में मेरा कुछ भी कहना आपके अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप होगा और होगी यह अनधिकार चेष्टा। आप स्वय दक्ष हैं और इस सम्बन्ध में सर्व प्रकार से कुशल है। आपने अवसर देखकर ही बात कही है अत. जब चाहे राजकुमारों की परीक्षा लीजिये।"

द्रोणाचार्य—"कौरवों पाण्डवों की शिक्षा के पूर्ण हो जाने पर तुरन्त ही मेरे मन में यह भाव उत्पन्न हुए अत मैंने सोचा कि अब समय व्यर्थ नष्ट करना उचित नहीं है। राजकुमारों ने जो शिक्षा ग्रहण की है उसकी परीक्षा मै स्वयं तो कई बार ले चुका हूं। परन्तु यह भी आवश्यक है कि राजकुमार अपनी विद्याओ का प्रदर्शन करके जनता पर प्रभाव डालें और आप भी अपने नौनिहालों की योग्यता को परख लें। इसके अतिरिक्त इस प्रदर्शन से मेरे द्वारा दी गई शिक्षा को जब चार सभ्य और सुशिक्षित व्यक्ति देखेंगे तो मेरी शिक्षा की वास्तविकता का भी पता चल जायेगा। मैं चाहता हूँ कि शीघ्र ही परीक्षा मण्डप का निर्माण हो।"

द्रोणाचार्य की बात भीष्म जी ने स्वीकार कर ली और परीक्षा मण्डप की तैयारी के लिए राज कर्मचारियों को द्रोणाचार्य के साथ कर दिया। द्रोणाचार्य ने स्वयं ही परीक्षा स्थल का निश्चय किया और भूमि परिष्कृत करके अपनी देख रेख में मण्डप का निर्माण कराया। उस मण्डप मे कुछ मचान बंधवाए गए और ऐसी योजना की गई कि एक आर राजपुरुष उन पर बैठकर देख सकें, दूसरी ओर उचिप स्थान

पर प्रजाजन बैठकर प्रदर्शन देख सकें, विद्या प्रदर्शन को देखने में कोई कठिनाई न हो, इसका ध्यान रखा गया। राज महिलाओं के बैठने की भी उचित व्यवस्था की गई और यह भी ध्यान रक्खा गया कि परीक्षार्थियों को भी किसी प्रकार की असुविधा न हो। द्रोणाचार्य ने परीक्षा के लिए बनाई गई रंगभूमि का इस प्रकार निर्माण कराया कि उसे देखकर उनकी कला कुशलता का भी पूरा परिचय मिल जाता था। उसमें विशेषता यह थी कि महिलाओं के बैठने के स्थान इस प्रकार बनाये गए थे कि वे तो सारे प्रदर्शन को भलि भांति देख सकती थीं, पर अन्य दर्शक उन्हें देखना चाहें तो उन्हें असुविधा होती, अपने स्थान से हटना पड़ता। बैठने के स्थानों का निर्माण इस प्रकार किया गया था कि बैठने वालों का स्थान देखकर ही परिचय मिल जाता था, कोई भी समझ सकता था कि कौन राज परिवार का व्यक्ति है और कौन राजकर्मचारी व कौन प्रजाजन। साथ में एक स्थान पर समस्त प्रकार के अस्त्र शस्त्रों के रखने का समुचित प्रबन्ध था जिन्हें सभी दर्शक देख सकते थे। वह स्थान इतना कला पूर्ण और चित्ताकर्षक बनाया गया था कि शस्त्रास्त्रों की प्रदर्शनी का रंग उपस्थित करता था कितने ही शस्त्र अस्त्र वहाँ रखा दिए गए थे जिनमें बहु मूल्य शस्त्र भी थे। मानो एक प्रकार से हस्तिनापुर का शस्त्रागार ही वहां आ गया था।

× + + ×

मण्डप बन गया, परीक्षा का समय सन्निकट आ गया जनता की भीड उमड पडी। द्रोणाचार्य जैसे प्रख्यात आचार्य से शिक्षा पाए राजकुमारों का कला-कौशल भला कौन न देखना चाहता ? नर, नारी, बालक वृद्ध, सहस्रों की सख्या में उमड पड़े। मानों दर्शकों का सागर उमड़ पड़ा है। चारों ओर नर मुण्ड ही दिखाई देते थे। राज परिवार के लोग भी उपस्थित हो गए। राज्य कर्मचारी सभी को पूर्व निश्चित योजनानुसार उनके लिए नियुक्त स्थान पर बैठाते जाते। चारों ओर हस्तिनापुर सिंहासन की पताकाएं लहरा रही थीं। जब सभी लोग अपने अपने उपयुक्त स्थान पर बैठ गए। तो द्रोणाचार्य अपनी शिष्य मडली को अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित करके परीक्षा स्थल में लाए। शिष्यों की भी पूरी एक सेना सी थी। द्रोणाचार्य के मुख पर अपनी शिष्य

मण्डली के बीच आज अपूव ही दीप्ति थी। ऊपर से नीचे तक धारण किये हुए श्वेत वस्त्र उनके धवल यश का विस्तार कर रहा था। द्रोणाचार्य को देखकर सभी का हृदय श्रद्धा और आदर से भर गया।

राजकुमारों के चेहरे पर भी अपूर्व कांति विद्यमान थी, अद्भुत तेज से उनके चेहरे प्रकाशमान थे, उन पर आश्चर्यजनक चमक विद्यमान थी। तेजस्वी ललाट और चमकते हुए नेत्र, हृष्ट पुष्ट शरीर, सभी कुछ मिल कर दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे। एक कुमार को देख कर दर्शक प्रशंसात्मक शब्दों का प्रयोग करते। जिन्हें सुन कर राज परिवार के लोग गद गद हो रहे थे। उनके नेत्र गर्व पूर्ण थे। ऐसे तेजस्वी कुमारों पर भला किस को गर्व न होगा।

राजकुमार सब क्रम बद्ध खड़े हो गये। द्रोणाचार्य ने सावधान होने का आदेश दिया। सब खिचकर खड़े हो गए। और गुरुदेव के आदेशों के अनुसार सभी शारीरिक कलाओं का प्रदर्शन करने लगे। जिसे आजकल हम 'परेड' कह कर पुकारते हैं, वैसी ही क्रियाएं द्रोणाचार्य के शिष्यों ने कीं। आश्चर्य जनक क्रियाओं, करतबों, और कलाओं को देखकर दर्शक बार बार करतल ध्वनि करते। जिससे द्रोणाचार्य और उनकी शिष्य मण्डली गद गद हो उठते।

फिर द्रोणाचार्य ने कहा कि---"अब राजकुमार बाण विद्या का प्रदर्शन करेंगे।" दर्शकों की उत्सुकता बढ़ गई। चारों ओर सन्नाटा छा गया।

सर्व प्रथम राजकुमारों ने आकाश की ओर बाण चलाए। बाण इतनी फुरती से चलाए जा रहे थे, कि यह ही पता नहीं चलता था था कि किसने कब तीर चलाया। बाण कभी कभी दूसरे बाण को काट भी डालते थे। लोगों ने आकाश से भूमि पर पड़ती वर्षा बूंदों को तो इतनी तीव्रता से आते देखा था, पर कभी भूमि की ओर से इस तीव्र गति से सैंकड़ों की सख्या में जाते तीरों को नहीं देखा था। आकाश की ओर जाते हुए तीरों का एक पर्दा सा बन जाता। सभी देखकर आश्चर्य चकित रह गए। गुरुदेव की आज्ञा मिलने पर एक दम बाण चलाना रुक गया। उसी समय उन्होंने घोषणा की---"आपने अन्य राजकुमारों का बाण चलाना तो देख लिया और आप यह भी समझ गए होंगे कि ये वीर कुमार किस तीव्र गति से बाण चला सकते हैं, पर मैंने

अर्जुन को अलग खडा कर रखा है। इसका कारण यह है कि अर्जुन में धनुर्विद्या का असाधारण कौशल है। उसके कौशल को आप सब राजकुमारों के साथ नहीं देख सकते थे। इसीलिए मैंने उसे अलग खड़ा रखा है, क्योंकि अल्पशक्ति के साथ महाशक्ति का परिचय नहीं हो सकता, अतएव अर्जुन के कौशल को अलग में देखना ही उचित होगा वैसे मेरे समस्त शिक्षार्थी अन्य शिक्षार्थियों से उत्तम हैं।"

द्रोणाचार्य की घोषणा सुनकर भीष्म आदि बहुत प्रसन्न हुए। धृतराष्ट्र कहने लगे—मैं आँखों से तो अंधा हूँ राजकुमारों का कौशल देख नहीं सकता। मुझे दुख है कि मैं अपने लाडलों के कौशल को भी देखने की शक्ति नहीं रखता। फिर भी कानों से तो सुन सकता हूँ। बाण छूटने की जो ध्वनियाँ अब तक मेरे कानों में आ रही थी उस से मैंने अनुभव किया है, जिस गति से आकाश में बिजली कडकती है, उस गति से बाण छूट रहे थे। मैं अपने कानों से बडी प्रिय बातें सुन रहा हूँ। लोगों की करतल ध्वनि और प्रशंसा सूचक बोल मेरे हृदय में उतरते जा रहे हैं।"

गांधारी और कुन्ती आदि भी परीक्षा स्थल में थी ही, अपने सुपुत्रों की कला को देखकर उनका हृदय बाँसों उछलने लगा। अर्जुन जब धनुष बाण लेकर सामने आया तो सभी स्वांस रोक कर उसकी कला देखने लगे। उसने कितने ही अनुपम कौशल दिखाये। कभी वह आकाश की ओर बाण चलाता तो कभी आखें बन्द करके शब्द वेधी बाण चलाता। कभी वह इस तीव्र गति से बाण चलाता कि दर्शक यह न समझ पाते कि कब बाण उसके हाथ में आता और कब छूट जाता उसके धनुष की आवाज इतनी तेज होती कि कायरों के हृदय भी काँप जाते।

बाणविद्या की परीक्षा के उपरान्त रथ-विद्या व विकट गाडियों की बारी आई। राजकुमार अपने अपने रथ पर सवार होकर मण्डप में आये। सभी के रथों में चचल और आकर्षक अश्व जुड़े थे। गुरुदेव की आज्ञा पाकर सभी रथ क्रमबद्ध खड़े हो गए। बाण छोड़ कर सभी ने अपने वृद्धजनों को प्रणाम किया और फिर गुरु का आदेश पाकर वे बिखर गए। युद्ध का दृश्य उपस्थित हो गया। स्वय एक दूसरे पर आघात करके अपनी रक्षा करने लगे। कौन राजकुमार, कब किधर से निकला और किधर गया, किसका बाण किसके द्वारा कब काटा गया,

किसने किस पर कब बाण चलाया, यह कोई देख ही नहीं सकता था। कोई यह समझ ही नहीं पाता था कि यह कृत्रिम युद्ध का दृश्य है। ऐसा प्रतीत होता था कि रण बांकुरे जी तोड़कर युद्ध में रत हैं। सभी अपना कौशल दिखाने के लिए विद्युत गति से बाण चला रहे थे। कुछ देर के लिए बाणों की छाया उस स्थान पर हो गई जहां राजकुमार युद्ध दृश्य प्रस्तुत कर रहें थे। सभी दर्शक चकित रह गए और मुक्त कण्ठ से उनके गुरुदेव आचार्य द्रोण की भूरि भूरि प्रशंसा करनेलगे।

अश्व कला प्रदर्शन

रथ-विद्या के बाद सबने घुड़ दौड़ का प्रदर्शन किया। दौड़ते हुए घोड़े पर से हाथी पर जाना, हाथी पर से भागते हुए अश्व की सवारी करना, रथ पर से कूदकर हाथी पर, हाथी से अश्व पर, अश्व की लगाम मुंह मे लेकर बाण चलाना, दोनों हाथों से खडग घुमाना, रथ से कूदकर हाथी को पार करते हुए भागते अश्व पर पहुंच जाना, भागते अश्व पर से कूदकर भागते रथ पर जाकर तेग चलाना, इत्यादि विचित्र विचित्र कलाएं देखकर जनता राजकुमारों की प्रशंसा करने लगी।

घुड़ दौड़ प्रदर्शन के पश्चात् गुरुदेव द्रोणाचार्य ने आज्ञा दी कि एक ओर युधिष्ठिर हो जाय और दूसरी ओर सब राजकुमार। सब मिलकर युधिष्ठिर को घेरें। अज्ञानुसार सब राजकुमारों ने युधिष्ठर के रथ को घेर लिया। और बाण चलाने लगे। युधिष्ठिर आत्म रक्षा करते हुए अपने रथ को घेरे से बाहर निकालने के लिए कुम्भकार के चाक से भी तेजी के साथ घुमाने लगे और समस्त प्रहारों से स्वरक्षा करते हुए सकुशल बाहर निकल आये। दर्शक उत्साह से करतल ध्वनि करने लगे।

द्रोणाचार्य ने प्रशसा करते हुए युधिष्ठिर की पीठ थपथपाई और बोले—"तुम ने हमारी प्रतिष्ठा बचाली।"

युधिष्ठिर ने विनीत स्वर में उत्तर दिया—"सब आपका ही प्रताप है।"

असि परीक्षा

तदुपरान्त असि परीक्षा आरम्भ हुई। द्रोणाचार्य ने आदेश दिया कि नकुल और सहदेव को सभी चारों ओर से घेर लें और यह दोनों कुमार अपने कौशल से घेरा तोड़कर बाहर निकलें। आदेश मिलना

था कि समस्त राजकुमारों ने चारों ओर से नकुल और सहदेव को घेर लिया और तलवार चलाने लगे। परन्तु नकुल और सहदेव ने इस गति से तलवार चलाई कि समस्त कुमारों के वार भी व्यर्थ सिद्ध हुए और वे दोनों शीघ्र ही घेरे से बाहर आ गए। लोगों ने हर्षित हो करतल ध्वनि से नकुल सहदेव का उचित सम्मान कियः।

गदा युद्ध

असि परीक्षा की समाप्ति पर लोग सोचने लगे "देखे अब कौन सी कला दिखाई जाती है ?"

इतने ही में द्रोणाचार्य ने मंच से घोषणा की—"अब आप के सामने गदा युद्ध की परीक्षा होगी। बाण रथ और असि परीक्षा कितनी भयानक थी आप जानते ही हैं। उसमें उतरने वाले कुमार यदि कहीं भी चूक जाते तो प्राण जाने का भय उपस्थित हो सकता था। इसी प्रकार गदायुद्ध का प्रदर्शन भी बडा भयानक होगा। जो लोग परीक्षा में उतरेंगे उनके हाथों में जाने वाली गदाए काल गदा के समान होंगी। अच्छे अच्छे अपने को वीर समझने वाले उन्हें उठा भी न सकेंगे। पर इन कुमारों को देखिये कैसे निर्भय होकर मैदान में आते हैं—भीम और दुर्योधन ! सामने रखी गदाओं को उठाओ और अपनी अनुपम कला का प्रदर्शन करो। यह स्मरण रखना कि यह युद्ध प्रदर्शन के लिए है।"

दुर्योधन ने जब सुना कि भीम से उसे गदा युद्ध करना है तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगा कि यह एक सुअवसर मिला है भीम को यमधाम पहुंचने का। गदा-युद्ध में मैं दाव पाकर ऐसी गदा मारू गा कि उसकी मृत्यु हो जाये। इससे मेरे मस्तक पर कलंक भी न आयेगा और भीम का भी सफाया हो जायेगा। कोई मुझे दोष देने से रहा, कह दू गा कि गदा चलाते समय चोट लग गई इसमें मेरा क्या दोष ?"

इसी लिए तो कहा है कि —

दुष्ट न छोडे दुष्टता, नाना शिक्षा देत।
धोये हूं सौ बेर के, काजल होत न श्वेत ॥

दुर्योधन गुरुकी इस आज्ञा से कि युद्ध केवल प्रदर्शन के लिए है अपने दुष्ट विचारों को न दबा सका। वह गदा हाथ में लेकर भीम से उसकी

हत्या करने के उद्देश्य को लेकर युद्ध के लिए आ गया। कपट करना, कोई दूसरा बहाना करके अपनी दुष्ट भावना को पूर्ण करना ही आसुरी प्रकृति के लक्षण हैं। दुर्योधन के मन की बात भीम बेचारे को क्या मालूम ? वह सीधे स्वभाव गदा-युद्ध के प्रदर्शन के निमित्त गदा लेकर मैदान में आ गया। दोनों में तुमुल युद्ध होने लगा। यद्यपि दुर्योधन भीम को मार डालने के उद्देश्य से ही गदा चला रहा था। किन्तु भीम अपने कौशल से उसके बार को बचा लेता था। भीम के मन में किसी प्रकार की दुर्भावना नहीं थी। अतएव वह दुर्योधन पर घातक प्रहार न करता था। भीम और दुर्योधन की गदाएं पहाड़ की भान्ति लड़ जाती थीं, जिस से दर्शक भयभीत हो जाते, यह भयानक सग्राम देख कर बहुतों का कलेजा कांप रहा था। थोड़ी देर में दुर्योधन की दुर्भावना दर्शकों पर प्रगट हो गई और कुछ लोग जोर जोर से कहने लगे कि दुर्योधन नियम विरुद्ध गदा चला रहे हैं। परन्तु कुछ लोग दुर्योधन के पक्ष के भी थे, वे बोले—'नहीं ! दुर्योधन की गदा ठीक चल रही है। इस प्रकार कुछ लोग दुर्योधन का विरोध और कुछ उसकी प्रशंसा करने लगे। दुर्योधन की दुर्भावना भीम पर भी प्रगट हो गई और सन्देह तब विश्वास में परिणत हो गया जब कि उस ने दुर्योधन के पक्ष के लोगों के मुख से उसकी प्रशंसा सुनी। भीम क्रुद्ध हो गया और फिर दोनों में परीक्षा के बदले भयंकर युद्ध होने लगा, ऐसा प्रतीत होने लगा मानो दो मदोन्मत्त हाथी अपनी सूंड से आपस में घमासान युद्ध कर रहे है। इस भयानक युद्ध को देख कर लोगों को भय हुआ कि आज या तो भूमि दुर्योधन हीन हो जायेगी अथवा भीम ही समाप्त हो जायेगा। इस आशका से लोग चिल्लाने लगे—–अनर्थ हो रहा है ? यह परीक्षा नहीं घोर युद्ध हो रहा है। इसे रोको। युद्ध बन्द करो।

द्रोणार्य भी जान चुके थे कि दुर्योधन की दुर्भावना से भीम उत्तेजित हो गया है और यह ठीक ही है कि यदि इन्हें न रोका गया तो अनर्थ हो जायेगा और परीक्षा परीक्षा में ही मैं अपयश का भागी बनूंगा। उन्होंने यह सोच कर अपने पुत्र अश्वत्थामा से कहा—"पुत्र ! तुम इन दोनों को छुड़ा दो।"

अश्वत्थामा स्वयं एक शूरवीर था, वह दोनों के बीच में जा खड़ा हुआ और दोनों की गदाएं पकड़ लीं। चूंकि दोनों में से किसी को भी

अश्वत्थामा के प्रति कोई द्वेष नहीं था अतः उसके द्वारा गदा पकड़ते ही दोनों रुक गये और इस प्रकार भयंकर युद्ध समाप्त हुआ।

अर्जुन की परीक्षा

जब सब राजकुमार परीक्षा दे चुके तो इन्द्र के समान तेजस्वी सूर्य के समान प्रकाशमान और सिंह के समान वीर अर्जुन से द्रोणाचार्य ने कहा। 'आओ, वत्स अब तुम्हारी बारी है। तुम ने साधारण धनुष विद्या का प्रदर्शन तो किया, अब विशेष विद्या की परीक्षा दो और अपनी अद्भुत कला प्रदर्शन करो।"

आचार्य का आदेश पाकर स्वर्णिम कवच पहने हुए वीर अर्जुन परीक्षा स्थल में आये। अर्जुन की शान निराली थी उसे देख कर लोग आपस में कहने लगे—"यह धनुर्धधारी ही कुन्ती का पुत्र अर्जुन है। अब तक तो अर्जुन की प्रशसा ही सुनी थी अब देखें वह कैसा वीर है।"

द्रोणाचार्य ने मच से समस्त दर्शकों को सम्बोधित करते हुए कहा—"यह वह वीर है जिस पर हस्तिनापुर नरेश जितना गर्व भी करें कम ही है। आप इस वीर के कौशल, इस की कला को देख समझ जायेंगे कि वीर अर्जन राजकुमारों में अद्वितीय है।

द्रोणाचार्य की घोषणा पर चारों ओर कोलाहल मच गया अर्जुन की प्रशसाएं होने लगीं। लोग आपस में उसकी चर्चा करने लगे। कोलाहल सुन कर धृतराष्ट्र ने विदुर से पूछा—यह कोलाहल क्यों हो रहा है?"

विदुर बोले—अब अर्जुन अपनी परीक्षा देने आया है।

धृतराष्ट्र—"अर्जुन का कौशल देखने के लिए लोग इतने लालायित हैं। बड़ी प्रसन्नता की बात है।"

अर्जुन ने सभी को प्रणाम कर के कहा—मैं जो कला प्रदर्शित कर रहा हूँ, उस में मेरा कुछ नहीं, वरन सब कुछ गुरुदेव का है। मैं तो कठपुतली हूँ, मुझ में जो कुछ है वह गुरुदेव ही का है। यह सारी कला उन्हीं की कृपा से मिली है। जिन की वस्तु है उन्हीं की आज्ञा से मैं आप के सम्मुख प्रस्तुत करता हूँ।

अर्जु न की विनम्रता देख कर आचार्य और अन्य लोग बड़े प्रसन्न हुए। जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। किसी ने कहा-भगवान् ने भी कहा है कि—"*धम्मस्स विणओ मूलं*" अर्थात् विनय ही धर्म का मूल है अतः नम्रता और विनय शीलता की कला में अर्जुन सर्वप्रथम है। और कलाएं तो बाद को देखेंगे, सर्वप्रथम तो उनकी यह कला देख ली। दूसरा बोला---जो अपने गुरुके प्रति इतनी भक्ति रखता है, वह अवश्य ही विशिष्ट विद्यावान होगा। तीसरा बोला—देखिये १०५ में अकेला अलग चमकता है। किसी में इतनी विनय शीलता देखी आपने ?"

द्रोण ने मंच पर ही से कहा—"अर्जुन बहुत विनयवान है" और फिर उन्होंने अर्जुन के सिर पर हाथ फेर कर कहा कि—वत्स ! तुमने अपनी वाणी से तो दर्शकों को जीत लिया अब अपनी कला से जीतो।"

अर्जुन ने गुरु की आज्ञा से वीरता और धीरता से अपना धनुष उठाया और अग्नि बाण धनुष पर चढ़ाया। विशेष दृढ़ता के साथ अग्नि बाण छोड़ा, अग्निबाणका छूटना था कि एक लपलपाती ज्वाला प्रगट हुई। दर्शक घबरा गये, कुछ इतने भयभीत हो गए कि सोचने लगे कि यह अग्नि कहीं बढ़कर हमें न जलादे। इतने ही में उसने वरुण बाण छोड़ा और अग्नि शांत हो गई। इस कला एवं कौशल को देख कर लोगों ने करतल ध्वनि करके अर्जुन की प्रशंसा की। कुछ लोग सोचने लगे कि अर्जुन में कोई दैवी शक्ति जान पड़ती है, नहीं तो एक बाण मारते ही आग ही आग और दूसरे बाण से पानी ही पानी कैसे फैल सकता है।

अर्जुन के बाण से इतना पानी होगा कि लोगों को बह जाने की आशंका होने लगी। कुछ लोग कह भी उठे "अर्जुन ! अपने इस जल को रोको" उसी समय अर्जुन ने पवन बाण चलाया जिसने सारा पानी एक दम सोख लिया।

लोग यह देखकर आश्चर्य कर ही रहे थे कि एक बाण और चला, जिसके कारण चारों ओर अंधकार ही अंधकार छा गया। वह था तिमिर बाण। इस घोर रात्रि के वातावरण से लोग चकित रह गये,

तब अर्जुन के धनुष से एक बाण और छूटा, जिसके प्रभाव से तिमिर लुप्त हो गया समस्त दर्शक आश्चर्य चकित थे ही कि अर्जुन ने एक बाण और छोड़ा जिसके प्रभाव से दर्शकों को वायुमण्डल में पर्वत उड़ते दिखाई देने लगे, लोग आँखे फाड़ फाड़कर देखने लगे। कुछ लोगों ने डर के मारे अपने सिर घुटनों में छुपा लिये। इस आशका से कि कहीं कोई पर्वत उन के ऊपर न आ गिरे और वह दबकर मर ही जायें। लोगों को भयभीत देख कर वीर अर्जुन ने एक बाण चला कर सभी पर्वतों को विलीन कर दिया। बाण चलाते समय अर्जुन कभी प्रकट रहता और कभी अप्रकट रह जाता था। इस प्रकार उसने धनुर्विद्या की भली प्रकार परीक्षा दी, मानो कोई ऐन्द्रजालिक खेल दिखा रहा हो। धनुर्विद्या की परीक्षा समाप्त होने पर, अर्जुन ने गुरुदेव के चरणों में प्रणाम किया, गुरुदेव ने आज्ञा दी कि "अब सूक्ष्म अस्त्रों के चलाने का कौशल दिखाओ"—गुरु आज्ञा से वह फिर परीक्षा स्थल में आया और उसने सूक्ष्म अस्त्रों का प्रदर्शन किया, कभी हाथी पर तो कभी अश्व पर, और कभी रथ पर, कभी किसी रूपमें कभी किसी रूप में, अर्जुन आया। इन सब कलाओं को देखकर दर्शक मुग्ध हो गए, लोग आपस में कहने लगे कि आचार्य का यह कथन ठीक ही था कि महान प्रकृति वाले की साधारण प्रकृति वालों के साथ परीक्षा नहीं होनी चाहिए। लोग वाह वाह, धन्य, धन्य की ध्वनि के साथ अर्जुन का अभिनन्दन करन लगे। कोई अर्जुन को धन्य कहता, कोई माता कुन्ती को धन्य कहता और कोई द्रोणाचार्य को धन्य कहता था।

किन्तु उपस्थित दर्शकों में कोई भी ऐसा नहीं था जो यह जानता कि अर्जुन का कौशल किसी के लिए ईर्ष्याग्नि भी प्रज्वलित कर रहा है। हा, द्रोणाचार्य अवश्य ही कौरवों के चेहरे पर उमड़ते भावों को परख रहे थे।

कर्ण की चुनौती

इधर कौरव उदास, जले भुने बैठे थे, उधर अर्जुन गुरुदेव, पितामह आदि अन्य दर्शकों को प्रणाम करके अपने स्थान पर जा चुका था, कि अकस्मात ही बाहर से एक घोर शब्द सुनाई दिया। इस भयकर ध्वनि को सुनकर दर्शक समुदाय में खलबली मच गई। लोग सोचने

लगे-"यह ध्वनि किसकी है, कौन चीख रहा है ?" अभी लोगों का विस्मय शांत न हुआ कि सभा मण्डल में उसी समय एक वीर गरजता हुआ आता दिखाई दिया। वीर कवच कुण्डल पहने हुए था। उसके ललाट पर तेज विद्यमान था, उसके शरीर पर वीरता झलक रही थी मानो स्वय वीरता ही शरीर धारण करके आ गई हो। उसे देखते ही दर्शकों में उत्सुकता जागृत हुई-"है ! यह कौन वीर है ? यह किसका पुत्र है ?

कोई बोल पड़ा "देखो कितना सुन्दर जवान है, अपने माँ बाप का बाँका सपूत--क्या खूब आया है इसके मुख मण्डल पर, रोम रोम से यौवन और वीरता टपक रही है।"

किसी ने कहा--यह वीर आखिर है कौन ? कहाँ से आया है यह ?"

उसे आते देख लोगों की जिज्ञासा शान्त करने के लिए द्रोणाचार्य बोले—'यह मेरा शिष्य कर्ण है।

द्रोणाचार्य की बात सुनकर रोष पूर्वक उन्हे प्रणाम करके कर्ण कहने लगा—"अब आप मुझे शिष्य बताते है, आप यह छुपाते है कि आपने मुझे एक विद्या सिखलाने से इन्कार कर दिया था। आप तो अर्जुन की ही प्रशसा करते हैं।

कर्ण को आया देख और उसकी बात सुनकर दुर्योधन प्रसन्न हो गया। वह सोचने लगा—मै अर्जुन की प्रशंसा सुनकर दुखित हो रहा था। अच्छा हुआ कर्ण आ पहुँचा। मेरा भाग्य प्रबल है। इसी लिए तो कर्ण यहां आ गया। अब अर्जुन और द्रोणाचार्य दोनों की डींग हवा हो जायेगी। यह सोचकर वह बोला---कर्ण वीर की भी परीक्षा होनी चाहिए। इसका बल एवं कौशल भी तो देखना चाहिए।"

"नहीं, द्रोणाचार्य नहीं चाहते कि उनके कृपापात्र अर्जुन की वीरता के स्वाग को कोई तोड सके, वे भला मुझे क्यो जनता के सामने अपना कौशल प्रदर्शित करने की आज्ञा देंगे ?" कर्ण ने ताना मारा। उसी समय द्रोणाचार्य ने दुर्योधन और कर्ण की उद्दण्डता से अप्रभावित होते हुए घोषणा की—"उपस्थित सज्जनो, अब आपके सामने

कर्ण आ रहा है, वह अपने कौशल व कला की परीक्षा देगा। शान्ति पूर्वक आप उस वीर की कला देखिये और प्रशंसा कीजिए।"

कर्ण अकड़ता हुआ सामने आया और गरज कर कहने लगा—"तुम लोग अभी तक अर्जुन का तमाशा देख कर उसकी प्रशंसा के पुल बांध रहे थे, अर्जुन और उसके गुरु अब तक उसकी वीरता व कौशल की डींग हांक रहे थे। पर अब जब आप मेरी कला देखेंगे, भूल जायेंगे अर्जुन को, उस अर्जुन को जो उन राजकुमारों में अपने को अद्वितीय होने का दावा करता है जिन बेचारों को अद्भुत कलाएं सिखाई ही नहीं गईं। अन्धों में काना तो सरदार बन ही जाया करता है। पर जब किसी वीर से सामना हो जाता है तो सारा दर्प धरा रह जाता है।"

दर्शकों की भीड़ में से आवाज आई—"अर्जुन ने तुम्हारी तरह गाल नहीं बजाए थे। उन्होंने करके दिखाया है, तुम भी गाल मत बजाओ, जो कुछ करना है करके दिखाओ।"

इस आवाज को सुन कर कर्ण चुप हो गया। वह अपनी कला दिखाने लगा। वास्तव में उसने प्रशंसनीय कला का प्रदर्शन किया। लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। तभी भीड़ में से किसी ने कहा कि—'वास्तव में यह वीर अर्जुन की जोड़ का है" पर कर्ण को यह बात भला क्यों स्वीकार होने वाली थी, वह गरजकर बोला—भोले दर्शकों अर्जुन अपने का अद्वितीय समझता है। आप भी उसे मेरी टक्कर का बता रहे हैं, पर वास्तविकता क्या है उसका पता आपको तब लगेगा जब आप मेरी और उसकी आपसी बल परीक्षा देखेंगे। अर्जुन का और मेरा १धनुर्युद्ध हो जाय तो पता लगेगा कि कौन वीर है ? अर्जुन मेरी टक्कर का है भी या नहीं।"

कर्ण का कला दिखाना तो कोई बुरा नहीं था परन्तु उसको मन में अर्जुन को अपमानित करने की दुर्भावना थी जो किसी प्रकार भी उचित नहीं ठहराई जा सकती। कर्ण ने कला प्रदर्शन किया और उसकी लोगों ने प्रशंसा की इससे वह अहंकार से भर गया। वह ताल ठोंककर कहने लगा—"आप लोग अर्जुन की कला देखकर ही चौंधिया

१ कहीं २ मल्ल युद्ध का भी वर्णन मिलता है।

गए थे, परन्तु तारागण तभी तक चमकते हैं जब तक सूर्य उदित नहीं होता। यदि अर्जुन अपने को मेरी टक्कर का समझता है तो मेरे सामने आये।"

कर्ण की बात सुन कर दुर्योधन को अपार हर्ष हुआ। वह मन में सोचने लगा—"आज अर्जुन और द्रोणाचार्य का गर्व चूर करने का अवसर आया है। इस अवसर से लाभ उठाना चाहिए। यदि किसी प्रकार अर्जुन और कर्ण परस्पर भिड़ जायें तो मुझे ज्ञात हो जायेगा कि कर्ण ने अर्जुन को परास्त कर दिया तो मैं अपनी योजना में सफल हो जाऊंगा और भविष्य में कभी भी पाण्डव मेरे मुकाबले में आने का साहस न कर सकेंगे, यदि यह दुस्साहस उन्होंने किया भी तो मैं उन्हें पछाड़ने में सफल हो ही जाऊंगा। और यदि कहीं इसी मुकाबले में ही कर्ण अर्जुन को यमलोक पहुँचाने में सफल हो गया तो बिना किसी अधिक उधेड़बुन के ही मेरे रास्ते का कांटा निकल जायेगा और मैं निश्चिन्त होकर हस्तिनापुर का राज्य सम्भाल सकूंगा।" यह सोचकर दुर्योधन—

शत्रु के संहार का कभी न अवसर चूक।
स्वप्न कभी न पूरा हो जो अवसर पर रहे मूक॥

के अनुसार तुरन्त खड़ा हो गया और बोल उठा—"सज्जनों! आप लोग केवल अर्जुन की ही प्रशंसा करते थे, और समझते थे कि पृथ्वी पर अर्जुन से बढ़ कर कोई वीर है ही नहीं, पर अब आप को मानना होगा कि इस जगत में एक से एक बढ़कर वीर है। कर्ण ने जो चुनौती दी है उसने सिद्ध कर दिया है कि संसार में ऐसे ऐसे वीर हैं, जिन के सामने अर्जुन तुच्छ है। यह मेरा मित्र कर्ण भी बड़ा ही वीर है। यद्यपि अर्जुन मेरा भाई है, मैं उसकी वीरता व कला का हृदय से प्रशंसक हूँ, पर जब वीरता और कला का प्रश्न आता है तो मैं पक्षपात करना वीरता और कला का अपमान समझता हूँ। जो किसी के स्नेह मे फसकर अन्य वीरों की ओर से आँख बन्द कर लेते हैं, वे वास्तव मे कला की नहीं अपने स्नेह की प्रशसा भर करते हैं। मैं अर्जुन का भाई होते हुए जब कला का प्रश्न आता है तो कहने पर विवश हो जाता हूं कि अर्जुन कितना ही कुशल धनुधारी और कौशल

पूर्ण सही, परन्तु उस से भी कहीं बढ़कर योद्धा व कलाकार विद्यमान है। क्या ही अच्छा हो कि मेरा भाई कर्ण को परास्त कर दे। पर यह मेरी शुभ कामनाओं मात्र से ही तो नहीं होने वाला। अर्जुन के सामने आकर एक बार अपने को सच्ची परीक्षा की कसौटी पर चढ़ाना चाहिए। यह कर्ण वही है जिसकी वीरता को देखकर कितनों ने ही इसकी अवहेलना की, किन्तु सूर्य की ओर से आंखें मूंद लेने से सूर्य का अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता। कर्ण ने परीक्षा स्थल पर आकर जो चुनौती दी वह यूंही नहीं है। मुंह छिपाने से काम न चलेगा, अपने भ्रम के निवारण का अर्जुन को इससे अच्छा अवसर मिलने से रहा।"

कर्ण ने दुर्योधन के शब्द शब्द में भरी भावना को भलि प्रकार समझ लिया। वह जान गया कि यहाँ दुर्योधन उसका हर प्रकार से सहयोग देने वाला उपस्थित है। उसके द्वारा की गई प्रशसा से वह और भी उत्साहित हो गया, बल्कि यू समझिए कि अभिमान के मद से भर गया और छाती फुला कर कहने लगा—"यदि यहां उपस्थित किसी व्यक्ति को यह भ्रम है कि वह मेरा मुकाबला कर सकता है तो मैं सामने खड़ा हूं। मैदान में आये और दो दो हाथ कर ले।" तदुपरान्त उसने चारों ओर दृष्टि डाली और फिर बोला—यदि अब भी किसी का ख्याल है कि अर्जुन बहुत बड़ा वीर है तो मैं सामने खड़ा हूँ। अर्जुन शस्त्र रख कर आ जावे और मुझ से मल्ल-युद्ध करें। कलइ तनिक देर में ही खुल जावेगी।

अभी तक अर्जुन गुरुदेव की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे थे परन्तु जब बारम्बार कर्ण ने चुनौती दी तो उनसे न रहा गया, शस्त्र रख दिए और कर्ण के सामने आ गए। चारों ओर आश्चर्य और भय का साम्राज्य छा गया। दुर्योधन प्रसन्न हो गया और मन ही मन में कर्ण की सफलता की कामना करने लगा।

दूसरी ओर कुन्ती ने जब कर्ण को ध्यान पूर्वक देखा तो उसके कानों में पडे कुण्डल देखकर उसे शका हुई—अरे! यह तो मेरा ही पुत्र है—जिसे पेटी में बन्द करके नदी में बहा दिया था—हाँ ठीक है, उसका भी हम ने कर्ण ही तो नाम रखा था कर्ण का नाम सुन कर मुझे तो पहले ही खटका था, जिसने उसे निकाला होगा, परचे पर

लिखा नाम ही रख लिया होगा। हाँ देखो उसके लक्षण भी साफ बता रहे हैं कि वह महाराज पाण्डु की ही प्रथम सन्तान है, यह अर्जुन का सगा भाई है, पर अज्ञान के कारण दोनों ही आपस मे लड़ रहे हैं। अब क्या किया जाय, इस अनर्थ को कैसे रोका जाय ? हा ! मेरी सन्तान आपस मे ही एक दूसरे की विरोधी होकर लड़ रही है— उफ इनके अंधकार को कैसे दूर करूं। मैं क्या यत्न करू ?"

दोनों को युद्ध के लिये तैयार देखकर वह व्याकुल हो गई। उसका हृदय दोनों के लिए तड़प रहा था, वह नहीं चाहती थी कि उसके पुत्र आपस में लड़ें और किसी एक की भी जग हसाई हो। यदि उनमें से एक का भी बाल बांका हो गया तो इसका कलेजा फट जायेगा। वह बुरी तरह परेशान हो गई। पर कोई उपाय नहीं समझ में आया कि वह कैसे इस अनर्थ को रोके। फिर निराश होकर अपने को और पाण्डु को दोष देने लगी। यह सब कुछ लौकिक व्यवहार के प्रतिकूल कार्य करने के कारण ही तो हो रहा है।

कृपाचार्य वहां थे, वे यह देखकर सिहर उठे कि परीक्षा भूमि रण-भूमि में परिशान्त हो रही है। यहां कोई अनर्थ हो गया तो क्या होगा। यह सोचकर वे तुरन्त इसे रोकने का उपाय सोचने लगे और कुछ देर बाद वे शीघ्रता से उठे और जाकर कर्ण तथा अर्जुन के बीच में खड़े हो गए जैसे दो मदोन्मत्त हाथियों के बीच में तीसरा हाथी खड़ा हो गया हो। वे बोले—"अर्जुन पाण्डु पुत्र और कुन्ती का आत्मज है, यह बात सर्वविदित है। इसी प्रकार हे वीर ! तुम भी अपनी जाति और कुल सिद्ध करो। क्योंकि राजकुमार के साथ राजकुमार का ही युद्ध हो सकता है, अन्य के साथ नहीं। यदि तुम भी राजकुल मे उत्पन्न ठहरे तो अर्जुन तुम से अवश्य ही मल्लयुद्ध करेगा। नहीं तो तुम्हें उस से लड़ने का अधिकार नहीं, तुम किसी अपनी जाति वाले से ही लड़ सकोगे।"

कृपाचार्य की बात पर दर्शकों की ओर से आवाज आई—ठीक है। हमें बताया जाया कि कर्ण किस राजा का बेटा है।' पर कर्ण के उत्साह पर पाला पड़ गया, वह सन्न रह गया उसकी रगों में उमड़ता लोहू शांत हो गया, उसके अग शिथिल पड़ गए, वह सोचने लगा 'मै तो रथवान का पुत्र हूँ। फिर मै क्या करूँ ?" क्या रथवान के

घर में जन्म लेने का इतना बड़ा दण्ड ?" दुर्योधन तिलमिला उठा। उसे दुख भी हुआ और क्रोध भी आया वह सोचने लगा—क्या इतनी सी बात पर मेरी आशाओं पर पानी फेर दिया जायेगा ?" कुन्ती को बड़ा हर्ष हुआ, वह कृपाचार्य का मन ही मन बार बार धन्यवाद करने लगी, उसे बहुत सन्तोष हुआ यह सोचकर कि इसी बहाने से सही, उसकी सन्तान का परस्पर युद्ध तो टल जायेगा, क्यों कि वह सहन नहीं कर सकती कि उसकी कोख के जन्मे कुमार आपस में ही युद्ध करें। उसका हृदय कह रहा था कि कर्ण उसी का पुत्र है। ओह! ममता कैसी होती है। कुन्ती बेचारी तो बुरी तरह व्याकुल हो गई थी।

किन्तु दुर्योधन अपनी आशाओं को इस प्रकार धूलि धूसरित होते न देख सका। जिस समय कर्ण ने हीनता पूर्ण, विवशता प्रदर्शित करती आखों से दुर्योधन की ओर देखा, वह तुरन्त खड़ा होगया और कहने लगा—"आप लोग पक्षपात कर रहे हैं।"

"दुर्योधन! इसमें पक्षपात की तो कोई भी बात नहीं है! कृपाचार्य ने दुर्योधन के आरोप का उत्तर देते हुए शान्त एव गम्भीरता पूर्ण मुद्रा में कहा, बात यह है कि नीति के विरुद्ध हम कैसे युद्ध होने दे सकते हैं। हमारी अनुपस्थिति में चाहे आप लोग कुछ भी करें पर हमें तो नीति का ज्ञान है।"

"नीति में तीन को राजा होने योग्य बताया है, राज-कुल में उत्पन्न होने वाले को, बलवान को और सेनापति को, दुर्योधन ने कर्ण का पक्ष लेते हुए कहा, आप कर्ण को अर्जुन से लड़ाईए तो सही, यदि कर्ण अर्जुन को परास्त करदे तो बलवान समझना अन्यथा नहीं, यहां कुल का नहीं, बल का विचार होना चाहिए।"

"नहीं! हम नीति विरुद्ध कोई परीक्षा न होने देंगे। यह परीक्षा है, विद्यावानों की परीक्षा, जँगलियों व अज्ञानियों की नहीं। और न यह कोई तमाशा ही है।" इतना कह कर कृपाचार्य ने दुर्योधन को झिड़क दिया।

कुन्ती प्रसन्न हो रही थी, कौरव दांत पीस रहे थे और कृपाचार्य की दुत्कार से दुर्योधन खीझ उठा। उस ने आवेश में आकर कहा कि यदि राजकुल में उत्पन्न होने वाले से ही आप अर्जुन को लड़ा सकते हैं तो मैं कर्ण को अपना भ्राता स्वीकार करता हूँ।

कृपाचार्य मुस्करा पड़े—"दुर्योधन ! बालकों जैसी बात मत करो। बुद्धि से काम लो।"

दुर्योधन क्रोध में आकर बोला—"आप हठ पर अड़े हुए हैं तो कान खोल कर सुनिए, मैं कर्ण को राजकुमार नहीं अभी राजा ही बनाए देता हूँ।" यह कह कर उसने कर्ण का वहीं राज्याभिषेक कर दिया, और उसे अङ्ग देश का राजा बना दिया। कर्ण की छाती गर्व से चौड़ी हो गई। वह मन ही मन कहने लगा—दुर्योधन तुम ने सहस्रों लोगों के सामने मेरे मान की रक्षा की है, तुम ने आड़े समय पर मेरा साथ दिया, तुम ने मित्रता का उच्चादर्श दर्शाया, तुम ने मुझे रथवान पुत्र से राजा बनाया इस उपकार को मैं जीवन भर नहीं भूलूंगा, विश्वास रखो मैं भी तुम्हें आड़े समय पर इसी प्रकार काम दूंगा, मैं भी तुम्हारे लिए एक आदर्श मित्र सिद्ध हूँगा।

पर दूर्योधन की भावना श्रेष्ठ नहीं थी, वह मित्रता के नाते नहीं बल्कि अर्जुन के प्रति ईर्षा होने के कारण यह सब कुछ कर सकता था अत वह मित्रता का उच्चादर्श नहीं था। बेचारे कर्ण की बड़ी भूल थी।

दुर्योधन ने कृपाचार्य को सम्बोधित करके कहा—"लीजिए ! अब तो आपकी शर्त पूरी हो गई ? आपके लाड़ले अर्जुन मे यदि अपार बल है, तो लड़ाई में उसे कर्ण से।···इतना कहकर उसने एक व्यंग पूर्ण दृष्टि द्रोणाचार्य पर डाली।

उसकी धृष्टता देखकर कुन्ती अत्यन्त व्याकुल हो गई। वह सोचने लगी—"कृपाचार्य की कृपा से जो अनर्थ टल गया था, दुर्योधन की दुष्ट बुद्धि और ईर्ष्या के कारण फिर उपस्थित हो रहा है। फिर भी सदा सत्य की ही जय होती है। काश ! कोई नया उपाय निकल आये इस अनर्थ को टालने का।"

उधर भानु (अपर नाम विश्वकर्मा) रथवान को जाकर किसी ने सूचना दे दी कि तुम्हारा बेटा राजा बन गया, वह समाचार सुनकर फूला न समाया, अपने भाग्य की सराहना करता हुआ, भागता हुआ परीक्षा स्थल पर आ गया, और कर्ण के पास जाकर कहा—"बेटा ! तू धन्य है।"

पिता को सम्मुख देख कर्ण उठ खड़ा हुआ, उसने पिता के पैर छुये और बोला—"यह सब आपका ही प्रताप है" कर्ण की इस विनय शीलता से लोग प्रभावित हुए। वे कहने लगे—कर्ण विनयवान अवश्य है, पर रथवान का बेटा है, वीर है तो क्या हुआ, बिना यह सोचे कि यह राज्य काज चला भी सकता है, इसे राज्य देना ठीक नहीं जंचता।"

भीष्म और धृतराष्ट्र को दुर्योधन के इस कार्य पर मानसिक क्षोभ हो रहा था वे इस बात से खिन्न थे कि दुर्योधन ने हम से विचार विमर्श किए बिना ही अग देश का राज्य कर्ण को दे दिया। इसने हमारी सम्मति नहीं ली, इसका अर्थ है कि वह हमारा सम्मान नहीं करता, वह सम्मान से भी गिर गया। यह हमारा अपमान नहीं तो और क्या है। इस प्रकार सभी उपस्थित जन दुर्योधन की आलोचना कर रहे थे, पर उसके दुष्ट स्वभाव के कारण किसी ने उसे टोका नहीं। हाँ, भीम से चुप्पी न साधी गई, वह बोल ही पड़ा—"कुलांगार! यह कर्ण तो सूत पुत्र है, इसके हाथ में तो चाबुक दे, इसके हाथ में तो घोड़े की लगाम ही शोभा दे सकती है, राज्य नहीं।"

दुर्योधन भीम की बात सुनकर जल उठा, क्रोधाग्नि में जलते हुए उसने डाट पिलाई—"चुप रहो, देखते नहीं, कर्ण सूत पुत्र के समान नहीं किन्तु राजपुत्र के समान शोभा पा रहा है। भानु सूत, चारों ओर के वातावरण, आलोचना प्रत्यालोचना को देख सुनकर हडबडा उठा उसके मन में यह शका जाग उठी कि कहीं सूत पुत्र जान कर कर्ण से राज्य न वापिस ले लिया जाय, कहीं कर्ण और और उसके भाग्य का सितारा उदय होकर तुरन्त अस्त न हो जाय, अतः सच्चा वृत्ताँत सुना डालने में ही उसने कर्ण का कल्याण समझा। वह दुर्योधन को सम्बोधित करते हुए बोला—"आप ठीक कहते हैं आप ज्ञानी हैं। वास्तव में कर्ण मेरा पुत्र नहीं है।"

दुर्योधन ही नहीं सभी सुनने वाले चकित रह गए। सभी की आँखों में विस्मय छलकने लगा, वह बोला—"वास्तव में बहुत वर्षों पूव की बात है यमुना नदी में एक पेटी बही जा रही थी। धन के लालच में मैंने पकड़ ली। खोलकर देखा तो उसमें एक बालक था। उसके

कानो में कुण्डल पड़े थे और साथ में कुछ रत्न रखे थे, १मेरे कोई सन्तान नहीं थी, मैं बालक को अन्य बहुमूल्य सामान के साथ अपने घर ले आया और अपनी पत्नी राधा को दे दिया। उसने बालक को गोद मे लेते ही कान खुजाया, अत मैंने २कर्ण ही उसका नाम रख दिया। हम दोनो ने बडे लाड प्यार से पाला, जो कि आज कर्ण वीर के रूप में आपके सामने है। वास्तव मे यह किसी राजा का ही बेटा है।

भानु सूत की बात सुन कर कुन्ती की शंका विश्वास मे परिणित हो गई। वह सोचने लगी हृदय की पुकार कभी असत्य नहीं होती। देखो इस वीर ने मेरी ही कोख से जन्म लिया है। पर लोक लज्जा के कारण मैं इसे अपना पुत्र नहीं कह सकती। तो भी यह है तो मेरा ही पुत्र, इस लिए इसको भी मेरे हृदय में वही स्थान है जो अर्जुन का है। अतएव मैं यह कैसे सहन कर सकती हूँ कि मेरी आखो के आगे मेरे ही दो आंखों के तारे युद्ध करें। वह अनुभव करने लगी कि ससार मे अज्ञान के समान कोई और दुख नहीं है। अज्ञानता वश यह दो सगे भाई एक दूसरे को शत्रु रूप में चुनौती दे रहे हैं। इन्हे पता नहीं कि इनकी रगों मे एक ही रक्त दौड़ रहा है। अब इस समय इन्हें कौन समझावे कि अज्ञानता वश यह जो कुछ अनर्थ कर रहे है उसको देख कर उनकी माता की छाती फटी जा रही है। इन्हे कौन बताए कि दोनों में से चाहे किसी को चोट आए, कोई पराजित हो, एक है जिसे समान ही दुख होगा। वह है उनकी मां जिसने दोनों को नौ नौ मास तक

१—अन्य ग्रन्थो में ऐसा भी उल्लेख पाया जाता है कि उस पेटी मे एक पत्र भी था। जिसमें बालक नाम 'कर्ण' लिखा हुआ था, अत उसी नाम से वह विख्यात हुआ। पाडव चरित्र में उल्लेख है कि वह बालक अपने दोनो हाथ अपने कानो के नीचे लगाकर सोया हुआ था इस लिए उसी मुद्रा के आधार पर उसका नाम 'कर्ण' रखा गया।

२ कर्ण का दूसरा नाम सूर्य पुत्र भी है। कर्ण के प्राप्त होने से पूर्व एक बार राधा को प्रात काल स्वप्न में सूर्य दिखाई दिया और एक ध्वनि सुनाई दी कि तुझे एक पराक्रमी पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी। इस प्रकार सूर्य द्वारा सूचित होने के कारण उसका नाम सूर्य पुत्र पडा।

अपने पेट में पाला है। कुन्ती का जी चाहा कि वह दौडकर उन दोनों के मध्य दीवार बन कर खड़ी हो जाय, इनकी आंखों से अज्ञानता का पर्दा हटादे, उन्हे बतादे कि वे एक ही वृक्ष की दो शाखाए हैं, उन्हें वह उनकी मा है जो यह सहन नहीं कर सकती, कि उसकी आखों के दो तारे आपस में टकरा जाय। किन्तु लोक लज्जा ने उसकी इच्छा का गला घोंट दिया, वह यह सोचकर ही घबरा गई कि लोग क्या कहेंगे, लोग उसे कलंकिनि के नाम से याद करेंगे सभी उसे पापिन कहेंगे और क्या पता कि उसके वीर पुत्रों की ही उसके सम्बन्ध में क्या धारणा हो जाय ? अतएव वह अपने मन की बात को क्रियात्मक रूप न दे सकी। उसके मन में आया कि चीख कर कहे कि इस अनर्थ को रोको, कर्ण और अर्जुन को आपस में मत लड़ने दो, पर उसी क्षण उसके मन में प्रश्न उठा कि लोग मेरे ऐसा कहने का कारण पूछेंगे और अगर कहीं घबराहट में उसके मुख से सच्ची बात निकल गई तो ? इस-प्रश्न ने ही उसके कण्ठ तक आई बात को रोक दिया। फिर उस के मस्तिष्क में प्रश्न उठा, तूफान की भाँति, ज्वार भाटे की भाति आया वह प्रश्न कि फिर कैसे इस अनर्थ को होने से रोका जाय ? श्रीकृष्ण भी तो इस समय यहा नहीं हैं जिनके द्वारा यह सघर्ष, यह युद्ध, यह यह अनर्थ रुकवा सकती। कौन है यहा जिससे वह अपने हृदय की बात कह सके ? यदि वह इस युद्ध को न रुकवा सकी तो क्या पता उसके किस लाल का क्या हो जाये। एक विचित्र सी आशंका उसके मन में उठी, जिसके आघात से वह मूर्छित हो गई। उसके मूर्छित होने से पास बैठी महिलाओं में खलबली सी मच गई। विदुर को भी पता चला तो वे तुरन्त उसके पास पहुँचे। विज्ञ विदुर ने समझ लिया कि अर्जुन और कर्ण का मल्ल युद्ध होने की बात के समय कुन्ती के मूर्छित हो जाने के पीछे अवश्य ही कोई रहस्य है। उन्हें क्या मालूम कि—

कर्णार्जुन सघर्ष लख कुन्ती हुई अचेत।
वात्सल्य बंधन पडा दृग न खुलने देत॥

वे हवा करने लगे। उसे सचेत किया और धैर्य बंधाया, ज्यों ही पूर्ण चेतना कुन्ती को हुई वे पूछ बैठे "कुन्ती ! अकस्मात् मूर्छा का क्या कारण है ?"

कुन्ती मौन रही।

विदुर ने फिर पूछा—"क्षत्राणी की अनायास ही ऐसे समय चेतना लुप्त यूं ही नहीं हो सकती। फिर तुम तो वीर अर्जुन की मां हो। क्या कारण है इस प्रकार मूर्छित होने का ? क्या किसी रोग का प्रहार है, पर ऐसा तो पहले कभी नहीं हुआ ?" कुन्ती फिर भी मौन रही।

"क्या अर्जुन को कर्ण के मुकाबले पर जाते देख घबरा गईं ? तुम घबरा गईं, यह तो लज्जाजनक बात है ?" विदुर बोले।

अब तक भी कुन्ती मौन थी।

तब विदुर ने जोर देकर कहा—"क्या इस मूर्छा का रहस्य हम नहीं जान सकते ?"

रहस्य की बात ने कुन्ती के हृदय पर आघात किया, वह आहत हो तुरन्त बोल पड़ी—"मैं इनकी माता जो हूँ"

"क्या कहा ?" विदुर ने पुनः शब्दों को सुनने के लिए पूछा। जैसे जो उन्होंने सुना था, जानना चाहते थे कि क्या वही शब्द कुन्ती के कण्ठ से निकले थे जब कि वे कर्ण के रहस्य को सूत के मुँह से सुन चुके थे तो ऐसी दशा मे यह शब्द बहुत अर्थ रखते थे।

कुन्ती भी वे शब्द निकलते ही, स्वय घबरा गई, अनायास ही वे शब्द उसके मुख से निकले थे, उसे अपनी जिह्वा पर क्रोध भी आया और एक क्षण के लिए उसने अपनी जिह्वा को दांतों में दबा दिया। उस जिह्वा को जो अनजाने मे ही बड़े यत्न से छुपाये रहस्य पर से आवरण उठाने का अपराध कर रही थी और सम्भल कर बोली—हाँ मैं मां हूँ। मां पृथ्वी के समान होती है मुझे आश्चर्य हो रहा है कि वह आचार्य इन कुमारों को यहाँ कला दिखाने के लिए लाए हैं या युद्ध कराने ? मुझे दुख है कि आप जैसों के रहते यह सब कुछ हो रहा है। युद्ध में चाहे अर्जुन मरे या कर्ण, मुझे एक के लिए तो शोक करना ही होगा। कर्ण किसी अन्य का पुत्र हुआ तो क्या ? मैं तो अपना ही पुत्र मानती हूँ। इस प्रदर्शन स्थल में यह युद्ध होना अच्छा नहीं है। देखो ! वे दोनों मल्ल युद्ध करने को तैयार करने को तैयार खड़े हैं और वह दुर्योधन कैसी आग लगा रहा है ? अपनों के यह लक्षण देखकर भी क्या कोई अपने पर संयम ठीक रख सकता है ?"

कुन्ती की बात सुनकर गांधारी भी बोल पड़ी—"सचमुच दुर्योधन कुलांगार है जो इस प्रकार आग लगा रहा है।" उस का मुंह पिचक

गया, उसे दुर्योधन की नीति पसंद नहीं आ रही थी। उस का बस चलता तो वह दुर्योधन को वहाँ से बाहर निकाल देती।

कोलाहल सुन कर चक्षुहीन धृतराष्ट्र ने पूछा—विदुर ! यह कैसा कोलाहल है ??"

"कोलाहल का कारण यह है कि दुर्योधन ने एक आग सुलगा दी है।" विदुर बोले।

"कैसी आग ?" विस्मित होकर धृतराष्ट्र ने प्रश्न किया।

"उसने कर्ण को अग देश का राज्य देकर राजा बना दिया है" विदुर कहने लगे, उनके शब्दों में कुछ कड़वाहट थी।

अच्छा ?"

'और कर्ण ने प्रतिज्ञा की है कि तुमने मुझ कंकर को हीरा बनाया है इस लिए जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं, तब तक तुम्हारा मित्र रहूँगा, और चाहे चन्द्र आग बरसाने लगे, हिमाचल रजकण हो जाय, तब भी मैं तुम्हारी मित्रता का परित्याग नहीं करूंगा', विदुर कहते गए।

"अच्छा !"

"दुर्योधन ने कर्ण को राज्य दिया है ताकि वह अर्जुन से युद्ध करने योग्य बन जाय। उसने कर्ण की बड़ी प्रशसा की है, राज्य और प्रशसाओं से वह इतना अभिमान में आ गया है कि अब वह अर्जुन से युद्ध करने पर तुला हुआ है। दुर्योधन उसकी पीठ थपथपा रहा है" विदुर ने कहा।

"कुन्ती सती है उसका पुत्र अर्जुन भी श्रेष्ठ है। दुष्ट दुर्योधन सूत पुत्र के साथ उसका युद्ध करवाना चाहता है ? अच्छा दुर्योधन को मेरे पास बुलाओ।" धृतराष्ट्र ने दुखित होकर कहा।

उसी समय द्रोणाचार्य मंच पर खड़े हो गए और बोले—"आप लोग सभी कोलाहल कर रहे है, परन्तु सूर्य को भी देखते हो।" चारों ओर से आवाज आई, "सुनो, सुनो आचार्य जी की बात सुनो" वे सूर्य की ओर सकेत कर रहे हैं। सभी चुप हो गए और द्रोणाचार्य की बात ध्यान पूर्वक सुनने लगे, वे कह रहे थे—'हम प्रत्येक कार्य सूर्य की साक्षी से करते हैं। सूर्य की साक्षी के बिना न परीक्षा हो सकती है और न युद्ध ही हो सकता है, वह देखो सूर्य डूब रहा है। द्रोणाचार्य की बात सुन कर सभी सूर्य की ओर देखने लगे।

सती कुन्ती के शोक से सूर्य भी गया डूब ।
दुर्योधन की चाह पर मानो पड़ गई धूल ॥

× × ×

देख सका न सूर्य सती का शोक दुष्ट की खोट ।
पीड़ित हो मुख लाल भया छिपा क्षितिज की ओट ॥

सूर्य सचमुच डूब रहा था। द्रोणाचार्य पुनः बोले—"अब आप लोग अपने अपने घर जायें, सूर्यास्त के उपरान्त अब कोई कार्य न हो सकेगा, मल्ल युद्ध भी न होगा।"

द्रोणाचार्य का कथन सुनकर सब लोग उठ कर चलने लगे। दुर्योधन मन ही मन बुरी तरह खीझ रहा था, उस की इच्छाएं, आकांक्षाएं, अभिलाषाएं हृदय की श्मशान में तड़प रही थीं। वह कभी द्रोणाचार्य को, कभी कृपाचार्य को और कभी सूर्य को कोसता। क्या सूर्य दुष्ट को भी डूबने को यही समय रहा था, उसे भी अभी डूबने की सूझी? दुर्योधन सोचता रहा और कुढ़ता रहा।

इधर कर्ण भी द्रोणाचार्य आदि पर बुरी तरह कुढ़ रहा था। यहाँ तक कि उसने जाते समय उन्हें प्रणाम भी नहीं किया। कौरव भी टेढ़े-टेढ़े ही रहे। परन्तु पाण्डवों ने पहले ही की भांति उनका आदर सत्कार किया। कर्ण सोच रहा था आचार्य ने आज बनी बनाई बाजी बिगाड़ दी। सूर्य अस्त हो गया था तो क्या बात थी प्रकाश भी तो हो सकता था। हमें तो किसी भी प्रकाश की ही साक्षी पर्याप्त थी। पर आचार्य तो अर्जुन को बचाना चाहते थे सो बचा लिया। द्रोणाचार्य मेरे गुरु हैं, गुरु भाई भी हैं, वरना ऐसा बदला लेता कि वह भी याद करते।"

परीक्षा समाप्त हो गई। भीष्म जी ने द्रोणाचार्य को राजसभा में बुलाया। उनका उचित आदर सत्कार किया और यथायोग्य भेंट देकर आभार माना।



* उन्नीसवां परिच्छेद *

कंस वध

देवकी के सातवें गर्भ से कन्या जन्म जान कर कंस को बहुत सन्तोष हुआ। वह बहुत प्रसन्न रहने लगा, उसे असीम अहंकार हो गया। वह अपने समान किसी को भी रण योद्धा न समझता और अपने को अद्वितीय बलवान् एवं विद्याधारी मानने लगा। वह समझता था कि विश्व में कोई भी इतना बलशाली राज्य नहीं, जो मेरी खड्ग के मोर्चे पर आ सके। वह कहता—मैं मथुरा नरेश हूं, मथुरा राज्य का भाग्यविधाता हूँ। मैं सारे मृत्यु लोक का स्वामी हूँ। मेरी शक्ति के सामने समस्त राज्य थर थर कांपते हैं। मैं चाहूँ तो अपनी एक गर्जना से रण क्षेत्र में आये वीरों की हृदय गति रोक दूं। मैं चाहूँ तो अपने एक बाण से मेरु को भस्म कर डालू। मैं चाहू तो क्षीर सागर को अपने एक बाण प्रहार से धधकते ज्वालामुखी के रूप में परिणत कर डालू। मेरी इच्छा हो तो वसुन्धरा के समस्त सामन्तों से पानी भरवालू। मेरे सामने भगवान की भी क्या हस्ती है। मैं वसुन्धरा का एक मात्र स्वामी हूं। मैं जगती तल का भाग्य विधाता हूँ। इस लिए '*अहं ब्रह्मास्मि*' मैं ही भगवान् हूँ। मेरी कृपा कृपा से ही यह चराचर जीवित है, मेरी कृपा से ही चारों ओर सुख और स्मृद्धि है। मैं किसी को राजा और किसी को रंक बना सकता हूँ। मैं मिट्टी से सोना बना सकता हूँ। विद्याधर मेरे आधीन हैं, जो कोई मेरी सत्ता को स्वीकार न करे उसे यमलोक पहुँचा सकता हूँ। सारा विश्व मेरी कृपा का इच्छुक है। मुझे किसी से भय नहीं, बल्कि दूसरों के लिए मैं ही साक्षात् भय हूँ। मेरे नाश का स्वप्न देखने वाले मूर्ख हैं। मेरे वैरी के जन्म की घोषणाएं कपोल कल्पित सिद्ध हो चुकीं। अतएव अब मुझे क्या चिन्ता ?" इसी

प्रकार की अहकार पूर्ण बाते वह किया करता । कभी कभी राज दरबार में इसी प्रकार की डींगें हांकने लगता, उसके सगी साथी, कर्मचारी उसकी हां में हां मिलाते और अपनी चापलूसी से उस के अहकार में वृद्धि कर देते । वे उसे जगदीश्वर, जगत पिता, भगवान्, ईश्वर प्रभु, अन्नदाता, प्राणदाता, दुखियों के सहारे मानव समाज के रखवारे, वसुन्धरा नरेश, मृत्यु लोक के स्वामी और महाबली के नाम से पुकारते। उसे अपना अहकार सत्य पर आधारित प्रतीत होने लगा, उसे अपनी कल्पनाएं और वास्तविकता के रूप मे अनुभव होने लगीं। फिर क्या था वह सभी से अपने आप को भगवान् कहलाने का प्रयत्न करता।

× × ×

इधर एक बार कंस भगवान अरिष्टनेमि के जन्म महोत्सव में भाग लेने के लिये शौरिपुर में आ रहा था। वहां पर उसने उस कन्या को देखा जिस को कि पहले उस ने नाक काट कर छोड़ दिया था, कन्या के देखते ही कस को अतिमुक्त मुनि के उन वाक्यों का स्मरण हो आया कि "देवकी का सातवाँ गर्भ कंस और जरासंध की मृत्यु का कारण होगा।" इस स्मरण से पहले तो उसे कुछ मुनि वाक्य पर आश्चर्य हुआ किन्तु बाद मे विचार करने लगा कि आज मुनि की बात प्रत्यक्ष रूप मे असत्य सिद्ध हो रही है। मैंने तो पहले ही जीवयशा से कहा था कि इन मुनि आदि की बातों पर विश्वास नहीं किया करते। खैर जो कुछ हुआ हुआ, अब तो इस प्रश्न के किसी निश्चय पर पहुँचना ही चाहिये। इस प्रकार के विचारों में डूबा-डूबा ही वह मथुरा को लौट गया।

मथुरा में एक दिन कस सिंहासन पर विराजमान था, दरबार में उसके परामर्शदाता, मन्त्री और अन्य कर्मचारी उपस्थित थे। इतनी ही देर में कुछ ज्योतिषविद्या के ज्ञाता पण्डित दरबार मे आये। उन्हे आसन दे कर कस ने कहा—"पण्डित जन! आप तो ज्योतिष विद्या मे निपुण है। अन्य विद्याओं के भी ज्ञाता है, आप शास्त्रो पर भी विश्वास रखते है, यह तो बताइये कि ये मुनि जो भविष्य वाणी करते हैं उनका क्या वास्तविकता से भी कोई सम्बन्ध होता है।'

नैमित्यिकों ने कहा—"राजन्! मुनिजन जो कहते हैं वह सत्य पूर्ण ही होता है।"

क्या उनकी भविष्य वाणियां सत्य सिद्ध होती हैं।"

"इस में सन्देह को कोई स्थान नहीं।"

"तो फिर आप देखिये अपनी ज्योतिष विद्या से कि एवता मुनि द्वारा हमारे सम्बन्ध में की गई भविष्य वाणी का क्या फल होगा ?" हमें तो यह प्रतीत होता है कि यह मुनि लोग यूं ही क्रोध में आकर कह दिया करते हैं, वरना एवता मुनि की भविष्य वाणी भी सही होनी चाहिए थी। हमें तो उस की वाणी सोलह आने असत्य प्रतीत हुई।" कस ने कहा।

"क्या थी वह भविष्य वाणी ? और कैसे आप उसे असत्य मान बैठे ?" पण्डित जन बोले।

"एवता मुनि ने हमारी रानी पर रुष्ट हो कर कह दिया था कि देवकी का सातवां गर्भ मेरे और मेरे श्वसुर के नाश का कारण बनेगा।' अब आप ही सोचिए कि भला इस धरती पर कौन ऐसा है जो हम से लोहा ले सके। चलो खैर इसे सही भी मान लेते, तो भी अब तो उस भूठ का भण्डा फोड़ हो गया जब कि देवकी के सातवें गर्भ से पुत्र के स्थान पर कन्या ने जन्म लिया। आप देखिये,आप का ज्योतिष विज्ञान इस भविष्य वाणी के सम्बन्ध में क्या कहता है ?"

अभयदान चाहते हैं राजन् !" नैमित्तिकों में दीन स्वर में निवेदन किया।

"निर्भय होकर कहो। कंस ने कहा।

"राजन् ! हम अपनी ओर से कुछ नहीं कहते, पण्डितों ने ज्योतिष विज्ञान बताता है कि मुनि की भविष्य वाणी अक्षरश सत्य सिद्ध होगी। अर्थात् देवकी का सातवा पुत्र आप का और जीवयशा के पिता का नाश करेगा।"

कंस को यह बात सुन कर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। वह बोला—

क्या कह रहे हो, कहीं आप लोगों का मस्तक तो नहीं फिर गया। मैं कह रहा हूँ कि देवकी के गर्भ से पुत्र नहीं पुत्री उत्पन्न हुई है। फिर मुनि की वाणी सत्य कैसे हो सकती है। पहला भूठ तो यही सर्व सिद्ध है।"

पण्डित जन पुनः बोले—"राजन् ! आप का वैरी जन्म ले चुका है।"

"कौन है वह।" क्रोधी कंस ने क्रुद्ध हो कर पूछा।

पण्डित बोले-"राजन ! जो +केशी अश्व, अरिष्ट वृषभ को मार डालेगा, काली नाग का दमन करे, चाणुर मल्ल को पछाड़ देगा, पद्मोत्तर और चपक हाथी को परास्त कर देगा। यादव कुल का प्राशास्ता होगा, उसी गोवर्धन गिरधारी के हाथों आप का नाश होगा। हमें क्षमा करे। ज्योतिष यही कहता है।"

"उस की कोई और पहचान ?" कस ने क्रोध को पीते हुए कहा। पण्डित बोले, उस के लक्षण तो कितने ही हैं, उन मे से कुछ पहले ही बता चुके, शेष कुछ यह हैं।

जो आप के देवाधिष्ठित वज्रमय उस 'सारग' नामक धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ा कर आप की भगिनी सत्यभामा का वरण करे, वही आप के प्राणों का हर्ता होगा और उसी से वह आगे चल कर "सारग पाणी" के नाम से विख्यात होगा।

दुखियो की पीर हरने वाला, सज्जनो, पण्डितो और विद्वानो का संरक्षक, सहायक और हितचिन्तक होगा, और दुष्टो का मान मर्दन करेगा। बस वही आप का वैरी है।

कस कुछ चिन्तित हो गया, वह समझने लगा कि अवश्य ही उस दिन की देवकी की बातें भी रहस्य पूर्ण थी। अवश्य ही देवकी के पुत्र ही हुआ होगा, जिसे कहीं छुपा दिया गया है। परन्तु क्या वह इतना बलवान है कि मुझे भी परास्त कर सके ? कस यह कभी भी मानने को तैयार नहीं था कि ससार में कोई उससे भी बढ़ कर वलवान है। उसने सोचा कि यदि वास्तव में देवकी ने ऐसे पुत्र को जन्म दिया है तो इससे पूर्व की वह बड़ा हीकर अधिक बलवान हो, तुरन्त उसका पता लगाकर मार डालना चाहिए। यह सोच कर उसने केशी अश्व छुड़वाया। अश्व लोगों को मारता, पशुओं को घायल करता, फसलें उजाड़ता, झोपड़ियों को नष्ट करता, बालको को कुचलता, ग्वालों को मारता हुआ घूमने लगा। गोकुलवासी केशी अश्व के आतक से भयभीत हो गए। उन्हे घरों से निकलने का भी साहस न होता। सभी ने अपने अपने द्वार बन्द कर लिये। ज्यों ही केशी अश्व गोकुल में घुसा लोग चीखने लगे, भय के मारे अपनी सन्तानों को लेकर वे छुप गए। गौ वंश बुरी तरह चीत्कार करने लगा। लोग उसकी हत्या कस

+दुर्दान्त गर्दभ और दुर्दमनीय मेष इनको जो पछाड़ेगा। पाठान्तर—

के भय से न कर सकते थे। गोकुल वासियों का यह दुःख श्री कृष्ण से न देखा गया। उन्होने अश्व का पीछा किया, केशी अश्व कृष्ण को अपने पीछे देखकर भागने लगा। कृष्ण ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और उसके अपाल (गर्दन के बाल) पकड़ कर उस पर सवार हो गए। अश्व ने पूरी शक्ति लगाई कि वह कृष्ण के चगुल से मुक्त हो जाय। उन्हें गिराने के लिए उद्दण्डता की। बुरी तरह भागा, ऊंची ऊची छलागें लगाई पर श्री कृष्ण उसकी कमर पर जमे रहे। आखिर केशी अश्व अपनी शक्ति भर भागने, उछलने, कूदने के उपरान्त शान्त हो गया। श्री कृष्ण ने तब उसे एड़ लगाई और खूब भगाया, अश्व यह अनुभव कर रहा था कि उसकी कमर पर बहुत ही भारी भार लदा हुआ है। वह हाप रहा था, वह अपनी जान बचाने की चेष्टा करने लगा, पर श्री कृष्ण ने उसकी उद्दण्डता का दण्ड देने के लिए उसे भगाया, इतना भगाया कि जब श्री कृष्ण उसे अशक्त, शिथिल और पूर्ण रूप से दण्डित समझने लगे, तब उसे छोडकर घर चले आये, तो लोगों ने उसे निष्प्राण पड़े हुए पाया।

इधर जब श्री कृष्ण के केशी अश्व पर सवार होने का समाचार यशोदा और नन्द को ज्ञात हुआ तो वे चीत्कार करने लगे, करुण क्रन्दन सुनकर सारा ग्राम एकत्रित हो गया, सभी कृष्ण के दुस्साहस पर दुख प्रकट करने लगे। उन्हें सभी को श्री कृष्ण से अपार प्रेम था, कोई भी नहीं चाहता था कि श्री कृष्ण को कुछ भी कष्ट हो, अतएव वे यही सोच कर दुखित हो रहे थे कि यदि कृष्ण को कुछ हो गया तो वे क्या करेंगे। परन्तु जब श्री कृष्ण हसते हुए वापिस पहुँचे तो यशोदा ने दौडकर उन्हें छाती से लगा लिया, सारे ग्रामवासी यह देखने को दौड पड़े कि कृष्ण को कहीं चोट तो नहीं आई। परन्तु कृष्ण तो खिल खिला रहे थे। उन्होंने कहा—'वह अश्व तो बड़ा मूर्ख और कमजोर निकला। जब मैं उस पर सवार हुआ तो भागने लगा और जब मैं भगाने लगा तो उसका स्वास उखड गया। और जब मुझे दौडाने में आनन्द आने लगा तो वह भूमि पर लेट गया। निराश मैं लौट आया।"

लोग उस अश्व की दशा देखने के लिए दौड पड़े। जहां कृष्ण ने उसे छोडा था, वहीं जाकर देखा तो वह निष्प्राण पडा था। फिर क्या

था चारों ओर समाचार दौड़ गया कि कृष्ण ने उस उद्दण्ड, चचल और भयानक केशी अश्व को मार डाला है। जो कोई सुनता उसे असीम आश्चर्य होता, जिसने सारे क्षेत्र मे आतक मचा रखा था। उसे श्री कृष्ण ने मार डाला, वह भी विना किसी शस्त्र के, यह वास्तव में थी भी आश्चर्य की ही बात। परन्तु किसी ने कस का यह न बताया कि केशी अश्व का हत्यारा कौन है ?

कंस ने फिर मेष वृषभ छुड़वाया। वृषभ ने सारे क्षेत्र को आतंकित कर दिया, मानव समाज और पशु समाज दोनो ही भय भीत हो गए। अरिष्ट वृषभ ने हिंसक दुष्ट का रूप धारण कर रखा था। यदि कहीं कोई झूठ मूठ ही कह देता कि वह आया अरिष्ट वृषभ, बस सुनते ही लोग बिना जाने पूछे ही भाग पडते, किसी सुरक्षित स्थान की खोज में। श्री कृष्ण से लोगो की यह विपदा न देखी गई। उन्होंने मेष अरिष्ट वृषभ को ठिकाने लगा दिया।

श्री कृष्ण की प्रशंसाएं, अलौकिक बल की दन्त कथाए और यश व कीर्ति चारों ओर दूर दूर तक फैल गई। एक दिन किसी ने वसुदेव से भी जाकर कहा—"आपने सुना नहीं, गोकुल मे एक छोकरे में दिव्य बल है। उस ने केशी अश्व और अरिष्ट वृषम को बिना किसी अस्त्र शस्त्र और प्रहार के ही मार गिराया काली नाग को नाथ लिया है अतः अब उसके बल कर्म से प्रभावित होकर लोग उसके चारों ओर गाते बजाते हैं, वह ग्वालों का सरदार है। सारे ग्वाले उस के नेतृत्व में अपार शक्ति के स्वामी हो गये हैं। वह इतना सुन्दर है कि ग्वाल कन्याएं व स्त्रियॉ उसके रूप पर मोहित हैं। वे उसके साथ निर्भय, व आनन्दित होकर क्रीड़ाएं करती हैं। सभी को उसके चरित्र पर विश्वास है अतएव कोई पिता अपनी कन्या का उसके साथ हास्य विनोद बुरा नहीं समझता व सारी गोकुल नगरी का स्वामी बल्कि हृदय सम्राट् बन गया है। लोग कस की आज्ञा का कोई मूल्य नहीं समझते वे कृष्ण की आज्ञा का पालन करते हैं, वह बेताज का सम्राट् बन गया है। श्याम वदन कृष्ण की लीलाएं बड़ी आश्चर्य जनक हैं।"

वसुदेव ने बात सुनी तो उनकी छाती हर्ष से फूल गई। वे मन ही मन अपने लाडले को आशीर्वाद देने लगे, उन्हे अपने पर और

कृष्ण पर गर्व भी हुआ। पर उसी क्षण उन्हें एक विचित्र सी आशंका भी हुई। वे पूछ बैठे--

"तुमने यह सब कुछ कहाँ सुना ?"

"लोगों में तो इसकी बहुत चर्चा है। बाजारों, गलियों चौपालों और मित्र मण्डलियों मे बस वार्तालाप का विषय ही वह अद्भुत कुमार बन गया है। बच्चे बच्चे की जिह्वा पर उसकी कथाए हैं।" व्यक्ति बोल उठा। जैसे वह बता रहा हो कि---आपको पता ही नहीं, यह तो सभी जानते हैं।'

उसे गर्व था कि वह बात वह जानता है जिसका वसुदेव को ज्ञान ही नहीं। पर दूसरी ओर वसुदेव सोचने लगे। मैंने तो पुत्र को छुपाने के लिए ही नन्द के घर रक्खा था, पर वह तो अपने आप ही प्रगट हुआ जा रहा है। यह समाचार तो कस को भी मिले होंगे। यदि उसने कृष्ण को अपना शत्रु जानकर कुछ कर डाला तो क्या होगा ?

यह सोच कर वे बहुत चिन्तत हुए। कृष्ण को कस के कोप से बचाने का कोई उपाय ही समझ में नहीं आता था, वे उस दिनकर को छुपाने का प्रयत्न करना चाहते थे जो बादलों की ओट में आकर भी तो अपने अस्तित्व का भान कराता ही रहता है। जिस प्रकार सिंह सात तालों मे बन्द होने पर भी अपनी उपस्थिति को छुपा नहीं सकता। उसी प्रकार भानु कैसे छुपा रहेगा ? रत्न तो कीचड़ में पड़ कर भी नहीं छिपता। जब कीचड़ के ऊपर आता है, कुछ न कुछ चमक दिखाई दे ही जाती है फिर वीर पुरुष कैसे छानी रह सकता है ? कहा भी है—

छुपाये से गुदडियों में न ये लाल छुप सकते,
दिलावर देवता दाता न तीनों काल छुप सकते।

फिर भी वसुदेव पिता थे, उनके हृदय में वात्सल्य ठाठें मार रहा था। वे चिन्तित हो गए। उन्हें चिन्तित देख कर देवकी ने पूछा—आप चिन्ता में फस गए, आपका तो मुख कमल ही मुरझाया हुआ-सा है।

"देवकी ! मुझे चिन्ता है उस तुम्हारे लाडले की। सुनी उसकी करतूत। हमने रक्खा था छिपाने के लिए पर वह कर रहा है ऐसे काम कि सारा ससार उसे जान गया है, कहीं केशी अश्व को मारता है तो कभी अरिष्ट वृषभ का वध करता है, कभी काली नाग को नथता है।"

वसुदेव ने रोषपूर्ण शब्दों में कहा।

देवकी को भी सुनकर आश्चर्य हुआ–'आप ने किस से सुन लिया ?'

"प्रिये, जब उसके इस काम को बच्चा बच्चा जानता है तो फिर मुझे कैसे ज्ञात नहीं होता, गलियों बाजारों में सभी जगह उसी की चर्चा है।" वसुदेव बोले।

देवकी को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह हर्षातिरेक में बोली—देखा पुण्यवान पुत्र का प्रताप! अभी उसकी आयु ही क्या है। इतनी कम आयु में ही जगत विख्यात हो रहा है। लोग दांतों तले ऊंगली दबाते होंगे।"

'दांतों तले उंगली तो तब दबायेंगे जब दुष्ट कंस उसे मरवा डालेगा।" वसुदेव ने कहा।

तब देवकी की भी जैसे आंखें खुली। वसुदेव बोले—पहले खूब बलवान हो लेता और फिर यह सब कुछ करता तो कोई बात भी थी। पर वह छुप कहां रहा है, वह तो अपने को उजागर कर रहा है। कंस इस पर उसे मरवा न डालेगा ?

"तो फिर कुछ कीजिए।" व्याकुल होकर देवकी बोली—मेरे बेटे को कुछ हो गया तो मैं कहीं की न रहूँगी।"

"मै अब क्या करूं ? उसे कैसे छिपा कर रक्खूं। प्रत्यक्ष रूप से अब उस पर हमारा कुछ अधिकार भी तो नहीं है।" वसुदेव ने कहा।

वसुदेव और देवकी सोचने लगे कि कृष्ण की रक्षा के लिए क्या किया जाय। सोचते सोचते अन्त में उन्हें बस एक ही उपाय समझ में आया कि बलराम को कृष्ण की रक्षा के लिए गोकुल में भेज दिया जाय। निर्णय होने पर ऐसा ही किया गया।

बलराम और कृष्ण दोनों परम स्नेही भ्राताओं की भांति साथ-साथ रहने लगे। साथ-साथ खेलते, साथ-साथ गौए चराने जाते। राम और कृष्ण की जोड़ी मिलने के पश्चात् उनकी संयुक्त शक्ति ने गोकुल वासियों को बहुत प्रभावित किया, उन के भ्रातृ सम स्नेह को देख-देखकर लोग चकित रह जाते और आपस में उनके स्नेह की चर्चा करते व अपने बालकों को उनका अनुसरण करने की शिक्षा देते। कुछ

ही दिनों में वे एक दूसरे के इतने निकट हो गए कि सब लोग उनके व्यवहार को देखकर यह भूल गए कि बलराम और कृष्ण ने दो माताओं की कोख से जन्म लिया है।

गोकुल और मथुरा के बीच में वे कदम्ब की छाया में बैठ जाते चारों ओर गौएं चरती रहती, कृष्ण बासुरी की तान छोड़ देते और बलराम गौओं पर दृष्टि रखते। यही उनका नियम बन गया था। बलराम कृष्ण को इतना प्रेम करते कि किसी भी कार्य के लिए कृष्ण को कष्ट न देते।

अब कृष्ण ने सोलह वर्ष पूर्ण कर लिये थे, इतनी कम आयु में इतना आश्चर्य जनक बल इस बात का द्योतक था कि उन में दिव्य शक्ति है, वे पुण्यात्मा हैं।

श्री कृष्ण की बातें कस के कानों में भी उसके गुप्तचरों ने पहुँचा दीं। कस ने गरज कर पूछा—"कौन है वह मूर्ख छोकरा ?"

गुप्तचर—महाराज वह नन्द अहीर का बेटा कृष्ण है। वह बडा चचल है।

कंस—इससे पहले कि तुम उसकी यह मूर्खता पूर्ण बातें सुनाते अच्छा होता कि तुम मर गए होते।

गुप्तचर—(कॉपकर) अन्न दाता ! मुझ से तो कोई भूल नहीं हुई।

कस—तुम्हें चाहिए था कि उस मूर्ख का सिर काट कर लाते। फिर यह उसकी बकवास मुझे सुनाते।

गुप्तचर—हे जगपति ! वह बड़ा वीर है।

कस—कायर ! क्या हमारी सेना से भी अधिक शक्ति है उसमें ?

गुप्तचर—वह वही है जिसने केशी अश्व और अरिष्ट वृषभ की हत्या की, उसी ने काली नाग को नाथ लिया था।

कस—अधों में काणा सरदार हो रहा है। उस दुष्ट को ज्ञात नहीं कि कस का क्रोध बडा भयकर है। यदि उसकी प्रवृतियों पर मुझे क्रोध आ गया तो उसकी हड्डियों तक को पीस कर सुरमा बना दूंगा ? जाओ, उससे जाकर कह दो कि यह बकवास करके अपनी मृत्यु को निमत्रण न दे।

इधर मथुराधीश कस ने अपने प्रधान की वृहस्पति को बुला कर

मन्त्रणा कर सत्यभामा के स्वयंवर की तैयारी की आज्ञा दी। तदनुसार सत्यभामा के स्वयंवर की घोषणा की गई। सभी राजाओ के पास समाचार भेजा कि वे स्वयवर मे सम्मिलित हों, जो वीर शारंग धनुष पर बाण चढ़ा देगा, वही सत्यभामा का पति बनेगा। इस घोषणा को सुनकर दूर दूर के राजे, महाराजे और राजकुमार स्वयवर में अपनी शक्ति, भाग्य और पौरुष को आजमाने के लिए चल पड़े।

निमंत्रण समुद्रविजय के दरबार में भी पहुंचा। वसुदेव के पुत्र अनाधृष्टि ने जब यह घोषणा सुनी तो उसने भी स्वयंवर में जाने का निर्णय कर लिया। उसे अपने बल का बड़ा दम्भ था। उसने सोचा कि शारङ्ग धनुष पर बाण चढ़ाना मरे लिए साधारण सी ही बात है, अतएव स्वयवर मे वह धनुष पर बाण चढ़ा कर सत्यभामा को तो वरेगा ही साथ ही एकत्रित राजाओं, महाराजाओ पर भी उसके बलकी धाक जम जायेगी। उसने सुन्दर, मनोहर और मूल्यवान वस्त्र पहने, और राज्य अश्वशाला से उत्तम अश्व निकलवा कर अपने रथ में जुड़वाये, स्वय सवार हुआ और चल दिया मथुरा की ओर। वह दिन में ही स्वप्न देखता जाता, स्वप्न भी जिनमें उसकी विजय, सत्यभामा की प्राप्ति और उसकी जय जयकार थी। रथ मार्ग पर तीव्र गति से दौड़ रहा था।

* ❀ *

गोकुल और मथुरा के बीच हलधर और कृष्ण गौए चरा रहे थे कृष्ण की बॉसुरी जगल में माधुर्य व मस्ती बिखेर रही थी। चारों ओर गौएं थीं और कृष्ण बासुरी मे तन्मय थे। जब अनाधृष्टि का रथ वहां पहुँचा, बांसुरी की सुरीली तान सुनकर वह चकित रह गया। उसका मन बॉसुरी की ओर खिचने लगा। सोचने लगा—कौन है यह संगीत का इतना पारंगत, जिसकी बांसुरी की तान चलते पथिकों के पाँव बांध लेती है, जिसकी बासुरी मेरे हृदय को अपनी ओर खींच रही है। उस मुरली वाले को देखना चाहिए। रथ रुकवाया और उतर पड़ा रथ से, पहुँचा कदम्ब वृक्ष के नीचे। पास में बैठे बलराम को उस ने पहचान लिया। भाई को सामने देखकर बलराम उठ खडे हुए। दोनों को गले मिलते देख कृष्ण समझ गए कि आगन्तुक बलराम का कोई निकट सम्बन्धी है। उनकी बांसुरी का राग रुक गया। अनाधृष्टि व्याकुल हो गया, बोला—ग्वाले तुमने राग क्यो रोक दिया, छेड़ो

उसी तान को जिसने हमें रास्ते पर जाते हुए रोक लिया है।

कृष्ण ने कहा—हम किसी की यात्रा में विघ्न नहीं डालना चाहते। अब आप जा सकते हैं।

बात यह थी कि अनाधृष्टि की बात और उसके चेहरे के हाव भाव से वे समझ गए थे कि आगन्तुक अहकारी है। बलराम बात समझ गए। वे बोले—कृष्ण भैया, यह तो मेरे भाई हैं अनाधृष्टि।"

अनाधृष्टि ने कृष्ण का परिचय मालूम किया—बलराम ने कहा यह कृष्ण है, केशी अश्व व अरिष्ट वृषभ को बिना किसी अस्त्र के मारने वाले। काली नाग को नाथने वाले और गोकुल के बेताज बादशाह यह गोकुल के वास्तविक नरेश है। सारा क्षेत्र इन्हे आदरणीय मानता है। और हमारे भाई हैं ?"

"हमारे भाई कैसे ?"

बलराम सब कुछ जानते थे फिर भी बात छिपाते हुए बोले—

"पिता जी इन से पुत्रवत् स्नेह करते हैं मेरे हृदय में इन्होंने भ्रातृ स्नेह की नई ज्योति प्रदान की है। मुझे अपना ज्येष्ठ भ्राता मानते हैं और इन का व्यवहार भी भ्रातृत्व का पूर्ण आदर्श है।"

फिर तीनों में बातें होने लगीं। कृष्ण की प्रशसाएं सुनकर अनाधृष्टि समझ गया कि कृष्ण को ग्वाला कहना उसका अपमान है। थोड़ी ही देर में तीनों आपस में हिल-मिल गए। अनाधृष्टि ने मुरली पर राग सुने। और इसी में सूर्य पश्चिम दिशा में जाकर लुप्त हो गया। गौएं लेकर कृष्ण गोकुल चल पड़े। अनाधृष्टि ने भी अपना रथ गोकुल की ओर ही घुमा दिया। सारी रात्रि बातें हुईं। अनाधृष्टि ने समझ लिया कि कृष्ण बहुत काम का वीर है। प्रातः उन्हें बलराम सहित अपने साथ मथुरा ले चला। श्री कृष्ण भी सत्यभामा के स्वयवर को देखना चाहते थे। सब से अधिक उत्सुकता तो उन्हें उस शारङ्ग धनुष को देखने की थी जिसे राजाओं की वीरता की कसौटी, शान समझ कर रखा गया था, वे देखने के लिए लालायित थे कि कौन उस पर बाण चढाता है ? अनाधृष्टि ने अपने बल की प्रशसाओं, आत्म प्रवचना का तूमार बांधा था, श्रीकृष्ण उस के बल को अपनी आखों से देखना चाहते थे। अतएव उस के साथ मथुरा जाने में उन्हे बहुत ही प्रसन्नता हुई।

रथ पर तीनो सवार थे, सघन वन से हो कर रथ जा रहा था. प्राकृतिक सौंदर्य को देखने की इच्छा हुई। वन की ओर अनाधृष्टि ने अश्वों की बाग मोड़ दी। परन्तु वन मे से रास्ता पाना कठिन होता ही है।१ आगे वृक्षों को देख कर अनाधृष्टि ने रथ पीछे घुमाना चाहा। पर उसी समय कृष्ण रथ से उतर पड़े, उन्होंने कितने ही सूखे वृक्षों को उखाड़ डाला, और रास्ता बना दिया। अकेले कृष्ण द्वारा वृक्ष उखाड़े जाते देख, अनाघृष्टि को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह समझ गया कि कृष्ण की तुलना अच्छे वीरों से हो सकती है। इसी प्रकार वन-उपवनो में घूमते हुए यह तीनों मथुरा पहुंच गए और वहाँ पहुंचकर सीधे स्वयंवर मण्डप मे चले गए।

स्वयवर मण्डप में कितने ही नृप बैठे हुए मुछों पर ताव दे रहे थे। सभी को अपने पर विश्वास था कि वही शारङ्ग धनुष पर बल चढ़ा सकता है। कितनों को प्रतीक्षा थी उस क्षण की कि जब वे अपने बल का प्रदर्शन सैंकड़ों नरेशों के बीच करेंगे और विजय श्री उनके चरण चूमेगी, सत्यभामा उन्हें मिलेगी। जब समस्त नरेश सावधानी से अपने अपने स्थान पर बैठ गए, तो शृंगार युक्त सत्यभामा धीरे से आकर शारङ्ग धनुष के पास लक्ष्मी रूप में आ खड़ी हुइ। उस समय सभी नरेश अपने मन ही मन कामना करने लगे कि यह परम सुन्दरी उन्हीं के गले में वरमाला डाले। मंत्री ने घोषणा की कि "जो वीर इस धनुष पर पूरी तरह खींच कर बाण चढ़ा देगा, सत्यभाम उसी के गले में वरमाला डाल देगी।

कस ने कहा—आज एक ऐसा समय है कि जिसने अपने बल, पौरुष पर अभिमान है, वह अपनी शक्ति का प्रदर्शन करके यश प्राप्त कर सकता है और साथ हो सत्यभामा को ग्रहण कर सकता है। यह केवल विवाह ही नहीं शक्ति प्रदर्शन भी है। अतएव आप लोग क्रमानुसार उठें और अपना बल आजमाएं।"

इस घोषणा के पश्चात् क्रमानुसार नृप उठे। उन्होंने धनुष का निरीक्षण किया, हाथ लगाया, चिल्ला चढ़ाने का प्रयत्न किया और

---

१ मार्ग मे चलते हुए अनाधृष्टि का रथ वृक्षों में फस गया था, अनाधृष्टि के लाख प्रयत्न करने पर भी रथ न निकल सका किन्तु श्री कृष्ण ने तत्काल ही वृक्ष उखाड़ दिये। पाठान्तर—

असफल होकर लज्जित हो अपने स्थान पर आ बैठे। उस समय बल आजमाने वाले नृपों का चेहरा देखकर हसी आ जाती थी। जब वे निराश हो जाते तो लज्जा, खेद, और पश्चाताप सभी एक साथ उनके मुख पर छा जाते और सुन्दर व कान्ति युक्त वदन भयानक व हास्यास्पाद बन जाते। एक जब परास्त होकर वापस आता तो दूसरा जो उठता वह मन ही मन कहता-यह भी निर्बल ही निकला धनुष पर बाण ही तो चढ़ाना है, कोई पहाड़ थोड़े गिराना है, कैसा साहस हारकर बैठ गया, देखो मैं उठाता हूँ। पर जब वह स्वय धनुष को हाथ लगाता और अपनी समस्त शक्ति लगा कर डोरी खींचता, तो मन ही मन कहता--अरे बाप रे बाप! यह धनुष पाषाण शिला में से काट कर तो नहीं बनाया गया?" अपने बल का प्रदर्शन कर वह भी अपने स्थान पर नीची दृष्टि किए जा बैठता और जब उसका पास वाला चलता धनुष पर बल आज़माने तो मन ही मन कहता—"चल भाई, तू भी पत्थर से सिर टकरा।" वास्तव में धनुष इतना भारी था कि पहल तो उसे उठाने का ही प्रश्न उठता था।

धीरे धीरे अनावृष्टि का नम्बर आ गया। वह अकडता हुआ मूछों पर ताव देकर आगे बढ़ा, उसको पूर्ण आशा थी कि वह तो अवश्य ही बाजी मारेगा। शीघ्रता से जाकर ज्यों ही धनुष उठाया, और साथ ही बाण चढ़ाने के विचार से एक पैर पीछे चलाया, फिसल कर गिर पड़ा। सभी उपस्थित नरेश एक दम हंस पड़े, वे भी जो परास्त हो चुके थे और वह भी जिन्होंने अपना बल नहीं आज़माया था। सत्यभामा भी अपनी हसी न रोक पाइ, खिलखिला कर हस पडी। श्री कृष्ण न चाहते हुए भी हस पड़े। उसी समय सत्यभामा को दृष्टि उन पर पडी। बस एक ही दृष्टि में सत्यभामा उनके रूप पर मुग्ध हो गई, सोचने लगी कि यह युवक मेरा पति बने तो क्या ही अच्छा हो।

अनाधृष्टि लज्जित हो, आत्मग्लानि और क्षोभ के सयुक्त भाव लिए अपने स्थान पर आया तो, कृष्ण को हसते देखकर झु मला गया, बोला, "वैसे ही दांत फाड़ रहे हो, तनिक हाथ लगाकर देखो दिन में ही तारे नजर आने लगते हैं हसना ही आता है या कुछ करने का बल भी है।"

श्री कृष्ण से न रहा गया, यद्यपि उन्हें स्वयंवर में निमंत्रित नहीं किया गया था, और वे स्वयं इस परीक्षा मे उतरना उपयुक्त नहीं समझते थे, पर वाग्बाण उनके हृदय में चुभ गए, वे तुरन्त अपने स्थान से उठे, बलराम ने उन्हें रोक कर कहा—कहाँ जाते हो, तुम धनुष को हाथ न लगाना। हम निमन्त्रित नहीं है।" परन्तु श्रीकृष्ण ने एक न सुनी, वे शीघ्र ही मंच पर गए। बिजली के समान वे वहाँ पहुचे और आख झपकते ही धनुष उनके हाथ में था, उन्होंने बाण लिया, धनुष पर चढ़ाया प्रत्यञ्चा को,अपने कान तक खींचा, चारों ओर घूमकर दर्शकों को दिखाया और फिर धनुष को वहीं भूमि पर रख दिया उसके इस अद्भुत् शौर्य को देखकर सभी नरेश चकित रह गए।

इधर कस ने जब देखा कि कृष्ण ग्वाले ने धनुष उठाया और बाण चढ़ानेका सफल प्रदर्शन किया और जब उसे यह भीज्ञात हुआ कि कि वही ग्वाला है जिसने केशी अश्व व अरिष्ट वृषभ की हत्या की थी तो वह आग बबूला हो गया। उसने सोचा सम्भव है यही हो वह उद्दण्ड छोकरा, जिसे ज्योतिषियों ने मेरा बैरी बताया है।

इसलिए वहीं सिंहासन पर बैठा हुआ ही चिल्लाने लग पड़ा—इस धनुष चढ़ाने वाले छोकरे,को शीघ्र ही समाप्त कर दो, देखो यह इस मण्डप से बाहर न निकलने पाये, इसका काम यहीं तमाम कर देना चाहिए। मेरे वीर सामन्तों व सरदारो ! यदि यह तुम्हारे हाथों से नौ दो ग्यारह हो गया तो तुम मेरी दृष्टि से बच न पाओगे। यह नीच सहस्रों राजा राजकुमारों के मान को मर्दन कर सत्यभामा का वरण करना चाहता है ? नहीं, यह कदापि नहीं हो सकता ?

कंस के इस प्रकार सकेत पाते ही सैनिक, द्वारपाल आदि एक साथ श्री कृष्ण पर टूट पड़े किन्तु कृष्ण तो पहले ही तैयार खड़े थे। अतः अनाधृष्टि को साथ लेते हुए बादलों में घिरे हुए सूर्य की त्वरित गति की भाति पदलात, मुष्टिक आदि का प्रहार करते मण्डप से बाहर निकल आये।

और मडप से बाहर आते ही अनाधृष्टि ने राम-कृष्ण को रथ में बैठाकर वसुदेव के वासस्थान पर ले गया। वहां पहुंच कर अनाधृष्टि ने वसुदेव के पास जाकर कहा—'सारे क्षत्रिय नरेशों को वहां धनुष को देखकर पसीना छूट रहा था मैंने क्षत्रियों की लाज रखने

के लिए साहस किया और धनुष उठाकर वाण चढ़ानेका प्रदर्शन करके चला आया। सभी दांतों तले उंगली दबा रहे हैं।"

वसुदेव को अपने पुत्र की वीरता व बल की इस अनुपम लीला का वृत्ताँत सुनकर अपार हर्ष हुआ किन्तु साथ ही भय भी। उन्होंने कहा कि—तुम तुरन्त यहां से चले जाओ वरना कंस तुम्हारी हत्या कर देगा, वह नहीं चाहता कि कोई भी व्यक्ति उससे अधिक बलवान हो।"

अनाधृष्टि तुरन्त वहां से शौरीपुर को चल पड़ा। मार्ग में उसने श्री कृष्ण को गोकुल में सौंप दिया।

इस प्रकार कंस की आशा निराशा के रूप में परिवर्तित हो गई उसकी महत्वाकांक्षा पर पानी फिर गया। अब वह एकान्त बैठकर कुचले साप की भांति प्रतिशोध की भावना लिये हुए सोचने लगा—ज्योतिषियों ने जो जो लक्षण बतलाये थे वे लक्षण अक्षरशः सत्य सिद्ध हुए हैं। केवल गजों व मल्लका लक्षण ही शेष हैं। निश्चय ही यह कुशल ग्वाल मेरे प्राणों का घातक है। अब कोई ऐसा उपाय सोचू जिससे कि इस नाग का सिर कुचला जा सके। क्या यही है वह जो चाणूर मल्ल व चम्पक और पद्मोत्तर को पछाड़ेगा? नहीं ऐसा कदापि नहीं हो सकता।" सोचते २ अन्तमें उसने यही निश्चय किया कि यदि यही वह बैरी है तो इसके लिए चाणूर मल्ल के दो हाथ ही काफी हैं प्रथम तो पद्मोतर और चम्पक दोनों हस्ती ही उसे जीवित न छोड़ेंगे। वहाँ से किसी तरह बचभी निकला तो चाणूर के हाथों अवश्य ही मारा जायेगा, फिर तो मेरा मार्ग साफ हो जायगा और निश्चय ही विश्वविजयी बनने का सुअवसर प्राप्त हो जायगा।

इस प्रकार उसने सोच समझकर मल्ल युद्ध प्रदर्शनी का प्रबन्ध किया। कंस द्वारा मल्ल युद्ध प्रदर्शनी का आयोजन होने के कारण बाहर से आये नरेश उसे देखने की चाह से वहीं रुक गए।

इधर वसुदेव को भी सच्चाई का पता चल गया था, जब उन्होंने सुना कि अचानक कंस मल्ल युद्ध का प्रबंध कर रहा है, तो उन्हें उसके पीछे किसी रहस्य की गंध आई। वे सोचने लगे यह कंस की कोई कूटनीतिक चाल है। अतएव उन्होंने इस विचार से कि कहीं कोई अनर्थ न हो जाय समुद्रविजय आदि भाइयों तथा अक्रूर आदि

राजकुमारों के पास दूत भेजकर उन्हें बुला लिया और उन्हे मल्ल युद्ध के समय उपस्थित और सावधान रहने को कहा। इस प्रकार उधर कंस कृष्ण के मारने का विफल प्रयत्न करता तो इधर वसुदेव उसे बचाने का सफल प्रयास करते रहते।

बलराम द्वारा रहस्योद्घाटन और मल्ल युद्ध के लिए प्रस्थान

जब मल्ल युद्ध का समाचार गोकुल पहुंचा तो कृष्ण उसे देखने को लालायित हो गए। गोकुल के कितने ही लोग, ग्वाले और अन्य मल्ल-युद्ध देखने के लिए जा रहे थे, उन्होंने भी बलराम जी से कार्यक्रम निश्चित कर लिया। जिस दिन मल्लयुद्ध होना था, श्रीकृष्ण और बल-राम प्रात उठे और यशोदा से कहा—'माता जी पानी गरम कर दीजिए क्योंकि हमें शीघ्र ही स्नान करके मथुरा जाना है।

"मथुरा क्यों जा रहे हो।" माँ ने पूछा।

"मल्लयुद्ध देखने।" कृष्ण बोले।

"तुम वहां जाकर क्या करोगे, काम धाम तो कुछ करना नहीं बस उत्पात करने की ठान ली है।" यशोदा ने डांट कर कहा।

"बलराम बोल पड़े—"मल्लयुद्ध देखने जाने में भी कोई उत्पात हो जाता है। सारे गोकुलवासी जा रहे हैं। कोई हम ही तो नहीं जा रहे।"

"नहीं, मैं तुम दोनों की रग रग जानती हूँ। कोई झगड़ा टटा खड़ा कर लोगे, राजाओं का मामला है। मैं नहीं जाने दूंगी। करोगे तुम और भरना पड़ेगा हमें।" यशोदा ने झिड़क दिया।

कृष्ण ने हठ पूर्वक कहा—माता जी ! आप विश्वास रक्खें हम कोई उत्पात नहीं करेंगे। सीधे मथुरा जायेंगे और तमाशा देखकर वापिस सीधे घर आजायेंगे। आप हमें निस्संकोच आज्ञा प्रदान कीजिए।"

"मैं कैसे आज्ञा दे सकती हूँ ? तुम तमाशा देखने नहीं कोई झंझट मोल लेने जा रहे होगे। कंस का क्रोध भयंकर है। तुम ने कुछ ऐसी वैसी बात कर दी और वह रुष्ट हो गया तो क्या पता, तुम्हारी क्या बुरी दशा हो, और मैं यहाँ रोती ही फिरूं। ना मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी।" यशोदा ने कहा।

इस पर बलराम खीझ उठे और बोले—"गूजरी ही तो हो, डरती

हो ना। क्षत्राणी होतीं तो ये कायरों जैसी बातें न करती। कंस हमें क्या खा जायेगा, इतने लोग जा रहे हैं कंस उन्हें न खाकर क्या हमें ही खा जायेगा?

यशोदा बलराम के कठोर शब्द सुनकर रुआंसी होकर कहने लगी–तो फिर तुम जाओ, कृष्ण को भी ले जाओ। मैं रोलूंगी और क्या कर सकती हूँ। तुम मुझे माता कहते हो और मेरा कहा नहीं मानते उलटे मुझे कायर बताते हो तो जाओ, जो मर्जी हो करते फिरो।"

कृष्ण को बलराम जी द्वारा कही हुई बात एक गाली समान प्रतीत हुई, वे तुरन्त बोल पड़े—तुम्हें मेरी माता को गालियां देते लज्जा नहीं आती? यदि मैं तुम्हारी मां को इतने कठोर शब्द कहता तो तुम्हें कैसा लगता, मुंह से बात निकालने से पहले यह तो सोच लिया होता कि यह शब्द कहाँ तक उचित हैं। तुम्हें यह शब्द शोभा भी देते हैं या नहीं? तुम्हारी जगह यदि कोई और होता तो मैं मां का अपमान करने का जो दण्ड देता, बस वह मैं ही जानता हूँ। अच्छा जाओ अब मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊंगा।"

यशोदा ने देखा कि तनिक सी बलराम की भूल इन दो भाइयों में परस्पर विरोध का कारण बन सकती है, जो कदापि अच्छी बात नहीं कही जा सकती, अतएव वह अपना कर्तव्य समझकर श्रीकृष्ण चन्द्र के सिर पर प्रेम भरा हाथ फेरती हुई बोली—नहीं, नहीं तू क्यों रुष्ट होता है, मैं बलराम की भी तो मां हूं। उसने मुझे गाली कहा दी है। वह तो मुझसे नाराज होकर ऐसी बात कह गया, वरना बलराम तो बड़ा बुद्धिमान् है? उसी समय उस ने बलराम को अपनी छाती से लगा लिया और कहने लगी—मेरा बेटा मुझे गाली क्यों देता? उसने तो सच्ची बात कह दी, मैं गूजरी तो हूं ही, मैं मल्लयुद्ध या किसी और युद्ध की क्या बात जानूं। मैं तो वैसे ही डरती रहती हूँ। इसके बाद श्रीकृष्ण को सम्बोधित करके कहा–अच्छा अब तुम अपने भैया के साथ मथुरा चले जाओ। तनिक शीघ्र आना।

"नहीं मैं नहीं जाऊंगा अब?" श्रीकृष्ण रोषपूर्ण शैली में बोले।

यशोदा ने हंसते हुए कहा–"ओहो, मेरा राजा बेटा, नाराज हो गया, क्या मां के कहने पर भी नहीं जाओगे। देखो आज भैया क साथ नहीं गए तो मैं नाराज हो जाऊंगी।"

इस प्रकार श्रीकृष्ण बलराम (बलदाऊ) के साथ चलने को तैयार हो गए। देरि हो रही थी अत: स्नान किए बिना ही चल पड़े। और जाकर यमुना में स्नान किया। अभी तक कृष्ण रुष्ट थे, उनके हृदय में मां के अपमान की बात अभी तक चुभी हुई थी। इसलिए वे गम्भीर थे। बलराम ने समझ लिया कि कृष्ण अभी तक रुष्ट है। अतएव वे बोले—"कृष्ण भैया! तुम अभी तक नाराज हो?"

"नाराजी की तो बात ही है। तुम ने माता को गाली दी।" श्री कृष्ण बोले।

"मैं ने क्या गाली दी?" बलराम ने कहा—मैंने तो कोई अपशब्द अपने मुंह से नहीं निकाला।'

"तुम ने उन्हें कहा नहीं कि तुम गूजरी जो हो कायरों की बात करती हो। क्या मेरी मां को तुम कायर समझते हो? तुम ने उसके बेटे को नहीं देखा होता तो एक बात भी थी, आखिर मेरी रगों में भी तो उसी का रक्त दौड़ रहा है। मैंने भी तो उसी की कोख से जन्म लिया है। और मैं कंस जैसे अपने को शूरवीर समझने वालों से भी टक्कर लेने से नहीं घबराता।" कृष्ण ने बिगड़ कर कहा। उनका शब्द शब्द बता रहा था कि बलराम के शब्दों से उनके हृदय को कितना आघात लगा था।

बलराम बोले—नहीं तुम भी उसके बेटे नहीं हो, अगर उसके बेटे होते तो क्या पता कि तुम भी कैसे होते?" श्रीकृष्ण को यह बात बड़ी आश्चर्य जनक लगी, वे बोले—"कहीं तुम्हारा मस्तक तो नहीं फिर गया है, मुझे इतने कठोर शब्दों के प्रयोग के लिए क्षमा करना भैया। आज तुम बात ही ऐसी कर रहे हो कि मुझे आश्चर्य होता है।"

मैं जो कह रहा हूँ ठीक ही कह रहा हूँ?"

"तुम्हारी मां देवकी है।" बलराम ने रहस्योद्घाटन किया।

"कौन देवकी?"

"वही जो प्रायः तुम्हारे घर आया करती है, और तुम्हें प्यार किया करती है।" बलराम ने कहा।

"मेरी समझ में तुम्हारी बात नहीं आ रही तुम भैया, मुझे ठीक तरह बताओ कि यह क्या कह रहे हो।" कृष्ण ने परेशान होकर कहा।

तब बलराम बोले—"तुम से आज तक मैंने इस रहस्य को छिपाए रक्खा, पर अब तुम काफी समझदार हो, इस लिए बताये देता हूँ। लो सुनो" और इतना कह कर बलराम ने सारी बातें स्पष्टतया बतादीं, देवकी, वसुदेव, कस, एवता मुनि, जीवयशा और अपने बारे में भी। उन्होंने यह भी बता दिया कि अब तक तुम्हें क्यों छुपाया गया। श्री कृष्ण ने सारी बातें ध्यान पूर्वक सुनीं और अन्त में दात पीसने लगे बोले—उस दुष्ट कस को जिसने मेरे माता पिता को छल से प्रतिज्ञा में बाँधकर इतना अन्याय किया है। जिसने मेरे छ भ्राताओं को न जाने क्या किया, मैं उसके अन्याय का मजा चखाऊंगा। मैं आज प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक कंस का वध नहीं कर दूगा तब तक चैन से न बेठूगा।"

"इतनी दुर्लभ प्रतिज्ञा क्यों करते हो ?" बलराम ने कहा।

"नहीं भैया! आज आपने मेरी आँखें खोल दीं। अभी तक मैंने आपको नहीं पहचाना था, अपने को और अपने कर्तव्य को नहीं पहचाना था, अतएव मैं निश्चित होकर चैन करता रहा, पर आज पता चला कि मेरे सिर पर तो एक भारी बोझ है, जब तक उसे न उतार द मुझे चैन नहीं मिलेगा।" श्रीकृष्ण बोले, सच है जब तक मन का कांटा नहीं निकलता कल नहीं पड़ेगी।

ज्यों ही बलराम और कृष्ण मल्लयुद्ध के लिए निश्चित स्थान के द्वार पर पहुचे कि उन्हें आता देख महावत ने मदोन्मत्त पद्मोत्तर और चम्पक हाथी को उनकी ओर हांका। वे हिंसक हाथी पहले से ही कस ने द्वार पर खड़े कर रक्खे थे ताकि श्रीकृष्ण को द्वार पर समाप्त कर दिया जाय। श्रीकृष्ण हाथियों के अपनी ओर बढने का आशय समझ गए। उन्होंने दौड़कर मदान्ध पद्मोत्तर हाथी के दात पकड़ लिए। वे दांत जो दो कृपाणों की भाति बाहर निकले थे। इतने जोर से पकडकर उसके दांतों को झझोडा कि हाथी का मद झटकों में ही हवा हो गया। श्रीकृष्ण ने कुछ और शक्ति लगाई और हाथी के दात तोड़ दिए, फिर वह हाथी ऐसे चिंघाड़ने लगा जैसे कि चीत्कार कर रहा हो, महावत बल का यह अभूत पूर्व प्रदर्शन देखकर आश्चर्य चकित रह गया। दूसरी ओर चम्पक के दांतों को बलराम ने तोड़ डाला और दोनों ने उन मदमस्त हाथियों को मुष्टिक प्रहारों से ही धाराशायी कर डाला।

देखने वाले अचम्भे मे पड गए क्योंकि यह तो एक ऐसी घटना थी जैसे न कभी देखी थी और न सुनी ही थी। यह दोनों हाथी तो पहाड़ की तरह ऊचे और बहुत ही वडे डील डौल के थे। जब कंस ने महावतों से हाथियों का इस प्रकार मारा जाना सुना तो श्रीकृष्ण पर उसे और भी क्रोध आया। और वह सोचने लगा कि आज अखाड़े में उसे ललकार कर किसी के द्वारा मरवा ही डालना चाहिए।

श्रीकृष्ण के साथ वे लोग जो गोकुल से मल्लयुद्ध देखने आये थे, और अब तक उनका कमाल देख रहे थे, पीछे पीछे चल पड़े। श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई ग्वालों के इस दलबल के साथ एक स्थान पर जा बैठे। अखाडा आरम्भ हुआ, पहलवानों के जोड़ मैदान म आते रहे, मल्लयुद्ध होना आरम्भ हो गया। पहलवानों ने अपने अपने दाव पेच दिखाये। इधर बलराम सकेत के द्वारा मच पर बैठे हुयों का परिचय कराते जाते। कस, वसुदेव, समुद्रविजय आदि को दिखाकर उन्होंने उन के बारे मे सभी जानने योग्य बातें बता दीं। अखाडे में मल्ल युद्ध चलता रहा, कितने ही योद्धा मैदान में आये। उन्होंने भुजा दण्ड झटकार कर और मल्ल युद्ध सम्बन्धी कला का प्रदर्शन करके दर्शकों का मनोरंजन किया। अन्त में कस के सकेत से चाणूर उठा। वह हाथी समान शरीर वाला योद्धा अखाड़े मे आया और उच्च स्वर में बोला—"जिस किसी को अपने बल पर अभिमान हो वह मेरे साथ मल्ल युद्ध करे।"

घोषणा करके उस ने चारों ओर दृष्टि डाली। कुछ देर बाद वह फिर बोला—"क्या जगत् मे कोई ऐसा योद्धा है जो मेरा सामना करने को तैयार हो? क्या किसी माँ ने ऐसा पुत्र जन्मा है जो मुझ से लड़ने का साहस करे। यदि यहा कोई ऐसा माँ का लाल उपस्थित हो, जो अपने को बलिष्ठ मानता हो, वह मेरे सामने आने का साहस करे।

आओ, है कोई माँ का लाल जिस में इतना बल हो कि मेरी टक्कर सम्भाल सके।"

उस ने इसी प्रकार कई बार घोषणा की, कई बार चुनौती दी, पर चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। किसी को इतना साहस न हुआ कि सामने आकर उसकी चुनौती स्वीकार करता। यह देख कर श्रीकृष्ण

से न रहा गया। वे अकस्मात् ही अखाड़े में जा कूदे, वस्त्र उतार दिए और लगोट पहने हुए जाकर चाणूर के सामने खड़े हो गए। लोगों ने जो देखा तो दांतों तले उंगली दबा गए। एक ओर हाथी समान शरीर और दूसरी ओर पतले दुबले थोड़ी सी आयु के श्रीकृष्ण। लोगों में अनेक चर्चाएं होने लगीं। अधिकतर तो इसी पर श्रीकृष्ण की प्रशंसा करने लगे कि उन्होंने चाणूर के मुकाबले पर जाने का साहस किया।

कुछ लोग जोर से बोल पड़े—"इस उन्मादी ग्वाल बाल को किस ने यहाँ आने दिया, कहां वह मस्त चाणूर और कहा यह दुधमुहा बालक! नहीं यह मल्ल युद्ध कैसे हो सकता है?"

कस तो चाहता ही यह था कि किसी तरह चाणूर और कृष्ण की टक्कर हो जाये तो कृष्ण का कांटा चाणूर ही निकाल देगा। वह कुश्ती में ही कृष्ण को मार गिरायेगा और फिर इस छोकरे का बवाल भी कट जायेगा। अतएव वह बोला—जब यह स्वय ही लड़ना चाहता है तो लड़ने दो, तुम लोग क्यों रोकते हो?" कस की बात सुन कर चारों ओर सन्नाटा छा गया।

श्रीकृष्ण ने चाणूर को सम्बोधित कर के कहा—"तुझे अपने बल का मिथ्या अभिमान है। तो फिर आज इस अभिमान को तोड़े देता हूँ।"

"पहले अपनी मां से भी पूछ आया है, हड्डी, पसली का भी पता नहीं चलेगा।" चाणूर श्री कृष्ण के पतले शरीर को देख कर बोला।

श्रीकृष्ण मुस्कराये—"यह तो अभी ही पता चल जाता है कि कौन किस की हड्डी, पसली तोड़ता है। पर मेरी बात माने तो अपने स्वामी कस से अन्तिम विदा ले ले। क्योंकि कदाचित् फिर तुझे अवसर नहीं मिलेगा।"

दर्शक राजाओं ने जब यह वार्ता सुनी तो कुछ बोल उठे—"लगता तो पतला दुबला युवक ही है, पर है इसे भी अपने बल पर पूर्ण विश्वास।"

कुछ राजाओं ने जिनका हृदय करुणा पूर्ण था, कहा—"इतने भैंसे समान तन धारी से इस बालक का मल्ल युद्ध न्याय सगत प्रतीत नहीं होता।"

श्री कृष्ण ने उन राजाओं की ओर देख कर कहा—"आप लोग

शान्त रहिए। आप किसी प्रकार की चिन्ता न कीजिए। सिंह के सामने गज की जो गति होती है, इस भैंसा तन अहंकारी चाणूर की भी वही गति होगी। यदि मैंने इस से युद्ध न किया तो इसका और इसके स्वामी कंस का दम्भ बड़ा ही अनहितकारी होगा।"

कंस को श्रीकृष्ण की बात सुनकर बहुत क्रोध आया। और उस ने उच्च स्वर में कहा—"चाणूर! यह बालक है तो नन्हा सा पर है अहंकार के विष से भरा हुआ। तनिक इस का अहंकार तो निकाल।" दूसरी ओर उस ने अपने मुष्टि नामक योद्धा को संकेत करके कहा—"उठ इस मूर्ख की अकड़ तो ढीली कर दे।"

इधर चाणूर श्रीकृष्ण से भिड़ गया और मुष्टिक वस्त्र उतार कर लंगोट खींच कर हिंसक भेड़ियों की भांति गुर्राता हुआ अखाड़े में आ गया। कंस का आशय और मुष्टिक के अनायास ही झूमते हुए आने का कारण बलराम समझ गए। वे भी तुरन्त ही अपने वस्त्र उतार कर अखाड़े में कूद गए और इस से पहले कि मुष्टिक चाणूर से लड़ रहे श्री कृष्ण पर प्रहार करे उन्होंने मुष्टिक को जा दबाया।

कंस ने देखा कि उसके दोनों पहलवान एक-एक ही बालक से भिड़ पाये हैं और एक नए युवक ने मैदान में उतर कर उसकी योजना पर पानी फेर दिया है पर वह अनेक राजाओं के उपस्थित होने के कारण इस नए युवक को कुछ नहीं कह सकता था अतः अपने पहलवानों को सहारा देने के लिए अपने स्थान पर बैठा बैठा ही उच्च स्वर में कहने लगा—"क्यों देरि लगा रखी है, चाणूर और मुष्टिक, शीघ्र खत्म कर के अलग हटो।" उसने संकेत द्वारा राम और कृष्ण की हत्या करने का आदेश दिया, पर उन बेचारों की सामर्थ्य हो तो वे हत्या कर भी दें, जब उन्हें वज्र शरीरों से वास्ता पड़ गया तो करें तो क्या करें? उन्होंने अपनी भी बहुत कोशिश की, बहुत दाँव पेच चलाने चाहे पर वे स्वयं उनके चंगुल में ऐसे फंस गए कि अपनी जान बचाने का प्रश्न आ गया।

कुछ ही देरि बाद श्रीकृष्ण ने चाणूर को पटक दिया, वह चाणूर जो श्रीकृष्ण की हत्या करना चाहता था, स्वयं पृथ्वी पर गिर पड़ा और श्रीकृष्ण की ठोकरों की मार से उस दुष्ट के प्राण पखेरू उड़ गए। उसी समय बलराम ने भी मुष्टिक को भूमि पर दे मारा और एक ऐसा मुक्का मारा कि मुष्टिक वहीं ढेर हो गया।

श्रीकृष्ण ने कहा—"लो उठाओ अपने साथियों को। नाड़ी देखो और पूछो कि वे कहा मुह मोडे जा रहे हैं।"

दर्शकों ने उसी समय करतल ध्वनि और खिलखिलाहट से श्रीकृष्ण व बलराम का अभिनन्दन किया। गोकुल वासियों ने श्रीकृष्ण को छाती से लगा लिया। उपस्थित राजाओं को दोनों भ्राताओं का बल देख कर असीम आश्चर्य हुआ, वसुदेव की प्रसन्नता का ठिकाना न था और समुद्रविजय के अधरों पर मुस्कान खेल रही थी। किन्तु कस को बहुत क्रोध आया। उसका कोप बिखर गया, वह अपने सैनिकों को सम्बोधित करके बोला—क्या देखते हो इन दोनों को तुरन्त पकड कर मार डालो, और उस नन्द को जिसने दूध पिला पिला कर इन सपोलियों को पाला है, उसे भी जाकर पकड़ लो और यम लोक पहुचा दो। जो कोई मूर्ख इनका पक्ष ले उसे भी मार डालो। नन्द और उस के पक्ष लेने वालों की सम्पत्ति लूट लो। इन्हें बता दो कि कस का सामना करने की मूर्खता करने वालों को जगत् में जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है। कस अपने बैरियों को सहन नहीं कर सकता।"

कस के इस द्वेषपूर्ण आदेश को सुन कर श्रीकृष्ण तुरन्त बोल उठे—"अहकारी कस पहले अपनी रक्षा कर फिर नन्द आदि को मरवाने की बात करना। दुष्ट ठहर, मैं पहले तुझे ही यम लोक पहुचाता हूँ।" इतना कह कृष्ण तुरन्त दौड कर मच पर पहुच गए और उस की चोटी पकड कर इतने जोर से घुमाया कि कस होश भूल गया। वे उसे भूमि पर खींच लाये। मुकट धूलि धूसरित हो गया, वस्त्र फट गए और थोड़ी ही देर में उसकी बुरी दशा हो गई। कस ने बहुत हाथ पाव मारे, पूरी शक्ति से श्रीकृष्ण से छूटने का प्रयत्न करता रहा, पर सिंह के सामने जैसे मृग की एक नहीं चलती इसी प्रकार कस के सारे प्रयत्न निष्फल हो गए।

श्रीकृष्ण उसे धूल में रुढकाते जाते और कहते जाते—"अन्यायी तू अपनी रक्षा के लिए बाल हत्या करने से भी नहीं हिचकिचाया, तू ने मेरी हत्या करने के लिए अनेक षड्यन्त्र रचे, तू ने प्रत्येक पाप को करने में अपनी शान समझी। आज तुझे तेरे पापों का फल भोगना पडेगा। मैं तेरे लिए काल रूप बन कर आया हूँ। यदि कोई तेरा सहायक हो तो उसे बुला।"

कंस की यह दुर्दशा देख कर दर्शक मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे। राजाओ के मन हर्ष से भरे थे, वे उस अहकारी की दुर्दशा को लख कर अनुभव कर रहे थे कि उस की यही दशा होनी चाहिए थी। कस के सैनिक उसे बचाने के लिए अस्त्र शस्त्र ले कर दौड़ पड़े। बलराम से न रहा गया। वे मोर्चे पर आ गए और मच के खम्भ (स्तम्भ) उखाड़ उखाड कर सैनिकों के सिर तोड़ने आरम्भ कर दिए। इस अभूतपूर्व अस्त्र की मार से भयभीत होकर सैनिकों के पाँव उखड़ गए, और अपने प्राण लेकर भाग खड़े हुए।

कस पड़ा पड़ा ही चिल्लाया—"मूर्खों भागते क्यों हो, सिर हथेली पर रख कर आगे बढ़ो, कृष्ण को मारो, मेरे प्राण बचाओ।"

कस "मुझे बचाओ, मुझे बचाओ" की पुकार करता रहा, पर कोई भी उसे बचाने के लिए पास नहीं आया। बलराम जी के बल के सामने वे सिर पर पांव रख कर भाग रहे थे। उन्हें अपने बचने की चिन्ता थी, वे दूसरे को क्या बचाते।

कंस ने एक बार फिर शोर मचाया—"दौड़ो दौड़ो मुझे बचाओ। मुझे बचाओ।" श्रीकृष्ण ने कहा—"दुष्ट अब किसे सहयोग के लिए पुकारता है, किसी के साथ तू ने कभी कोई सहानुभूति दिखाई है, कभी तेरे हृदय में करुणा जागी है, तूने जब कभी किसी के प्राणों की रक्षा नहीं की तो फिर तुझे आज कौन बचाने आयेगा।

"मूर्ख! मैं तेरा सिर तोड़ दूगा, खून पी जाऊंगा। तनिक मुझे उठने दे।" भूमि पर लेटे हुए, कंस ने उठने का प्रयत्न करते हुए कहा।

श्रीकृष्ण ने एक अट्टहास किया—"दिखा कहां है वह तेरा असीम बल, जिस पर तुझे अहकार था, खून तो तब पियेगा जब तू उठ सकेगा? कस! भूल जा उठने की बातें, अहकारी का पतन जब होता है तो फिर वह उठा नहीं करता।"

"अरे कोई मुझे बचाओ" कंस फिर चीखा।

उधर कस के कुछ सैनिक इकट्ठे होकर आगे बढ़े। उन्हें भय था कि कहीं कस श्री कृष्ण के हाथों से बच निकला तो उन्हें मार डालेगा, एक बार इसी भय से उन्होंने एक साथ मिल कर हल्ला बोल दिया। बलराम ने फिर मच के स्तम्भ उखाड़कर उन पर प्रहार किया। कुछ

के सिर टूटने थे कि शेष भयभीत होकर मधु मक्खियों की भांति भाग पड़े।

श्री कृष्ण ने कंस को सम्बोधित करके कहा—"देख, अपनी आँखों से देखकि मुनिवर एवंता की भविष्य वाणी आज सत्य सिद्ध हो रही है, और तू लाख प्रयत्न करने पर भी, अनेक षड्यन्त्रों के जाल रचने पर पर भी अपने नाश को नहीं रोक पा रहा। दिखा कहां है तेरी वह तलवार जो संसार भर में कोहराम मचा सकती है ? कहां है तेरा वह बल जिससे कि तू मेरू पर्वत को भस्म कर सकता है। दिखा कहां है तेरे वे बाण जिनसे सारा संसार थर्राता है। क्या तेरे वह अस्त्र शस्त्र वह बल तेरे काम आ रहे हैं ? मूर्ख अहकार का परिणाम अपनी आखों से देख।"

इतना कहकर श्री कृष्ण ने कंस के सिर पर जोर से पैर मारा। चोट से कस का एक भयंकर चीत्कार निकला और उसकी आँखें फैल गई। सारे ससार को भस्म कर डालने व जगत पति व भगवान् होने की डींग हाकने वाले की इह लोक लीला समाप्त हो गई। उसके अन्यायों से त्रसित जनता उसकी मृत्यु देखकर हर्षनाद करने लगी। गोकुल वासियों ने श्री कृष्ण की जय जयकार आरम्भ कर दी।

श्री कृष्ण कंस को घसीट कर मण्डप से बाहर ले आए। कस को मृत देखकर जरासध के सैनिक कृष्ण पर वार करने के लिए दौड पडे। जरासध की सेना को कृष्ण के मुकाबले पर आते देख समुद्रविजय से न रहा गया, उन्होंने अपने सैनिकों को कृष्ण तथा बलराम की रक्षा करने का आदेश दिया। जरासध की सेना के मुकाबले पर समुद्रविजय की सेना का आना था कि जरासध के सैनिकों के पैर उखड गए। वे भाग पड़े।

समुद्रविजय ने श्री कृष्ण की पीठ थपथपाई बलराम को बधाई दी और फिर हर्ष पूर्वक दोनों को अपनी छाती से लगा लिया—"बोले—आज तुमने जो भी वीरता दिखाई है उस पर मुझे गर्व है। वास्तव में तुमने पृथ्वी को एक भयकर पापी के भार से मुक्त कर दिया।"

फिर उन दोनों को रथ में बैठा कर वसुदेव के पास ले गये। वसुदेव ने दोनों को छाती से लगा लिया वे बोले—मेरे पुत्रों आज तुमने वह कार्य किया है जिसे भावी सन्तानें भी स्मरण रक्खेंगी,

तुम्हारी पुनीत गाथा चलती दुनियां तक दोहरायी जायगी।"

इस प्रकार देवकी और वसुदेव कस के बन्दी गृह से मुक्त हो गए। उस बन्दी गृह से जो उन्हीं के वचन से निर्मित हुआ था। उग्रसेन को तुरन्त मुक्त कर दिया गया। कसकी यमुना तट पर उत्तर क्रिया की गई और उसके उपरान्त यादवों की एक विराट सभा आयोजित करके अतिमुक्त मुनि काण्डसे लेकर कंस वध तक की सारी कथा कह सुनाई।

सभा हो रही थी कि एक नारी कण्ठ से निकला चीत्कार सुनाई दिया। सभी के कान उस ओर लग गए। सभी को कारवाई रुक गई। सभी विस्मित हो यह जानने की चेष्टा करने लगे कि यह करुण क्रन्दन किस का है। चीत्कार करने वाली सभा की ओर आ रही थी, चीत्कार निकट से निकट होते गए। और अब यह स्पष्टतया सुनाई देने लगा कि वह रुदन करने वाली श्रीकृष्ण को कोस रही है। सभी को यह समझते देर न लगी कि चीत्कार करने वाली कौन हो सकती है।

जीवयशा ने कुछ ही देरी में सभा में प्रवेश किया। उसने आते ही शोर मचाया—"पति के हत्यारे को आप लोग इस प्रकार अपनी सभा बीच बैठाए हुए है। आप लोगों का लज्जा नहीं आती कि जिसने मथुरा नरेश का वध किया वह शांति पूर्वक यहां बैठा है। मेरे सुहाग मे आग लगाने वाले इस अन्यायी का आपने कुछ भी नहीं किया? मेरे माथे से सुहाग बिन्दी पोंछ डालने वाले को क्या आपसे दण्ड नहीं दिया जाता? क्या ससार मे ऐसा कोई भी नहीं है जो मेरे पति की हत्या का बदला ले सके?"

सभा में उपस्थित सभी लोग मौन बैठे रहे। कुछ यादवों ने चाहा कि वे उसे ललकार दें पर नारी के साथ किसी भी प्रकार की वार्ता करना उन्हे अच्छा नहीं लगा। वे चाहते थे कि जीवयशा वहा से चली जाय।

जीवयशा ने सभी को मौन देखकर फिर कहा—आप लोग चुप है जैसे सभी मृतप्राय हों। आप लोग कायर है। आप लोग निष्प्राण है। पर आपका भला क्या बिगड़ा आप क्यो बोलने लगे। इस अन्यायी कृष्ण से प्रतिशोध लेने का साहस तो वह करेगा जिसके हृदय पर चोट लगी हो। आपको क्या पड़ी है?" फिर श्री कृष्ण को सम्बोधित करते हुए वह बोली—ओ हत्यारे अहीर! तू यह मत

समझना कि जीवयशा विधवा होकर शान्त बैठ जायेगी। मेरे हृदय में प्रतिशोध की आग धधक रही है। मैं जानती हूँ कि समस्त यादवों ने मेरे पति के साथ विश्वासघात करके उनकी हत्या कराई है उन्होंने तुम्हारे साथ मिलकर मेरे सुहाग में आग लगवाई है। इन सब ने तुम्हारे साथ मिलकर षड़यन्त्र रचा है। पर मैं यूं ही शाँत नहीं हो जाऊंगी, मैं तुम्हारा और इस कलमुहे बलराम का रक्त पी जाऊंगी। मैं तुम दोनों को इसी तरह मरवाऊंगी, तभी मेरे हृदय की सुलगती आग शान्त होगी।"

इसके पश्चात् उसने उग्रसेन की ओर दृष्टि डाली और आग्नेय नेत्रों से उसे घूरते हुए बोली—"बुड्ढे! अपने बेटे को मरवा कर तू उन्मत्त हो यहाँ बैठा है, तुझे लज्जा नहीं आई, अपने बेटे के हत्यारे के पास ठाठ से बैठते हुए। अरे निर्लज्ज तुझे तो चाहिए था कि इन सब और कृष्ण दोनों की बोटी बोटी नोच डालता, पर तू क्यों ऐसा करने लगा है। तू आज तो फूल कर कुप्पा हो गया है, तुझे तो मथुरा नरेश होने की लालसा सता रही है। तूने ही मेरे पति की हत्या कराई है। पर याद रख तुझे भी चैन नहीं मिल सकता। मैं अपने पिता से तुझे यम लोक पहुँचवाऊंगी।"

उग्रसेन से न सहा गया, वे क्रोध में जलने लगे। जीवयशा को ललकार कर कहा—अरी निर्लज्जा! कंस वध से भी तेरी आँखें नहीं खुलीं। फिर रक्तपात कराने का बहाना ढूंढ रही है। क्या तूने मेरे कुल का ही नाश कराने की सोच ली है? निकल यहां से। जो तुझे करना है कर गुजर, पर नारी समुदाय के मस्तक पर कलंक न लगा। जरासंध की नाक मत कटवा। यहां से चली जा। मुझे क्रोध मत दिला मुझे डर है कि सभा बीच ही कोई अनुचित काण्ड न हो पड़े। तुझे जो कुछ करना है कर, पर इस प्रकार इतने पुरुषों में आकर लज्जा को ताक पर रख कर जो तू भौंक रही है, इससे मेरे कुल पर कालिख लग रही है, जरासंध तेरी बेहयाई को सहन भले ही कर ले, पर मेरे लिए यह असह्य है।"

जीवयशा न मानी, वह जोर जोर से रुदन करने लगी और राम-कृष्ण, उग्रसेन आदि को बुरी तरह गालियां देने लगी। तब

उसने अपने को सम्भालते हुए पूछा—"क्या कस · · ?"

"हां पिता जी, मेरे पति देव की हत्या कर दी गई।" जरासंध क्रोधाग्नि से जलने लगा, उसने उच्चर स्वर मे पूछा—"कौन था वह मूर्ख दुष्ट, जिसने कंस पर हाथ उठाने का दुस्साहस करके अपनी मृत्यु को आमन्त्रित किया है ?"

जीवयशा ने रोते हुए कहा—"पिता जी ! राम कृष्ण, दो अहीर पुत्रो ने अनेक राजाओं की उपस्थिति में उन की निर्भय हत्या कर दी।"

"क्या उस समय किसी राजा ने भी उनकी सहायता नहीं की ?" जरासंध ने आश्चर्य से पूछा।

"नहीं, पिता जी, नहीं, सारे यादव वशियों ने पूर्वयोजित षड्यन्त्र द्वारा मेरे पति को मरवा दिया।"

"उस समय कस की सेना को क्या हो गया था ?"

"जो कुछ थोड़े बहुत सैनिक वहाँ थे, उन्होंने उन दुष्टों को मारना चाहा, पर उनके सामने किसी की भी न चली। हाय मैं लुट गई पिता जी !" जीवयशा रोने लगी।

"बेटी, तुम इस प्रकार रुदन करके मेरा हृदय मत दुखाओ, जरासध सहानुभूति पूर्वक बोला, तुम विश्वास रक्खो कि मैं उन दुष्टों को यहीं पकड़ मंगाऊंगा और तुम्हारे सामने उनकी बोटी बोटी कटवा डालूंगा। ऐसा भयकर दण्ड दूंगा उन्हे जिसे सुनकर पृथ्वी भी कांप उठेगी। उन मूर्खों ने जान बूझकर विषधर के मुंह में उंगली दी है।"

"पिता जी ! वे अकेले नहीं हैं, उनके साथ कितने ही राजा हैं। समुद्रविजय उनका सहयोगी है। वह ही उन्हें अपने घर ले गया है।" जीवयशा ने कहा।

जरासध की आँखों में रक्त उतर आया। वह बबकारा—"क्या समुद्रविजय ने ही उन्हें शरण दी ? उसकी यह औकात ? क्या वह मेरी तलवार के चमत्कार को भूल गया ? मैं चाहूँ तो शौरीपुर की ईंट से ईंट बजा सकता हूँ।"

"पिता जी ! मुझे बुरी तरह अपमानित किया गया है। मैंने यादवों की सभा में शपथ ली है कि बलराम और कृष्ण की बोटी बोटी नुचवा दूंगी। अब आप ही का मुझे आसरा है, आप ही मेरे पति की हत्या का बदला ले सकते हैं। क्या मैं विधवा होकर अपने सुहाग के उजाड़ने वालों को अपने सामने फूलता फलता देख सकती हूॅ ?" जीवयशा ने पिता के क्रोध को और भी उभारने की चेष्टा की।

"मैंने तीन खण्ड में अपनी विजय पताका लहराई, जरासध ने क्रोधावेश में कहना आरम्भ किया, मैंने हर उस नरेश का सिर कुचल दिया जिसने मेरे सामने शीश नहीं झुकाया। आज तक मेरे बन्दी गृह मे कितने ही ऐसे नृप सड़ रहे हैं जिन्होंने तनिक सी भी उद्दण्डता दर्शाई। मैंने किसी को सिर ऊचा करके खडे होने का अवसर नहीं दिया। कितने ही नृपों के मुकुट मेरी ठोकरों मे पडे। मैंने अपने बल का डका सारे विश्व में बजाया। फिर यादवों की क्या मजाल कि मेरे सामने सिर उठा सकें। बेटी ! तुम विश्वास रक्खो कि मैं उन दुष्टों के मुण्ड काटकर अपनी खड्ग की प्यास बुझाऊगा।"

"यदि आप ऐसा नहीं करेगे तो आज तो मुझे केवल सुहाग के लिये रोना पड़ रहा है, एक दिन आपके लिए भी अश्रुपात करना होगा ?" जीवयशा ने अश्रुपात करते हुए कहा।

"क्या बकती हो ? क्या कोई मेरे सामने भी आँख उठा सकता है ?"

"पिता जी ! अतिमुक्त मुनि ने ऐसी ही भविष्यवाणी की है। उन की एक भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो चुकी है। उसी की तो यह सारी आग लगाई हुई है।" जीवयशा ने कहा। एवता मुनि का नाम सुन जरासध चौंक पडा। "क्या कोई मुनि भी इस काण्ड के पीछे है ?"

पिता के प्रश्न का उत्तर देते हुए जीवयशा ने अतिमुक्त मुनि की भविष्य वाणी से लेकर कस वध तक की सारी कथा कह सुनाई। यह कथा सुनकर जरासध बोला—"तो इसका अर्थ यह है कि इस सारे काण्ड में कस की ही एक भूल विशेषतया उसके नाश का कारण बनी।"

"कैसी भूल ?"

"जीवयशा! यदि कंस देवकी को ही मार देता तो न रहता बांस न बजती बांसुरी। देवकी ही न रहती तो यह दुष्ट उत्पन्न ही कैसे होता? और क्यों आज यह दिन देखना पड़ता—अब जो कुछ हुआ, बेटी! उसे भूल जाओ और विश्वास रक्खो कि कंस के हत्यारे को सपरिवार यमलोक पहुँचाऊंगा।"

इस प्रकार धैर्य बंधा कर जरासंध ने जीवयशा को महल में भेज दिया और उसी समय सोम भूप को बुलवाकर दूत रूप में समुद्रविजय के पास भेजा।

जरासंध के दूत का शौरीपुर में आगमन

समुद्रविजय का दरबार लगा था कृष्ण, बलराम आदि भी वहाँ उपस्थित थे। द्वारपाल ने सोम भूप के आगमन की सूचना दी। समुद्रविजय ने उन्हें अन्दर भेज देने की आज्ञा दे दी।

सोम भूप ने आदर पूर्वक नमस्कार किया। समुद्रविजय ने बैठने की आज्ञा दी। और पूछा—"आज आपका इधर कैसे आगमन हुआ? अकस्मात, बिना किसी सूचना के आपका आगमन अवश्य ही किसी विशेष कारण वश हुआ होगा?"

"मैं आपके पास जरासंध के दूत के रूप में उपस्थित हुआ हूं।" सोम भूप बोला।

"तो फिर बताइये क्या सन्देश है?"

"महाराज जरासंध, तीन खण्ड के अधिपति ने आदेश दिया है कि मैं आपके पास जाकर कंस के हत्यारे बलराम और कृष्ण को अपने अधिकार मे ले लूं और यहाँ से ले जाकर उचित दण्ड के लिए महाराज को सौंप दूं।" सोमभूप ने कहा।

सोमभूप की बात सुनकर समुद्रविजय को कुछ क्रोध आया, पर वे क्रोध को पी गए और गम्भीरता पूर्वक बोले—यह तो उनका आपके लिए जो आदेश है वह आपने सुना दिया। पर मैं उनका आपको दिया हुआ आदेश सुनना नहीं चाहता, उससे मुझे भला क्या प्रयोजन? आप तो मुझे वह सन्देश सुनाईये जो उन्होंने आपके द्वारा मुझे भिजवाया है।"

सोम भूप ने अपनी भूल अनुभव करके कहा---उन्होंने आपको यह सन्देश भेजा है कि कस के हत्यारों को आपने अपनी शरण में लेकर उनसे अपनी मैत्रि और उसके नियमों का उल्लघन किया है। मैत्री बनाए रखने के लिए वे इस भूल को भूल जायेंगे, आप उन्हें मेरे हवाले कर दें। और इस प्रकार उनके जामता की हत्या करने वालों को उचित दण्ड देने में सहयोग दें।"

समुद्रविजय को सोम भूप की बात सुनकर क्रोध आ रहा था, पर वे अपने मनोभावो को छुपा रहे थे। उन्होंने कहा—"सोम भूप ! आप उन से जाकर कह दें कि हम कस वध को न्याय पूर्ण मानते हैं। दुष्ट को दण्ड देना हम सब का कर्तव्य है। न्याय तो यही कहता था कि जरासघ ही उस दुष्ट को दण्ड देते। पर जब उन्होंने अपने कर्तव्य को नहीं निभाया तो इन कुमारों ने इस कार्य को पूर्ण किया। इस पर तो उन्हें उनको बधाई देनी चाहिए थी। हम तो इस प्रतिक्षा में थे कि आप उनका इन कुमारों के लिए बधाई का सन्देश पहुँचायेंगे। उल्टे इन वीरों के विरुद्ध ही आप कह रहे हैं। न यह तर्क संगत है और न न्याय संगत ही। अतएव अन्याय पूर्ण बात में हम उन का साथ नहीं दे सकते।"

"देखिये ! आप उनके मित्र हैं। आपको उन्हें सहयोग प्रदान करना चाहिए।"

"मित्र का यह कर्तव्य नहीं है कि वह अपने मित्र को कुपथ पर भी सहयोग दे, समुद्रविजय ने कहा, आप उनसे जा कर कह दें कि समुद्रविजय उनकी अन्याय पूर्ण बातों में कोई सहयोग नहीं दे सकते।"

"इन कुमारों को आप मेरे हवाले कर दे। यही आपके लिए उचित है।" सोम भूप बोला।

"आप उन से जाकर कह दे कि इन वीरों ने अपने छ भ्राताओं की हत्या का कस से बदला लिया है। अतएव उन्हें कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता। आप भी तो भूप हैं आप स्वय ही सोचें कि क्या जरासघ का इन कुमारों पर कोप अनुचित नहीं है ?"

"मैं उनका दूत हूं, उनके आधीन हूं। मेरा कर्तव्य है कि उचित, अनुचित का भेद समझे बिना ही उनकी आज्ञा का पालन करू। अतएव मेरी तो यही सम्मति है कि आप इन्हें मेरे हवाले कर दें। और जैसे इनके छ भ्राताओं की मृत्यु पर आपने सतोष कर लिया, इसी तरह इन दो के लिए भी आप सतोष करें। इसी मे खैर है। सांप मुंह मे उगली देना, पर्वत को सिर से चूर्ण करना, सोये हुए सिंह को जगाना, प्रज्वलित अग्नि को पावों से बुझाना और अपने से अधिक बलिष्ठ से विरोध करना उचित नहीं है। आप स्वय ही सोचे कि बकरी का सिंह से द्वेष करना कैसे उचित ठहराया जा सकता है?" सोम भूप ने जरासघ का भय दर्शाते हुए कहा।

"आप दूत है मेरे परामर्श दाता नहीं।" आवेश में आकर समुद्रविजय बोले।

"तो फिर मगधेश्वर का अन्तिम सन्देश भी सुन लीजिए कि भलाई इसी मे है आप राम और कृष्ण को मुझे सौप दे। वरना अपने सिंहासन की रक्षा का प्रबन्ध करें। अपने प्राणों की खैर मनाये।" सौम भूप ने धमकी पूर्ण लहजे मे कहा।

इतनी देर से कृष्ण सौम भूप की बातें सुन सुन कर दांत पीस रहे थे, पर वे कुछ बोल नहीं रहे थे क्योंकि समुद्रविजय और सोम के बीच में बोलना वे नहीं चाहते थे। पर जब उसके मुख से धमकी सुनी तो उनसे न रहा गया वे बोल ही पड़े—"इन गीदड़ भबकियों, बन्दर घुड़कियों से हम घबराने वाले नहीं है। उस अहंकारी से आप जाकर कह दीजिए कि जो उसके शेर कस की हत्या कर सकते है वे इतने बलिष्ठ हैं कि जरासंध के सिर की खाज भी मिटा सकते हैं। वह होश की बात करे। कहीं ऐसा न हो कि हमें उसकी मिट्टी भी ठिकाने लगानी पड़े।"

सोम को यह अपना और जरासघ का घोर अपमान प्रतीत हुआ। वह क्रोध में भर कर बोला—"कुलांगार! क्यों अपने कुल का नाश करवा रहा है। जरासंध की तलवार से कभी वास्ता नहीं पड़ा। यदि कभी उसके हाथ देख लिए तो बोलना करना भूल जाओगे।"

सोम की धृष्टता को देखकर समुद्रविजय दांत पीसने लगे। चाहते थे कि कुछ कहें, पर उसी समय श्री कृष्ण हाथ मे नंगी खड्ग लेकर सौम की ओर दौड़ पड़े। गरज कर बोले—ओ दुष्ट देख रहा हू कि जरासंघ से अधिक अहंकारी तू स्वय है। प्राणो की खैर चाहे तो यहाँ से इसी क्षण भाग जा, वरना जरासध से पहले मुझे तेरे होश ठिकाने लगाने पड़ेंगे। जाकर कह दे उस दुष्ट जरासंध से कि किसकी खड्ग से भूमि काँपती है। यह रण क्षेत्र में निर्णय होगा।"

सोम कृष्ण के हाथ में नगी खड्ग देखकर कांप उठा और यह कहता हुआ वहां से भाग गया कि—"युद्ध क्षेत्र में ही तुम्हें जरासघ की शक्ति का पता चलेगा।"

यादवों का शौरीपुर से प्रस्थान

इधर दूत सोम के लौट जाने पर यहां राजा समुद्रविजय मारे एक चिन्ता के व्याकुल हो उठे। चिन्ता भी साधारण नहीं थी, वे यह सोच रहे थे कि त्रिखण्डी मगधाधीश की माग तो सर्वथा अनुचित थी ही और उस समय उन्हें जो उत्तर दिया गया वह भी सर्वथा उचित था। किन्तु हमारे इस उत्तर से उसे सतोष तो नहीं प्रत्युत क्रोध आयेगा। और वह शौर्यपुर पर आक्रमण करेगा। जरासंध की उस अपार वल-वाहिनी (सेना) का मुकावला हमारी अल्प बल वाहिनी सेना कैसे कर सकेगी? और जव प्रत्याक्रमण नहीं कर सकेंगे तो उसका अर्थ यह हुआ कि सदा के लिए हमें आत्म-समर्पण करना पडेगा फिर राम और कृष्ण की मृत्यु भी अवश्यभावी है अत उन्होंने एक दिन क्रोष्टु की नैमित्तिक को वुला कर कहा कि—"जरासंध के साथ युद्ध हो जाने पर हमारी दशा क्या होगी? कृपया बताईये कि युद्ध का परिणाम क्या होगा?"

नैमित्तिक ने सारी बातों को ध्यान मे रख कर अपनी विद्या के

द्वारा बताया—"राजन् ! जरासध के भारी हमले से आप निराश न हों। जिस कुल में कृष्ण और बलराम जैसे पुण्यवान होंगे, उसकी हार असम्भव है। उस कुल के आगे मनुष्य तो क्या देवताओं की भी एक नहीं चल सकती। आप विश्वास रक्खें जीत अन्त में आप ही की होगी किन्तु "राजन् ! आप शत्रु से चारों ओर से घिरे हैं, शौरीपुर की स्थिति जरासंध के विरुद्ध युद्ध करने के लिए उपयुक्त नहीं है। जब तक आप इस नगर में रहेगे और इस के चारों ओर युद्ध चलेगा, आप कठिनाईयों और विपदाओं में फसे ही रहेगे।" नैमितिक बोला।

"तो फिर ?"

"आप इसी स्थान को अपनी बपौती क्यो बनाते हैं।"

"तो क्या आप का अर्थ यह है कि हम शौरीपुर छोड़ दें ?" समुद्र-विजय ने प्रश्न किया।

"जी हाँ, आप किसी दूसरे स्थान पर अपनी शक्ति को केन्द्रित कीजिए। नैमित्तिक बोला।

समुद्रविजय सोच में पड़ गए। उन्होंने कुछ देर बाद पूछा—"तो फिर कौन सा स्थान शुभ रहेगा ?"

"आप पश्चिम की ओर जायें, सागर तट की ओर मुख करके बढ़ते चले जायें। चलते ही चले जाये। इधर उधर जाने का विचार न करे, सीधे चले जाये और चलते चलते जिस स्थान पर सत्यभामा की कोख से+ पहली सन्तान उत्पन्न हो, बस वहीं अपनी पताका गाढ़ दें। वहीं आनन्द पूर्वक वास करें और विश्वास रखें कि उसी स्थान पर आप को एक बड़ी धनराशि प्राप्त होगी। युद्ध के लिए आवश्यक साधन भी जुट जायेंगे।" नैमित्तिक की बात सुनकर उन्होंने श्रीकृष्ण, बलराम और अपने सेनानायकों, मन्त्रियों आदि को बुला कर ज्योतिषी की बात पर विचार विमर्श किया। सभी ने युद्ध नीति की दृष्टि और समय की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए शौरीपुर को अनुपयुक्त ठहराया और पश्चिम दिशा की ओर प्रस्थान करना उचित समझा।

+सत्यभामा दो पुत्रों को जन्म देवे। त्रि० पा० '—

राजा उग्रसेन को भी सूचना दे दी गई। वसुदेव ने सभी भूले विसरे साथियों, सैनिकों और योद्धाओं को सूचित किया। सारी सेना एकत्रित की गई। और यह एक भारी सार्थ (काफला) सागर तट की ओर चल पडा। उग्रसेन भी अपनी सेना लेकर उनके साथ हो लिए। मातृभूमि, जन्मभूमि से किसे प्रेम नहीं होता, जब समस्त यादव योद्धा पश्चिम दिशा में चल पड़े और भारी सेनाए लेकर शौरीपुर व मथुरा को खाली कर के अनायास ही निकल गए तो सुनने और देखने वालों को अपार आश्चर्य हुआ।

काली कुंवर का आक्रमण और उसकी मृत्यु

उधर सोम भूप ने जरासध से जाकर सारा वृतात सुना कर कहा—"हे मगधेश्वर, कृष्ण बडा अहकारी है। यदि मैं अपने प्राणों की रक्षा के लिए वहा से न भागता, तो आप को मेरी मृत्यु का ही समाचार मिलता।"

जरासध ने क्रोध से कहा—"तो क्या तुम ने युद्ध की घोषणा उन के दरबार में नहीं की।"

"महाराज! मैंने आप की अपार शक्ति की ही बात तो कही थी जिस पर कृष्ण आग बबूला होकर नगी खड्ग लेकर मेरे ऊपर चढ़ आया। उस ने कहा कि मैं जरासंध की भी हत्या करूंगा, जाकर उससे कह दे कि अपनी जान की खैर मनाए। मैं यह कह कर वहां से चला आया कि महाबली मगधेश्वर के अपमान का मजा तुम्हें युद्ध भूमि में चखाया जायेगा।"

सोम की बात सुनकर जरासध ने आवेश मे आकर कहा—"ठीक है। तुम ने अच्छा ही किया।"

फिर उसने अपने दरबार में उत्तेजित होकर कहा—"क्या यहाँ कोई ऐसा वीर है जो उनको पकड कर मेरे सामने प्रस्तुत करे? जो कोई ऐसा वीर हो जिसे विश्वास हो कि वह यादव कुल की समस्त सेना को परास्त कर उन्हें बांध कर ला सकता है, वह सामने आये। है कोई ऐसा जा इस निश्चय का बीडा उठायेगा?

उसी समय जरासघ पुत्र काली कुंवर अकडता हुआ उठा और उत्साह पूर्वक कहने लगा—"मैं बीड़ा उठाता हूँ मैं इस खडग की सौगंध

×कई काली कुंवर के रण में जाने से पहले यादवों के साथ युद्ध होना भी मानते हैं।

खाकर कहता हूँ कि आप को मुख तब दिखाऊंगा जब अपने साथ यादवों को बांधकर ले आऊंगा। यहाँ तक कि वे समुद्र व अग्नि मे छुपे हुए होंगे तब भी खींचकर बाहर निकाल लाऊंगा" अपने इस निश्चय को पूर्ण किए बिना वापिस नहीं आऊंगा।"

जरासघ की बांछे खिल गई। वह गद्‌गद होकर बोला—"शाबाश, कुंवर! वास्तव मे तुम वीर हो रणधीर हो। तुम में मेरा अजेय रक्त विद्यमान है। मुझे तुम पर गर्व है। तुम्हारी सहायता के लिए योद्धा तुम्हे दिए जायेंगे और साथ ही कुमार यवन सहदेव भी तुम्हारे साथ होगा।"

उत्साह पूर्वक काली कुंवर ने महान योद्धा साथ लेकर यादवो का पीछा किया। जब यादवों के सार्थ (काफले) ने अपने पीछे धूल उड़ती देखी, जो भूरे बादलों की नाई उठ रही थी, तो समझ लिया कि शत्रु ने धावा बोल दिया है। उन्होंने बहुमूल्य सम्पत्ति से भरी गाड़ियां आगे बढ़ा दी और योद्धा उनके मुकाबले के लिए पीछे हो गए।

कहते है कि उस समय राम और कृष्ण के रक्षक कुल देव ने उनकी सहायता की। उसने रास्ते के निकट ही कुछ छोटी और कुछ बड़ी चिताए जला दीं उनसे धू धू करके धधकती ज्वाला की लपटें निकल रही थीं। और धुए के बादल उठ रहे थे। यह सभी उस देव की माया थी। उन चिताओं के बीच एक स्थान पर एक स्त्री रो रही थी।

जब काली कुंवर अपने दल बल सहित चिताओं के निकट आया, उसे इतनी सारी चिताए एक साथ जलते देखकर आश्चर्य हुआ। और नारी चीत्कारों ने उसे अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उसके मन में प्रश्न उठा कि यह सब क्या है और क्यों है। वह घोड़े से उतर गया और रुदन करती स्त्री के पास जाकर पूछा—"भद्रे! तुम क्यों रोती हो? तुम्हें क्या दुख है?"

स्त्री ने हिचकियो और सिसकियो के बीच कहा—"हे कुमार मैं वसुदेव की बहिन हूँ, जरासंध के भय से यादवों ने जलकर अपने प्राण गवा दिए है इसलिये मै रोती हूँ। बड़ी चिताओं मे बलराम और कृष्ण तथा अन्य यादव कुल के रत्न हैं और छोटी चिताए

उनके सहयोगियो तथा अन्य सम्बन्धियों की हैं। मैं उन के शोक में रुदन कर रही हूं।" इतना कहकर वह स्त्री पुनः रुदन करने लगी।

स्त्री की बात सुन कर काली कुंवर को बहुत हर्ष हुआ। उसने सोचा—"चलो अच्छी बला टली। अब मैं उनके जल मरने की कोई निशानी लेकर पिता जी को दिखा दूंगा।" यह सोचकर वह उस चिता की ओर बढा जिसे राम कृष्ण की बताया गया था, जब वह चिता के निकट गया, उसी समय देव उठा और उसने काली कुवर को चिता में धक्का दे दिया, जिससे गिरकर वह वहीं भस्म हो गया। जीवित चिता में जलते काली कुवर के चीत्कारों को सुन कर उसके सहयोगी दौडे, देव वहां से अ तर्ध्यान हो गया। उन्होंने आकर कुवर को जलते देखा, पर तब तक उसके प्राण पखेरू उड चुके थे। वे शोक करते हुए वापिस जरासध के पास पहुँचे और उसे जाकर बताया कि काली कुवर को किसी ने चिता में रख दिया और वह जीवित ही जल कर मर गया। जरासध को यह समाचार सुनकर बहुत ही दुख हुआ। उसके हृदय पर भयकर आघात पहुंचा।

द्वारिका पुरी की स्थापना

जब काली कुवर की मृत्यु का समाचार यादवों को मिला तो उन्हें अपार हर्ष हुआ। वे सोचने लगे कि पापियों को स्वय ही अपने कर्मों का फल मिल रहा है। लक्षण बता रहे हैं कि विजय हमारी ही होगी।

एक बार मार्ग में उनकी अतिमुक्त कुमार मुनि से भट हुई। समुविजय ने उनके चरणों में शीश रख दिया और अपनी सारी स्थिति को कह सुनाया। अन्त मे पूछा कि—"हे मुनिवर! कस तो मारा गया अब जरासध ने हमें परेशान कर रक्खा है, वास्तव मे उस की शक्ति हमारी शक्ति के सामने अधिक है, इसी लिए हम शौरीपुर त्याग कर जा रहे हैं। आप कृपया बताइये तो सही कि इस युद्ध का क्या परिणाम होगा?'

मुनिवर बोले—"तुम्हारे कुल मे बलराम और श्री कृष्ण सी पुण्यात्माए हैं और इससे भी महान बात यह है कि अरिष्टनेमि बाईसवें तीर्थङ्कर भी आप ही के घर जन्म ले चुके हैं। अतएव आप

को ससार की कोई भी शक्ति परास्त नहीं कर सकती। अन्त में आप की ही विजय होगी और तीन खण्ड का राज्य आप ही के कुल को मिलेगा।"

मुनिवर की वाणी सुनकर सभी यादवों को अपार हर्ष हुआ, उन्होंने मुनिवर को वन्दना की और आगे बढ़ गए।

सौराष्ट्र मे रत्नागर तट पर जाकर सार्थ (काफले) ने डेरा डालदिया। वहीं सत्यभामा की कोख से भानु और भामर पुत्रों ने जन्म लिया। सारे यादवों ने हर्ष मनाया। यात्रा मे ही नाच गान से शिशु जन्म का अभिनन्दन किया। पश्चात् क्रोष्टुकी नैमित्तिक के कथनानुसार श्री कृष्ण ने तीन दिन तक घोर तप किया, जिसके फल स्वरूप तीसरी रात्रि मे लवण समुद्र का अधिष्ठायक सुस्थित(लवराठी) देव उनके सामने अवतरित हुआ और उसने उन्हे पाँचजन्य शंख और कौस्तुभमणि रत्न और वलदेव को सुघोष नामक शंख तथा दिव्य रत्नमाल दिए और पूछा—"कहिए! आपने कैसे याद किया ?"

"तुम हमारी दशा से कदाचित परिचित होगी। हम शौरीपुर छोड़ आये। अब यहां आकर बसने का निश्चय कर लिया है। अतएव हमे उचित साधन चाहिए।" श्री कृष्ण बोले।

उसने कहा—"आप निश्चित रहे। मैं इन्द्र से भेंट करके सारा प्रबन्ध कर दूगा।"

उसने अपने वायदे के अनुसार इन्द्र से जाकर कहा, और इन्द्र की आज्ञा से देवों ने द्वारका नगरी बसाई। जिसमें समस्त प्रकार की सुख सुविधाए प्राप्त थीं।

कुबेर ने श्री कृष्ण को पीताम्बर, नक्षत्र माला, रत्न, मुकुट, दिव्य शारङ्ग धनुष, गदा कौमुदी. गरुड़ ध्वज रथ आदि प्रदान किए और बलराम को बनमाला आभरण, हल मूसल अस्त्र, भूषण वस्त्र, एक भारी धनुष, और ताल ध्वज रथ दिया। इस प्रकार सारी द्वारिका पुरी का निर्माण जिसके पूर्व में गिरनार (पूर्वोत्तर में रैवतक) दक्षिण में माल्यवान, पश्चिम में सौमनस और उत्तर में गन्धमादन पर्वत अवस्थित हैं स्वय देवताओ ने किया था जिसमे समुद्रविजय और वासुदेव आदि के लिए अलग अलग प्रासाद (महल) बनाए गए,

श्री कृष्ण के लिए इक्कीस खण्ड (मंजिल) का महल बनाया गया और अठारह खण्ड का सर्वतोभद्र नामक प्रासाद बलराम के लिए।

द्वारिका जब बस गई ता राज्याभिषेक करके श्री कृष्ण को उस क्षेत्र के नरेश के रूप से सिंहासन पर बैठा दिया गया। और श्री कृष्ण ने नगरी के सभी लोगों को प्रिय, भ्रातृत्व और परस्पर सहयोग की शिक्षा दी। तदुपरान्त श्रीकृष्ण बलराम और समुद्रविजय व वसुदेव ने मिल कर जरासध के विरुद्ध सुव्यवस्थित रूप से युद्ध चलाने की योजना बनाई, युद्ध सम्बन्धी साधन एकत्रित किए।



रुक्मणि मंगल

विन्ध्याचल की दक्षिण दिशा मे विदर्भ नामक देश है, जिसमें एक मनोहर नगर कुन्दनपुर है जहां भीष्मक नामक नरेश राज्य करते हैं। भीष्मक की महारानी यशोमती (शिखावती) ने चार पुत्रों को जन्म दिया, जिनमें से ज्येष्ठ था रुक्म, जो कि बड़ा ही उद्दण्ड और क्रोधी स्वभाव का था। शनि स्वाति के सिद्ध योग से यशोमती ने रुक्मणि नामक कन्या को भी जन्म दिया। जो कि परम सुन्दरी और शील स्वभाव की थी। विद्या के कारण लावण्य और चतुराई में उसके चार चॉद लग गए। आखिर उसने स्त्री उपयोगी विद्याएं पूर्ण करली और वह विवाह योग्य हो गई। तब भीष्मक नृप को उसके लिये उपयुक्त वर खोजने की चिन्ता हुई। चारों ओर दृष्टि डालने पर और नारद के परामर्श से उन्हे श्री कृष्ण ही रुक्मणि के योग्य वर प्रतीत हुए। अतएव उसने अपने मन्त्री पुत्रों और रानी को बुलाकर इस सम्बन्ध में विचार विनियम करना आवश्यक समझा। सभी को बुलाकर कहा—"रुक्मणि अब विवाह योग्य हो गई है अतएव इस भार से मुक्त ही हो जाना श्रेयष्कर है। मैंने चारों ओर दृष्टि डाली, सभी राज परिवारों के कुमारों के सम्बन्ध में विचार किया, उनके गुण दोषों की खोज की, पर मुझे कोई भी ऐसा न दिखाई दिया जिसके हाथ में रुक्मणि जैसी बुद्धिमान् और चतुर कन्या का हाथ दिया जा सके। तब मैंने राजाओं पर दृष्टि डाली। और इस परिणाम पर पहुंचा कि द्वारिका नरेश श्री कृष्ण ही इस योग्य है जिनसे रुक्मणि का विवाह किया जा सके। अब आप लोग अपना मत व्यक्त करे। मैं अपना निश्चय प्रगट कर चुका।"

श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में सभी जानते थे कि वे कितने वीर यशस्वी, न्यायप्रिय और सूझ बूझ के नृप है अतएव किसी ने भी कोई आपत्ति

न की। बल्कि नृप के निश्चय की सराहना की। परन्तु रुक्म ने कहा कि—"मुझे आपके इस निश्चय को सुनकर आश्चर्य हो रहा है। रुक्मणि एक श्रेष्ठ कुल की कन्या है वह एक अहीर पुत्र के हाथों में कैसे दी जा सकती है? कृष्ण तो वर्षों अहीरों का जूठा खाते रहे। कल तक तो वे ग्वाले के नाम से प्रसिद्ध थे पशु चराना ही जिनका मुख्य काम था, आज राजा बन गए तो क्या हुआ है तो ग्वाला ही। मैं अपनी बहिन उस चोर, नचैया और ढोर चराने वाले के साथ विवाह करने में अपना मत नहीं दे सकता। रुक्मणि के लिए कोई कुलवान् वर चाहिए।"

सभी को रुक्म के इन शब्दों को सुनकर आश्चर्य हुआ किसी को को भी आशा नहीं थी कि श्री कृष्ण के सम्बन्ध में रुक्म के यह विचार होंगे। हाँ उनमें से रुक्म की माँ ऐसी थी जो रुक्म के शब्दों से विचार मग्न हो गई थी, वह अपने बेटे के शब्दों को तोल रही थी। भीष्मक नृप श्री कृष्ण के सम्बन्ध में व्यक्त किए गए विचारों को सुनकर व्याकुल हो गए थे क्यों कि वे श्री कृष्ण के प्रशसक थे और नहीं चाहते थे कि अपने कानों से श्री कृष्ण के सम्बन्ध में ऐसे अनुपयुक्त विचार सुनें इतने कठोर शब्दों को तो उनका कोई शत्रु ही प्रयोग कर सकता है।

दमघोष सुत शिशुपाल

बात यों थी कि रुक्म की शिशुपाल के साथ घनिष्ट मित्रता थी। और शिशुपाल श्रीकृष्ण को अपना शत्रु समझता था अतएव मित्र का शत्रु अपना शत्रु की युक्ति के आधार पर रुक्म भी श्रीकृष्ण को अपना शत्रु समझता था।

चन्देरी पति शिशुपाल भी रुक्म की भांति ही उद्दण्ड और अहकारी था, वह इतना मदांध था कि न्याय और अन्याय के बीच की विभाजन रेखा उसके विचार से मिट चुकी थी, वह जो कुछ चाहता उसे ही ठीक उचित और न्यायपूर्ण मान बैठता। क्रोध उसका प्रिय दुर्गुण था, वह क्रोध में आकर अनुचित से अनुचित कार्य कर बैठता। एक ही स्वभाव के कारण शिशुपाल और रुक्म में बहुत घुटती थी।

शिशुपाल का जब जन्म हुआ था, तो ज्योतिषियों ने उसकी जन्म-कुण्डली बनाते हुए जो भविष्यवाणी उसके सम्बन्ध में की थी उसमें बताया था कि शिशुपाल का वध श्रीकृष्ण के हाथों होगा। जब शिशुपाल की माता ने यह भविष्यवाणी सुनी थी तो वह काप उठी थी। वह शिशुपाल को लेकर श्रीकृष्ण के पास पहुंची थी। और शिशुपाल को

उनके चरणों मे रखकर कहा था कि मेरा बालक तुम्हारी शरण है तुम चाहो तो यह ससार में सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकता है। नैमित्तिक बताते हैं कि तुम्हारे हाथों ही इसका वध होगा, अतएव अब इस शरणागत को जीवन दान देना तुम्हारा ही काम है।" श्रीकृष्ण ने शिशुपाल की मां को विश्वास दिलाया था कि—"निन्यानवें बार अपराध करने पर भी मैं इसे क्षमा करूंगा। परन्तु इससे अधिक अपराधों का इसे दण्ड भोगना पडेगा—"जब शिशुपाल ने होश सम्भाला और इसने अपने सम्बन्ध में भविष्यवाणी सुनी थी तो वह समझने लगा था कि ससार मे केवल श्रीकृष्ण ही उसके शत्रु हैं और ऐसे शत्रु हैं जिनके हाथो कभी भी उसके प्राणों पर आ बनेगी। अतएव वह उनके प्रति सदा ही वैरभाव रखता। वह उन्हें अपना काल समझता और उनसे अपनी रक्षा के लिए युक्तियां सोचता रहता। अन्त मे जरासंध को उनका शक्तिशाली वैरी समझकर उससे जा मिला।

रुक्म श्रीकृष्ण को अपने मित्र का वैरी समझता था। इसी लिए वह अपनी बहिन के पतिरूप में श्रीकृष्ण को देखना भला कब सहन कर सकता था।

भीष्मक ने कहा—"बेटा! तुम अभी युवक हो, समझदारी से काम नहीं लेते। तुम ने श्रीकृष्ण के बचपन को देखा पर उनके गुणों पर तनिक भी विचार नहीं किया।"

रुक्म का हठ

रुक्म ने आवेश मे आकर कहा---"यह दोष क्या कुछ कम है कि वह अब तक तो ढोर चराता रहा। उसमें ग्वालों सी बुद्धि है। राजाओं या कुलवन्त लोगों की सी एक भी बात उनमें ढूंढे नहीं मिलेगी।"

"नहीं बेटा! तुम्हें किसी ने बहका दिया है, भीष्मक ने गम्भीरता पूर्वक रुक्म को समझाते हुए कहा, श्रीकुष्ण आज के समस्त राजाओ में अधिक बुद्धिमान और बलिष्ट है। वे तुम जैसे युवकों को सौ बार पढ़ा सकते हैं। उन्होंने कस जैसे योद्धा को क्षण भर में मार कर अपनी वीरता की धाक जमा दी है। उनका रूप दर्शनीय है, उनके तर्क अकाट्य होते हैं। वे न्यायप्रिय और दुखियों के रखवाले हैं। उन्हें अपनी कन्या देना स्वय अपना सम्मान बढ़ाना है।"

पिता जी ! आप तो वृद्ध हो गए हैं। वृद्धावस्था ने आप की बुद्धि भ्रष्ट कर दी है। आप वर्तमान युग की बातें भला क्या जानें। मैं अपनी बहिन का विवाह उस माखनचोर नचैया से होने देकर अपनी नाक नहीं कटा सकता। आप का क्या है आप तो पके आम के समान हैं, न जाने कब परलोक सिधार जायें। लोगो की आलोचनाएँ तो मुझे सुननी होंगी।" रुक्म बोला।

उसकी बातें सुन कर भीष्मक समझ गये कि रुक्म मेरा भी अपमान कर देगा और मेरी न चलने देगा, फिर भी वह पूछ ही बैठे—"तो फिर तुम्हीं बताओ रुक्मणि के लिए और है कोई उपयुक्त वर ?"

"हाँ, है क्यों नहीं, शिशुपाल, कितना सुन्दर, वीर, योद्धा, सुशील, औरसर्वगुण सम्पन्न है। आप ने तो उसे देखा ही है, बल्कि सभी सारे परिवार ने उसे देखा है। जाना पहचाना युवक है। सभी प्रकार से रुक्मणि के उपयुक्त है। श्रेष्ठ कुल की सन्तान है।" रुक्म बोला। और फिर अपनी माता को सम्बोधित करके बोला—"माता जी क्या आप भी अपनी लाडली बेटी का हाथ उस ग्वाले के हाथ में देंगी, जिस का पता नहीं कि कितने दिन और जीवित रहेगा। जरासध उसका कट्टर वैरी है। उसी से डरकर वह शौरीपुर से भाग गया है और जगल में नगर बसा कर रह रहा है। जरासध ताक मे है जब भी कभी जरासध का दाव पडेगा वह उस की हत्या कर देगा। ऐसी दशा में तो रुक्मणि का विवाह उस भगोडे के साथ कराने का सीधा सा अर्थ यह है कि हम जानबूझ कर रुक्मणि को विधवा बनाने पर तुले हैं।"

रानी के ऊपर रुक्म के यह शब्द काम कर गए। एक माता भल यह कब सहन कर सकती है कि वह अपनी पुत्री को ऐसे व्यक्ति के हाथ में सौंप दे, जिसका भविष्य ही अनिश्चित है। इसलिए वह बोली—"बेटा ! तुम ठीक कहते हो। मैं रुक्मणि का विवाह ऐसे के साथ कदापि न होने दू गी।"

"रानी ! तुम भी इस मूर्ख की बातों में आ गई। यह तो शिशुपाल को बहनोई बनाने पर तुला है क्योंकि यह उसका मित्र है। वरना श्रीकृष्ण जैसे महान् नृप के सामने भला शिशुपाल किस खेत की मूली है।" भीष्मक बोले।

"पिताजी ! आपकी बुद्धि बुढ़ापे ने भ्रष्ट कर दी है। आप कुछ सोचने समझने योग्य नहीं रह गए। अच्छा हो इन बातो में आप हस्तक्षेप ही न किया करें। मैं अब समझदार हो गया हूं। मै स्वयं इन सब कार्यों को कर सकता हूं।" रुक्म ने आवेश मे आकर कहा।

बेचारे भीष्मक चुप हो गए। वे समझ गए कि अब अधिक कुछ बोलना व्यर्थ है अतएव वे यह कह कर कि "मैं तो एक कोने में जा बैठता हूँ जो तुम्हारा जी चाहे करो।" दूसरी ओर चले गए। मन्त्री जी ने समझ लिया कि जब रुक्म ने अपने पिता जी की ही एक न सुनी तो फिर हमारी क्या बिसात है, अतः वे भी चुप रह गए।

शिशुपाल के साथ विवाह का निश्चय

तब रुक्म ने माता से कहा—"मां ! मुझे लगता है कि पिता जी शिशुपाल जैसे परम प्रतापी, यशस्वी, महान् योद्धा और रूपवान युवक के साथ मेरी बहिन का विवाह न करने पर तुले है। कहीं उन्होंने उस ढोर चराने वाले से ही रुक्मणि का विवाह कर दिया तो मैं कहीं मुंह दिखाने योग्य न रहूँगा।"

"नहीं ! मै तेरे साथ हूं बेटा। तू जहाँ कहेगा वहीं रुक्मणि का विवाह होगा। मैं अपने बेटे की भला नाक कटने दे सकती हूं। आंखों देखे रुक्मणि को गड्ढे में मैं न धकेलने दूंगी। तेरे पिता जी तो अब इस कार्य से छुट्टी पा गये। अब तुझे और मुझे ही सब कुछ करना है। शिशुपाल के साथ अपनी बहिन का विवाह रचा। मेरे जीते जी इस विवाह को कोई नहीं रोक सकता।"

रानी के द्वारा प्रोत्साहन मिलने से रुक्म गद् गद् हो उठा और अपनी योजना पूर्ति के लिए तुरन्त विवाह के लिए आवश्यक कार्य पूर्ण करने को तैयार हो गया। बोला—माता जब यह सारा बोझ अपने सिर पर आ ही गया है तो हमें शीघ्र ही विवाह सम्पन्न कर डालना चाहिए। ताकि पिता जी को भी कोई रोड़ा अटकाने का अवसर न न मिले और वे यह भी न कह सकें कि उन का सहयोग न लेने से विवाह में इतनी देरि हो गई। उनके तानों से बचने का एक ही उपाय है कि निमंतिया को अभी बुला लिया जाय और लग्न पूछ लिया जाय।"

रानी ने स्वीकृति दे दी। तुरन्त नैमित्तिक को बुला लिया गया और लग्न निकलवाया। नैमित्तिक ने विवाह के लिए माघ शुक्ला अष्टमी

माघ कृष्णा अष्टमी ऐसा भी उल्लेख पाया जाता है।

को श्रेष्ठ मुहूर्त बताया। और साथ में यह भी कहा कि ज्योतिष विद्या बताती है कि इस विवाह में कितने ही विघ्न पड़ेगे, और यह वर अल्पवय में ही मर जायेगा। बल्कि सच पूछो तो यह विवाह असम्भव प्रतीत होता है।

"लगता है तुम भी शिशुपाल के शत्रुओं से मिल गए हो या पिता जी ने तुम्हें बहका दिया है। वरना ऐसी कौन सी बात है जिसके कारण तुम ऐसी बातें कर रहे हो?" रुक्म ने निमतिया कर आरोप लगा कर उसकी बात को ठुकरा दिया। वह बेचारा चुप रह गया। क्या कहता? ऐसे शकाग्रस्त युवक के सामने।

नैमित्तिक को सम्बोधित करके रुक्म बोला–तुम तुरन्त लग्न लिखो मैं देखता हूँ मैं कौन विघ्न खडा करता है।" ब्राह्मण ने लग्न लिखा। चतुर भाट सरसत को बुलाकर लग्न उसके हवाले कर दिया। रुक्म ने उसे समझा कर कहा कि इसे तुम ले कर चन्देरी जाओ, और तुरन्त यह देकर कहो कि माघ शुक्ला अष्टमी के शुभ मुहूर्त में विवाह सम्पन्न होगा। वे अपने साथ सेना भी लाए, क्योंकि सम्भव है कि पिताजी की प्रेरणा से या स्वय ही कृष्ण विवाह में कुछ उत्पात करे। वे एक दिन पूर्व ही यहाँ आ जाए तो अच्छा है, ताकि यदि कृष्ण आये तो उसको घेर कर यहीं मार डालने की योजना पहले ही बना ली जाय और घेर घार कर उसका यहीं काम तमाम कर दिया जाय। इन सब बातों को अच्छी प्रकार समझा देना। और देखो, पिता जी को तुम्हारे जाने का पता न लग पाए। इन सब बातों को भी तुम्हारे अतिरिक्त और कोई न जान पाये। बुद्धिमत्ता से सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न कर देने पर तुम्हें भरपूर पुरस्कार मिलेगा। इस चतुरता से काम करना कि ज्योतिषियों की बात पूर्ण न होने पाये किसी प्रकार का विघ्न न पड़े। उनसे भी अच्छी प्रकार समझा देना।"

इस प्रकार समझा बुझा कर सरसत को विदा किया। और साथ ही एक पत्र भी उसने स्वय लिखकर सरसत को दे दिया जिस में समस्त बातें खूब समझा कर लिखी गई थीं।

सरसत ज्यों ही पत्र, लग्न और सन्देशा लेकर नगर द्वार पर पहुचा उसके सामने एक नकटी कन्या रोती हुई आ गई। वह उसे देखकर चौंक पड़ा। वह सोचने लगा यह तो पहले ही अपशकुन हो रहे हैं।

ज्यो ही आगे बढ़ा सामने से एक विधवा उल्टा घड़ा सिर पर रक्खे आ गई। वह समझ गया कि यह विरोधी लक्षण साफ बता रहे है कि कार्य में सफलता असम्भव है। वृद्धजनों के आशीर्वाद बिना कभी किसी कार्य मे सफलता मिलती ही नहीं। वह सोचने लगा कि क्या किया जाय जिससे यह अपशकुन उसके कार्य की सफलता में बाधक न बने। पर ऐसी कोई युक्ति उसकी समझ में न आई। वह चिन्तित और उदास अनमन्यस्क सा होकर विवश हो आगे चल पडा। अभी अधिक दूरि न गया था कि हीजड़े मिल गए, खून का सा घूंट पीकर रह गया। रथ आगे बढ़ा दिया, तो बाई ओर कोचरी मिल गई, उसका मन मुरझा गया, उदासी और भी गहरी हो गई। रथ रोक कर सोचने लगा कि आगे बढ़ू या पीछे हटूं?—उसकी समझ में कुछ न आता था, निराशा का बोझ हृदय पर लिए हुए उसने रथ को हांक दिया। कुछ ही दूर गया था कि मृगों ने रास्ता काट दिया। वे दाएं से बाएं निकल गए यह देखकर उस के आश्चर्य की सीमा न रह गई कि एक दम से अपशकुनों की भर मार हो गई। उसने फिर रथ रोक लिया। सोचने लगा कि ऐसे अपशकुनों के होने के कारण मुझे आगे न जाकर कुन्दनपुर लौट चलना चाहिए। पर वहां बैठा है क्रोधी रुक्म, यह मेरी एक न सुनेगा, उल्टी मेरे ऊपर आ बनेगी, आगे बढ़ू तो न जाने क्या सकट आ खड़ा हो? वह करे तो क्या करे उसकी समझ में कुछ न आता। विवश होकर वह सोचकर कि जो होना है वह तो होगा ही उसे कौन टाल सकता है अतः जो भी हो चन्देरी जाना ही चाहिए। चन्देरी की ओर रथ बढ़ाने लगा। उसका मन उदासीन था, फिर भी वह जाने को विवश था। पर कभी कभी सोचता जाता कि जो भी अनिष्ट होगा वह कुन्दनपुर के राज्य सिंहासन, रुक्म अथवा चन्देरी के राज्यकुल का, तुझ पर भला कौन सी विपत्ति आयेगी। तेरा काम है लग्न पहुंचाना। इसलिए तुझे क्या पड़ी है चिन्तित होने की? इन बातों से अपने मन को समझाता हुआ वह चन्देरी नगर के द्वार पर पहुँच गया।

ज्यों ही रथ ने चन्देरी में प्रवेश किया, वहां भी अपशकुन हो गया उसे विश्वास हो गया कि ज्योतिषियों की बात सत्य होगी, यह बेल सिरे नहीं चढ़ेगी। उसने द्वार पर जाकर द्वारपाल द्वारा कुन्दनपुर से

लग्न आने का सन्देश भिजवाया। सुनते ही शिशुपाल का मन मयूर नृत्य कर उठा। उसकी आँखों में रुक्मणि जैसी परम सुन्दरी का सोलह शृ गार के साथ उसके महल मे आगमन का काल्पनिक चित्र घूम गया। वह दूल्हा बनेगा, सज धज से बरात जायेगी, चारों ओर नृत्य और सगीत की सभाए सजेंगी। कितनी ही ऐसी मधुर कल्पनाए अनायास ही उसके मन में उठीं। और हर्ष विभोर होकर उसने द्वारपाल को आदेश दिया कि आगन्तुक को आदर सहित महल मे ले आओ।

सरसत ने ज्यों ही महल में पग रक्खा, किसी ने छींक दिया। अचानक उसके पग रुक गए और एक दम से यह विचार उसके मस्तिष्क मे घूम गया कि अपशकुन ने यहाँ भी उसका पीछा नहीं छोडा अवश्य ही यह बेल सिरे नहीं चढेगी। फिर भी अब वह क्या कर सकता था। हठात् उसके पग आगे बढ़ गए। शिशुपाल ने उसका बहुत आदर सत्कार किया। जिसके उत्तर में सरसत ने आशीर्वाद दिया। और बोला—"मैं कुन्दनपुर से आया हूँ और भीष्मक नृप की शीलवती कन्या रुक्मणि का आपके साथ विवाह निश्चित करने के लिए लग्न लाया हूँ।"

"अहो भाग्य! हम सहर्ष स्वीकार करेंगे।" शिशुपाल ने कहा।

"ऐसी ही रुक्म को आशा भी थी।" सरसत ने कहा।

"कहिए महाराज भीष्मक तो सकुशल, स्वस्थ एव प्रसन्नचित्त हैं?" शिशुपाल ने पूछा।

"हाँ वे सकुशल हैं। लेकिन इस विवाह मे उन की सम्मति नहीं है। वे चाहते थे कि रुक्मणि का विवाह द्वारकाधीश श्री कृष्ण के साथ हो पर रुक्म कुवर ने उनकी बात न मानी। रानी जी भी अपनी कन्या का विवाह आप ही के साथ करना चाहती थीं, अतएव उन दोनों की इच्छा से मैं लग्न लेकर आया हूँ।" सरसत ने कहा।

"रुक्म मेरा घनिष्ट मित्र है वह समझदार और बुद्धिमान युवक है।" शिशुपाल कहने लगा, पर आश्चर्य की बात है कि भीष्मक जैसे अनुभवी राजा ने कृष्ण ग्वाले को कैसे पसन्द कर लिया। कोई कुलवान व्यक्ति भला कैसे अपनी कन्या को उस अहीर को दे सकता है।"

"जी! बस यही बात तो रुक्म ने भी कही। पर भीष्मक न माने और वे रुक्मणि के विवाह के मामले में तटस्थ हो गए।" सरसत बोला।

मन ही मन शिशुपाल ने भीष्मक को गालियाँ दीं और रुक्म के प्रति आभार प्रगट किया। इसके पश्चात् सरसत ने रुक्म का संदेश कह सुनाया। सारी बातें अच्छी तरह समझाकर बता दीं। और साथ ही पत्र भी दे दिया। जिसमें लिखा था।

प्रिय मित्र!

अपने पूर्व निश्चयानुसार रुक्मणि को तुम्हारी सह धर्मिणी बनाने के लिए मैंने अपना सब कुछ दांव पर लगा दिया है। पिता जी तक को मेरी हठ के आगे तटस्थ होना पड़ा है। वे तुम्हारे शत्रु कृष्ण के साथ रुक्मणि का विवाह रचाने का निश्चय कर चुके थे। पर मैं यह कैसे सहन कर सकता था कि मेरे मित्र का वैरी मेरी बहिन का पति बने। मै चाहता हूं कि शीघ्रातिशीघ्र विवाह सम्पन्न हो जाए अतएव माघ शुक्ला अष्टमी को विवाह की तिथि निश्चित की गई है। ज्योतिषी बताते हैं कि विवाहमें कुछ विघ्न पड़ेंगे, सम्भव है पिताजी की प्रेरणा से अथवा स्वयं ही वह आये और विघ्न डाले, अतएव अपनी सेना और अस्त्र शस्त्र सहित आयें, एक दिन पूर्व ही यहाँ पहुच जायें तो अच्छा हो ताकि सुरक्षा का उचित प्रबन्ध हो सके। इस अवसर पर हम दोनों बैरी को घेर कर यहीं मार डालें तो जीवन भर का कांटा ही निकल जाए।"

शिशुपाल ने पत्र पढ़ा और इसे कृष्ण वध के लिए उपयुक्त अवसर समझ कर अट्टहास कर उठा। लग्न का सारा सामान आदर पूर्वक लिया और सरसत को उचित उपहार व पुरस्कार दिया।

❀ नारद जी की माया ❀

इधर शिशुपाल रुक्मणि को प्राप्त करके आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करने के स्वप्न देख रहा था, और यह सोचकर ही कि रुक्मणिसी किन्नर वीरांगना अथवा अप्सरा उसकी धर्म पत्नी बनेगी। परन्तु दूसरी ओर रुक्मणि श्रीकृष्ण को पति रूप मे पाने की कामनाए कर रही थी। उसके हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग उत्पन्न करने का सारा श्रेय नारद मुनि को था।

बात यह थी कि एक बार नारद मुनि द्वारिका मे अवतरित हुए। उन्होंने श्रीकृष्ण के राज दरबार मे दर्शन दिए। बलराम और कृष्ण दोनों ने उनका उचित आदर सत्कार किया। पश्चात् नारद जी सत्यभामा को देखने की इच्छा से अन्तःपुर मे चले गये। उस समय

सत्यभामा अपने शृंगार में लगी थी। वह अपना चन्द्र समान कान्तिवान, लावण्यमयी मुख मण्डल को दर्पण में देख रही थी। उसी समय नारद जी श्रीकृष्ण के साथ वहाँ पहुंच गए। वह शृङ्गार में एकाग्र-चित होकर लगी थी, वलिक पूर्णतया तन्मय थी। उसे पता ही नहीं चला कि कोई उसके निकट आ गया है। नारद जी ने जो दूसरी ओर मुह किए खडी सत्यभामा के दर्शन दर्पण मे करने का प्रयत्न करने के लिए आगे झुक कर देखा तो दर्पण में उनका भी मुख चमकने लगा। सत्य-भामा जो अभी तक अपने रूप पर स्वय ही मोहित हो रही थी, नारद जी के प्रतिविम्ब को देखकर चकित रह गई और हठात् उसके मुंह से निकल गया—'हैं! यह कौन राहू आगया यहाँ ?"

नारद जी अपने लिए राहू की उपमा सुनकर चिढ़ गए। उनका मुंह पिचक गया, बडी हास्यास्पद सूरत हो गई उनकी। दर्पण में इस भयानकता को देखकर सत्यभामा ने कहा—"अरे, यह लम्वी तनी हुई खड़ी चोटी, खोपडी सफाचट, पिचका हुआ चेहरा, कुटिल नेत्र, वढी हुई ठुड्डी, राक्षस रूप मेरे दर्पण में कहाँ से उतर आया ?"

और फिर पीछे देखा, सामने खड़े पाये नारद जी। वह उन्हे देख कर खिल खिलाकर हस पडी। इतने जोर से हसी कि श्रीकृष्ण के सकेत करने पर भी वह अपनी हसी न रोक पाई। नारद जी समझ गए कि सत्यभामा मेरी सूरत पर ही हस रही है। उन्हें वहुत क्रोध आया और वे तुरन्त वहाँ से चले आये। उन्हे तो आशा थी कि सत्यभामा उनका हार्दिक अभिनन्दन करेगी, पर हुआ उल्टा ही, उसने तनिक सा भी आदर न किया, वे क्रुद्ध थे और उससे प्रतिशोध लेने के उपाय सोचने लगे। पर श्रीकृष्ण के रहते सत्यभामा को किसी प्रकार का भी कष्ट पहुचाना नारद जी के वस की बात न थी। वरना सन्तान आदि का ही दुख वे किसी प्रकार दे डालते, परन्तु श्रीकृष्ण जैसे पुण्यवान के सामने भला नारद जी की क्या चलती? अतएव वे सोचने लगे कि कोई ऐसा उपाय किया जाय कि जिस प्रकार सत्यभामा के व्यवहार के कारण मुझे दुख हो रहा है, इसी प्रकार वह भी मन ही मन कुढती रहे, दुखी रहे। बहुत कुछ सोचने पर वे इस परिणाम पर पहुँचे कि नारी को सर्वाधिक दुख सौकन के कारण पहुचता है। अतएव यदि सत्यभामा के साथ श्रीकृष्ण के प्रेम का विभाजन करने वाली कोई और नारी कृष्ण

की पत्नी रूप में आ जाय तो सत्यभामा जीवन भर मन के अन्दर चुभे कांटे को न निकाल पायेगी। और उसके मन में कुढ़न तथा द्वेष, की ज्वाला धधकती रहेगी जिससे उसे कभी भी चिन्ताओं से मुक्ति नहीं मिलेगी।

इतना सोचना था कि अपनी योजना को क्रियात्मक रूप देने के लिए चल पड़े। वे कितने ही देशों में घूमे पर उन्हे कोई ऐसी नारी न मिली जो रूप में सत्यभामा से अधिक हो। वे चाहते थे ऐसी कुमारी, जो सत्यभामा से अधिक सुन्दर हो, ताकि श्रीकृष्ण उस पर मुग्ध हो जाय और वे स्वय ही उसे अपनी पत्नी के रूप मे ले जायें। इसलिए वे एक सर्वांग सुन्दरी की खोज में थे। अनायास ही एक बार उन की दृष्टि रुक्मणि पर पड़ी। उसके रूप, यौवन और लावण्य को देख कर नारद ने समझ लिया कि यह है वह सुन्दरी जिसे ये अपनी योजना की पूर्ति के लिए प्रयोग कर सकते हैं। उन्होने पता लगाया कि वह कौन है? किस की कन्या है। और पता लगाकर भीष्मक नृप के पास पहुँचे। नारद जी को देख कर भीष्मक सिंहासन से उतर कर उनके सत्कार के लिए आगे बढ़े, उनको प्रणाम किया।

उन्होंने पूछा—"राजन्! कहो कुशल तो है?"

"आपकी दया है।" भीष्म बोला।

"घर में सुख और शांति तो है?"

"कृपा है!"

"सन्तान की क्या दशा है?"

"चार पुत्र है एक कन्या है। सभी शांति पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे है।"

"कन्या का विवाह हो गया?"

"नहीं तो, महाराज! वह विवाह योग्य तो हो गई है। अब उपयुक्त वर की खोज है।" भीष्मक बोले।

इतने ही मे रुक्मणि आ निकली। भीष्म जी ने पुत्री को नारद मुनि को प्रणाम करने संकेत किया। रुक्मणि ने शीश झुका कर प्रणाम किया। नारद ने आशीर्वाद दिया—

अहो! कृष्ण वल्लभा।"

नारदजी के इस आशीर्वाद को सुन कर भीष्मक आश्चर्य चकित रह

गए। [१]उन्होंने पूछा—"महाराज! यह कृष्ण कौन हैं?"

"अरे! तुम नहीं जानते? साक्षात् देवता स्वरूप श्री कृष्ण को?" भीष्मक ने इंकार में सिर हिला दिया।

नारद बोले—"वे हैं द्वारिकाधीश, वसुदेव के सुपुत्र, जिन्होंने कंस का संहार किया, पूतना को मारा, केशी और अरिष्ट वृषभ को बिना किसी अस्त्र शस्त्र के ही निष्प्राण किया, जिन के लिए देवताओं ने द्वारिका नगरी बसाई। जो पांचजन्य व गदा कौमुदी धारी हैं और सुदर्शन चक्र जिनका विशेष अस्त्र होगा। रूपवान्, गुणवान, कुलवंत कांतिवान, चरित्रवान और पुण्यवान श्रीकृष्ण समुद्रविजय के कुल-रत्न हैं। उस समुद्रविजय के जिन के घर बाईसवें तीर्थङ्कर श्रीअरिष्ट-नेमि जन्म ले चुके हैं। उनका सारा कुल ही श्रेष्ठ है। इसी प्रकार कितनी ही प्रशंसाएं श्रीकृष्ण और उनके कुल की उन्होंने कीं। और उसके पश्चात् बोले—तुम्हारी कन्या भी उन्हीं के योग्य है। यदि श्रीकृष्ण इस रूपवती के पति बनना स्वीकार कर लेते हैं तो फिर आप समझ लें कि आप की कन्या भी धन्य हो गई। मैंने इसी लिए तो सुकुमारी को सोच समझ कर यह आशीर्वाद दिया है।

श्रीकृष्ण की प्रशंसाएं सुन कर रुक्मणि मन ही मन कामना करने लगी कि वे कृष्ण ही उसके स्वामी बनें। भीष्मकजी को भी बात जच गई और उसी समय वे मन ही मन निश्चय कर बैठे कि रुक्मणि का विवाह श्रीकृष्ण के साथ ही करेंगे।

इधर नारद जी ने रुक्मणि का एक चित्र लिया और द्वारिका पहुंचे। वे श्रीकृष्ण के पास जा कर बातचीत करने लगे और उस चित्र को बार बार देखते फिर छुपा लेते। श्रीकृष्ण ने भी उस चित्र को देखा और मुनि जी से मांग कर वे एक टक उसे देखते ही रह गए। मुनिवर समझ गए कि श्रीकृष्ण के हृदय में इस के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया है।

श्रीकृष्ण ने पूछा—"मुनि जी! यह किस देवाङ्गना का चित्र है?"

"देवाङ्गना का नहीं। विदर्भ देश के राजा भीष्मक महाराज की कन्या रुक्मणि का चित्र है। वह बड़ी ही रूपवान और मृदु स्वभाव की कन्या है। साक्षात् लक्ष्मी है। नारद जी बोले आजकल भीष्मक इस

१ रुक्मणि ने पूछा। त्रिषष्टि०—

के लिए उपयुक्त वर की खोज में हैं, पर कोई मिल ही नहीं रहा।"

श्रीकृष्ण के मन में उसी समय रुक्मणि के साथ विवाह करने की इच्छा जागृत हुई। बलराम पर भी बात प्रगट हो गई और उसी समय रुक्मणि को श्रीकृष्ण के लिए मांगने का सन्देश [१]बलराम ने कुन्दनपुर भिजवा दिया था। इसी सन्देश के कारण भीष्म जी ने अपने परिवार से इस सम्बन्ध मे चर्चा की थी, पर हठवादी रुक्म के कारण उन की एक न चली थी।

घर में ही विवाद

हाँ, तो उधर शिशुपाल रुक्म का पत्र हाथ मे लिए महल मे गया, उसकी भाभी ने उसका उल्लास पूर्ण चेहरा देख कर कहा----

"क्या बात है आज बड़े प्रसन्न दिखाई देते हो?"

"भाभी हर्ष की बात ही है। आज हमारा लग्न आया है।"

"कहा से?"

"कुन्दनपुर से। विदर्भ नरेश भीष्म की कन्या रुक्मणि के लिए।"

"अच्छा? क्या वास्तव में?" भाभी ने आश्चर्य चकित होकर पूछा।

"लो पढ़ लो यह चिट्ठी।" इतना कहकर उसने रुक्म का पत्र भाभी को थमा दिया।

भाभी ने पत्र पढ़ा। और बोली—"पर इस लग्न की तिथि के सम्बन्ध में तो ज्योतिषियो की भविष्य वाणी है कि विवाह मे विघ्न पड़ेगा और पत्र मे साफ लिखा है कि भीष्म इस विवाह के पक्ष में नहीं है।"

भीष्म कुछ कहे, इससे हमे क्या, बुड्ढा है मस्तक बिगड़ गया है, ग्वाले के साथ अपनी कन्या का विवाह करके कुल पर कलंक लगाना चाहता है। यह उसका पागलपन नहीं तो और क्या है?—हमारे पास तो जिसने लग्न भेजा हमे तो उससे ही मतलब है। रही लग्न और मुहूर्त की बात। सो जिसके हाथ में शक्ति होती है वे इनकी चिन्ता नहीं किया करते।" शिशुपाल बोला।

"फिर भी जिस विवाह में कन्या के पिता की ही सम्मति न हो वह

---

१ नारद ऋषि से सूचना पाते ही श्रीकृष्ण ने एक दूत रुक्मणि की याचना के लिए कुमार रुक्मन् के पास भेजा, और उसने इन्कार कर दिया। त्रिषष्ठि०

कभी सुखदायक नहीं हो सकता । और ज्योतिषियों ने भी किसी बात को विचार कर ही कहा होगा । आखिर तुम्हे इतनी जल्दी ही क्या है । इस तिथि को छोड दो कोई और तिथि निश्चित कर लो । किसी तरह भीष्मक नृप की भी सहमति प्राप्त करने की योजना बनाओ ।" भाभी बोली ।

"भीष्मक की बात उनके घर की है । हमे उससे क्या मतलब । रही ज्योतिषियों की बात, सो वे तो यूं ही बक दिया करते हैं । दस ज्योतिषियों को एक ही बात पर विचार देने को कहो, कोई कुछ कहेगा, कोई कुछ ।" शिशुपाल बोला ।

"नहीं, ज्योतिषियों को बुलाकर तुम भी तो पूछो । यदि वे भी यही बात कहें जो कुन्दनपुर के ज्योतिषियों ने बताई है तो विवाह की तिथि बदल लेना ।" भाभी ने सम्मति दी ।

"अच्छा लो, तुम्हारा भी वहम मिटाता हू ।" इतना कह कर उसने ज्योतिषियों को बुलवाया और लग्न दिखाया । ज्योतिषियों ने विचार करके बताया कि—हे राजन् ! आपके लिए यह लग्न शुभ नहीं है । बल्कि कन्या की कुण्डली बता रही है कि उसका विवाह आपके साथ नहीं हो सकता । विवाह मे अवश्य ही विघ्न पडेंगे और आपको पराजित होना पडेगा ।"

शिशुपाल को ज्योतिषियों की बात बडी कडवी लगी, वह क्रोध में आ गया और उसने उनके पोथी पत्रे को उठा कर फेंक दिया और बोला—"इस विवाह को कोई नहीं रोक सकता । तुम सब झूठ बकते हो ।"

उसकी भाभी ने ज्योतिषियों की भविष्य वाणी सुनकर कहा—"मेरे विचार से तुम्हें लग्न वापिस कर देना चाहिए । तुम यहाँ से सज धज कर गए और खाली हाथ निराश हो कर लौट आये तो कितनी लज्जा-जनक बात होगी, तनिक तुम आप ही सोचो ।"

"नहीं भाभी मैं इसी तिथि को विवाह करूंगा । मेरी प्रतिज्ञा है । इसे बदल नहीं सकता ।" शिशुपाल उच्च स्वर से बोला ।

"यदि इसी तिथि पर विवाह करने की प्रतिज्ञा तुमने कर ली है तो चलो किसी और कन्या से कराये देता हू । मेरी छोटी बहन है उसी से विवाह कर लो ।" शिशुपाल की भाभी ने कहा ।

यह सुनकर शिशुपाल हस पड़ा। बोला—"तो स्पष्ट क्यों नहीं कहती कि आप अपनी बहिन से मेरा विवाह कराना चाहती हैं इसी लिए कुन्दनपुर के लग्न को वापिस कराने की कोशिश कर रही हैं।"

"नहीं तुम मुझे गलत समझने की भूल मत करो। मैं तुम्हारे हित मे ही कह रही हू। जब किसी विवाह में वृद्ध जनों की सहमति नहीं हो तो फिर वह विवाह सकटजनक भी हो सकता है और जान बूझ कर सकट मे तो वह पडे जिसका विवाह ही न होता हो" भाभी ने कहा।

पर शिशुपाल के गले से नीचे एक भी बात न उतरी। वह अपनी हठ पर अड़ा रहा। अन्त मे भाभी बोली—"तुम अपनी हठ पर अड़े हो, अतः जो इच्छा हो करो, पर स्मरण रखो कि यह लग्न कभी सुख-दायी न होगा, और अन्त में तुम्हें पश्चाताप करना पडेगा।"

रुक्मणि की अपूर्व सूझ

सरसत ने जाकर जब शिशुपाल की स्वीकृति का समाचार कुन्दन-पुर सुनाया और बताया कि शिशुपाल पूर्ण तैयारी के साथ आयेगा, तो रुक्म को बड़ी सान्त्वना मिली। उसने अपनी माता से मिलकर विवाह की तैयारियाँ करना आरम्भ कर दीं। बारात के ठहरने, खाने पीने, स्वागत आदि का प्रबन्ध होने लगा, और धीरे धीरे यह बात सारे नगर मे घूम गई कि राज कन्या रुक्मणि का विवाह शिशुपाल के साथ माघ शुक्ला अष्टमी के दिन होगा।

शिशुपाल के साथ विवाह का निश्चय सुनकर रुक्मणि की धात्री को अपार दुख हुआ, वह एक बार घूमती घामती रुक्मणि के पास आ गई और बोली—वत्से! बाल्यावस्था मे एक बार तू मेरी गोद में सो रही थी कि अतिमुक्त नामक महा श्रमण आ गये, उन्होंने तुम्हें देखकर कहा था कि "यह यादवकुल कीरीट नीलाभ कृष्ण की रानी बनेगी?"

मैंने सविनय उनसे उनकी पहिचान बारे मे पूछा, तो उन्होने बताया कि "पश्चिमी समुद्र तट पर जो द्वारिकावती (पुरी) नामक नगरी बसायेगा वही कृष्ण होगा।"

जब से मुझे पूर्ण विश्वास था कि तेरे पति द्वारिकाधीश कृष्ण होंगे किन्तु यहाँ कुछ और ही रग ढंग है। चन्देरी पति शिशुपाल के साथ

विवाह सम्बन्ध निश्चित हो चुका है और श्री कृष्ण के याचना दूत को उसकी भर्त्सना करके निकाल दिया गया है। तभी से मुझे अत्यन्त खेद उत्पन्न हो रहा है किन्तु इस कुलागार रुक्म को समझाये कौन ? धाय माता ने दुखित होकर कहा।

इस समय कुन्दनपुर में रुक्मणि का उसकी धाय माता के सिवा। और कोई सहायक नहीं था। वह बचपन से ही धाय को अपने हृदय के उद्गार स्पष्टतया बता दिया करती थी, उसे उस पर अटूट विश्वास था, वह उसे अपनो हितैषणी समझती थी। अत उसने उससे कोई बात छुपा न रखी थी।

"माता ! भला कभी सत पुरुषों, तपस्वियों के वचन भी मिथ्या हो सकते है ? प्रात काल में उमडी हुई काली कजराली व गरजती हुई, बदलियां कभी निष्फल जा सकती हैं ? नहीं, कदापि नहीं। रुक्मणि ने माता के प्रति विश्वास पूर्ण शब्दों में कहा।"

बेटी ! तूने जो कहा वह यथार्थ है, किन्तु अभी तक उसके किंचित लक्षण भी तो दिखाई नहीं देते। धात्री ने निराश होते हुए उत्तर दिया।

माता, पुरुषार्थ के आगे सब हेच है, पुरुषार्थ ही भाग्य का निर्माता है। तू ही तो बताया करती थी फिर आज तेरे मुख पर इतनी उदासी क्यों है ? रुक्मणि कहती गई—ले मैं एक उपाय बताती हूँ किसी का यदि करो तो।

इसमें भी कोई सन्देह है, मैंने तेरे लिए क्या कुछ नहीं किया ?

नहीं सन्देह की बात तो नहीं, तेरे को उदास देखकर ही मुझे ऐसा कहना पड़ा।

हाँ, तो बता वह कौन सा उपाय है, वक्त निकट ही आने वाला है। धाय माता ने कहा।

रुक्मणि ने कहा मैं प्राणनाथ को एक पत्र लिखे देती हूँ, उसे तुम किसी विश्वस्त व्यक्ति द्वारा द्वारिकापती पहुचवादो, मुझे विश्वास है कि वे यथा शीघ्र ही मुझे लेने चले आयेंगे।

अच्छा ! तो तुम ऐसा कर सकती हो। आश्चर्य पूर्ण मुद्रा में धाय बोली।

हाँ, अवश्य कर सकती हूँ, जीवन के लिए क्या कुछ नहीं करना पड़ता।

अन्य ग्रन्थों में दूमा का उल्लेख भी पाया जाता है। द० ह० स०—

अच्छा तो तुम शीघ्र ही उसके नाम पत्र लिख दो, मै भेजने का यथाशीघ्र ही प्रबन्ध कर दूंगी।" धाय के युक्ति समझ मे आ गयी।

इधर रुक्मणि धात्री का आश्रय पा प्रफुल्लित हो गई और पत्र लिखने लगी—

"मैं तो आप ही को अपना पति मान चुकी हूं। मेरा हृदय आप जो वस्तु आपकी है उसी को चोरी करने के लिए राजा शिशुपाल घात लगाए बैठा है। इससे पहले कि शिशुपाल आप की चीज को हाथ लगाए, आप यहाँ आयें और अपनी चीज को बचाले। परन्तु मुझे प्राप्त करना भी सरल नहीं है। शिशुपाल और रुक्म की सेनाओं को मार भगाने के पश्चात् ही आप मुझे प्राप्त कर सकेंगे। सम्भव है जरासंध की सेना से भी टक्कर हो। शौर्य दिखलाकर विरोचित रीति से यदि आप ले जा सकते हों तो मुझे ले जाएं। बड़े भैया ने रुक्म ने निश्चय कर लिया है कि शिशुपाल के साथ मेरा विवाह हो। परन्तु पिता जी पहले से ही आप के पक्ष मे है किन्तु उनकी चल नहीं रही। माघ कृष्ण जी को मेरा विवाह हो रहा है। उस दिन देव पूजा के बहाने मै आपसे उपवन में मिल सकती हूँ। वही अवसर मुझे ले जा सकेंगे। यदि आप यह न करेंगे तो मैं अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दूंगी, जिससे कम से कम दूसरे जन्म मे तो आपको पा सकूं ..."

पत्र लिखकर उसने अपनी धाय माता को थमा दिया और उसने चुपके से एक भृत्य को बुलाकर उसे पत्र सौंप दिया और कहा कि इसे शीघ्रातिशीघ्र द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण के पास पहुँचा कर उत्तर लाओ, उचित पुरस्कार दिया जायेगा। दूत द्वारिका की ओर प्रस्थान कर गया।

पत्र प्राप्तकर श्रीकृष्ण ने बलराम को दिखाया और पूछा—"आप का जो मत हो वही किया जाय।"

"रुक्मणि विपत्ति में फसी है। इस पत्र द्वारा वह आपकी शरण आ गई है। उसकी रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है।"

बलराम जी का उत्तर सुनकर श्रीकृष्ण को बहुत हर्ष हुआ। क्योंकि उत्तर उनके विचारों के अनुसार था। उन्होंने एक पत्र लिखकर दूत को दिया। जिसमें उन्होंने रुक्मणि को विश्वास दिलाया था कि चाहे जो

हां हम कुन्दनपुर लेने के लिए अवश्य पहुँचेंगे । उपवन में अवश्य ही मिलना।"

जब यह पत्र रुक्मणि को मिला, वह गद्‌गद् हो उठी। उसकी धात्री को भी कोई कम हर्ष न हुआ। दोनों प्रफुल्लित हो उस दिन की बाट जोहने लगीं।

रुक्म बरात के स्वागत के अपूर्व तैयारियाँ कर रहा था, उसने सारा नगर सजवाया था। सेना के लिए उचित प्रबन्ध था। जब शिशुपाल की बारात ने नगर में प्रवेश किया। महल की सभी नारियां ऊपर चढ़ गईं ताकि दूल्हे की निराली, व अनुपम शोभा देख सकें। सज-धज से चढ़ती बारात का तमाशा देखें। सजे हुए नगर के ठाठ देखें। स्वागत की अनुपम रीति देखें। पर रुक्मणि ऊपर न गई। माता ने भी कहा, सखी सहेलियों ने बहुत कहा, पर वह अपने स्थान से न हिली।

बरात एक दिन पूर्व चढ़ गई थी। संस्कार दूसरे दिन होना था। जब रुक्मणि की माता ने रुक्म को बताया कि रुक्मणि कुछ रुष्ट प्रतीत होती है वह सभी के कहने के बावजूद बरात तक देखने को न गई, तो उसे सन्देह हुआ कि कहीं रुक्मणि और पिता जी कुछ गड़बड़ न कर बैठें। इसलिए उसने महल के चारों ओर सशस्त्र पहरा लगा दिया, नगर के चौराहों और द्वारों पर भी सेना की टुकड़ियां नियुक्त कर दी गईं।

रुक्मणि हरण व युद्ध

दूसरे दिन अर्थात् माघ शुक्ला अष्टमी को रुक्मणि की धात्री ने कहा कि रुक्मणि देव पूजन के लिए उपवन में जाना चाहती है। रुक्म ने कहा—"नहीं! महल से बाहर जाने की आज्ञा नहीं दी जा सकती।'

थोड़ी देर बाद धायमाता ने फिर कहा—"वह बिना देव पूजा किए न मानेगी। वह जरूर जाना चाहती है। इस में हर्ज ही क्या है ?"

रुक्म बोला—"उसे किसी प्रकार मनाओ। कि वह ऐसी हठ न करे।'

थोड़ी देर बाद धात्री ने फिर जा कर कहा—"कन्या ही तो है कोई पशु तो नहीं। उसे बिल्कुल बन्दी समान क्यों रख छोड़ा है। उस ने तो देव से मनौती मनाई थी कि शिशुपाल जैसा वर मिलेगा तो वह संस्कार से पूर्व उसकी पूजा करेगी, मिष्ठान बांटेगी। अब जब तक देव पूजन न कर ले विवाह नहीं होगा।"

जब शिशुपाल को इस बात का पता चला तो उसे हर्ष ही हुआ। उस ने रुक्म से कहा----"रुक्मणि को देव पूजन की आज्ञा क्यों नहीं दे देते ? इस मे तुम्हे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"

"तुम्हारी स्वीकृति मिल गई, बस यही मैं चाहता था। क्योंकि मुझे डर है कि कहीं कुछ गड़बड हो जाय तो तुम मुझे दोष न दे दो। देखो मैंने सारे नगर को शिविर बना रखा है।" रुक्म बोला।

शिशुपाल को बडा हर्ष हुआ यह जान कर कि रुक्म उसके लिए इतना कठोर व्यवहार कर रहा है। उसे रुक्म के अपने प्रति स्नेह का विश्वास हो गया।

रुक्म ने शिशुपाल की सहमति से रुक्मणि को देव पूजन की आज्ञा दे दी। और कितनी ही सखियां तथा धाय माता उसके साथ चल दीं। सखियां गीत गाती हुई जा रही थीं, रुक्मणि के हाथ में पूजा का थाल था। यह सभी कुछ यह विश्वास दिलाने के लिए किया गया था कि वास्तव में रुक्मणि देव पूजन को ही जा रही है। पर रुक्मणि जिस देव के दर्शन को जा रही थी, वह देव द्वारिका नगरी से उसे लेने के लिए आया था। उसके साथ बलराम भी थे। और (नगर से दूर उनकी सेना भी तैयार खड़ी थी जो समस्त प्रकार शस्त्र अस्त्रों से लैस थी।) श्री कृष्ण रुक्मणि की प्रतिक्षा में थे, वे पहले ही उपवन मे पहुंच गए थे।

रुक्म ने देव पूजन के लिए जाती हुई रुक्मणि के पीछे सेना भी लगा दी थी ताकि उपवन में किसी प्रकार की गड़बड़ न हो जाय। परन्तु नगर से निकल कर उपवन से कुछ दूरि पर ही धात्री ने सैनिकों को सम्बोधित करके कहा—'तुम पीछे पीछे क्यों आ रहे हो। रुक्मणि राज कन्या है कैदी नहीं है। वह देव पूजन करने जा रही है, सेना देव पूजन की श्रेष्ठता को भंग करती है। देवता रुष्ट हो जायेगे। अतः तुम यहीं रुको।" सेना रुक गई।

फिर आगे जाकर उन्होंने सखियों से कहा—"अच्छा अब हम लोग भी यहीं रुक जाए ताकि राजकन्या एकान्त मे पूजन कर सके। न जाने वेचारी देवता से क्या क्या मांगे, हमारे सामने मुख खोलते लज्जा अनुभव करेगी।"

सारी सखियां वहीं रुक गई । रुक्मणि ने एक बार धाय माता की ओर रहस्यपूर्ण दृष्टि से देखा। जैसे कह रही हो आप तो जानती ही हैं कि मैं उस देवता के चरणों की पूजा के लिए सारे जीवन भर को जा रही हूँ। अच्छा विदा।" धात्री की आंखों से अनायास ही दो अश्रु बिन्दु टपक गए।

रुक्मणि आगे बढ़ी, उपवन में गई और देवता को सम्बोधित करके कहने लगी—हे देव! मेरी मनोकामना पूरी करो। मुझे मेरे नाथ के चरणों में पहुचा दो। मेरे नाथ को यह शक्ति प्रदान करो कि वह रुक्म और शिशुपाल की सेनाओं को परास्त कर मुझे ले जाने में सफल हों और शीघ्र ही मुझे मेरे स्वामी के दर्शन कराओ, जिन के लिए मैं कितने ही दिन से व्याकुल हूँ।

उसी समय उसे अपने पीछे पदचाप सुनाई दी। उसने पीछे घूम कर देखा। कृष्ण खड़े मुस्करा रहे थे। वह उनकी छवि और ललाट का तेज देखकर समझ गई कि वही हैं उसके जीवन साथी, उसके प्राणनाथ जिन्हें वह कितने ही दिन से अपना देवता मान चुकी थी। उसने चरणोंकी ओर हाथ बढाए। श्रीकृष्ण ने उसे सम्भाल लिया और बोले—अब देरि करने की आवश्यकता नहीं। चलो मेरे साथ।" और रुक्मणि को अपने साथ ले चले। कुछ ही दूरि पर उनका रथ खड़ा था। वहा ले जाकर इसे रथ पर सवार किया और चलते बने। इधर धाय माता और अन्यान्य दासियों ने अपनी निर्दोषिता प्रकट करने के लिए रथ को जाते हुए देख कोलाहल मचाना आरम्भ कर दिया—हे रुक्मिन्! हे रुक्मिन्! दौड़ो देखो, यह रुक्मणि को रथ पर बैठाकर कौन उड़ा लिये जा रहा है। इन्हें पकड़ो, शीघ्र आओ।

इस करुण-क्रन्दन ध्वनि को सुनकर उद्यान से बाहर खड़े हुए सैनिक पीछा करने के लिए दौड़ पड़े और कुछ उनमें से रुक्म को सूचना देने गये। सूचना के प्राप्त होते ही महा पराक्रमी रुक्मि और दमघोष पुत्र शिशुपाल रण क्षेत्र के लिए तत्पर खड़ी अपनी २ विशाल वाहिनि (सेनाओं) को लेकर श्री कृष्ण की ओर चल पड़े।

रुक्म और शिशुपाल की सेना दावानल की भांति उग्र गति से बढ़ी आ रही थी कि उसे देख रुक्मणि का हृदय कांप उठा, वह सोचने लगी कि यदि प्राणेश्वर इनको परास्त न कर सके मेरी क्या दशा होगी ?

जब शिशुपाल को इस बात का पता चला तो उसे हर्ष ही हुआ। उस ने रुक्म से कहा----"रुक्मणि को देव पूजन की आज्ञा क्यों नहीं दे देते ? इस में तुम्हे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"

"तुम्हारी स्वीकृति मिल गई, बस यही मैं चाहता था। क्योंकि मुझे डर है कि कहीं कुछ गड़बड़ हो जाय तो तुम मुझे दोष न दे दो। देखो मैंने सारे नगर को शिविर बना रखा है।" रुक्म बोला।

शिशुपाल को बड़ा हर्ष हुआ यह जान कर कि रुक्म उसके लिए इतना कठोर व्यवहार कर रहा है। उसे रुक्म के अपने प्रति स्नेह का विश्वास हो गया।

रुक्म ने शिशुपाल की सहमति से रुक्मणि को देव पूजन की आज्ञा दे दी। और कितनी ही सखियां तथा धाय माता उसके साथ चल दीं। सखियां गीत गाती हुई जा रही थीं, रुक्मणि के हाथ में पूजा का थाल था। यह सभी कुछ यह विश्वास दिलाने के लिए किया गया था कि वास्तव में रुक्मणि देव पूजन को ही जा रही है। पर रुक्मणि जिस देव के दर्शन को जा रही थी, यह देव द्वारिका नगरी से उसे लेने के लिए आया था। उसके साथ बलराम भी थे। और (नगर से दूर उनकी सेना भी तैयार खड़ी थी जो समस्त प्रकार शस्त्र अस्त्रों से लैस थी।) श्री कृष्ण रुक्मणि की प्रतिक्षा में थे, वे पहले ही उपवन में पहुंच गए थे।

रुक्म ने देव पूजन के लिए जाती हुई रुक्मणि के पीछे सेना भी लगा दी थी ताकि उपवन में किसी प्रकार की गड़बड़ न हो जाय। परन्तु नगर से निकल कर उपवन से कुछ दूरि पर ही धात्री ने सैनिको को सम्बोधित करके कहा—"तुम पीछे पीछे क्यों आ रहे हो। रुक्मणि राज कन्या है कैदी नहीं है। वह देव पूजन करने जा रही है, सेना देव पूजन की श्रेष्ठता को भंग करती है। देवता रुष्ट हो जायेगे। अतः तुम यहीं रुको।" सेना रुक गई।

फिर आगे जाकर उन्होंने सखियों से कहा—"अच्छा अब हम लोग भी यहीं रुक जाएं ताकि राजकन्या एकान्त में पूजन कर सके। न जाने बेचारी देवता से क्या क्या मांगे, हमारे सामने मुख खोलते लज्जा अनुभव करेगी।"

सारी सखियां वहीं रुक गईं। रुक्मणि ने एक बार धाय माता की ओर रहस्यपूर्ण दृष्टि से देखा। जैसे कह रही हो आप तो जानती ही हैं कि मैं उस देवता के चरणों की पूजा के लिए सारे जीवन भर को जा रही हूँ। अच्छा विदा।" धात्री की आंखों से अनायास ही दो अश्रु बिन्दु टपक गए।

रुक्मणि आगे बढी, उपवन में गई और देवता को सम्बोधित करके कहने लगी—हे देव! मेरी मनोकामना पूरी करो। मुझे मेरे नाथ के चरणों में पहुचा दो। मेरे नाथ को यह शक्ति प्रदान करो कि वह रुक्म और शिशुपाल की सेनाओं को परास्त कर मुझे ले जाने में सफल हों और शीघ्र ही मुझे मेरे स्वामी के दर्शन कराओ, जिन के लिए मैं कितने ही दिन से व्याकुल हूँ।

उसी समय उसे अपने पीछे पदचाप सुनाई दी। उसने पीछे घूम कर देखा। कृष्ण खडे मुस्करा रहे थे। वह उनकी छवि और ललाट का तेज देखकर समझ गई कि वही हैं उसके जीवन साथी, उसके प्राणनाथ जिन्हें वह कितने ही दिन से अपना देवता मान चुकी थी। उसने चरणोंकी ओर हाथ बढ़ाए। श्रीकृष्ण ने उसे सम्भाल लिया और बोले—अब देरि करने की आवश्यकता नहीं। चलो मेरे साथ।" और रुक्मणि को अपने साथ ले चले। कुछ ही दूरि पर उनका रथ खड़ा था। वहा ले जाकर इसे रथ पर सवार किया और चलते बने। इधर धाय माता और अन्यान्य दासियों ने अपनी निर्दोषिता प्रकट करने के लिए रथ को जाते हुए देख कोलाहल मचाना आरम्भ कर दिया—हे रुक्मिन्! हे रुक्मिन्! दौड़ो देखो, यह रुक्मणि को रथ पर बैठाकर कौन उडा लिये जा रहा है। इन्हें पकडो, शीघ्र आओ।

इस करुण-क्रन्दन ध्वनि को सुनकर उद्यान से बाहर खड़े हुए सैनिक पीछा करने के लिए दौड़ पड़े और कुछ उनमें से रुक्म को सूचना देने गये। सूचना के प्राप्त होते ही महा पराक्रमी रुक्मि और दमघोष पुत्र शिशुपाल रण क्षेत्र के लिए तत्पर खडी अपनी २ विशाल वाहिन (सेनाओं) को लेकर श्री कृष्ण की ओर चल पड़े।

रुक्म और शिशुपाल की सेना दावानल की भाँति उग्र गति से बढ़ी आ रही थी कि उसे देख रुक्मणि का हृदय काप उठा, वह सोचने लगी कि यदि प्राणेश्वर इनको परास्त न कर सके मेरी क्या दशा होगी?

फिर मैं न घर की रहूँगी न घाट की, शिशुपाल के साथ जाने के लिए रुक्म बाध्य करेगा, मैं उसके साथ कदापि जाना नहीं चाहती क्योंकि मैं अपने हृदय को दूसरे के लिए एक बार समर्पित कर चुकी हूं।" इन चिन्ता से उसका मुख म्लान हो गया। अन्त में उसने श्री कृष्ण से निवेदन किया। उन्होंने उसे सात्वना दी और उसकी शका निवार्णार्थ एक तुणीर से अर्द्ध चन्द्र बाण निकाला और उसी एक ही बाण से ताल वृक्ष की एक श्रेणीको कमल नाल की भांति काटकर उसे धराशायी बना दिया।

पश्चात् अंगूठी से हीरा निकाला और उसे रुक्मणि के सामने ही चुटकी से पीस डाला। इस अभूतपूर्व बल प्रदर्शन को देखकर रुक्मणिको पूर्ण विश्वास हो गया कि उनमे शत्रु दमनकीपूर्ण क्षमता है।

उधर उसी समय नारद मुनि भी प्रगट हुए उन्होंने कहा—अच्छा तो रुक्मणि अपने स्वामी क पास पहुच गई। अब वह अपनी सुसराल जा रही है। बड़ी शुभ घड़ी है।"

फिर श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए वोले—"तो महाराज! चोरों की भाँति अपनी सहधर्मिणी को ले जाते तो आपको शोभा नहीं देता। विदर्भ देश की राजकन्या इस प्रकार ले जाई जाय और वह भी श्रीकृष्ण वीर के द्वारा? आश्चय है।"

श्रीकृष्ण नारद जी का आशय समझ गए और उन्होंने उसी समय पाँचजन्य का विजय घोष किया। तब रथ बढ़ाया और वे १बलराम के नेतृत्व में खड़ी सेना मे आ मिले। पाँच जन्य की ध्वनि होनी थी कि चारों ओर समाचार दौड़ गया कि रुक्मणि को श्रीकृष्ण ले गए। हाथी सवार, अश्वर सवार, रथ सवार और पैदल, सभी प्रकार की सेनाएं आपस में भिड़ गईं।

भयंकर युद्ध होने लगा। बाणों के प्रहार से हाथी चिंघाड़ने लगते, अश्व घायल होकर पड़ते, बर्छी, खड्ग, नेजे आदि शस्त्र आपस में

१ऐसा भी उल्लेख पाया जाता है कि श्री कृष्ण और बलराम ये दोनो ही रुक्मणि को लेने के लिए आये थे, और रुक्म और शिशुपाल की सेना को आत देख श्री कृष्ण ने बलराम से कहा कि भाई! तुम रुक्मणि को लेकर आगे चलो और शत्रुओ को पराजित करके आता हूं, किन्तु बलभद्र न माने, उन्होने श्री कृष्ण को रुक्मणि को साथ देकर आगे भेज दिया और स्वय उनसे युद्ध करने लगे। त्रि०—

टकराने लगे। कितने ही योद्धा आन की आन में यमलोक सिधारने लगे। श्रीकृष्ण की बाण वर्षा से रुक्म की सेना घबरा गई। रुक्म बार-बार उनकी ओर बढता और श्रीकृष्ण के बाणों की ताब न लाकर पीछे हट जाता। तब रुक्मणि को सन्देह होने लगा कि कहीं कृष्ण के बाणों से उसका भाई ही न मारा जाय। जब कभी रुक्म सामने आता, रुक्मणि भय से कांप उठती। उसे अपने भाई की बडी चिन्ता थी। उसने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की—हे यदुकुलकिरीट। मेरे लिए मेरे भाई रुक्म की हत्या न करना अन्यथा यह मेरे शिर जीवन भर का कलंक लग जायेगा कि 'एक बहिन ने अपनी मनोकामना की सिद्धि के लिए अपने भाई की बलि दे दी।'

श्रीकृष्ण ने कहा—तुम घबराओ मत, तुम्हारे भाई पर तीर नहीं चलाऊंगा। एक बार उसकी कितनी ही भारी उद्दण्डता को भी क्षमा कर दूंगा।" श्रीकृष्ण की यह बात सुनकर रुक्मणि को बहुत सन्तोष हुआ।

दूसरी ओर बलराम ने शिशुपाल को सम्बोधित करके कहा—"जा भाग जा! मैं तुझ पर हाथ नहीं उठाऊंगा। श्रीकृष्ण ने तेरी माता को निन्यानवे अपराध क्षमा करने का वायदा किया है। पर तेरी सेना के किसी भी व्यक्ति के सामने आने पर उसे जीवित नहीं छोडूंगा।"

श्रीकृष्ण ने रुक्म+ को नागफास में बाँधकर रथ पर डाल लिया। इस घमासान युद्ध के बाद शिशुपाल की सेना के पैर उखड गए और वह परास्त होकर स्वयं भी अपनी सेना के साथ भाग खडा हुआ। श्रीकृष्ण और बलराम विजय का डंका बजाते विजयपताका फहराते द्वारिका की ओर चल पडे। चाहते तो इस युद्ध में शिशुपाल और रुक्म का वध कर सकते थे पर रुक्म को रुक्मणि के कारण और शिशुपाल को उसकी माता को दिए वचन के कारण उन्होंने जीवित छोड दिया था। एक नदी पर आकर दोनों भ्राताओं ने हाथ पाँव धोए। उसी

+ऐसा भी वर्णन मिलता है कि बलराम ने युद्ध में रुक्म के 'क्षुरप्रबाण' छोडकर सिर के केश उडा दिये थे जिससे कि उसका सिर रुण्डमुण्ड हो गया और पश्चात् यह कह कर छोड दिया कि 'तू मेरे भाई की पत्नी का भाई है अत. अवध्य है अन्यथा यमधाम पहुँचा देता। तेरे लिये इतना ही दण्ड अधिक है। जा यहाँ से चला जा।' त्रिशष्ठि—

फिर मैं न घर की रहूँगी न घाट की, शिशुपाल के साथ जाने के लिए रुक्म बाध्य करेगा, मैं उसके साथ कदापि जाना नहीं चाहती क्योंकि मैं अपने हृदय को दूसरे के लिए एक बार समर्पित कर चुकी हूं।" इन चिन्ता से उसका मुख म्लान हो गया। अन्त में उसने श्री कृष्ण से निवेदन किया। उन्होंने उसे सात्वना दी और उसकी शंका निवारणार्थ एक तुणीर से अर्द्ध चन्द्र बाण निकाला और उसी एक ही बाण से ताल वृक्ष की एक श्रेणीको कमल नाल की भांति काटकर उसे धराशायी बना दिया।

पश्चात् अंगूठी से हीरा निकाला और उसे रुक्मणि के सामने ही चुटकी से पीस डाला। इस अभूतपूर्व बल प्रदर्शन को देखकर रुक्मणिको पूर्ण विश्वास हो गया कि उनमें शत्रु दमनकीपूर्ण क्षमता है।

उधर उसी समय नारद मुनि भी प्रगट हुए उन्होंने कहा—अच्छा तो रुक्मणि अपने स्वामी क पास पहुंच गई। अब वह अपनी सुस-राल जा रही है। बड़ी शुभ घड़ी है।"

फिर श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए वोले—"तो महाराज! चोरों की भाँति अपनी सहधर्मिणी को ले जाते तो आपको शोभा नहीं देता। विदर्भ देश की राजकन्या इस प्रकार ले जाई जाय और वह भी श्रीकृष्ण वीर के द्वारा? आश्चय है।"

श्रीकृष्ण नारद जी का आशय समझ गए और उन्होंने उसी समय पाँचजन्य का विजय घोष किया। तब रथ बढ़ाया और वे [1]बलराम के नेतृत्व में खड़ी सेना में आ मिले। पाँच जन्य की ध्वनि होनी थी कि चारों ओर समाचार दौड़ गया कि रुक्मणि को श्रीकृष्ण ले गए। हाथी सवार, अश्वर सवार, रथ सवार और पैदल, सभी प्रकार की सेनाएं आपस में भिड़ गईं।

भयंकर युद्ध होने लगा। बाणों के प्रहार से हाथी चिंघाड़ने लगते, अश्व घायल होकर पड़ते, बर्छी, खड्ग, नेजे आदि शस्त्र आपस में

---

[1]ऐसा भी उल्लेख पाया जाता है कि श्री कृष्ण और बलराम ये दोनो ही रुक्मणि को लेने के लिए आये थे, और रुक्म और शिशुपाल की सेना को आत देख श्री कृष्ण ने बलराम से कहा कि भाई! तुम रुक्मणि को लेकर आगे चलो और शत्रुओ को पराजित करके आता हूं, किन्तु बलभद्र न माने, उन्होने श्री कृष्ण को रुक्मणि को साथ देकर आगे भेज दिया और स्वय उनसे युद्ध करने लगे। त्रि०—

टकराने लगे। कितने ही योद्धा आन की आन में यमलोक सिधारने लगे। श्रीकृष्ण की बाण वर्षा से रुक्म की सेना घबरा गई। रुक्म बार-बार उनकी ओर बढता और श्रीकृष्ण के बाणों की ताब न लाकर पीछे हट जाता। तब रुक्मणि को सन्देह होने लगा कि कहीं कृष्ण के बाणों से उसका भाई ही न मारा जाय। जब कभी रुक्म सामने आता, रुक्मणि भय से काप उठती। उसे अपने भाई की बडी चिन्ता थी। उसने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की—हे यदुकुलकिरीट। मेरे लिए मेरे भाई रुक्म की हत्या न करना अन्यथा यह मेरे शिर जीवन भर का कलंक लग जायेगा कि 'एक बहिन ने अपनी मनोकामना की सिद्धि के लिए अपने भाई की बलि दे दी।'

श्रीकृष्ण ने कहा—तुम घबराओ मत, तुम्हारे भाई पर तीर नहीं चलाऊंगा। एक बार उसकी कितनी ही भारी उद्दण्डता को भी क्षमा कर दूंगा।" श्रीकृष्ण की यह बात सुनकर रुक्मणि को बहुत सन्तोष हुआ।

दूसरी ओर बलराम ने शिशुपाल को सम्बोधित करके कहा—"जा भाग जा! मैं तुझ पर हाथ नहीं उठाऊंगा। श्रीकृष्ण ने तेरी माता को निन्यानवे अपराध क्षमा करने का वायदा किया है। पर तेरी सेना के किसी भी व्यक्ति के सामने आने पर उसे जीवित नहीं छोड़ूंगा।"

श्रीकृष्ण ने रुक्म+ को नागफास में बाँधकर रथ पर डाल लिया। इस घमासान युद्ध के बाद शिशुपाल की सेना के पैर उखड़ गए और वह परास्त होकर स्वयं भी अपनी सेना के साथ भाग खडा हुआ। श्रीकृष्ण और बलराम विजय का डंका बजाते विजयपताका फहराते द्वारिका की ओर चल पड़े। चाहते तो इस युद्ध में शिशुपाल और रुक्म का वध कर सकते थे पर रुक्म को रुक्मणि के कारण और शिशुपाल को उसकी माता को दिए वचन के कारण उन्होंने जीवित छोड दिया था। एक नदी पर आकर दोनों भ्राताओं ने हाथ पांव धोए। उसी

+ऐसा भी वर्णन मिलता है कि बलराम ने युद्ध में रुक्म के 'क्षुरप्रवाण' छोडकर सिर के केश उडा दिये थे जिससे कि उसका सिर रुण्डमुण्ड हो गया और पश्चात् यह कह कर छोड दिया कि 'तू मेरे भाई की पत्नी का भाई है अत. अवध्य है अन्यथा यमधाम पहुँचा देता। तेरे लिये इतना ही दण्ड अधिक है। जा यहाँ से चला जा।' त्रिशष्टि—

समय रुक्मणि ने विनय पूर्वक कहा कि अब मेरे भाई को बधन मुक्त कर दीजिए।

श्रीकृष्ण ने नागफांस निकाल ली। रुक्म ने अपने पास बैठी रुक्मणि को देखकर लज्जा से अपना मुंह फेर लिया। पर रुक्मणि ने उसे सम्बोधित करके कहा—"तुम मेरे भाई हो, अब क्रोध को थूक दो। मैं अपने पति के घर जा रही हूँ। तुम मुझे लेने आना और घर की कुशलता के समाचार भेजते रहा करना। घर जाकर पिता जी, माता जी और बुआ जी, धाय माता से मेरा प्रणाम कहना। माता जी से मेरी ओर से क्षमा याचना करना क्योंकि मैं उन्हें बताये बिना ही चली आई हूं। और देखो भैया। किसी बात से रुष्ट न होना। मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ सदा तुम्हारी ओर आँख लगाये देखती रहूँगी। मुझे भूलना मत।"

रुक्मणि की बात सुनकर रुक्म की आँखो में अश्रु छलछला आये। वह सोचने लगा कि मैंने रुक्मणि का बलात् शिशुपाल के साथ विवाह करने का प्रयत्न किया फिर भी रुक्मणि मुझ से तनिक भी रुष्ट नहीं, श्रीकृष्ण को मैं अपना बैरी समझता रहा पर उन्होंने मेरी हत्या नहीं की। यह दोनों कितने अच्छे हैं। और मैं कितना नीच हूँ।" इस प्रकार की बातें सोच कर वह मन ही मन शर्माता था। उस ने घर लौटने की इच्छा प्रगट की, श्रीकृष्ण बोले—हां तुम चाहो तो सहर्ष वापिस जा सकते हो। पर देखो अब रिश्तेदारी हो गई है। पहले की बातों को भुला कर स्नेह को अपने हृदय में स्थान देना। मैं तो तुम्हें उसी दृष्टि से देखता हूँ जिस दृष्टि से किसी पुरुष को अपनी पत्नी के भाई को देखना चाहिएं। मेरे हृदय पर इस बात का तनिक भी प्रभाव नहीं कि तुम ने इस से पूर्व क्या किया? पश्चात् बलराम जी ने भी रुक्म को आशीर्वाद दिया और स्नेह बनाए रखने की शिक्षा दी। उसे सवारी दी और वह पीछे लौट पड़ा। पर रास्ते में ही सोचने लगा कि मैं घर जा कर कैसे सूरत दिखाऊगा। लोग कहेंगे कि रुक्म कायर निकला उसने अपने जीते जी कृष्ण को रुक्मणि को बलात् उठाते हुए जाने दिया। लोग मेरा निरादर करेंगे। मेरी वीरता की धाक उतर चुकी। मैं पिता जी व माता जी को कैसे मुंह दिखाऊगा? यह सोच कर उस का साहस न हुआ कि वह घर लौट सके अतः उस ने एक

स्थान पर भोजकट नामक नगर बसाया और वहीं रहने लगा। उस क्षेत्र का वह नृप बन बैठा।

× + ×

ज्यों ही रुक्मणि को लेकर श्रीकृष्ण द्वारिका में पहुचे तो यह समाचार सुनकर कि श्रीकृष्ण खड्ग की शक्ति से एक अप्सरा समान राजकुमारी को लेकर आए हैं चारों ओर हर्ष दौड़ गया। जाते ही बलराम ने ×विधिवत् पाणि ग्रहण सस्कार का प्रबन्ध किया और एक दिन श्रीकृष्ण दूल्हा के रूप में हाथी पर सवार होकर बाजार से निकले। सारे नगर में धूम हो गई और विवाह सम्पन्न हो गया।

नगर की नारियों ने जब रुक्मणि के रूप की प्रशंसा सुनी तो वे राजमहल की ओर चल पड़ीं। रुक्मणि को अलग ही महल दे दिया था वहाँ उसके साथ कुछ दासियां थीं। नारियाँ उसका मुख देखतीं तो हठात् कह उठतीं दुल्हन क्या है साक्षात इन्द्राणी है।"

कोई कहती—"देवलोक से अप्सरा उतर आई है।"

तो कोई उसे देखकर कहती—"ससार भर का सौंदर्य इस वधू में ही संग्रह कर दिया गया है।"

इसी प्रकार की बातें द्वारिका की नारिया रुक्मणि को देखकर करतीं। श्री कृष्ण चन्द्र भी उसके रूप पर पूरी तरह से मुग्ध थे और रुक्मणि भी अपने पति पर पूर्णतया सन्तुष्ट थी। जब सत्यभामा ने रुक्मणि की प्रशसा सुनी तो वह जल उठी। वह रुक्मणि को देखने नहीं गई थी।

नारद ऋषि के व्यंग

एक दिन नारद जी फिर द्वारिका में आये और उन्होंने सत्यभामा को सम्बोधित करके कहा—"कहो सत्यभामा कुशल तो है ?"

"आप को तो ज्ञात है ही, मेरे पति देव भीष्मकी राज कन्या को ले आये हैं और अब वे पूरी तरह उसी पर आसक्त हैं। मुझे दर्शन भी नहीं देते। फिर कुशल हो तो क्यों कर ?" उस दिन सत्यभामा का मुख उतरा हुआ सा था और बल्कि यू समझिए कि मुख कमल मुरझाया हुआ था। उस दिन उसने नारद मुनि की बड़ी आवभगत की थी।

नारद जी के अधरों पर मुस्कान खेल गई, उनकी योजना जो

×उन्होने महल में ही गन्धर्व विवाह कर लिया। त्रि०—

सफल हो गई थी। वे बोले—"वह दिन तो कदाचित तुम न भूली होगी जब मैं तुम्हारे यहा आया था और तुमने सीधे मुंह बात तक न की थी, बल्कि दर्पण मे मेरा चेहरा देखकर मुझे राहु बताया था। मेरा उपहास किया था ?"

सत्यभामा बहुत लज्जित हुई। वह कुछ भी उत्तर न दे पाई नारद जी ने स्वय ही कहा—"तो फिर उसी अपमान का परिणाम है। याद रख कि अपने रूप, यौवन या सम्पत्ति किसी पर भी अभिमान करना बहुत ही अनुचित है उस का परिणाम भयंकर होता है। तू समझती थी कि तुझ से अधिक रूपवती कोई है ही नहीं और तेरे अतिरिक्त और कोई इस ससार मे ऐसी है ही नहीं जिस पर श्री कृष्ण हृदय से आसक्त हो जाएं।"

सत्यभामा ने दुखित होकर कहा—"मुनिवर ! मेरी उस भूल का इतना कठोर दण्ड तो ठीक नहीं था।"

'सम्भव है तेरे पूर्व जन्म के किसी पाप का भी यह दण्ड हो' नारद जी बोले।

"अब इसका कोई प्रतिकार तो बताइये।" सत्यभामा ने पूछा।

"प्रतिकार इसका क्या होता ? बस तुम उसे भी अपनी बहिन समझो। ईर्ष्या और कुढ़न को अपने हृदय के पास भी मत फटकने दो।" इतना कहकर नारद जी चले गए।

❀ सत्यभामा-रुक्मणि मिलन ❀

कहते हैं कि एक बार श्री कृष्ण ने रुक्मणि के प्रासाद में आने जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इस प्रतिबन्ध की सूचना सत्यभामा को भी मिली, किन्तु यह उसके लिए असह्य था, अतः वह उसके वहा जाने के लिए लालायित हो उठी उसने श्री कृष्ण के महल मे पहुंचते ही नाना प्रकार के व्यंग कसने शुरू कर दिये। और रुक्मणि से मिलने के लिए अत्यन्त आग्रह करने लगी।

सत्यभामा की इस उग्र उत्कण्ठा को देख श्री कृष्ण ने उसे उससे मिलाना स्वीकार कर लिया। वास्तव मे यह सब कुछ सत्यभामा को चिढ़ाने के लिए ही स्वॉग रचा गया था, क्योकि वह रुक्मणि को लाने तथा उसके रूप, लावण्य, शालीनता आदि उत्कृष्ट गुणो की प्रशसा सुनकर मन ही मन ईर्ष्या करती थी। वह नहीं चाहती थी कि उसके

सदृश रूपवती अन्य रानी कृष्ण के अन्त पुर हो।

इस प्रकार श्री कृष्ण सत्यभामा के साथ रुक्मणि मिलन करवाने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर चले आये। और रुक्मणि को उन्होंने अनुपम वस्त्रों व आभूषणों से सजाया और +उपवन में ले जाकर एक अशोक तरु

+यह कथा इस प्रकार भी आती है कि श्री कृष्ण ने श्री प्रासाद नामक महल जिसमें लक्ष्मी की एक सुन्दर मूर्ति थी उसे जीर्णोद्धार कराने के बहाने चतुर शिल्पियो को दे दी और प्रतिमा के रिक्त स्थान पर (वेदी मे) वस्त्रालकारों से सुसज्जित रुक्मणि को बैठा दिया। और कह दिया कि सत्यभामा आदि रानिया तुम्हे जब देखने के लिए आवें तब तुम सर्वथा निश्चल हो जाना ताकि उन्हे यह न मालूम हो सके कि यह रुक्मणि है। पश्चात् सत्यभामा को प्रासाद में जाने को कहने चले गए। उनकी बात सुनकर सत्यभामा आदि रुक्मणि को देखने के लिए श्री प्रासाद में गयी। वहा जाकर पहले उन्होने लक्ष्मी देवी के दर्शन किये जो कि प्रासाद के प्रवेश द्वार पास ही थी। सत्यभामा ने वहा देवी के सामने नाना प्रकार की मनौतिया दी और बाद में आगे रुक्मणि के पास चल दी। प्रसाद में वे रुक्मणि को ढूढती रही, महल का कौना २ देखा पर वह न पायी, पाती कहा से वह लक्ष्मी के स्थान पर बैठी थी अन्त में निराश हो वहा से लौट आयी आकर श्री कृष्ण से सारा वृत्तात सुनाया। इस पर वे हस पड़े और उन्हें अपने साथ रुक्मणि के महल में ले आये। पहले जब सत्यभामादि अन्यान्य रानियाँ आई तब तो रुक्मणि प्रस्तर प्रतिमा की भाति निश्चेष्ट बैठी रही पर इस बार श्री कृष्ण के आते ही वह वहा उठ खडी हुई और चरण वन्दन किया।

पश्चात् श्री कृष्ण ने उन सब का परिचय दिया और प्रणाम करने को कहा। कृष्ण के कहने पर रुक्मणि प्रणाम करने लगी इतने में ही सत्यभामा ने उसे बीच में ही रोक दिया और कहने लगी—"नाथ ! मैं अज्ञानवश इसे पहले प्रणाम कर चुकी हू अत अब मुझे प्रणाम करवाने का किंचित अधिकार नही है।" श्री कृष्ण ने हसते हुए कहा कि 'बहिन को यदि प्रणाम कर भी दिया जाय तो कोई हर्ज नही होता, कर्तव्य यही कहता है कि छोटे बडो को प्रणाम करें अर्थात् गुरुजन छोटो के वन्दनीय होते हैं।"

श्री कृष्ण के ऐसे वचन सुनकर सत्यभामा पहले से भी अधिक ईर्ष्या में जलती हुई मुंह मोड़कर चली गई। त्रि०—

के नीचे पद्म शिला पर बैठा दिया। और एक दासी द्वारा सत्यभामा को वहाँ बुला लिया। जब सत्यभामा आई तो श्री कृष्ण पुष्प-पौधों की ओट में छुप गये। सत्यभामा ने इधर उधर देखा, पर श्री कृष्ण को कहीं न पाया। अचानक उसकी दृष्टि अशोक तरु नीचे पद्मासन पर बैठी रुक्मणि पर पड़ी। यह अद्भुत रूप देखकर वह समझी कि यह वन देवी है जो यहा अनायासही प्रगट हो गइ है। सम्भव है कि नर देवी, नाग कुमारी ही हो, जो भी हो है यह देवी ही। अतएव अनायास ही देवी मिली है क्यों न इससे मन चाहा वर मांगूं। यदि मेरी मनोकामना इसी के वरदान से पूर्ण हो जाय तो क्या हर्ज है। यह सोचकर वह आगे बढ़ी। उसने अपने हाथ जोड़ लिए और बोली—"हे देवी, तुम बड़ी कृपालु हो, दुखियो के दुख हरने वाली हो, तुम करुणा की सरिता हो, तुम मे अपार शक्ति है। मुझ अभागिन का भी दुख हरो। मुझे वर दो कि हरि प्रभु मेरे वश में आ जावें, वे मेरे ही हों, उनके हृदय में मेरे प्रति अनुराग जागृत हो जाय। माता! मेरे ऊपर दया करो, मेरे जीवन के सन्ताप हरो, मैं हरि प्रेम की प्यासी हूँ। वे मेरे महल में आयें और मुझ से असीम प्रेम करे, यदि मेरी यह मनोकामना पूर्ण हो जाये और श्री हरि मेरी सौक के घर न जाएं तो मै जानू कि तुम करुणा कारिणी और दुखियों का सहारा हो।' इतना कहकर वह आगे बढ़ी और रुक्मणि के पैर पकड़ लिये और नेत्रों में अश्रु लाकर कहा—"हे माता, मुझे वर दो, मेरी मनोकामना पूरी करो, मुझे वर दो।"

देवी रूपी रुक्मणि के आतुर नेत्रों में आसू छल छला आये वह कुछ न कह सकी। जब सत्यभामा अपने स्वार्थ के लिए देवी से वरदान मांग रही थी, उसी ससय श्री कृष्ण पुष्प पौधो की ओट से निकल आये, बोले—हाँ, हाँ देवी से वर माँग ले। क्या पता फिर ऐसा अवसर मिले या न मिले। इस देवी जैसी और कोई देवी नहीं है, यह तुझे मन इच्छित फल देगी। इस अद्वितीय करुणा कारिणी गुणवती देवी की यदि तू सारे जीवन सेवा करे तो विश्वास रख तेरे सारे दुख दूर हो जायेंगे। देख मैं तुझे बताता हूं। आज से तू क्रोध और ईर्ष्या को अपने पास भी न फटकने देना, किसी से कभी न कुढ़ना किसी का अनादर न करना, इस देवी को अपनी विरोधी मत समझना, यह कर लिया तो विश्वास रखयदि तेरी मनोकामना अवश्य पूरी करेगी।"

सत्यभामा श्री कृष्ण के इन वचनों को सुनकर बहुत लजाई। वह मन ही मन अपनी मूर्खता पर लज्जित हुई। उस पर सैंकडों घड़े पानी पड गया। क्योंकि वह समझ गई कि देवी, देवी नहीं, बल्कि रुक्मणि ही है। उसने अपने को सम्भालते हुए रुष्ट होकर कहा— 'आप को बहुत हसी सूझ रही है। राजा हो गए फिर भी रहे, ग्वाले के ग्वाले ही। ढोर चराये हैं, और ग्वालियों से ठिठोलिया की हैं, वही आदत अभी तक है। रुक्मणि दूर देश से आई है। मेरे लिए तो इसका आदर करना ही अच्छा है। अतिथि सत्कार में मैंने यदि इसके पैर भी छू लिए तो क्या हुआ ?"

"मैं कब कहता हू कि कुछ बुरी बात हो गई। मैं तो यही कहता हू कि इस देवी को प्रसन्न रखो तो तुम्हारी मनो कामना अवश्य ही पूरी हो।" श्री कृष्ण ने कहा।

"तुम तो अटपटी बात ही करना जानते हो, कोई भली बात भी कहा करो। मैं अपनी बहिन के पैर लग भी ली तो कौन उपहास की बात हो गई ?" सत्यभामा ने तुनक कर कहा।

उसी समय रुक्मणि ने उठकर सत्यभामा के पैर छुए। दोनों दो बहिनों की नाईं गले मिलीं। सत्यभामा ने रुक्मणि के प्रति बड़ा प्रेम दर्शाया। कुशल क्षेम पूछा और अन्त में कहा कि बहिन तुम मेरे लिए बहिन समान हो मेरे रहते किसी प्रकार का कष्ट मत उठाना। कोई बात हो तो मुझ से कहना।

रुक्मणि ने भी इस प्रेम का समुचित उत्तर दिया वह बोली-"आप की दया की भूखी हूँ। आपको मै अपनी बड़ी बहिन मानती हू। आप की सेवा करना मेरा कर्तव्य है। आप मेरी त्रुटियों पर कभी ध्यान न दें, उन के लिए मुझे सदा सावधान करती रहे।"

सत्यभामा उसे अपने महल में ले गई, वहा जाकर उसने रुक्मणि की बहुत खातिर की। अनेक भांति के मिष्ठान खिलाए। और उसके पीहर सम्बन्धी बातें मालूम की। विशेष सहानुभूति दर्शाई। उन दोनों का इस प्रकार प्रेम पूर्वक मिलना श्री कृष्ण के लिए बड़ा हर्ष दायक हुआ।

एक दिन नारद जी ने आकर श्री कृष्ण से जाम्बवती की बहुत प्रशंसा की। जाम्बवती, वैताढ्य गिरि के नप विष्वकसेन की जाम्बवान्

नामक कन्या थी, जो बहुत ही सुन्दर और गुणवंती थी। उसके एक भाई भी था जो अपनी कला में अद्वितीय था। श्री कृष्ण उसकी प्रशंसा सुनकर उसे प्राप्त करने के लिए उत्सुक हो गए। वे उसके साथ विवाह करने मे सफल हो गए। उसे द्वारिका मे लाकर अन्य दो रानियों के साथ प्रेम पूर्वक रहने की शिक्षा दी।

इसी प्रकार उन्होने सिंहलद्वीप के श्लेक्षण राजा की कन्या लक्ष्मणा से उसके सेनापति का मान मर्दन करके, राष्ट्रवर्धन की पुत्री सुषमा से उसके उद्दण्ड भाई का वध करके और सिंधु देश के मेरु भूपति का कन्या गौरी बाला से विवाह किया। हलधर के मामा हिरण्यनाभ की कन्या पद्मावती को स्वयंवर में जीता। गान्धार देश के नागजीत राजा की कन्या गन्धारी से प्रेम के आधार पर विवाह किया। इस प्रकार श्री कृष्ण की आठ रानियाँ हुई, जिनके साथ समान प्रेम से वे जीवन व्यतीत करने लगे।

इधर बलभद्र का विवाह श्रीकृष्ण के विवाह से पूर्व ही उनके मामा रैवत (क) की रति समान सुरूपा कन्या रेवती से हो चुका था, पश्चात रैवती की छोटी बहिनों का भी बलभद्र से हुआ। अत वे भी अपनी चार रानियों साथ दोगुन्दक देव की भांति क्रीडाएं करते हुए, समय बिताने लगे।

पाठकों को स्मरण होगा कि शौर्यपुर से विदा होने से पूर्व ही अरिष्टनेमि कुमार का जन्म हो चुका था। अब वे यहाँ द्वारिका में अपने साथियों के साथ द्वितीया के चन्द्र की भाँति परिवृद्ध होने लगे। यथा समय महाराज समुद्रविजय ने उनके शस्त्रास्त्र कला शिक्षा की उचित व्यवस्था करदी और वे कलाभ्यास करते हुए अपने अलौकिक कार्यों से सबको प्रिय लगने लगे। इस प्रकार आमोद-प्रमोदमय जीवन यापन करते हुए भी उनका मन सदा किसी अनुपम चिन्ता मे लीन रहता। वे घंटो तक एक वस्तु का विचार करते रहते, साथियों को करुणा, विनय, सदाचार आदि शिक्षा देते रहते क्यों न देते उन्होंने तो यादव वंश तथा संसार के भावी पथप्रदर्शक के रूप में आये थे।



प्रद्युम्न कुमार

एक बार रुक्मणि के घर अतिमुक्त अणगार पधारे। यह शुभ समाचार सुनकर सत्यभामा भी उनके दर्शनों के लिए दौडी आई। रुक्मणि ने उन्हें आदर पूर्वक वन्दना करके कहा—"हे प्रभो! कृपया यह तो बताइये कि मेरे कोई पुत्र भी होगा या नहीं? यदि पुत्र होगा तो कैसा?"

अवधि ज्ञानी मुनि ने विचार किया और बोले—"हां, तुम्हें एक पुत्र रत्न प्राप्त होगा और वह हरि समान ही अति सुन्दर और बलवान होगा।"

रुक्मणि को मुनि वचन से बहुत सन्तोष हुआ, जिस समय मुनिजी रुक्मणि के प्रश्न का उत्तर दे रहे थे सत्यभामा भी उनके सामने रुक्मणि के निकट ही बैठी थी। रुक्मणि ने मुनिवर का शुद्ध भाव से बहुत ही सत्कार किया। और कुछ देरि बाद वे वहां से विहार कर गए।

रुक्मणि ने सत्यभामा से कहा—"बहिन! आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मुनि जी ने जो भविष्य वाणी की है, उससे मेरी आत्मा को बहुत ही सन्तोष हुआ है।"

सत्यभामा तुरन्त बोल उठी—"रुक्मणि! तू भी बड़ी भोली है। अरी! मुनिवर ने तो अति सुन्दर वर बलवान पुत्र की भविष्य वाणी मेरे लिए की है। तूने देखा नहीं मुनिवर जब कह रहे थे तब उनका मुख मेरी ओर था, उनकी आंखें मेरी ओर थी।

"नहीं मुनिवर ने तो मेरे प्रश्न के उत्तर में ऐसा कहा था।" रुक्मणि बोली।

"परन्तु मुह तो मेरी ओर था।"

"मुह मेरी ओर भी तो था" रुक्मणि बोली।

"नहीं, नहीं, तू भूलती है। मुनिवर मेरे लिए ही कह रहे थे।" सत्यभामा ने जोर देकर कहा।

इस प्रकार दोनो उलझ गईं। दोनों अपने अपने लिए ही मुनिजी की भविष्य वाणी मानती थीं दोनों निर्णय न कर सकीं कि मुनि ने किसके लिए कहा, प्रत्येक अपनी बात को ही सही जानती। आखिर दोनों ने निर्णय किया कि हरि जी से पूछ लिया जाय, वे जो निर्णय दे वही दोनो स्वीकार कर लेंगी। वे श्री कृष्ण के पास पहुंची और सारी बात कह सुनाई, तथा उनसे यह निर्णय करने की प्रार्थना की कि मुनिवर की भविष्य वाणी उनमे से किसके लिए थी। श्री कृष्ण उन की बात सुन कर हस पड़े। बोले—"मेरी तो यही इच्छा है कि तुम दोनों ही पुत्र को जन्म दो। जाओ दोनो की कोख से ही पुत्र रत्न जन्म लेगे।"

दोनों प्रसन्न होकर चली आई।

किन्तु सत्यभामा को इससे सन्तोष न था उसके मन में तो ईर्ष्या रुक्मणि के प्रति हर समय रहती थी। अतः उसने उसको दुःख देने की भावना से कहा यदि मेरे पहले पुत्र होगा तो मैं दुर्योधन का दामाद बनाऊंगी और हम दोनों में से जिसके पुत्र का विवाह पहले हो उसी विवाह मे दर्भ के स्थान पर दूसरी अपने सिर के केश दे दे। बलराम श्री कृष्ण और दुर्योधन इस बात के साक्षी हों।

इस प्रकार सत्यभामा ने कुटिलता पूर्वक रुक्मणि को ठगने के लिए जाल बिछाया और उनसे यह शर्तें जो पहले रक्खी थीं इसी रहस्य को लेकर कि मै आयु मे बड़ी हूँ, मेरा विवाह भी इससे पहले हुआ है अत मेरे ही पहिले पुत्र उत्पन्न होगा। जब पुत्र पहिले उत्पन्न होगा तो विवाह भी पहिले ही होगा। किन्तु सरल हृदय रुक्मणि इस बात को न समझ सकी क्योकि उसके मन मे भामा के प्रति कोई किसी प्रकार का विकार था ही नहीं, इसलिए उसने उसकी शर्तों को आज्ञा रूप मानते हुए स्वीकार कर लिया कि यदि मेरे पुत्र पहिले उत्पन्न होगा तो दुर्योधन की पुत्री से विवाह करूंगी और यदि तुम्हारे (भामा) पुत्र का विवाह पहले हुवा तो मैं केश दे दूगी। इस प्रकार परस्पर शर्त तय हो गई और रुक्मणि के साक्षी श्री कृष्ण तथा सत्यभामा के बलराम और दुर्योधन साक्षी हो गये। सोतो की आपस की इस अटपटी

शर्तों पर श्री कृष्ण और बलराम हस पड़े और कहने लगे कि देखें ऊँट किस करवट बैठता है।

कुमार का जन्म और विछोह

एक दिन रुक्मणि आनन्दचित्त हो अपनी शय्या पर निद्रामग्न थी, कि उसे एक स्वप्न आया। स्वप्न में उस ने देखा कि वह एक धवल-वृषभ पर स्थित एक रम्य विमान में बैठी हुई है। इस शुभ स्वप्न को देख कर उस के चित्त को बड़ी शांति मिली। स्वप्न को शुभ जान कर उस ने श्रीकृष्ण को जा सुनाया और फल पूछा। श्रीकृष्ण बोले—"यह स्वप्न बताता है कि तुम एक तिलक समान, रूपवान, कला धारी, तथा गुणवान पुत्र की माता बनोगी।'

रुक्मणि स्वप्न फल सुनकर बहुत प्रसन्न हुई।

उधर भामा ने भी एक स्वप्न देखा और उसे श्रीकृष्ण को उल्लास-पूर्वक सुनाया। श्रीकृष्ण ने बताया कि तुम्हारी कोख में एक जीव ने स्वर्गलोक से आकर स्थान पाया है।

यह बात सुन कर सत्यभामा को बड़ा हर्ष हुआ। परन्तु जब से वह गर्भवती हुई तभी से उसे अभिमान हो गया।

उधर रुक्मणि को पुण्य के प्रमाण स्वरूप दोहद उपजा, दान, तप, शील आदि के भाव उस के हृदय में उदित हुए। वह प्रफुल्लित रहने लगी। उदर अधिक नहीं बढ़ा। परन्तु सत्यभामा का उदर काफी बढ़ गया। वह रुक्मणि के उदर को देख कर सोचने लगी कि इसे गर्भ नहीं है, वैसे ही प्रपच रच रही है। गर्भ का तो निशान तक नहीं, यू ही ढकोसले रचती फिर रही है। पर अन्त में सारी ढकोस्ला बाजी और शान निकल जायेगी।

परन्तु रुक्मणि के मन में ऐसी कोई बात ही न थी। सच है, जिस की जैसी भावना होती है वह वैसा ही देखता है और उसे वैसा ही फल मिलता है—

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।

दुष्टों को दुष्ट विचार और श्रेष्ठ मनुष्यों को शुभ विचार ही आते हैं। सत्यभामा मन ही मन प्रसन्न होती रही, वह अहकार में झूमती रही, और रुक्मणि प्रसन्नचित्त व निश्चिन्त हो दान देती रही।

१सहस्र रश्मियो युक्त सूर्य को देखा हरि०—

समय व्यतीत होता रहा और अन्त में गर्भ के दिन पूरे हो गए। शुभ वेला और शुभ घड़ी मे रुक्मणि ने एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र मुख की कान्ति से सारा राज प्रासाद जगमगा उठा तथा समस्त दिशाए प्रद्योदित हो गई। उस समय ऐसा दिखाई देने लगा मानो प्रासाद रूप प्राची दिशा ने सूर्य को ही जन्म दिया और उसी से ही यह प्रकाश फैला है। अत. श्रीकृष्ण ने उसका नाम प्रद्युम्न रखा।

सारे परिवार मे हर्ष छा गया। सारे हितचिन्तक बधाई देने आये। इसी समय सत्यभामा के पुत्र रत्न उत्पन्न होने की सूचना मिली, उसका नाम भानु (क) रखा गया। लोग उधर भी वधाई देने गये। वे उसके पुत्र को ज्येष्ठ मान कर बारम्बार हर्ष नाद करते। श्रीकृष्ण ने मुक्त हस्त से दान दिया। चारों ओर हर्ष ठाठें मार रहा था, सारे नगर में प्रसन्नता छा गई। सुहागिनों ने जा कर मंगल गान गाए। कृष्ण का महल सज गया, अनुपम उत्सव मनाया गया। पॉच दिन तक मिष्ठान बंटता रहा, नृत्य और संगीत का आयोजन चलता रहा। चारों ओर हर्ष ही हर्ष था। सत्यभामा को यह सुनकर खेद हुआ था कि रुक्मणि ने भी एक सुन्दर बालक को जन्म दिया है, पर वह यह सोच कर प्रसन्न थी कि उसका पुत्र ही ज्येष्ठ है। वही पहले हुआ है। रुक्मणि इस बात से बहुत प्रसन्न थी कि जिस समय उसने पुत्र का मुख देखा उसी समय सत्यभामा भी पुत्रवती हुई। वह अपने सुन्दर विलक्षण पुत्र को देख देख कर बड़ी प्रफुल्लित हो रही थी, पर छठे दिन उस समय उसकी प्रसन्नताएं महान दु ख में परिणत हो गईं जब कि उस के पुत्र को किसी ने हर लिया, पुत्र शय्या से गायब था, रुक्मणि व्याकुल हो गई। उसने अपने बाल नोच लिए, वस्त्र फाड डाले और बिलख बिलख कर रुदन करने लगी। सारा परिवार ही शोक मे डूब गया, सत्यभामा को भी प्रत्यक्ष में दुःख था, उस के हृदय की कौन जाने ?

वास्तव में बात यों थी कि एक देव जो कि कुमार का पूर्वभव का वैरी था, रुक्मणि का रूप धारण कर श्रीकृष्ण के हाथों मे से उठाकर ले गया था।

पुण्यवान के पगे पगे निधान

बालक को ले जाकर, वह देव सोचने लगा कि किसी विधि से इसकी हत्या की जाय, कैसे उसे तड़पा तड़पाकर मारा जाय ? उसने

बहुत सोचा कि बिना पूर्ण आयु हुए यह नहीं मरेगा, अतः मैं केवल इसके जीवन को दुर्लभ ही कर सकता हू। वह उसे वैताढ्य पर्वत पर ले गया और वहाँ एक टक नामक विशाल शिला पर रख दिया। और हर्षित होकर बोला—"ले अपने किए का फल भोग।" इतना कहकर वह अपने रास्ते चला गया।

परन्तु पुण्य के प्रभाव से शिशु को तनिक सा भी कष्ट न हुआ। तभी तो कहा है कि आकाश में जितने तारे हैं, यदि किसी के उतने भी वैरी हों, परन्तु उसके पुण्य इतने बलवान सखा होते हैं कि कोई भी उसका बाल बांका नहीं कर सकता। संसार में कोई भी किसी के साथ न बुरा कर सकता है न भला, न किसी को सुख दे सकता है और न दु ख ही यह तो मनुष्य के कर्म हैं जो उसे सुख अथवा दुख देते हैं। बाकी निमित्त कारण हैं। पूर्व कर्मो कर्मानुसार ही मनुष्य का जीवन चलता है। देखिये कस को तो जन्म लेते ही नदी मे बहा दिया गया था, पर वह जीवित रहा और अन्त में मथुराधीश बना। भीम की हत्या करने के लिए बालपन में ही दुर्योधन ने कितने षड्यन्त्र किए पर दुर्योधन उनका बाल भी बांका न कर सका। इसी प्रकार रुक्मणि का पुत्र पहाड़ पर अकेला ही जीवित रहा।

वैताढ्य पर्वत के मेघ कूट पर उन दिनों न्यायवत, गुणवान तथा दयावान कालसवर विद्याधर राजा रहते थे जिन की पटरानी कनकमाला अति सुन्दर चन्द्रमुखी थी। नृप और रानी वायुयान में बठे कहीं जा रहे थे, उनका वायुयान उधर से हो कर जा रहा था जहा बालक विशाल शिला पर रखा था। वे प्राकृतिक सौन्दर्य को देखते जा रहे थे अनायास ही उनकी दृष्टि उस शिला पर पड़ी। अपनी रानी को सम्बोधित करके बोले—"देखो प्रिये, क्या अनहोनी बात है, एक बालक शिला पर रखा है।

"हा है तो ऐसा ही, रानी ने देख कर कहा—पर सम्भव है वहां निकट ही कोई हो।

कौन हो सकता है वहां तो कोई नहीं।

"चल कर देख लीजिए।"

रानी का प्रस्ताव उन्हें पसन्द आया और वायुयान रोक कर वे नीचे उतर आये। शिला के पास गए, तो देखा कि नवजात शिशु बालक है।

वे कहने लगे—"रानी ! यह बालक तो बड़ा पुण्यवान है, देखो कैसी विचित्र बात है, गिरि के शिखर पर अकेला ही खेल रहा है।

"नाथ है तो आश्चर्य की ही बात।" रानी ने कहा।

"किसी दुष्ट ने इसे मारने का यत्न किया, पर देखो अपने पुण्य के प्रताप से यह बच गया।" राजा ने कहा।

"बड़े ही शुभ कर्म किए होंगे इस ने अपने पूर्व जन्म में।" रानी कहने लगी।

"यह तो यहां अनाथ है। इसे यहां छोड़ना ठीक नहीं है। अतः अपने साथ ले चलना चाहिए।" राजा ने प्रस्ताव किया। इस ने पूर्व-जन्म में बड़ा पुण्य कमाया है, इस भाग्यशाली को मैं तुम्हे सन्तान रूप में देता हूँ।"

रानी कुछ सोचने लगी। फिर बोली—"परन्तु आप के दरबार में तो कई कुमार हैं। उन के सामने इस बेचारे को कौन पूछेगा?"

राजा भी चिन्तामग्न हो गए और अन्त में वे बोले—"तो मैं इसे ही युवराज पद दूंगा।"

राजा ने वहीं मुख तबोल से उस के मस्तक पर तिलक लगा कर उसे युवराज बना दिया। रानी ने हर्षित हो कर उसे गोद में ले लिया। तभी तो कहा है कि शत्रु का कोप किसी का क्या बिगाड़ सकता है जब कि सज्जन उस के पक्ष में हों। जब कि उस के पुण्यों से न्यायवान उसकी रक्षा के लिए तत्पर हों।

राजा रानी दोनों तुरन्त महल में आये और रानी एकांत कमरे में चली गई। राजा ने महल में घोषणा कर दी कि गुप्त-गर्भिणी रानी कनकमाला ने एक सुन्दर पुत्ररत्न को जन्म दिया है। क्षण भर में ही यह बात सारे महल में घूम गई और महल से निकल कर नगर में पहुँच गई। कुछ ही देर में सारे नगर में हर्ष मनाया जाने लगा, नारियाँ महल में आकर मगलाचार गाने लगीं। महल मे ढोलक के मधुर स्वर, तथा नुपूरों की ध्वनि गूंज उठी। सारा नगर सजवाया गया। नृप ने अन्न, अभय, विद्या तथा औषधि आदि का दान देना आरम्भ कर दिया। बड़ी धूमधाम से महोत्सव मनाया गया। देश के सर्वोत्तम कलाकारों को निमन्त्रित कराकर कितनी ही सभायें सजाई गईं। कलाकारों में मुक्तहस्त से पुरस्कार दिए गए। कितने ही बन्दियों को मुक्त

कर दिया गया। जिस ने आकर कोई सवाल किया राजा ने उसे प्रसन्न कर दिया। बारहवें दिन नृप तथा परिवार के अन्य लोगों ने मिल कर पण्डितों की इच्छानुसार बालक को प्रद्युम्न कुमार का नाम दिया।

जिस प्रकार अंकुर धीरे धीरे विकसित होकर पौधे का रूप धारण करने लगता है, या जिस प्रकार कली धीरे धीरे पुष्प का रूप धारण करने लगती है, इसी प्रकार प्रद्युम्न कुमार विकसित होने लगा। अपने घर पर तो सभी को आदर मिलता है, पर जिसे पर घर में भी आदर मिले वास्तव में वह ही पुण्यवान होता है।

× × ×

इधर रुक्मणि का रोते रोते बुरा हाल हो गया। वह दहाड़े मार कर रो रही थी और बार बार कहती कि मेरा शशि समान लाल कहां गया। उसे कौन ले गया। वह अपने दास दासियों को झकोड़ झकोड़ कर पूछती बताओ कहाँ गया मेरा लाल? उसे पृथ्वी खा गई या आकाश ले उड़ा। तुम नहीं जानते तो और कौन जानता है। यहां कौन आया था? पर किसी को कुछ ज्ञात हो तो वह बतावे भी। सभी मौन थे, उनकी आँखों से भी अश्रु बिन्दु झरने लगे। तब रुक्मणि सोचती—"मैंने कौन से पाप किए हैं जिन का मुझे यह फल भोगना पड़ रहा है कि मेरा लाल ही मेरी गोदी से चला गया। इस से तो अच्छा था कि मैं जन्म होते ही मर जाती। मैं श्री हरि जैसे महाबली की पत्नी ही न बनती तो अच्छा था। निपूती का तो कोई भी आदर नहीं करता। मैं तो पुत्रवती होकर भी बांझ समान ही हो गई। आखिर मैंने किस के साथ अन्याय किया है, किस जीव को सताया है, किस को हत्या की है, किस के बालक को हानि पहुंचाई है? जिस के परिणाम स्वरूप मुझे अपने नवजात शिशु विछोह सहन करना पड रहा है अब मैं क्या करूंगी। ओह मैं ने बेकार ही पुत्र की कामना की? अब मुनिवर की भविष्यवाणी का क्या होगा? अब मेरी क्या दशा होगी? मेरा जीवन कैसे चलेगा?"—इसी प्रकार की कितनी ही बातें वह सोचती और अश्रुपात करती रहती। श्रीकृष्ण को जब पुत्र के हर लिए जाने का समाचार प्राप्त हुआ, वे तुरन्त महल में आये। उन्होंने कर्मचारियों को तुरन्त पुत्र का पता लगाने का आदेश दिया। सेना अधिकारी को बुलाकर आदेश दिया कि चारों ओर बस्ती, नगर, उपवन, वन, पहाड़ सभी छान मारें

जहां कहीं भी हो, पुत्र को खोज कर लाओ। फिर वे अन्त पुर में आये।

रुक्मणि ने उन्हे देखते ही रो कर कहा—"हाय! मैं आप के राज्य में ही लुट गई। आप के महल में मे ही मेरा लाल चुरा लिया गया?"

श्रीकृष्ण ने धैर्य बधाते हुए कहा—"प्रिये! घबराओ नहीं मैं पृथ्वी का कोना कोना छनवा दूंगा। जैसे भी होगा पुत्र का पता लगाऊगा।"

उसी समय अनायास ही नारद जो भी आ गए। उन्होंने जो रुदन सुना तो पूछ बैठे—'पुत्र जन्म के उत्सव पर यह चीत्कार कैसा?"

'पुत्र हर लिया गया है, मुनिवर!"

बात सुनते ही पहले तो मुनिवर ने भी आश्चर्य प्रकट किया। फिर शाँत हो गए। श्री कृष्ण ने पूछा—"कुछ आप ही बताइये ऋषि जी! बालक कहां गया? उसका क्या हुआ?"

नारद जी ने कहा—"आप विश्वास रक्खें वह पुण्यवान बालक है, उसे कोई नहीं मार सकता। वह जहां भी होगा सकुशल होगा और आपको अवश्य ही मिलेगा। मै भी उसकी खोज करूंगा और आपको सूचना दूंगा।"

फिर उन्होंने रुक्मणि को सांत्वना देते हुए कहा—"तुम इतनी व्याकुल मत हो। विश्वास रक्खो वह सकुशल है। तुम्हे अवश्य ही मिलेगा। मै उसकी खोज करने निकल रहा हूँ। हरि की पत्नी को इस प्रकार की व्याकुलता शोभा नहीं देती।"

❋ प्रद्युम्न का पूर्वभव ❋

इतना कहकर नारद जी वहाँ से पूर्व महाविदेह क्षेत्र में स्थित सीनंधर तीर्थङ्कर के पास पहुँचे। उन्हें यथा विधि वंदना कर पूछने लगे, भगवन्! भरत क्षेत्र के यदुवशी द्वारिकाधीश श्री कृष्ण की पटरानी रुक्मणि का पुत्र इस समय कहाँ है, उसे कौन ले गया और वह अपने माता पिता को मिलेगा या नहीं? कृपा करके बताइये।

सीमन्धर स्वामी ने कहा हे नारद! उस बालक को उसके पूर्व जन्म का वैरी धूमकेतु नामक देव छल पूर्वक वैताढयगिरि पर्वत की टंक

शिला पर ले गया था किन्तु वहाँ से विद्याधर पति महाराज कालसवर जो कि उधर से अपनी रानी सहित अपने राज्य को लौट रहा था तो उसकी दृष्टि बालक पर पड़ी और वह उसे पुण्वान समझ कर अपने राज्य में ले गया। वहां से ललित पालित होकर सोलह वर्ष की आयु में पुनः माता से मिलेगा।

नारद ने फिर प्रश्न किया धूमकेतु का उस शिशु के साथ क्या वैर सम्बन्ध था ? नारद की बात सुनकर प्रभु ने कहना आरम्भ किया—

इसी भरतक्षेत्र के कुरु देश की राजधानी हस्तिनापुर थी। वहां विश्वकसेन नामक राजा राज्य करते थे। उनके मधु और कैटभ नामक राजकुमार थे जिन्हें महाराज विश्वकसेन ने शस्त्रास्त्र कला की पूर्ण शिक्षा दी। कुमारों के योग्य होने के बाद महाराज विश्वकसेन ने मधु को राज्य देकर तथा कैटभ को युवराज पद देकर स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली।

इधर इन्हों के राज्य में भीम नामक एक पल्लीपति था, जो स्वभाव का अहकारी तथा उद्दण्ड था। वह इनकी किसी भी प्रकार से आधीनता स्वीकार न करता था, और निरन्तर ग्रामवासियों को सताता रहता। महाराज मधु ने उसके दमनके लिए कई कड़े प्रयत्न किए किन्तु विफल रहे, अन्त में एक बार वे अपने मत्री के साथ एक विशाल वाहिनी सेना ले आमलकप्पा की ओर चल पड़े। मार्ग में एक बटपुर नगर आया। वहा के जागीरदार कनकरथ (प्रभ) ने जब सुना कि मधु नृप अपनी सेना सहित नगरसे गुजर रहा है, तो वह स्वागत को पहुँचा और विश्राम के लिए अपने महल में ले आया। यथायोग्य सत्कार किया। भोजन का जब समय हुआ तो उसने अपनी रानी, चन्द्राभा से कहा—"यह एक स्वर्णिम समय नृप को प्रसन्न करने का मिला है। जितना इस अवसर पर हम नृप का सत्कार करेंगे, हमारे लिए श्रेयष्कर होगा। अतः मेरा विचार है कि नृप को प्रसन्न करने के लिए तुम स्वय भोजन परोसो।"

कहा-"नाथ! आप यह कैसी बात कह रहे हैं? बुद्धि से काम लीजिए हमें नृप को काले नाग के समान समझना चाहिए। उसका सत्कार तो करो, पर कोई ऐसी बात न करो, जिसके कारण हम पर कोई संकट आ सके।"

"इसमें सकट की क्या बात है?"

"आप अपनी पत्नी को उसे भोजन जिमाने को भेज रहे हैं, न जाने नृप के मन में क्या आ जाए और कोई संकट आ खड़ा हो।" रानी बोली।

कनकरथ हंस पड़ा। बोला-रानी! तुम भी कैसी बात ले बैठी? वह नृप है। उसके महल मे एक से एक सुन्दरी है। तुम जैसी सुन्दरियाँ तो उसकी दासी हे। अत किसी प्रकार का भय किए बिना तुम भोजन कराओ। रानी ने बहुत मना किया पर कनकरथ न माना और विवश होकर चन्द्राभा को ही स्वर्ण कलश के पानी से पांव धोने और भोजन कराने जाना पड़ा। मधु नृपने उसे देखा तो वह उस पर मोहित हो गया। उसकी दृष्टि चन्द्राभा पर ही टिक गई। इस बात को वह ताड़ गई। अत वह उसी समय वहां से उठकर चली गई।

भोजन समाप्त होने पर मधु नृप ने अपने मन्त्री को एकान्त में बुलाकर कहा—"मंत्री जी! यह रानी बड़ी रूपवती है।"

"हां है तो" मत्री बोला।

मंत्री उसके मन की बात भॉप गया। और इस अनर्थ को टालने के लिए उसने प्रस्थान की भेरी बजवा दी और नृप से वटपुर छुड़ाकर अवधपुरी ले आया। नृप बुरी तरह खीझ उठा, उसने कहा-मत्री जी! आप ने अवधपुरी लाकर हमारे हृदय को बड़ी ठेस पहुँचाई है। जब हमने कहा था कि चन्द्राभा से हमारा मिलन कराओ, तो आपने हमारी बात क्यों टाली?"

"महाराज! आप विश्वास रखिये, लौटते समय आपकी भेट अवश्य हो जायेगी।"

मंत्री की बात सुनकर नृप को शांति मिली और वह भीम को उचित दण्ड देकर शीघ्र लौटने की प्रतीक्षा करने लगा। परन्तु काम समाप्त होने पर जब वह वापिस चला, तो भी मत्री ने चन्द्राभा से उसकी भेंट न कराई। १राजधानी पहुँचने पर वह बहुत क्रुध हुआ और मत्री से बोला—"मत्री जी! आपने हमारे आदेश की अवज्ञा की है।"

"महाराज! मैंने जान बूझ कर ऐसा किया है। क्यों कि पहले उस समय हम युद्ध के लिए जा रहे थे, युद्ध में भला हम लड़ते या रानी की रक्षा करते? आपके मन की एकाग्रता न रहती, बिना एकाग्रता के कार्य सिद्धि असभव होती है। दूसरी बात यह थी कि यदि हम उस समय चन्द्राभा को ले आते तो अन्य राजा हमें भी भीम की भाँति ही तस्कर आदि समझने लगते, और किसी विपत्ति के समय हमारा साथ न देते। फिर महाराज! दूसरे की विवाहिता स्त्री का अपहरण करना कितना बड़ा पाप है। ऐसे कुकृत्य के करने वाले को तो आप स्वय दण्ड दिया करते हैं। शास्त्रकारों ने कहा है "*मातृवत् परदारेषु*" अर्थात् अन्य स्त्रियाँ माता के सदृश समझनी चाहिए।

१ग्रन्थो मे ऐसा उल्लेख भी पाया जाता है कि भीम पल्ली पति को परास्त कर जब पुन राजधानी को लौटने लगा तो मार्ग में फिर वटपुर नगर आया और कनकप्रभ पहले की भाँति स्वर्ण मणि आदि बहुमूल्य वस्तुएँ उपहार स्वरूप देने लगा, किन्तु मधु नृप ने ये वस्तुए लेने से इन्कार करते हुए कहा कि "हमें इन वस्तुओ की तनिक इच्छा नही है ये तो राज्य कोष में ही बहुत हैं। यदि सच्चे हृदय से स्वामी भक्ति से प्रेरित होकर उपहार देने आये हो तो चन्द्राभा दे दो, हमें यही पर्याप्त भेंट है। चन्द्राभा जो कनकरथ को प्राणो से भी प्यारी थी को भला कैसे अन्य राजा के हाथ सोप सकता था, वह तो उसके अन्त पुर की, राज्य की अनुपम लक्ष्मी थी, अत. नाम सुनते ही नकारात्म उत्तर दे दिया। इस उत्तर को सुनकर मधु के प्राण शुष्क होने लगे, क्योकि उसने तो अपने आपको चन्द्राभा पर न्यौछावर कर रखा था। उसने दूसरी वार कनकप्रभ से याचना की, लेकिन उत्तर में निराशा अन्त में तीसरी वार मधु बलात् कनकप्रभ के राज प्रासाद से चन्द्राभा को ले गया और उसे अपनी पटरानी बना लिया। त्रि०—

मन्त्री ने शिक्षा पूर्ण शब्दों में कहा।

नृप को और भी क्रोध आया और गरज कर बोला—"जान बूझ कर हमारे आदेश का उल्लंघन करने को आपका साहस कैसे हुआ?"

"महाराज! मैं पर नारी की ओर कुदृष्टि डालना घोर पाप समझता हूँ।" मंत्री ने स्पष्टतया कहा।

"भलाई इसी में है, कि आप चन्द्राभा से किसी भी प्रकार हमारी भेंट कराइये। बिना उसके मिले हमे शाँति नहीं मिलेगी।"

"महाराज! मैं फिर कहूँगा कि दुर्व्यसन दुखदायी होते हैं, नृप को समझाते हुए कहने लगा, परनारी पर कुदृष्टि डालना तो भयकर दुर्व्यसज है, यह तो बिना रस्सी का बन्धन है, यह बिना रोग का रोग है, इसके कारण बिना काजल के ही मस्तक पर कालिख लग जाती है। बिना किसी सम्बन्धी की मृत्यु के इस कारण शोक छा जाता है। परनारी की ओर दृष्टि डालने वाला घोर अपयश का भागीदार बनता है, लोग उससे घृणा करने लगते है। अन्तमें उसे कुम्भी पाक अर्थात् नरक के दुःख भोगने होते है। उसके लिए मोक्ष के द्वार बन्द हो जाते हैं।"

"मन्त्री जी! आप सत्य कहते है, परन्तु मैं बिना चन्द्राभा के जीवित नहीं रह सकता। वह मेरे स्वप्नों की अप्सरा बन चुकी है। वह मेरे हृदय की धड़कनों में बस गई है।" नृप ने कहा। परन्तु मन्त्री ने उन्हे समझाया ही, उनकी इच्छापूर्ति के लिए प्रयास न किया।

नृप की बुरी दशा थी, उसे अन्न जल नहीं भाता, न नींद आती, न किसी कार्य मे मन लगता, दिन प्रति दिन दुबला होने लगा, दिन में ही जागते हुए भी वह चन्द्राभा के स्वप्न देखता रहता। और बारम्बार कहता—मन्त्री जी! हमें मृत्यु का ग्रास होने से बचाना है तो चन्द्राभा को मगाइये।" पर मन्त्री उसकी बात टाल देता।

अन्त मे एक दिन राजा को मृतप्राय जान मन्त्री ने कहा महाराज! पहले बिना किसी से सम्पर्क स्थापित किये यों ही उसे अपना समझना बुद्धिमत्ता नहीं कही जा सकती। अत आप उन से पहले आने जाने आदि का सम्पर्क उपस्थित करें, फिर आगे देखेंगे।

मन्त्री की यह बात नृप को पसन्द आई, और वह अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

बसन्त ऋतु आ गई, वन-उपवन तक सज गए। नृप ने इस अवसर पर अपने मन को सजाने की युक्ति सोची और बसन्त खेलने के बहाने अनेक नृपों को निमन्त्रित कर लिया। उन ही में हेमरथ को भी निमन्त्रित किया गया। हेमरथ को निमन्त्रण पाकर बहुत प्रसन्नता हुई। उस ने अपनी रानी से कहा—"देखा मैं कहता था न कि हमारे अधिक सत्कार से नृप प्रसन्न होगा तो हमारे लिए बहुत ही लाभदायक बात होगी। तुम ने स्वय भोजन जिमवाया था, इस लिए नृप इतना प्रसन्न है हमें बसन्त खेलने के लिए निमन्त्रित किया है।"

रानी का हृदय धडका, उसने पूछा—"तो क्या आप जा रहे हैं ?"

"हा, और तुम्हें भी मेरे साथ चलना होगा। नृप ने हम दोनों को निमन्त्रित किया है।"

कनकरथ की बात सुनते ही, रानी निमन्त्रण के रहस्य को समझ गई। उसने कहा—"हे कथ ! यह सब मेरे लिए जाल रचा जा रहा है। अतएव आप जाना चाहें तो चले जायं मैं नहीं जाऊगी।"

कनकरथ को रानी की बात न भाई, वह रुष्ट सा हो कर बोला—तुम अपने को समझती क्या हो ? तुम से तो उसकी दासियाँ भी सहस्रगुनी रूपवती हैं। वह भला तुम्हारी ओर आख उठा सकता है ?"

'हा, मै उसकी दृष्टि में तैरते उन्माद व विषयानुराग को भांप चुकी हूँ।" चन्द्राभा ने दृढ़ शब्दों में कहा।

"तुम्हें अपने रूप पर अभिमान है, कनकरथ कहने लगा, इसलिए तुम समझती हो कि सारी दुनिया तुम पर मुग्ध है। यह तुम्हारी बुद्धि और दृष्टि का दोष है।

'जो भी हो, मैं वहा नहीं जाऊगी।"

"तुम्हें मेरे साथ चलना ही होगा।" कनकरथ अपनी हठ पर अड़ गया, पति की आज्ञा उसे माननी पडी और वह कनकरथ के साथ चलने को तैयार हो गई।

चन्द्राभा को अपने महल मे देख कर मधु को बहुत सन्तोष हुआ और एक दासी द्वारा उसे अपने पास धोखे से बुला लिया। [illegible] अनेक लोभ दिखाये और किसी प्रकार उसे अपनी [illegible] लिया। कामान्ध हो कर मधु उस के साथ विषय [illegible] में लग गया। इन्द्र इन्द्राणी समान दोनों सुख [illegible]

देख कर हेमरथ को बड़ा दुःख हुआ, वह बुरी तरह व्याकुल हो गया। पर मधु नृप से टक्कर लेने की उसकी क्षमता न थी।

पर वह अपनी पत्नी को इस प्रकार छोड़ जाने को तैयार न था, अतः चन्द्राभा से एकान्त में बातचीत करने के यत्न करने लगा। पर सफल न हुआ। अपनी असफलता और अक्षमता के कारण वह बहुत व्याकुल हुआ। इधर से उधर पागलों की भांति रोता पीटता घूमने लगा। वस्त्र फाड़ लिए, बाल नोच डाले, और धूल में लोटने लगा।

'हाय मेरी पत्नी! हाय मेरी रानी" कह कर चिल्लाता। नर नारी उसे पागल समझ कर सहानुभूति दर्शाते, कुछ छेड़ करते, और कुछ हंसी उड़ाते। इस दशा को देख कर इन्दुप्रभा ने उसे एक दासी द्वारा बुलाया और कहा—"मैंने आप से बारम्बार कहा कि मुझे मत ले चलो पर आप न माने। अब आप अपने किए का फल भोगिये

कनकरथ ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—"हे प्रिये! मेरी एक भूल का इतना बड़ा दण्ड न दो। मैं पागल हो जाऊंगा। मैं तुम्हारा पति हूं। यह तो याद करो कि तुम ने जीवन पर्यन्त मेरे साथ रहने की शपथ ली थी?"

"कभी पुण्यहीन के पास रत्न नहीं रहते, बुद्धिहीन लक्ष्मी की रक्षा नहीं कर सकता और निर्बल अपनी पत्नी को भी नहीं रख सकता। चन्द्राभा ने आंखें तरेर कर कहा—

तुम ने मेरी इच्छा के प्रतिकूल कार्य किया था, अब मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण नहीं कर सकती। जाओ अब भी मेरी बात मान लो और जगहंसाई मत करो, यहां से भाग जाओ, अपने प्राणों की रक्षा करनी हो तो मुझे भूल जाओ।"

"[illegible] [illegible]
आन [illegible]
चारों ओर [illegible]
में कहा [illegible]

[illegible]
[illegible] ।

[illegible]
रहा [illegible]
[illegible]

किन्तु [illegible] आने पर [illegible]
अहर्निश उसकी जिह्वा पर वह नाम [illegible]
आता [illegible] पूछता चन्द्रामा कहाँ है [illegible]

—

इधर मधु नृप इन्दुप्रभा के [illegible]
धर्म, न्याय, राजकाज आदि [illegible]
भान्ति वह उसी में लीन रहता।

एक दिन सिपाही एक [illegible]
नृप को जो महल में चन्द्राभा [illegible]
एक घोर पापी दरबार में [illegible]
करने के लिए पधारें। [illegible]
अपराध किया है इस ने"

"महाराज! [illegible]"
सिपाही बोला।

"प्रमाण?" [illegible]

पास ही [illegible]
सुनते ही आदेश [illegible] —[illegible]
के पुकार की [illegible] ।

आदेश [illegible] चला गया। फिर राजा [illegible]
आते ही [illegible] —प्राणनाथ! आज इतनी देरी क्यों हुई?
राजा ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—रानी, आज एक अपराधी के
दण्ड की व्यवस्था करने में देरी हो [illegible]

इधर चन्द्रप्रभा यह सारा काण्ड गवाक्ष से देख रही थी। फिर भी पूछ बैठी क्या अपराध किया था उसने ?'

"उसने पर नारी का अपहरण किया था।" नृप बोला।

"फिर आप ने उसे क्या दण्ड दिया ?'

"मृत्यु।"

"तो क्या इतने से अपराध का इतना कठोर दण्ड ?" चन्द्रप्रभा पूछ उठी।

"इसे तुम छोटा सा अपराध समझती हो। इस जघन्य अपराध का मृत्यु दण्ड भी थोडा ही है।" नृप बोला।

इन्दुप्रभा ने हाथ जोड़ कर कहा—"स्वामी! आप बुरा न मानें तो मैं कुछ पूछूं।'

"हां हां, अवश्य पूछो।"

"नाथ! इन साधारण नागरिको के पर नारी का अपहरण करने के अपराध का दण्ड देने वाले तो नृप है। पर नृपों के इसी अपराध का दण्ड देने वाला कौन है? क्या उनका यह अपराध क्षम्य है?" चन्द्राभा ने पूछा।

नृप मौन रह गया। रानी फिर बोली—"या तो यह अपराध नहीं है, और यदि अपराध है तो इसका दण्ड भी उन्हे मिलना चाहिये। मैं आप से पूछती हूँ कि क्या आप का मुझ से विवाह हुआ था? क्या आपने मेरा अपहरण नहीं किया? आप के सम्बन्ध मे आप की प्रजा क्या सोचती होगी? और यदि यह अपराधी ही आप को सम्बोधित करते हुए कह देता कि महाराज आपने स्वय भी तो ऐसा ही किया है तो आप को कैसा लगता है? आप स्वय एक दुष्कृत्य किए बैठे हैं तो दूसरों को उसी दुष्कृत्य के लिए दण्डित करने का आप को क्या अधिकार है?

इसी समय कनकरथ भी प्रासाद के निकट ही चला आ रहा था, उस का रूप कुरूप हो चुका था। बालक उसे चिढ़ा रहे थे, उस के मुख से "चन्द्राभा चन्द्राभा" निकल रहा था।

उसकी इस दयनीय दशा पर अनायास ही चन्द्राभा की दृष्टि उस पर जा पड़ी, देख कर उसे अत्यन्त दुःख हुआ, वह मन ही मन अपने को कोसने लगी—मैं बड़ी मन्दभागिनी हूँ, दुष्टा हूं, मेरे ही कारण इस की यह दुर्दशा हुई है, अन्यथा यह भी मेरी भाँति राजमहल मे होता। ओह! मैं अन्तःपुर में राज्यसुख भोगूं और मेरा पति दर दर की भीख ... त रहे। धिक्कार है मुझे और मेरे ऐश्वर्य को!!'

विपिन में सैर करने के लिए गए। विपिन में एक तरु के नीचे मोरनी का अण्डा रक्खा था, सुन्दरी ने जिसके हाथ मे मेहन्दी लगी थी अंडा उठा कर देखा। अण्डे पर उसके हाथ की मेहन्दी लग गई। जिससे उसके वर्ण और गन्ध में अन्तर आ गया। इसीलिए मोरनी अपने अण्डे को पहचान न पाई। और सोलह घड़ी तक वह अण्डा माता के बिना रहा। मोरनी बड़ी शोक विह्वल थी। सोलह घड़ी उपरान्त वर्षा हुई जिससे अण्डा धुल गया और मोरनी उसे पहचान गई और अंडे को अपने पास रख लिया। यथा समय उस अण्डे से एक सुन्दर मयूर उत्पन्न हुआ। संयोग से इन्हीं दिनों लक्ष्मीवती भी एक दिन उद्यान में आई। उसकी दृष्टि अनायास ही उस नवोत्पन्न मयूर पर पड़ी, मयूर की सुन्दर छवि को देख उसका मन उसके लेने को लालायित हो उठा। बलात् वह मयूरी को रोती बिलखती छोड़ उसे अपने घर ले आयी और एक मनोहर पिंजड़े मे बन्द कर दिया।

अब लक्ष्मीवती की यही दिन चर्या बन गई थी, कि प्रात. मध्याह्न सायं तीनों समय मयूर के लिए भाँति भाँति के रम्य पदार्थ लाना और उसे खिलाना। कभी २ उसे उड़ना और नाचना भी सिखाती। अहर्निश वह उसी कार्य में ही रत्त रहती। धीरे धीरे वह मयूर १६ मास का हो गया। अब वह इतना सुन्दर नृत्य करता कि जो एक बार उसके नृत्य को देख लेता उस पर प्राणपण से लेने को आतुर हो उठता।

दूसरी ओर मयूरी (उस मयूर की माता) उसके विरह में छटपटाती रहती, जहां जहां वह उड़कर बैठ जाती उसी स्थान को अपनी अश्रुधारा से भिगो देती, लोगो के भवनों पर बैठी आसु बहाती और 'कै को कैको" का करुण क्रन्दन करती रहती। वह अपनी भाषा मे ही उसे बुलाती, उस समय उसका और कोई रक्षक नहीं था, उसके हृदय की विरह व्यथा को वही अनुभव करती या सर्वज्ञ ही जानते। हां, कुछ मानवतावादी लोग अवश्य इस बात का अनुभव कर रहे थे कि यह लक्ष्मीवती के योग्य कार्य नहीं था।

एक दिन उन्होने मिलकर लक्ष्मीवती से कहा—पुत्री! यह मयूर तेरे लिए एक मनोरंजन का स्थान बन गया है तथा कुछ पड़ोसियों ग्रामवासियों के भी, किन्तु तनिक इस मयूरी की ओर भी देखो! यह स भांति अपने पुत्र के लिए बिलखती हुई घूम रही है। तुम्हें इस

उन्होंने वह सारी कथा कह सुनाई जो सीमंधर प्रभु ने सुनाई थी। रुक्मणि तथा श्री कृष्ण को नारद जी के मुख से वह कथा सुनकर बहुत सन्तोष हुआ। उनके हृदय में एक नवीन आशा का संचार हुआ। रुक्मणि अशोक के सहारे से प्रसन्न रहने लगी। श्री कृष्ण आशा के झकोरों मे भविष्य की कल्पनाए करके प्रफुल्लित हो उठते।

इधर सोलह वर्ष पूर्ण होने की प्रतीक्षा से रुक्मणि के दिन व्यतीत होने लगे, उधर प्रद्युम्न कुमार दूज के चन्द्रमा के समान उत्तरोत्तर वृद्धि की ओर अग्रसर होने लगा। ज्यों ही उसने युवावस्था में पग रखा विशेष विद्वान अध्यापकों द्वारा शिक्षा दिलाई जाने लगी। कितनी ही शिक्षाए उसने गुरु चरणों में रहकर श्रद्धा पूर्वक प्राप्त की। जब वह शस्त्र विद्या मे पारगत हो गया तो तरुण प्रद्युम्न कुमार विकट सेना लेकर चहुँ ओर विजय पताका फहराता घूमने लगा, कितने ही राजाओं को परास्त करके बहुमूल्य वस्तुए घर लाने लगा। लोग विजेता युवराज की भूरि भूरि प्रशसा करते और याचक जन उसकी विरुदावली गाते।

कुमार की मृत्यु का षड्यन्त्र

प्रद्युम्न कुमार की द्विमाता उसकी पुण्यवृद्धि को देखकर सोचने लगी कि मेरे पुत्र तो इसके सामने कुछ भी नहीं रहे। उन्हे तो कोई पूछता ही नहीं। यह सोचकर वह चिन्तित रहती, इसी चिन्ता से ईर्ष्या अंकुरित हो गई। और एक दिन उसने अपने एक पुत्र को बुलाकर कहा—"सिंहनी एक पुत्र को जन्म देकर निर्भय रहती है। पर गधी दस पुत्रों को जन्म देकर भी बोझ से लदती ही है। तुम बताओ मैं सिंहनी सम हूं अथवा गधी समान ?"

इस विचित्र प्रश्न को सुनकर पुत्र बोला—"मां मैं आपकी बात समझ नहीं पाया।"

"बात तुम अब नहीं समझोगे, उस समय समझोगे जब प्रद्युम्न कुमार राज्यपाट सम्भाल लेगा और तुम्हें दासों की भाँति उसके सामने सिर झुका कर खड़े रहना पड़ा करेगा। और तुम्हें महल मे कोई पूछेगा भी नहीं। अर्थात् मैं गधी के समान हो जाऊगी और तुम ।" उस की माँ ने गम्भीर एव रोष के सयुक्त भावों को मुख पर लाते हुए कहा।

"मा ! आज आपने मेरी आँखें खोल दीं।" पुत्र बोला।

"नहीं आखें तुम्हारी अभी कहां खुली हैं। खुलेंगी तब जब कि अवसर हाथ से निकल जायेगा। नाग के निकल जाने पर तुम लकीर पीटा करना। याद रक्खो, मैं तो ससार से चली जाऊगी, पर तुम दासों की भाँति जीवन व्यतीत करोगे। बस मुझे चिन्ता है तो यही। उसकी माता ने उसे उत्तेजित करने के लिए कहा।

उसी समय उसे क्रोध चढ गया वह बोला—"माँ ! तुम विश्वास रक्खो। मैं शीघ्र ही मदन× का काम तमाम कर दूगा। आज आपने वास्तव में मुझे सचेत करके बहुत ही अच्छा किया।"

तभी से वह प्रद्युम्न कुमार की हत्या करने के लिए षड्यन्त्र रचने लगा। हृदय में कपट रखकर उसने प्रद्युम्न कुमार से प्रीति बढ़ाई, और उसे अपने को घनिष्ट मित्र दर्शाया। जब घनिष्ट सम्बन्ध हो गए तो एक दिन भोजन में विष मिलाकर खिला दिया, पर जब विष भी प्रद्युमन के लिए अमृत सिद्ध हुआ तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही। फिर कितने ही दुष्टों को उसके पीछे लगा दिया, यह षड्यन्त्र भी व्यर्थ सिद्ध हुआ। तब वह भ्राता रूपी शत्रु प्रद्युम्न कुमार को वैताढ्य गिरि पर ले गया और उसके उस शिखर पर उसे पहुचा दिया जहाँ दैत्यों का निवास स्थान था, ताकि प्रद्युम्न कुमार उनके द्वारा मारा जाय। किन्तु उसे प्रद्युम्न कुमार की दिव्य शक्ति का ज्ञान नहीं था।

अत वह वहाँ से किसी प्रकार बचकर पर्वतीय प्रदेशों में ही भ्रमण करता रहा। मार्ग में उसे अनेक यातनाए भुगतनी पड़ीं। किन्तु फिर भी उसने साहस न तोडा और यह सोचते हुए कि—

'भलाई के पथ पर बुराई के काटे
हैं विश्वास दिल को न हर्गिज उगेगे।
सवक साधुता का सिखाता है यही,
कि बुराई का बदला भलाई से देना।

संकटों को पाँव तले दबाते हुए आगे पग बढाया।

कुमार को रति की प्राप्ति

आगे बढते हुए मार्ग में उन्हें एक दुर्जय नामक वन आया। यह वन अत्यन्त विशाल था जिसमें पुष्प तथा फल युक्त सघन वृक्ष थे।

जिन पर बैठे हुए पक्षी अपने दुख-सुख की बात सोच रहे थे। कुछ बैठे चकचहट की ध्वनि कर रहे थे, जिस से वह सघन वन गूंज रहा था। वहीं से कभी २ मानव ध्वनि कानों में आ पडती। जिससे कुमार ने उसी दुर्जय वन में प्रवेश किया। कुमार ने वहाँ एक नवयुवती पद्मशिला पर पद्मासन लगाए हुए बैठी देखी। नवयुवती हाथ में स्फटिक रत्न की माला लिए जाप कर रही थी। श्वेत साटिका, गौर वर्ण, दीर्घ काले रेशम से केश, नितम्बों तक छिटके हुए, चन्द्रमुखी, मृगनयनी, सुकोमल प्रस्फुटित पुष्प की नाईं बैठी युवती साक्षात् देवांगना की भांति प्रतीत होती।

प्रद्युम्न कुमार देखते ही उस पर मोहित हो गया, वह सोचने लगा, अनुपम सुन्दरी वनकन्या प्रतीत होती है। इतने सौन्दर्य से परिपूर्ण यह सौम्य मूर्ति जिसके अंक में होगी, कितना गर्व होगा उसे अपने भाग्य पर। वह कभी उसके नेत्रों को देखता, कभी उसके तेजवान ललाट पर दृष्टि डालता, कभी गर्वित वक्षस्थल पर नजरें गड़ा देता। और मुग्ध होकर एक एक अग की मन ही मन प्रशसा करने लगा।

उसी समय एक पुरुष आ निकला। कुमार का आदर पूर्वक अभिवादन किया। कुमार जैसे स्वप्न लोक से जागृत हुए और पूछ बैठे—"भद्र! इस सुकुमारी के सम्बन्ध में आप मुझे कुछ बता सकते हैं?"

"जी हाँ, यह वायुनामक विद्याधर और उसकी सरस्वती रानी की सन्तान है। नाम है इसका रति। बडी ही पुण्यवती, गुणवती और शुद्ध विचारों की कन्या है।" उस पुरुष ने उत्तर दिया।

"इन्द्राणी को भी मात करने वाली इस युवती के हृदय में इतनी कम आयु में ही जप तथा तप के प्रति कैसे अनुराग हुआ? क्या इस के पीछे कोई रहस्य है।" कुमार पूछने लगा।

उस पुरुष ने उत्तर दिया—"भद्र! इसके पिता श्री ने ज्योतिषियों से पूछा था कि रति किस सौभाग्यशाली की सहधार्मिणी बनेगी। ज्योतिषियों ने बताया कि इस वन मे आकर प्रद्युम्न कुमार नामक पुण्यवान एवं वीर युवक इसे अपनी जीवन संगिनी बनायेगा। ज्योतिषियों ने उस कुमार के जो लक्षण बताए थे, वे सभी आप में विद्यमान हैं।" उसी की प्रतीक्षा में कुमारी बैठी है। प्रद्युम्न कुमार को

यह बात सुनकर अत्यन्त हर्ष हुआ और वह उस पुरुष के साथ वायु विद्याधर के पास पहुँचा। विद्याधर ने उसे देखते ही पहचान लिया कि वही कुमार जिसके सम्बन्ध मे ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी, आया है। बड़े आदर पूर्वक उसका स्वागत किया और अपनी कन्या का विवाह उसी के साथ रचा दिया। कितने ही दिव्य शस्त्रास्त्र दहेज में दिए और पुष्पकविमानमें बैठाकर उसे विदा किया। इसी लिए तो शास्त्रों में कहा गया है कि मनुष्य का पुण्य ही उसकी प्रत्येक विपदा और सकट में सहयोग देता है। कुमार का पुण्य ही वन, रण, शत्रु, सलिल, अग्नि तथा विकट स्थानों का सामना करने में काम आया। पुण्य के कारण ही उसे विजय श्री प्राप्त हुई।

कुमार का पुनः नगर में आगमन

कितने ही विद्याधर वायुयान से आगे गए और उन्होंने नगर में जाकर प्रद्युम्न कुमार के विजय पताका फहराते तथा रति सी इन्द्राणी को साथ लेकर आते कुमार का शुभ ममाचार पहुँचाया। नगर में यह समाचार रुई में लगी आग की भांति फैल गया। इस अपूर्व शोभा को देखने के लिए नगर के नर-नारी सडकों तथा मकानों की छतों पर एकत्रित हो गए। नारियां उज्ज्वल तथा कातिवान कुमार के रति इन्द्राणी के साथ आगमन का समाचार सुनकर सड़कों की ओर वेसुध होकर भागी। किसी के गले का हार टूट गया, मोती बिखर गए, पर उसे इस बात की चिन्ता ही नहीं, चिन्ता है तो कुमार की छवि देखने की। एक स्त्री है कि शीघ्रता में उसने आंखों में कुमकुम और गालों पर काजल लगा लिया, किसी ने वस्त्र ही उल्टे पहन लिये। बस शीघ्रता में जो हो गया, वह बडा ही हास्यास्पद था। पर कोई किसी की यह अवस्था देखकर हंसने वाला नहीं था। सभी को कुमार की सवारी देखने की चाह थी।

ज्यों ही नगर की सडकों से कुमार रति अप्सरा के साथ रथ में वैठकर निकला, जय जयकार से आकाश गूंज गया, पुष्पों की वर्षा होने लगी। कोई कहता—यह अनुपम जोड़ी अमर रहे। कोई हर्षातिरेक में कह उठती—"यह रोहिणी तथा शशि का संगम चिर जीवी हो। कोई कहने लगी—"यह कुमार और रति ही है या इन्द्र व इन्द्राणी। कुमार दोनों हाथों से रत्न तथा बहुमूल्य वस्तुएं बखेरते जाते थे।

महल मे जाकर रति ने कनकमाला के चरण स्पर्श किए। पिता जी को प्रणाम किया। दोनो को नृप तथा रानी ने बारम्बार आशीर्वाद दिया। रानी बार बार रति को देख मन ही मन प्रफुल्लित होती रही। जैसे उसके घर मे शशि ही उतर आया हो।

कृष्ण, श्वेत लाल लोचन हैं, कठ का आकार अम्बु समान है। पगतल, करतल नेत्र के कोने नम्र तालु, ओंठ सभी आरक्त है। जैसे साक्षात लक्ष्मी हो। हृदय, ललाट और शीश तीनों विस्तीर्ण है अत शुभ लक्षण सगृहीत हो गए है। स्वर गम्भीर नाभि और कान अण्डाकार है। दांतों की पक्ति मुक्ता रत्न समान मुखमण्डल चन्द्र समान यह बातें प्रतीक है इस सत्य की कि पूर्व जन्म का तपोबल उसकी आत्मा के साथ सम्बन्धित है। नाक कीर समान, और गौर वर्ण यह सभी कुछ रति को इन्द्राणी से भी अधिक रूपवती बना रहे हैं। यह देखकर कनकमाला बहुत ही प्रसन्न हुई। नृप को तो बहुत ही प्रसन्नता थी कि प्रद्युम्न कुमार साक्षात् देवागना सी बहू लाया है।

रानी की कुमार के प्रति कामवासना

रानी ने फिर कुमार की ओर देखा। विस्तीर्ण वक्ष मोती समान दांत, गौर वर्ण, विशाल मस्तक, बड़ी बड़ी आखें, वह भी मद भरी, और रक्तिम डोरे से युक्त, ललाट पर अद्भुत तेज, भुजाए विशाल, हाथी के सूंड समान जंघाए, यह सभी कुछ आकर्षण कुमार मे था। बस रानी सोचने लगी—"ओह इतना सुन्दर कुमार! इसके साथ सेज पर न सो सकू तो जीवन के सच्चे आनन्द से रहित ही रह जाऊंगी। घर ही मे कामदेव है और मैं व्यर्थ ही में उसे अपना पुत्र कहकर अपनी वासनाओं की तृप्ति से वंचित रह रही हूं।"

रानी के मन मे कामवासना जागृत हो गई।

बस कनकमाला पूरी तरह कुमार पर आसक्त हो गई और विषय वासना इतनी भड़की कि वह खाना पीना सोना और हर्षपूर्वक रहना भूल गई। मन की शांति भग हो गई। बारम्बार जभाई आतीं, आलस्य छाया रहता, मन व्याकुल रहता और स्वास जलती हुई सी निकलती, क्योंकि उस पर तो विषय ताप छाया हुआ था। केश खोले व्याकुल मन लिये वह सेज पर पड़ गई, न हंसना न बोलना सारा

महल इस दशा को देखकर चिन्तित हो गया। नृप को पता चला तो उसने तुरन्त वैद्यराज बुलाए।

वैद्यों ने नाड़ी देखी। पर वे न समझ पाए कि रानी को रोग क्या है। रोग की पहचान ही न हो तो निदान क्या हो। वैद्य आते, देखते और निराश होकर लौट जाते। इस दशा को देखकर नृप बहुत घबराया। रानी बार बार प्रद्युम्न कुमार को पुकारती। नृप अधीर हो गया, उसने कुमार को बुलाकर कहा—"कुमार तुम आनन्द पूर्वक इधर उधर घूम रहे हो। उधर तुम्हारी माँ बीमार है, जिसके रोग को पहचानने म वैद्यगण भी विफल हो गए हैं। बडी चिन्ताजनक दशा है उसकी। वह बार बार तुम्हारा नाम लेकर पुकारती है।"

प्रद्युम्न कुमार ने विनय पूर्वक कहा—"पिताजी! मुझे क्षमा करना। मुझे माता जी बीमारी की सूचना ही नहीं मिली थी। वरना अपनी तीर्थ समान माता के रोगग्रस्ता होने पर भला मैं न जाता। यह समाचार सुनकर मेरे हृदय पर एक भयकर आघात लगा है।"

कुमार तुरन्त माता के महल की ओर चल दिया, वह मन ही मन मन पश्चाताप करता जाता कि माता रुग्ण अवस्था में पडी है और अब तक मैं दर्शनों के लिए भी नहीं गया। क्या सोचती होंगी वह। कितनी आत्म ग्लानि होगी मुझे उनके सामने जाते ही। कितना बडा अनर्थ हो गया मुझ से?

कुमार ने ज्यों ही रानी के शयन कक्ष में पग रखा दूर से ही पुकारा—"मा! क्या हो गया तुम्हे।"

जाकर चरणों की ओर खडा होकर चरण स्पर्श किए और अवरुद्ध कण्ठ से कहा—माता जी! मुझे क्षमा करना, आप की यह दशा हो गई रोग से और मैं दर्शन भी न कर सका। कहीं आपको मेरी ओर से कोई भ्रम तो नहीं हुआ। माता जी! मुझे क्षमा करना, किसी ने मुझे बताया ही नहीं कि आप बीमार हैं, वरना मैं आधी रात भी भागा आता। आपको यह हुआ क्या है? क्या रोग है?"

दासी बोली—कुमार वैद्यगण आये थे, पर किसी की समझ में रोग ही नहीं आता।"

"ओह! तो क्या कोई भयकर रोग है?" कुमार के मुख से हठात् निकल गया।

रानी कुमार ही को एक टक देख रही थी। उसने कहा—"कुमार ! तुम्हारे आने से मेरे हृदय को कितनी शांति मिली है, बस मैं ही जानती हूँ।"

"आपको शान्ति मिले तो मैं, माता जी ! हर समय आपकी सेवा में उपस्थित रह सकता हूं। पर पहले मैं आपके लिए किसी अन्य आयुर्वेद शास्त्र के ज्ञाता विद्वान वैद्य का प्रबन्ध कर दूं। ताकि रोग का तो पता चले।" कुमार ने हाथ जोड़ कर कहा।

"कुमार ! वैद्यों की खोज मत करो। मेरा रोग असाध्य नहीं है। तुम ही मेरी दवा कर सकते हो।" कनकमाला ने कहा।

"तो फिर आज्ञा दीजिए। आपकी सेवा के लिए मैं तत्पर हूँ। कुमार बोला—आपके लिए यदि मेरे प्राणो की भी आवश्यकता हो तो वह भी मैं प्रसन्नता पूर्वक दे सकता हूँ।"

रानी ने सभी दास दासियो को वहां से चले जाने का आदेश दिया जब वे सभी चले गए तो कुमार ने पूछा—

"अब आप मुझे आज्ञा दीजिए कि आप के स्वास्थ्य के लिए मैं क्या कर सकता हूं।"

रानी तुरन्त उठ बैठी और बोली—"बस मेरी दवा तुम्ही हो।"

कुमार कुछ न समझ पाया। वह बोला—"पर मैं तो कहीं नहीं गया, मैं ही आपकी औषधि हूँ तो फिर समझ लीजिए कि आप स्वस्थ हो गईं। मैं तो अहर्निश आपके पास उपस्थित रह सकता हूँ। मैं अपनी सेवा से अपनी मां को रोग रहित कर पाऊं तो अहो भाग्य।"

"कुमार तुम यदि मुझे स्वस्थ देखना चाहते हो तो मेरी सेज पर आओ।" रानी बोली।

कुमार सेज पर बैठ गया।

"तुम मुझ से प्यार करो।" रानी ने कहा।

"मां ! यह आप क्या कह रही हैं।" कुमार आश्चर्य चकित बोला।

रानी ने तुरन्त उसे अपने अंक की ओर खींचते हुए कहा—"भोले कुमार ! बारम्बार मां कह कर मेरी आशाओं पर तुषारापात मत करो। तुम मेरे हृदय के स्वामी हो। तुमने मेरे मन को मोह लिया है। तुम्हारे

रूप ने मुझे विषयानुरागिनी बना दिया है। मैं तुम्हें अपनी शैया पर देखने के लिए आतुर हू।

कुमार विद्युतगति से रानी से अलग हो गया, जैसे किसी नागिन ने डक मार दिया हो। उसकी आंखों में असीम आश्चर्य के भाव हिलोर ले रहे थे। उसने कहा—"मां तुम्हारा मस्तिष्क फिर गया है, तुम पागल हो गई हो। अपने पुत्र से ऐसी बातें करते तुम्हें लज्जा अनुभव नहीं होती?"

"कुमार! मैं तुम्हारी मा नहीं हूँ।" रानी बोली कुमार को और भी आश्चर्य हुआ—'क्या कह रही हो तुम?"

"ठीक कह रही हूँ। मैंने तुम्हे पहाड़ पर से उठाया था। उस समय तुम्हारी अगुली मे नामांकित एक मुद्रिका थी, उसमें तेरा, तेरी जन्म-दातृ माता रुक्मणि और पिता श्रीकृष्ण का नाम अकित था। अत मैं माता नहीं हूँ। रानी का उत्तर सुनकर कुमार के मस्तिष्क को एक झटका सा लगा, पर वह उस समय इस विषय पर सोचने की दशा में नहीं था। उसने कहा—"जो भी हो, तुमने ही मेरा मातसम पालन-पोषण किया है। इसलिए मेरे लिए तो तुम्हीं माँ हो, चलो ऐसा न सही धात्री समान ही सही, किन्तु वह पद भी मातृपद से कम नहीं होता अतः फिर तुम्हें मुझसे ऐसी बातें करते हुए लज्जा नहीं आती?"

"प्रद्युम्न कुमार! अपने लगाए हुए तरु के फल कौन नहीं खाता, क्या अपने द्वारा निकाली नहर के जल से पिपासा शांत करना अनुचित है। क्या अपने हाथों से पाले हुए अश्व पर सवारी करना उचित नहीं है। क्या किसी को उस पुरुप की सुगध से आनन्दित होने में लज्जा आती है, जो उस पौधे पर खिला हो जिसे उसी ने सींचा था। क्या अपनी कमाई के द्वारा ऐश्वर्य लूटना लज्जाजनक है? यदि यह सब उचित है तो फिर तुम्हें अपना हृदय सम्राट् बनाना, मेरे लिए क्यों अनुचित है।" रानी ने उत्तेजित होकर प्रश्न किया।

इन उक्तियों के उत्तर में प्रद्युम्न कुमार बोला—"तो फिर तुम्हारे विचार से अपनी कन्या को पिता सहधर्मिणी बना सकता है। मा, ऐसी पापयुक्त बातें कहकर मुझे इस बात पर विवश मत करो कि मेरी जिह्वा से आपके लिए कुछ कठोर शब्द निकल पड़े।"

"आज तुम्हारी हर बात मुझे स्वीकार है, वासना के मद में अंधी हुई रानी बोली--तुम्हारे क्रोध को मैं अपने साजन के रोष की भांति पी जाऊंगी।"

"मां! आज तुम ऐसी बाते क्यों कर रही हो?" परेशान होकर प्रद्युम्न कुमार ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा।

"जीवन का आनन्द, लूटने के लिए।"

"क्या पाप ही मे जीवन का आनन्द है?"

"वासना तृप्ति कोई पाप नहीं है?"

"तो फिर तिर्यंच और मनुष्य में अन्तर ही क्या हुआ?"

"वादविवाद की आवश्यकता नहीं, रानी अन्त में बोली—तुमने कहा था कि मैं तुम्हारे स्वास्थ्य के लिए प्रत्येक सेवा करने को तत्पर हूँ। तुम मेरे रोग के निदान के लिए प्राण तक देने को कहते थे। पर मैं तुम्हारे प्राण नहीं चाहती। बस तुम्हारे प्रेम की भूखी हूँ। मुझे एक बार पत्नीवत् प्यार करो। यही मेरे आज तक के प्रेम का मूल्य है।"

"मां! तुम पागल हो गई हो। मुझे ऐसा लगता है कि आज शशि ने अग्नि वर्षा आरम्भ कर दी है। सूर्य शरद किरणें बिखेरने लगा है। गगा उल्टी बहने लगी है।' कुमार का मन क्षतविक्षत हो गया था, उसने झुंझला कर कहा।

"जब तुम आज तक के पालन पोषण के ऋण के भार से मुक्त नहीं हो सकते, जब तुम मेरे लिए एक तनिक सा कष्ट नहीं उठा सकते तो बढ़ बढ़कर डींग क्यों हॉक रहे थे?" रानीने कुमार को उत्तेजित कर अपनी कामवासना की अग्नि का चारा बनने की प्रेरणा देते हुए कहा।

परन्तु कुमार के शरीर मे जैसे सहस्रो विच्छुओं ने एक साथ डंक मार दिए हों, वह तिलमिला उठा, उसने रोष मे कहा—'मा! सूर्य पश्चिम दिशा मे उदित नहीं हो सकता। मेरु अपना स्थान नहीं बदल सकता। शशि अपना स्वभाव नहीं बदल सकता, यह सिर तुम्हारे चरणों मे झुका है। तुम्हारे चरणों मे ही झुकेगा, मैंने तुम्हे माता कहा है, पुत्रवत ही व्यवहार कर सकता हूं।

रानी ने हाथ जोड लिए और विनीतभाव से बोली—

"कुमार! मैं तुम से करबद्ध प्रार्थना करती हूँ कि मेरी शैया पर मेरे अनुरागी के रूप मे केवल एक बार !"

कुमार के कानों में जेसे किसी ने गरम-गरम सीसा ठूस दिया हो। वह अपने पर काबू पाने में असमर्थ हो रहा था, उसका कोप बिखर पडना चाहता था। अत उसने अवाछनीय घटना को टालने के लिए वहा से खिसक जाना ही अच्छा समझा, वह उठा और तीव्र गति से कमरे से निकल गया। रानी-"कुमार! कुमार! सुनो तो!" की आवाज लगाती रह गई।

कुमार का चित्त अशांत हो गया था। उसे सारा ससार ही बदला बदला सा लगता था। उसे समस्त बातों और वस्तुओं पर अविश्वास-सा होने लगा, अत अपनी अशांति को दबाने के लिए वह उपवन की ओर निकल गया।१ वह सोचता जाता कि मा के हृदय में ऐसी पाप भावना क्योंकर उत्पन्न हुई ? इसमें किसका दोष है ? मैंने पूर्वजन्म मे ऐसा कौन सा पाप किया था जिसका परिणाम मुझे इस रूप में भोगना पड रहा है ? इस प्रकार वह घूमता घामता थोडी देर के बाद कुमार ने फिर कनकमाला के कमरे मे प्रवेश किया। कुमार के आते ही कनकमाल रानी का मुरझाया मुख कमल हठात् खिल उठा। उसने अपनी दासियों को तुरन्त बाहर चले जाने का सकेत किया और तकिए के सहारे उठ बैठी। बोली—"कुमार! तुम मुझे तड़पती छोड़ गए। मुझे तुम से ऐसी आशा नहीं थी। मेरा रूप अभी तक कितनी ही सुन्दरियों से उत्तम है। फिर भी तुम्हें रूप रसपान का निमत्रण स्वीकार नहीं हो तो किसे आश्चर्य नहीं होगा। तुम्हारे इकार से मैं व्याकुल हो उठी हूँ। फिर भी कभी कभी मेरा मन कहता था कि

१ऐसी भी मान्यता है कि उद्यान में उसे एक अवधि ज्ञानी मुनि मिले और उन्होने उसे चिन्तित देखकर उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि घबराओ मत, यह तुम्हारे पूर्व जन्म के कुकृत्यो का फल है, उसे जब तक तुम नही भोग लोगे तब तक छुटकारा नही होगा। पश्चात् कुमार की जिज्ञासा को शान्त करने के लिये उसके पूर्व जन्म तथा माता के बिछोह का कारण और रानी की कामवासना की उत्पत्ति आदि का सारा कथन सविस्तृत कह सुनाया और कहा कि इसमें जब तक तुम्हे विद्या प्राप्त नही हो जायेगी तब तक तुम यहाँ से जा नही सकोगे, पश्चात् कुमार विद्या प्राप्त करने का उपाय सोचने लगा। हरि०—

तुम इतने कठोर हृदय वाले नहीं हो कि उसे जिसे तुमने सदा आदर की दृष्टि से देखा है, जिसकी समस्त आशाओं को शिरोधार्य किया है, निराश करके रह जाओ। मुझे आशा है कि तुम्हे मेरे हाथ जोड़े की लाज आई होगी।"

कुमार के बैठते बैठते ही उसने यह सारी बाते कह डालीं। कदाचित उसे विश्वास हो गया था कि कुमार उसकी इच्छापूर्ति का निश्चय करके ही लौटा है। कुमार ने कहा—"आपकी आज्ञा को सदा मैंने बिना किसी प्रकार की अवहेलना के, सिर आखों पर लिया है। आशा है आपको आज तक मेरे से कोई शिकायत नहीं हुई होगी।"

कुमार के लहजे मे विनयभाव दीख पड़ता था, उत्साहित होकर कनकमाल बोली—"नहीं ! नहीं ! कभी तुम्हारी ओर से ऐसी बात नहीं हुई जिससे मुझे निराशा का मुख देखना पड़े। तुम्हारे स्वभाव को देखकर ही मैंने अपनी यह इच्छा भी निस्संकोच कह दी थी।"

मन ही मन कुमार उसके इन शब्दो से घृणा कर रहा था, पर प्रत्यक्ष में वह बोला—माता ! यदि मैं अब तक आपकी जो भी तुच्छ-सी सेवा कर पाया हूँ, जिससे आप मेरे पर हार्दिक प्रसन्न हैं तो कोई ऐसी वस्तु मेरे लिए दो जिससे मैं जीवन पर्यन्त सुख से रह सकूं, मेरा जीवन सफल हो जाय, जैसे कि पहले पर्वतशिला से लाकर पालन-पोषण कर मेरे पर महान उपकार किया है, जिससे मैं लाखों जन्मो तक सेवा कर के भी उपकृत नहीं हो सकता, उसी भांति और अनुग्रह कीजिए जिससे आपकी स्मृति और एहसान जीवन पर्यन्त मेरी आत्मा से अलग न हो।

कुमार की बात सुनकर रानी बड़ी प्रसन्न हुई, उसका हृदय कमल खिल गया; आशा का टिमटिमाता दीप स्थिर गति का स्थान लेने लगा। उस ने सोचा कुमार अब प्रलोभन में आ सकता है और इस समय इस की मांग भी है अत मेरी इच्छापूर्ति का इस से बढ़ कर स्वर्णिम अवसर और नहीं हो सकता। मेरे पास रही हुई रोहिणी और प्रज्ञप्ति जो विद्याधरों को दुलभ है उसे दे देनी चाहिए। ऐसा सोच कर वह बोली—कुमार ! जिस प्रकार मैंने पहले तेरे प्राण बचाये हैं तुम चाहे स्वीकार करो अथवा नहीं यह तुम्हारी इच्छा रही, पर मैं तो एक अभूतपूर्व शक्ति देती हूँ जो प्रत्येक संकट के समय तुम्हारी रक्षा

करेगी।" इतना कह कर उस ने तुरन्त विद्या दी और प्रयोग आदि की विधि बता कर बोली—

"लो कुमार मैंने तुम्हारी मनोकामना पूर्ण कर दी अब आओ और मेरे व्याकुल मन को शांति प्रदान करने के लिए मेरे प्रेमी के रूप में शैया पर आ जाओ।"

कुमार ने विद्याए लेते हुए सिर झुकाया और बोला माता! पहले ता तुम पोषक माता थीं किन्तु अब विद्याएं देकर गुरु रूप में आ चुकी हो अत मेरे साथ आप के दो गुरुत्तर पवित्र सम्बन्ध हो गये हैं फिर भला तुम ऐसी भोली बात करने लगी हो।

"मां! पत्थर पर जोख लगाने की चेष्टा मत करो।" कुमार ने दृढ़ता से कहा।

रानी कुमार के रग ढग देख कर समझ गई कि वह ठगी गई है। उस ने व्यर्थ ही कुमार से आशा बाध कर उसे विद्याए दीं। उसने आवेश में आकर कहा—"तुम अपने वचन से गिर रहे हो, कुमार!"

"कैसा वचन? मैंने कोई वचन नहीं किया मैं कभी तुम्हारे पाप को सिर चढ़ाने को तैयार नहीं हुआ।" कुमार ने उत्तर दिया।

"अच्छा तो क्या तुम मुझे तडपती छोड दोगे?"

"मैं सत्य तथा धर्म का त्याग नहीं कर सकता।"

रानी ने समझा कि सीधी उगली घी नहीं निकलेगा, उसने क्रुद्ध होकर कहा—"तो फिर यह भी सुन लो कि तुम्हारी हठ का भयकर परिणाम होगा।"

"जो भी हो" इतना कह कर कुमार वहाँ से चला गया।

रानी का षड्यन्त्र

रानी ने आवेश में आकर बदला लेने का उपाय सोचा और अपने वस्त्र फाड डाले, बाल बखेर लिए, मु ह खोस लिया। बिस्तर अस्त-व्यस्त कर दिया और जोर जोर से चिल्लाने लगी। रोने पीटने की आवाज सुनते ही दास दासिया दौड पड़े। इस दुर्दशा को देखकर नृप को सूचना दी गई। वह भी भागा हुआ आया और जब उस ने रानी की यह दशा देखी तो स्तब्ध रह गया। उस ने पूछा—"क्या हुआ?"

"हाय तुम्हारे पुत्र ने मुझे कहीं का न रखा।" रानी ने चीत्कार करके आर्त्त स्वर मे कहा।

नृप सुनते ही हक्का बक्का रह गया, "कुछ कहो भी क्या किया है उस ने ?" किसी भयंकर आशका से घबराकर उस ने पूछा।

रानी सिर पीट कर बोली—'तुम्हारे लाडले ने मेरी लाज पर डाका डालने का साहस किया। क्या यह कुछ कम दुष्कर्म है ?

नृप ने सुना तो उस के मन पर भयंकर कुठाराघात हुआ, वह सुनते ही आपे से बाहर हो गया, उस के नेत्र जलने लगे। उसने कहा—"क्या प्रद्युम्न कुमार ने यह नीचता की ?

हां, हां प्रद्युम्न ने ही मेरी यह दुर्दशा बना डाली। जब मैंने उस की दुष्टता को अस्वीकार कर दिया तो वह मुझ पर क्रुद्ध बाघ की भांति झपटा, जैसे तैसे मैं अपनी लाज बचा पाई। मैंने शोर मचा दिया, तुम्हारे भय से वह यहाँ से भाग गया। हाय ! क्या इसी दुष्टता के लिए मैंने उसे पाला था ?' रानी करुण क्रन्दन करने लगी। नृप का रोम रोम जल उठा। उसने तुरन्त अपने पुत्रों को बुलाया और आदेश दिया—"प्रद्युम्न कुमार का सिर काट कर अपनी माता के चरणों में अर्पित करो। उस दुष्ट को उसकी दुष्टता का मजा चखा दो।'

पिता की ऐसी आज्ञा सुनकर उन्हे आश्चर्य भी हुआ और हर्ष भी। क्योंकि कुमार युवराज था, सभी को प्रिय था पर अन्य राजकुमार उस के यश से जलते थे, वे उस से ईर्ष्या करते थे।

ज्यों ही राजकुमार प्रद्युम्न कुमार का वध करने के उद्देश्य से चले, नृप ने उच्च स्वर में कहा—"ठहरो !" सभी राजकुमार रुक गये, अन्य आदेश सुनने के लिए।

"प्रद्म्युन कुमार युवराज है। सारी प्रजा उस से प्रभावित है, उस के यश और कीर्ति ने सभी पर जादू कर दिया है। इस प्रकार उस का वध करना राज्य के लिए उपयुक्त नहीं होगा। अत वध करो पर गुप्त रीति से। उसे दण्ड दो पर प्रजा के विद्रोह करने का कारण मत बनने दो।" नृप की इस आज्ञा को सुन कर राजकुमार सोचने लगे, गुप्त-रीति से कुमार का वध करने का उपाय।

सभी राजकुमार प्रद्युम्न कुमार के पास पहुँचे और महल से बाहर चल कर स्नान करने व क्रीड़ा हेतु चलने का आग्रह किया। प्रद्युम्न कुमार

माता द्वारा किए गए, प्रस्ताव, अपने व्यवहार और फिर माता के दुष्टता पूर्ण विलाप तथा असत्य व नीचता पूर्ण आरोप पर विचार मग्न था, वह चिन्तित था, भाईयो के प्रस्ताव को स्वीकार न कर रहा था, राजकुमार हठ पूर्वक उसे ले जाना चाहते थे। इस अत्याग्रह के पीछे कुमार को कोई रहस्य प्रतीत हुआ। विद्या द्वारा उसने समझ लिया कि राजकुमार उसे धोखा देकर अपनी पाप युक्त इच्छा की पूर्ति करना चाहते हैं। अत अपने बल तथा अपनी विद्याओं का चमत्कार दिखाने के लिए वह उनके साथ चलने को राजी हो गया।

बावडी पर आकर सभी राजकुमारों ने प्रद्युम्न कुमार से कहा कि वृक्ष पर चढ कर बावडी मे कूदो। प्रद्युम्नकुमार उनकी योजना समझ गया। वह वृक्ष से कूद पडा और बावडी मे विद्या बल से जाकर लुप्त हो गया। उसे दबाने के लिए सभी राजकुमार ऊपर से कूदे। पर प्रद्युम्नकुमार ने सभी को दबा लिया बाहर निकल कर और बावडी को एक शिला से बन्द कर दिया। परन्तु एक राजकुमार किसी प्रकार कुमार के चगुल से बच गया। प्रद्युम्नकुमार वहा से चला आया, उधर उस राजकुमार ने नृप को सारी बात कह सुनाई। नृप को बहुत क्रोध आया। क्योंकि पासा पलट गया था और योजना के जाल में स्वय उसी के पुत्र फस गए थे, क्रुद्ध होकर उस ने स्वय ही प्रद्युम्नकुमार का सहार करने का बीड़ा उठाया, पास ही मे रानी थी, उसे देख कर नृप को प्रज्ञप्ति और रोहिणी विद्याओ की याद आई। उस ने तुरन्त कहा—"रानी! उस मूर्ख का सिर कुचलने के लिए तुम अपनी विद्याए तो दो।"

रानी घबरा गई, वह बोली—"विद्याएं तो वही धूर्त ले गया।"

"प्रयोग की रीति विधि किस ने बताई?" नृप ने प्रश्न किया।

रानी ने सिर झुका लिया। नृप अर्थ समझ गया। उस ने रोषपूर्ण शब्दों में पूछा, "इस से पहले तो तुम ने उसे विद्याए नहीं दी थीं, इस अवसर पर जब कि उस ने तुम्हारी लाज पर डाका डालना चाहा, तुम्हें किस ने विवश किया था कि तुम अपनी विद्याए भी उसी को प्रदान कर दो?"

"मैं उस की बातों में आ गई।" लज्जित होकर रानी बोली।

परन्तु नृप को रानी की बात जची नहीं। वह सोचता रहा, इस

रहस्य के सम्वन्ध मे जो कि कनकमाला और प्रद्युम्नकुमार के सम्बन्धों के पीछे उसे अनुभव हुआ।

नृप ने पूछा—"रानी! क्या अचानक आते ही कुमार ने तुम पर आक्रमण कर दिया था ?"

"हां, उसने तो मुझे इतना भी अवसर नहीं दिया कि सम्भल भी सकती।"

रानी के इस उत्तर ने नृप को सशंक कर दिवा। उसने दासियों को बुलाकर पूछा—"क्या तुम लोग उस समय नहीं थी जब प्रदयुम्न कुमार ने रानी पर आक्रमण किया था ?"

दासियों ने बताया—"हम वहां थीं पर कुमार ने कोई आक्रमण नहीं किया। कुमार ने हमारे सामने नहीं किया। कुमार ने हमारे सामने शिष्टता से व्यवहार किया था, कुछ देर बाद रानी जी ने हमें बाहर चले जाने का आदेश दिया था।"

नृप ने फिर दासियों से पूरा वार्तालाप पूछा, जो कुमार और रानी के बीच उनके सामने हुआ था। और उसे सुनकर नृप इस परिणाम पर पहुंचा कि रानी ही पापिन है, कुमार दोषी नहीं है। प्रद्युम्न कुमार को उसने बुलाया और बड़े स्नेह से उससे वार्ता करके सारी बातें पूछीं। कुमार ने उत्तर में इतना ही कहा कि यह सब मेरे पूर्व जन्म का ही दोष है।"

नृप ने कुमार को छाती से लगा लिया और वहुत आदर सत्कार के साथ वापिस अपने महल में जाने की आज्ञा दी।

* कुमार की द्वारिका के लिए विदाई *

उसी समय नारद जी वहां आ पहुचे। और रुक्मणि को पुत्र वियोग में हो रही दुर्दशा का वृत्तांत सुनाकर कुमार को द्वारिका को वापिस चलने की प्रेरणा दी। कुमार स्वयं ही मातेश्वरी के दर्शन करने के लिए लालायित था, नारद जी के साथ चलने को तैयार हो गया, उसने नृप तथा रानी के चरण छू कर त्रुटियों की क्षमा याचना की और वायुयान में सवार हो कर चल दिया। उस दिन नृप की राजधानी मे सभी नर नारियों की आँखो से अश्रु धार वह रही थी। उन्हें ऐसे चरित्रवान तथा गुणवान युवराज को विदा देते असीम शोक हो रहा था। पर मन ही मन वे यह सोच रहे थे कि कुमार रुक्मणि तथा

श्री कृष्ण की धरोहर है, वह वापिस जानी ही चाहिए। अत न चाहते हुए भी उन्हें उनको विदाई देनी पड़ी।

कुमार का विद्या चमत्कार

वायुयान में नारद जी तथा प्रदयुम्न कुमार चले जा रहे थे कि प्रद्युम्न कुमार की दृष्टि भूमि पर रेंगती दुर्योधन की सेना पर पडी। चतुरगिनी सेना के सरक्षण में दुर्योधन की पुत्री उदधि कुमारी की सवारी जा रही थी। उदधि कुमारी का विवाह श्री कृष्ण की सन्तान के साथ होना प्रद्युम्न कुमार के उत्पन्न होने से पूर्व ही निश्चित हो चुका था, पर चूंकि प्रद्युम्न कुमार हर लिया गया था, अतएव अब उदधि का विवाह सत्यभामा के पुत्र सुभानु से करना तय पा रहा था। नारदजी ने यह बात प्रद्युम्न कुमार कोबता दी। यह बात सुनते ही कुमार ने नारद से कहा—"मुनिवर! आप चलिए मैं इन्हें एक कौतुक दिखाना चाहता हू। उदधि न्यायानुसार तो मेरी है ही, देखिये मैं अभी ही उसे ले आता हूँ।"

कुमार वायुयान से उतर पडा और एक विकट भील का रूप धारण कर लिया। लम्बे लम्बे दांत, लोचन लाल, मोटी श्याम काया, स्थूल जांघ, हाथ कुछ छोटे और कृश, कानों में सीपी डालकर, लम्बे उलझे और पीले रग के केश, यह सभी कुछ ऐसा बनाया कि उसका रूप बड़ा ही भयानक हो गया। एक भारी धनुष और मोटे बाण लेकर वह सेना के आगे जा खडा हुआ। और कडक कर बोला—"रुक जाओ! पहले मुझे कर दो, पीछे आगे बढना।"

जो कौरव कुमारी की सवारी के साथ थे, सेनाके रुकने से वे आगे आ गए, पूछा—"क्यों रे भील, कौरवों की सवारी को रोकने का तुझे दुस्साहस कैसे हुआ?"

"जानते हो यह श्री कृष्ण का राज्य है, तुम द्वारिका राज्य की सीमा में हो। बिना कर दिए आगे नहीं जा सकते।" भील रूपी प्रद्-युम्न कुमार ने अकड कर कहा।

"कृष्ण के राज्य में हमसे कर वसूलने वाला तू होता कौन है?" कौरवों में से एक ने आगे बढ कर उसे ललकारते हुए कहा।

"मैं श्री कृष्ण का पुत्र हूँ। मुझे उन्होंने आज्ञा दी है कि इस राज्य

मे आने वाले व्यक्तियों की जो भी वस्तु मुझे पसन्द आये मैं कर रूप मे उसे ही ले सकता हूँ।" कुमार ने कहा।

"क्या तू भी श्री कृष्ण का ही पुत्र है।" आश्चर्य चकित कौरवों ने पूछा।

"हां, मै राजकुमार हूँ।"

किसी ने हास्य से पूछा—"तेरे जैसे कितने राजकुमार और हैं?"

"मेरे जैसा तो बस अकेला मैं ही हूं।"

"यह भी खैर ही हुई।"

"खैर तो तब होगी जब कर चुका दोगे।" भील रूपी कुमार बोला।

'ओ काले कलूटे, भैंसे! रास्ता छोड़ता है या नहीं?" कौरवों मे से एक ने ललकार कर कहा।

दूसरे ने व्यग्य कहा—"क्या खूब रत्न उत्पन्न हुआ है श्रीकृष्ण के घर?"

"अजी, रत्नो मे भी चिन्तामणि है।" एक ने कहा।

प्रद्युम्न कुमार ने गरज कर कहा—"सीधी सीधी तरह कर चुका कर अपना रास्ता नापोगे या रत्न और चिन्तामणि के हाथ देखने की ही इच्छा है?"

"जा, जा बड़ा आया हाथ दिखाने वाला, हम कोई बनिये बक्काल नहीं हैं जो तेरी बन्दर घुडकियों में आकर गांठ ढीली कर दें।" कौरव प्रधान बोला।

"देखता हूँ, तुम्हे रजपूती शान का बड़ा अभिमान है। भीलरूपी कुमार ने कहा—पाण्डवों को परेशान करके अपने को बलवान समझ रहे हो। किसी बलिष्ठ से टकराओगे तो छठी का दूध याद आ जायेगा।"

"ओ चाण्डाल बक बक बन्द कर और सामने से हठ जा।" दांत पीस कर कौरव दल में से एक ने कहा।

"ठीक है, अन्धे की सन्तान भी अन्धी ही होती है। वरना श्रीकृष्ण के पुत्र को कौन सुझाव है जो चाण्डाल कहेगा।' कुमार ने ताना मारा।

कौरव समझ गए कि विकट व्यक्ति से पाला पड़ गया है। उन्होंने

सोचा कि इस से पीछा छुडाना ही अच्छा है। जो कुछ थोडा बहुत मांगे दे दिया कर मुक्ति लो। इस लिए उस से कहा—"हमारे पास जो है वह तो श्रीकृष्ण के घर दहेज में जायेगा। दहेज से पहले ही तू मांगता है तो ले जा, पहुँचेगा तो उसी घर जिस घर जाना है। अच्छा वता क्या चाहता है? हाथी घोडे और कुछ, जो पसन्द हो माग।

कुमार ने चारों ओर दृष्टि डाली और सजी सवारी पर बैठी कुमारी की ओर सकेत करके पूछा—"यह कौन है?'

क्रोध को पीपे हुए एक कौरव बोला—"यह दुर्योधन की कन्या उदधि कुमारी है।'

'तो वस यही मुझे पसन्द है। इसे ही मुझे दीजिए।'

भील रूपी प्रद्युम्न कुमार के शब्द सुनकर सभी कौरव और उनके सगी साथी आग ववूला हो गए। कहने लगे—"ओ भीलडे, जिह्वा सम्भाल कर वात कर। अपनी ओकात देख कर बात कर।'

प्रद्युम्न कुमार ने शांत भाव से कहा—"इसे मुझे दे दोगे तो श्री कृष्ण वहुत प्रसन्न होंगे।

एक कौरव ने कहा—"मस्तक तो नहीं फिर गया।' दूसरे ने कहा—'अजी मार कूट कर अलग करो। क्यों इस मूर्ख के झगडे में फंस गए।

धक्कम धक्का होने लगी, तब कुमार सडक पर लेट गया और विद्याओं के वल से ऐसा चमत्कार दिखाया कि कोरवों को सामने वृक्ष ही वृक्ष दिखाई देने लगे। कौरव दल चक्कर में पड गया। इसी प्रकार अनेक चमत्कारों के सहारे प्रद्युम्न कुमार ने उदधि कुमारी को अपने अधिकार में ले लिया और उसे लाकर अपने वायुयान में बैठा लिया। फिर अपना वास्तविक रूप उसे दिखाया, उदधि कुमारी उसका रूप देख कर मुग्ध हो गई। नारद जी ने उसे प्रद्युम्न कुमार का वास्तविक परिचय दिया और वताया कि तुम दोनों के उत्पन्न होने से पूर्व ही दोनों के माता पिता ने निश्चय कर लिया था कि तुम दोनों का परस्पर विवाह कर दिया जायेगा। पर चूंकि कुमार हर लिए गए थे अतः विवश हो सुभानु के साथ तुम्हारे विवाह की वात निश्चित हुई है।

वायुयान में नारद जी और प्रद्युम्न कुमार उदधि सहित द्वारिका पहुँचे। कमार नारद जी व उदधि को नगर से वाहर छोड कर स्वय

पहले महल में पहुँचे और अपनी विद्याओं के चमत्कार से महल वालों को चकित करने के लिए कितने ही कौतुक किए। तब रुक्मणि समझ गई कि आज उसका लाल उसे मिलने वाला है।

प्रद्युम्न कुमार ने अपनी विद्या के बल से जितने चमत्कार दिखाये, उनकी कथा कुछ ग्रन्थों में बहुत ही विस्तार के साथ लिखी गई है। पर हम यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त समझेंगे कि नगर में कुमार की विद्याओं के चमत्कार से यह बात प्रसिद्ध हो गई कि कोई नवीन शक्ति नगर में आगई है। सत्यभामा को कुमार ने माया विप्र का वेष धारण कर छकाया। रुक्मणि भी पहले उसे न पहचान सकी। अन्त में जब नारद जी वहाँ आये तब उसे पता चला कि चमत्कारी युवक उसी का पुत्र है। नारद जी के परिचय दे देने पर अपने स्वरूप मे आ कुमार प्रेम पूर्वक माता के चरणों में लिपट गया। रुक्मणि का हृदयसुमन खिल उठा। कहते हैं कि उस समय रुक्मणि के स्तनों से भी पुत्र वात्सल्य के कारण दूध की धारा बह निकली। उसने उसी समय पुत्र को गले लगा लिया और हर्षाश्रुओं से उसका शिर भिगो डाला।

पश्चात् कुमार को श्री कृष्ण के दर्शन करने की उत्कण्ठा हुई, पर नारद जी ने बीच में ही मना कर दिया। वे कहने लगे कुमार! पराक्रमी पुरुष के पास इस प्रकार तुम्हारा जाना योग्य नहीं कुछ पहले उन्हे पराक्रमी दिखाओ।

"तो फिर उन्हें कैसा पराक्रम दिखाना चाहिये?" कुमार ने प्रश्न किया।

रुक्मणि का अपहरण करके यादवचन्द्र को पराजित कर पश्चात् कुलकरों को वंदन करो।"

नारद जी ने उपाय बताया।

इस योजना को देख रुक्मणि किसी अज्ञात भय की आशंका से कांप उठी, वह बोली—आर्य! ऐसा न करो, यादव बलवान हैं, अधिक हैं मेरे कारण कुमार के शरीर को पीड़ा पहुँचेगी और उसके फल स्वरूप मुझे परितापन होगा।"

रुक्मणि तू नहीं जानती प्रद्युम्न के प्रभाव को नारद कहते गये, इसके एक प्रज्ञप्ति नामक विद्या है जिसके सहारे से सहस्रों वीरों और एव हजारों योद्धाओं को परास्त करने मे समर्थ है? फिर भला यादवों

क्या गिनती है? तू डर मत देवी इस उपाय से पिता पुत्र का उज्जवल मिलन होगा।''

इस प्रकार नारद की अनुमति से एक नवीन रथ पर रुक्मणि सवार हो गई और प्रद्युम्न सारथी बनकर उसे नगर के बाहर ले गया। दूसरी ओर नारद ऋषि ने उद्घोषणा की कि ''रुक्मणि हर कर ले जाई जा रही है, जिसकी भुजाओं में बल हो वह बचा लेवे।' इतना सुनते ही यादव हाथी घोडे पदाति सेना आदि लेकर चल पडे उसकी रक्षा के लिये। इधर प्रज्ञप्ति के प्रभाव से प्रद्युम्न के साथ भी एक विशाल चतुरंगिनी सेना दिखाई देने लगी। युद्ध आरम्भ हो गया। इतने में ही श्रीकृष्ण पहुच गये। शत्रु को देखते ही उन्होंने पांचजन्य शंख को पूरना चाहा किन्तु प्रज्ञप्तिके प्रभाव से ध्वनि न निकली। अतः धनुष से बाणों की वर्षा करने लगे। किन्तु कुमार ने क्षुप्रबाण-अर्धचन्द्र बाण से उसके बीच मे उसके टुकडे कर देता। इस पर आवेश मे आ उन्होंने प्रहार के लिये चक्र उठाया। यह देख रथ में बैठी रुक्मणि भयभीत हो गई कि अब कुमार जीवित न रह सकेगा। इतने मे नारद प्रकट हो गए और कहने लगे हे वीर! विवाद को छोड दो, चक्र कुमार को मारने में समर्थ न हो सकेगा। यह सब कुछ प्रद्युम्न की परीक्षा निमित्त किया गया था।

''यह अकरणीय कार्य मेरे से कैसे हो गया? श्री कृष्ण क्रोध को पीते हुए बोले। उनके क्रोध को शान्त करने के लिए चक्राधिष्ठित यक्ष बोल उठा—राजन् कुपित न होइये। आयुध रत्नों का यह ही धर्म है कि वे शत्रुओं का संहार तथा स्वामी के बन्धुओं अर्थात् कुल की रक्षा करते हैं यानि कुल पर नहीं चलते। क्योंकि यह तुम्हारा पुत्र नारद द्वारा लाया गया है और उसकी प्रेरणा से रुक्मणि के अपहरण का स्वांग रचा गया है।'' यक्ष की बात सुनकर श्री कृष्ण शान्त हुए और निर्निमेषदृष्टि से प्रद्युम्न कुमार को देखने लगे। पश्चात् नारद सहित कुमार उनके पास आया और उनके चरणों में लिपट गया। श्री कृष्ण अपने पुत्र को प्राप्त कर गदगद हो उठे।

कौरवों की ओर से स्वय दुर्योधन ने आकर श्री कृष्ण से उदधिकुमारी के हर लिए जाने की शिकायत की। तब कुमार ने स्वय ही रहस्योदघाटन किया। दुर्योधन को उसका वह रूप देखकर बड़ी प्रसन्नता

पहले महल मे पहुँचे और अपनी विद्याओं के चमत्कार से महल वालों को चकित करने के लिए कितने ही कौतुक किए। तब रुक्मणि समझ गई कि आज उसका लाल उसे मिलने वाला है।

प्रद्युम्न कुमार ने अपनी विद्या के बल से जितने चमत्कार दिखाये, उनकी कथा कुछ ग्रन्थों में बहुत ही विस्तार के साथ लिखी गई है। पर हम यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त समझेंगे कि नगर में कुमार की विद्याओं के चमत्कार से यह बात प्रसिद्ध हो गई कि कोई नवीन शक्ति नगर में आगई है। सत्यभामा को कुमार ने माया विप्र का वेष धारण कर छकाया। रुक्मणि भी पहले उसे न पहचान सकी। अन्त में जब नारद जी वहाँ आये तब उसे पता चला कि चमत्कारी युवक उसी का पुत्र है। नारद जी के परिचय दे देने पर अपने स्वरूप में आ कुमार प्रेम पूर्वक माता के चरणों में लिपट गया। रुक्मणि का हृदयसुमन खिल उठा। कहते हैं कि उस समय रुक्मणि के स्तनों से भी पुत्र वात्सल्य के कारण दूध की धारा बह निकली। उसने उसी समय पुत्र को गले लगा लिया और हर्षाश्रुओं से उसका शिर भिगो डाला।

पश्चात् कुमार को श्री कृष्ण के दर्शन करने की उत्कण्ठा हुई, पर नारद जी ने बीच में ही मना कर दिया। वे कहने लगे कुमार! पराक्रमी पुरुष के पास इस प्रकार तुम्हारा जाना योग्य नहीं कुछ पहले उन्हें पराक्रमी दिखाओ।

"तो फिर उन्हे कैसा पराक्रम दिखाना चाहिये?" कुमार ने प्रश्न किया।

रुक्मणि का अपहरण करके यादवचन्द्र को पराजित कर पश्चात् कुलकरों को वंदन करो।"

नारद जी ने उपाय बताया।

इस योजना को देख रुक्मणि किसी अज्ञात भय की आशंका से कांप उठी, वह बोली—आर्य! ऐसा न करो, यादव बलवान हैं, अधिक हैं मेरे कारण कुमार के शरीर को पीड़ा पहुँचेगी और उसके फल स्वरूप मुझे परितापन होगा।"

रुक्मणि तू नहीं जानती प्रद्युम्न के प्रभाव को नारद कहते गये, इसके एक प्रज्ञप्ति नामक विद्या है जिसके सहारे से सहस्रों वीरों और एवं हजारों योद्धाओं को परास्त करने में समर्थ है? फिर भला यादवों

क्या गिनती है? तू डर मत देवी इस उपाय से पिता पुत्र का उज्जवल मिलन होगा।"

इस प्रकार नारद की अनुमति से एक नवीन रथ पर रुक्मणि सवार हो गई और प्रद्युम्न सारथी बनकर उसे नगर के बाहर ले गया। दूसरी ओर नारद ऋषि ने उद्घोषणा की कि "रुक्मणि हर कर ले जाई जा रही है, जिसकी भुजाओं में बल हो वह बचा लेवे।" इतना सुनते ही यादव हाथी घोडे पदाति सेना आदि लेकर चल पड़े उसकी रक्षा के लिये। इधर प्रज्ञप्ति के प्रभाव से प्रद्युम्न के साथ भी एक विशाल चतुरंगिनी सेना दिखाई देने लगी। युद्ध आरम्भ हो गया। इतने में ही श्रीकृष्ण पहुच गये। शत्रु को देखते ही उन्होंने पाचजन्य शख को फूंकना चाहा किन्तु प्रज्ञप्ति के प्रभाव से ध्वनि न निकली। अत धनुष से बाणों की वर्षा करने लगे। किन्तु कुमार ने क्षुप्रबाण-अर्धचन्द्र बाण से उनके बीच में उसके टुकडे कर देता। उन पर आयत्त न आ उन्होंने प्रहार के लिये चक्र उठाया। यह देख रथ मे बैठी रुक्मणि भयभीत हो गई कि अब कुमार जीवित न रह सकेगा। इतने मे नारद प्रगट हो गए और कहने लगे हे वीर! विवाद को छोड दो, चक्र कुमार को मारने में समर्थ न हो सकेगा। यह सब कुछ प्रद्युम्न की परीक्षा निमित्त किया गया था।

"यह अकरणीय कार्य मेरे से कैसे हो गया? श्री कृष्ण क्रोध को पीते हुए बोले। उनके क्रोध को शान्त करने के लिए चक्राधिष्ठित यक्ष बोल उठा—राजन् कुपित न होइये। आयुध रत्नों का यह ही धर्म है कि वे शत्रुओं का सहार तथा स्वामी के बन्धुओं अर्थात कुल की रक्षा करते हैं यानि कुल पर नहीं चलते। क्योंकि यह तुम्हारा पुत्र नारद द्वारा लाया गया है और उसकी प्रेरणा से रुक्मणि के अपहरण का स्वांग रचा गया है।" यक्ष की बात सुनकर श्री कृष्ण शान्त हुए और निर्निमेषदृष्टि से प्रद्युम्न कुमार को देखने लगे। पश्चात् नारद सहित कुमार उनके पास आया और उनके चरणों में लिपट गया। श्री कृष्ण अपने पुत्र को प्राप्त कर गदगद हो उठे।

कौरवों की ओर से स्वय दुर्योधन ने आकर श्री कृष्ण से उदधि-कुमारी के हर लिए जाने की शिकायत की। तब कुमार ने स्वय ही रहस्योदघाटन किया। दुर्योधन को उसका वह रूप देखकर बडी प्रसन्नता

हुई। परन्तु कुमार ने उद्धि का सुभानु के साथ पाणिग्रहण सस्कार करने को कहा। क्योंकि वह जानता था कि सुभानु के साथ उद्धि के विवाह की बाते निश्चित हो चुकी हैं। इस प्रकार उदधि का विवाह सुभानु कुमार के साथ कर दिया गया। महल मे हर्ष छा गया और रुक्मणि के हृदय मे नवीन ज्योति जागृत हो गई। उसका बुझा बुझा मन अब प्रफुल्लित रहने लगा।



❀ तेइसवाँ परिच्छेद ❀

शाम्ब कुमार

पाठकों को याद होगा कि मधु नृप का भाई कैटभ भी स्वर्गलोक गया था, मधु ने स्वर्ग से आकर प्रद्युम्न कुमार के रूप में पृथ्वी पर जन्म लिया, वह बना रुक्मणि का दिव्य शक्ति धारक पुत्र, परन्तु कैटभ सुर गति प्राप्त करने के बाद भी मधु के जीव के प्रति भ्रातृ स्नेह से परिपूर्ण था। अत मधु के स्वर्ग से पृथ्वी पर चले आने के पश्चात् कैटभ भ्रातृ-स्नेह के कारण उसके वियोग की अपने हृदय में चुभन अनुभव करने लगा।

प्रद्युम्न के रिद्धि सम्पत्ति सहित जीवित ही द्वारका में आ जाने तथा उसके आगमन के उपलक्ष्य में महोत्सव आदि मनाने को देखकर सत्यभामा मन ही मन कुढती रही, किन्तु वह विवश थी अतः कुछ न कर सकी।

एक दिन सत्यभामा अपने शयन कक्ष में शैया पर इसी चिन्ता में करवटें बदल रही थी कि सहसा श्रीकृष्ण उधर से आगये। सत्यभामा उठ बैठी। उचित सत्कार के पश्चात् वह श्रीकृष्ण से निवेदन करने लगी कि हे देव! जिन स्त्रियों के पुत्र नहीं होते अथवा रूपवती नहीं होती वे अपने पति की कृपा पात्र नहीं हो सकतीं, प्रत्युत जो पति के समान रूपवती अथवा गुणवती तथा पुत्रवती होती हैं उन्हीं पर ही पति की सर्वदा अनुग्रह दृष्टि होती रहती है। इसलिये मैं तो आपके लिए घृणा पात्र हूँ और रुक्मणि प्रेमभाजन है, क्योंकि उसने सूर्य समान तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया है, मेरे पास उसके कुमार के समान ऐसा कोई पुत्र नहीं है।"

सत्यभामा की इस बात को सुनकर श्रीकृष्ण को मन ही मन बड़ा दुःख हुआ। पर सत्यभामा को सन्तोष दिलाने के लिए वे बोले प्रिये! ऐसा कहकर मेरा दिल मत दुखाओ। तुम तो मेरे अन्तपुर में अग्रमहिषी हो। आज तुम जो ऐसी बातें करने लगी हो क्या किसी ने तुम्हें कुछ कह दिया है?

"नहीं प्राणनाथ, मेरे को किसी ने कुछ नहीं कहा है, मात्र मेरे हृदय में यही एक चुभन है कि मेरे प्रद्युम्न जैसा कोई यशस्वी पुत्र नहीं है जो कि मेरे नाम को उज्वल कर सके। नाथ! यदि आप मेरे को अपनी प्रिया समझते है तो मेरे को भी उसके समान पुत्र दीजिये।"

सत्यभामा की इस उग्र उत्कण्ठा को देख कर श्रीकृष्ण ने उसे विश्वास दिलाया कि "मैं देव की आराधना कर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने का प्रयत्न करूंगा।" ऐसा कहकर वे चले गये।

पश्चात श्रीकृष्ण ने अष्टम भक्त अर्थात तीन दिन तक निरन्तर उपवास किया, जिसके फल स्वरूप हरिणैगमेषी नामक एक देदिप्यमान देव प्रगट हुआ और उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया महाराज! मैं प्रस्तुत हूँ, आज्ञा कीजिये। देव को उपस्थित देखकर श्रीकृष्ण ने सत्यभामा का वृत्तान्त कह सुनाया। इस पर देव ने प्रसन्न हो एक दिव्य हार देते हुए कहा राजन! यह हार आप जिस रमणी के गले में डाल देंगे उसके प्रद्युम्न कुमार सदृश ही रूप, गुण वाला पुत्र उत्पन्न होगा। देव अन्तर्धान हो गया। श्रीकृष्ण वहाँ से हार लेकर महलों में आ गये। पश्चात एक दिन वे क्रीड़ा के लिये अकेले ही उपवन में गये। और एक परिचारिका को सत्यभामा को वहाँ पहुंचने के लिये कहा।

पाठक सोचते होंगे, जाम्बवती को सत्यभामा का रूप धारण करने की क्यों आवश्यक्ता हुई ?

बात यह थी कि श्री कृष्ण उस सुरात्मा के द्वारा जान गए थे कि इस दिव्य शक्ति धारी हार के योग से प्रद्युम्न कुमार के पूर्व जन्म का परम स्नेही भ्राता उनके पुत्र रूप में उत्पन्न होगा। इस शुभ योग द्वारा वे सत्यभामा तथा रुक्मणि के बीच व्यर्थ की प्रतिस्पर्धा को शांत करने के लिए चाहते थे कि प्रद्युम्न कुमार के पूर्व जन्म के भ्राता का जीव सत्यभामा की कोख से उत्पन्न होना चाहिए, ताकि प्रद्युम्न कुमार और उस भावी पुत्र के स्नेह के कारण महलों में एक नवीन प्रेम की दीपशिखा जल उठे। सत्यभामा के हिये में प्रज्वलित ईर्ष्या की अग्नि शान्त हो जाये। और इन दो जीवों का भ्रातृत्व दो नारियों के हिये के बीच परस्पर प्रेम की धारा प्रवाहित कर सके। अतएव उन्होंने वह हार सत्यभामा को प्रदान करने का निश्चय कर लिया था। परन्तु प्रद्युम्न कुमार इस रहस्य को जानता था और वह सत्यभामा को उसकी ईर्ष्या का फल देना चाहता था, वह चाहता था कि अपनी ईर्ष्या के फल स्वरूप वह पश्चाताप करने पर विवश हो अत जान बूझ कर उसने जाम्बवती को वह रहस्य बता दिया था और जाम्बवती उस पुण्यात्मा को अपने पुत्र रत्न के रूप में प्राप्त करने के लिए लालायित हो उठी थी वास्तव में गहन विचार किया जाय तो यह सब कुछ जाम्बवती के अपने पुण्य का फल था, जो उसे इस रहस्य का ज्ञान हो गया और प्रद्युम्न कुमार की विद्या के बल से वह सत्यभामा का रूप धारण करने में सफल हुई।

तो सत्यभामा के रूप मे पहुची जाम्बवती गले में श्री कृष्ण ने वह दिव्य हार डाल दिया और जाम्बवती गार्हस्थ्य का अनुपम वरदान लेकर अपने महल को लौट आई।

आनन्द विभोर होकर श्री कृष्ण अपने उपवन में चहकते पक्षियों के कलरव को निरख कर आनन्द चित्त हो रहे थे, कि सत्यभामा वहां पहुची। क्योंकि उस बेचारी को श्री कृष्ण का आमन्त्रण कुछ देर से मिला था और वह अपने को शृंगार युक्त करने मे अधिक समय लगा चुकी थी। पर उसे क्या मालूम कि उससे पूर्व ही जाम्बवती उसके रूप

में आकर वह बहुमूल्य उपहार ले जा चुकी है, जिसके लिए श्री कृष्ण ने उसे याद किया था।

सत्यभामा मुखरित पुष्प की भाँति खिलती और अपने रूप की छवि बिखेरती जब वहां पहुंची, तो श्री कृष्ण को कुछ आश्चर्य हुआ। वे पूछ बैठे—"फिर आ गई, क्या महल मे मन नहीं लगा ?"

इस प्रश्न से सत्यभामा को आश्चर्य होना ही चाहिए था, वह बोल उठी—"आपका का सन्देश मिला और चली आई। अभी अभी तो आ रही हूँ।"

श्री कृष्ण इस उत्तर से समझ गए कि कहीं उन्हे ही भूल हुई है, अथवा इसके पीछे कोई रहस्य है। सत्यभामा अब आ रही है तो पहली कौन थी ? यह प्रश्न उनके मन में हठात् उठा और पुण्यात्मा श्री कृष्ण को समझते देरी न लगी कि सत्यभामा सत्य कह रही है। कोई दूसरी ही उसके रूप मे आकर उन से बहुमूल्य प्रसाद ले गई है। पर अब इस बात को खोलना लाभदायक नहीं होगा, अत वे तुरन्त कह उठे—"अच्छा! तो तुम अब आ रही हो ? आओ, मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा में था।"

उन्होने सत्यभामा के साथ अनेक क्रीड़ाएं की और एक दूसरा ही हार उसे उन्होंने दिया और उनके द्वारा प्रदर्शित प्रेम से सत्यभामा का हृदय बहुत प्रफुल्लित हुआ। उसे अपने भाग्य पर गर्व होने लगा।

महल में आकर जब श्री कृष्ण ने मणिभासुर हार जाम्बवती के गले में देखा तो वे सब समझ गए कि हो न हो प्रद्युम्न का ही चमत्कार है।

एक बार जाम्बवती अपने शयन कक्ष में पुष्प शैया पर सो रह थी, कि रात्री के चतुर्थ प्रहर की शुभ बेला मे अर्धनिद्रित अवस्था मे एक धवल वर्ण युक्त कातिवान सिह उसके मुख मे प्रवेश कर गया है ऐसा स्वप्न दिखाई दिया। इस स्वप्न को देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुई और श्री कृष्ण के प्रासाद में जाकर उसका फल पूछा। उन्होंने उसे बताया कि तुम्हे एक प्रद्युम्न के भांति एक होनहार पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी।

इस शुभ वचनो को सुनकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई और अपने गर्भ की दरिद्र के रत्न की भाँति रक्षा करने लगी। पश्चात् नौ मास उप-

रान्त जाम्बवती ने एक परम सुन्दर पुत्र को जन्म दिया, महलों में हर्ष ठाठें मारने लगा। उन्हीं दिनों सारथी के घर पद्म कुमार ने जन्म लिया और मंत्री की पत्नी ने सुबुद्धि को जन्म दिया, सेनापति के घर भी मंगल गान की ध्वनि उठने लगी, हर्ष का वातावरण छा गया, जब कि उसकी पत्नी के गर्भ से जयसेन ने जन्म लिया।

जाम्बवती के पुण्यात्मा पुत्र को शाम्ब कुमार नाम दिया गया, उसी दिन से प्रद्युम्न कुमार नवोदित शिशु रत्न को अति स्नेह की दृष्टि से देखने लगा। निशि दिन के स्वाभाविक चक्र के चलते हुए शाम्बकुमार धीरे धीरे प्रगति की ओर अग्रसर होने लगा। शशि रश्मियां उसे रूप देतीं, तो रवि किरणें तेज, सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों से सजा कुमार देखने वालों के चित्त को हर लेता। सुन्दर कलि के समान वह विकसित होने लगा और धीरे धीरे उसने शैशव काल को पीछे छोड़ दिया। भीरु और शाम्ब कुमार को विद्या प्राप्ति के योग्य जानकर विद्वान विद्यावानों को शिक्षा के लिए सौंप दिया गया। कुछ ही दिनों मे दोनों विद्यावान् बन गए।

परन्तु सुभानु को जुआ खेलने का दुर्व्यसन था, यह उसकी प्रिय क्रीड़ा थी। कभी कभी वह शाम्ब कुमार को भी अपने पास बैठा लेता और उसे चुनौती देकर खेलने पर विवश कर देता, परन्तु जब ऐसा होता तो शाम्ब कुमार उसे परास्त कर देता। उसकी कितनी ही मुद्राएं वह जीत लेता और फिर उन्हें दान दे देता। अन्य खेलों में भी शाम्बकुमार भीरु को परास्त कर देता था। भीरु अधिकतर भानु कुमार के साथ रहने लगा और शाम्ब कुमार प्रद्युम्न कुमार के साथ। श्री कृष्ण इन दो, रवि शशि की जोडियों को देखकर बहुत प्रसन्न होते। माताएं प्रफुल्लित रहतीं।

शाम्ब की उद्दण्डता

एक बार शाम्ब कुमार ने प्रद्युम्न कुमार से कहा—"मैं छः मास के लिये द्वारिकापुरी का राज्य चाहता हूं। बस ६ मास के लिए वहां के राज्य पर मेरा अधिकार हो जाये। यही कामना है। क्या आप मेरी यह कामना पूर्ण करा सकते हैं ?"

बात कहने से पूर्व ही शाम्ब कुमार ने प्रद्युम्न कुमार से वचन ले लिया था, कि उसकी इच्छा पूर्ण करने के लिए हर सम्भव उपाय करना

होगा। एक बार क्रीड़ा में शाम्ब कुमार की दक्षता एवं बुद्धिमत्ता से प्रभावित होकर ही प्रद्युम्न कुमार ने वह वचन दिया था। वचन दे चुका था अतः शाम्ब कुमार की मनोकामना पूर्ण करने की उसने प्रतिज्ञा कर ली। और उसी समय श्रीकृष्ण के पास जाकर उनके चरण स्पर्श करके कहा—"पिता जी! आज आपसे कुछ मागने आया हूँ। सोलह वर्ष तक मैंने आपको कोई कष्ट नहीं दिया। आज मुझे आपसे कुछ लेना है।"

श्री कृष्ण के अधरो पर स्वभाविक मुस्कान नृत्य कर गई, बोले—प्रद्युम्न! तुम्हें जो चाहिए मांग लो। मैं तुम्हारी मनोकामना अवश्य पूरी करूंगा।"

वचन लेकर प्रद्युम्न कुमार ने कहा—"पूज्य पिताजी! मुझे अपने लिए कुछ नहीं चाहिए। चाहिए शाम्ब कुमार के लिए। आप उसे छः मास के लिए द्वारकापुरी का राज्य सौंप दें।"

बचन बद्ध होने के कारण श्री कृष्ण ने बात स्वीकार कर ली। पर वे बोले—"वचन दे चुका इस लिए द्वारकापुरी का राज्य ६ मास के लिए शाम्भ कुमार का हुआ। परन्तु मुझे इस में सन्देह है कि वह राज्य काज को नीति अनुसार कर सकेगा।" किन्तु प्रद्यम्न कुमार को पिता जी की शंका निर्मूल प्रतीत हुई। शाम्ब राज्य करने लगा।

श्री कृष्ण का न्याय

एक दिन राजधानी निवासियों ने श्री कृष्ण से आकर गुहार की—"प्रभो! हमारी लाज मान की रक्षा कीजिए।"

"क्यों क्या हुआ? किस दुष्ट से तुम त्रसित हो?"

"प्रभो! आपके पुत्र शाम्बकुमार ने अनीति पर कमर बांध ली है।" नगर वासियों ने कर बद्ध करके कहा।

श्री कृष्ण को सुन कर बहुत दुख हुआ। उन्होंने पूछा—"क्या किया है उसने? स्पष्टतया निर्भय होकर कहो।"

"अभय दान चाहते है महाराज।"

"जो बात है, स्पष्ट कहो, भय को कोई बात नहीं।"

श्री कृष्ण की ओर से आश्वासन मिल जाने पर वे बोले—प्रभो! शाम्ब कुमार विषयानुरागी हो गए है। उन्होंने नागरिकों की

बहू बेटियों की लाज पर आक्रमण करना आरंभ कर दिया है। नृप जब चरित्र हीन हो तो फिर प्रजा किस ठौर जाये।

श्रीकृष्ण की गरदन झुक गई। उनके हृदय पर भयंकर आघात लगा। जैसे उनके कानों में किसी ने शूल ठोक दिए हों। हार्दिक पीड़ा हुई उन्हें। लज्जित होकर कहा—"प्रजाजनो! मैं आपके सामने बहुत लज्जित हूँ। मुझे अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा कि अपने पुत्र के सम्बन्ध में ही यह बातें सुन रहा हूँ। आप विश्वास रखिये उसे उसके अपराध का समुचित दण्ड दिया जायेगा।"

यदि शीघ्र ही आपने कुछ न किया तो राज्य में अराजकता फैल जायेगी। नागरिकों ने कहा।

"आप घबराये नहीं। मैं शीघ्र ही इसका प्रबन्ध करूंगा।" इतना कहकर श्रीकृष्ण ने उन्हें विदा किया और स्वयं जाम्बवती के पास पहुँचे। वे उत्तेजित थे। जाते ही बोले—"तुम्हारे पुत्र ने हमारे कुल की नाक कटा दी है। इतना घोर पाप किया है उसने कि हम किसी के सामने आँख उठाने योग्य नहीं रहे।"

जाम्बवती अनायास ही यह शब्द सुनकर हतप्रभ रह गई उसने आश्चर्य से पूछा—"क्या किया है उसने। कुछ बताये तो सही।"

"इतना घोर पाप किया है कि उसे कहते हुए भी मुझे लज्जा आती है। उसने हमारे वंश को कलंकित कर डाला।"

"क्या इतना घोर पाप कर डाला उसने ?"

"हां, हां उसने वह किया है जिसे सुनकर मैं हार्दिक पीड़ा से व्याकुल हो गया हूं।"

जाम्बवती सिहर उठी। उसने कहा—"नाथ! आप मुझे बताईये तो सही कि ऐसा क्या कर डाला उसने ?"

"उसने अनीति पर कमर बांध ली है। उसने प्रजा की बहू बेटियों की लाज लूटने का दुष्कर्म किया है। सारी प्रजा उसके इस दुष्कृत्य पर त्राहि त्राहि कर रही है। लोग त्रसित हैं। श्रीकृष्ण ने कहा।

"यह झूठ है, सरासर झूठ है। मेरा बेटा ऐसा कदापि नहीं कर सकता।" वात्सल्य की मारी जाम्बवती तीव्र गति से बोली।

"अंधकार की ओर से आंख लेने से अंधकार समाप्त नहीं हो जाता। उत्तेजित होकर श्रीकृष्ण बोले—किसी के पाप के अस्तित्व से

इकार करने पर पाप लुप्त नहीं हो जाता। अपराध को झूठ कह कर उससे मुक्ति नहीं मिल सकती। तुम्हारे द्वारा इसे झूठ बता देने से प्रजा में शांति नहीं हो सकती। तुम इसे सफेद झूठ कह भी दो, पर इससे यादव वंश का कलंक दूर नहीं हो जाता।"

'पर मै यह कैसे मान लूं कि शाम्ब कुमार इतना जघन्य अपराध कर सकता है ?"

"तुम मानो या न मानो पर सत्य यही है।"

"आपको भ्रम हो गया है। किसने कहा है आप से ?"

"प्रजा ने।"

"लोग झूठ भी तो कह सकते है। नृप को कच्चे कानों का नहीं होना चाहिए। शत्रु झूठी बातें भी तो उड़ा सकते हैं। नृप न्यायधीश होता है। उसे तुरन्त किसी की बात पर विश्वास नहीं करना चाहिए। आखिर इस बात का कोई प्रमाण भी है ? या आप लोगो की शिकायत सुनकर ही उत्तेजित हो गए। मुझे तो यह बात बिल्कुल नीति विरूद्ध लगती है।" जाम्बवती ने अपने पुत्र को निरपराधी सिद्ध करने की चेष्टा करते हुए कहा।

श्रीकृष्ण ने गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया—"रानी। पंच परमेश्वर की लोकोक्ति सुनी है या नहीं ? मैं जनता को जनार्दन मानता हूँ। उनकी आवाज ही सत्य है। एक दो व्यक्ति भले ही झूठ कह दें, पर सारी जनता कदापि झूठ नहीं बोल सकती। मुझे विश्वास है कि उन्होंने सत्य ही कहा है।

"मैं यह नहीं मानती। आपके पास हजारों व्यक्ति आकर कुछ कह दे तो वह ही सत्य नहीं हो जाता।"

"तो फिर तुम कैसे मानोगी ?"

"कोई प्रमाण हो तभी मैं स्वीकार कर सकती हूँ।"

"तो फिर तुम ही परीक्षा करके देख लो।"

श्रीकृष्ण की बात कटु थी, पर उनका मत उसने स्वीकार कर लिया। दोनो मे बात तय हो गई। श्रीकृष्ण ने उसे एक षोडशी ग्वालिन के रूप मे परिवर्तित कर दिया। और स्वयं ने एक वृद्ध ग्वाले का रूप धारण किया। जाम्बवती सिर पर मक्खन की मटकी लेकर चली और साथ मे हो गए श्रीकृष्ण, वृद्ध ग्वाले के वेष मे।

दोनों मक्खन ले लो—कोई मक्खन ले लो" की आवाज लगाते हुए बाजार में जा निकले।

घूमते-घामते जब यह दम्पत्ति शाम्ब कुमार के महल के आगे से "मक्खन ले लो" की आवाज लगाते हुए निकला, किसी ने शाम्ब कुमार को भी इसकी सूचना दी। इस विचित्र दम्पत्ति की बात सुनकर वह भी महल पर खडा होकर देखने लगा। जाम्बवती के षोडशी रूप पर वह मुग्ध हो गया और महल से उतर आया। सड़क पर आकर उसने पुकारा—"ओ ग्वालिन क्या बेचती है ?"

+"मक्खन बेचती हूँ।"

"मक्खन ही और कुछ नहीं।"

यह सुनते ही वह झेंप सी गई।

"ला इधर, देखें मक्खन कैसा है ?"

ग्वालिन शाम्ब कुमार के पास चली गई, साथ ही वृद्ध भी। शाम्ब कुमार ने उसकी मटकी नीचे झुका ली, पर दृष्टि उसकी नयनों पर जमा दीं। भूखी नजरों से उसे देखता रहा।" है तो बडी सुन्दर उस के मुख से निकला। फिर बोला—"चल महल में, ग्वालिन बोली—"नहीं आप को लेना है तो यहीं ले लीजिए।"

"महल में चल, फिर बात करना। हम तुझे प्रसन्न कर देंगे।" शाम्भ कुमार ने लोभ दिया, पर अद्भुत ग्वालिन न मानी। उसने कहा—मेरे पतिदेव मुझे किसी के घर नहीं जाने देते।"

तभी वृद्ध ग्वाला बोल उठा—"नहीं, नहीं, यह महल में नहीं जायेगी। जानते हो मैं इसी लिए इसके साथ साथ रहता हू।"

शाम्ब कुमार ने वृद्ध पर एक दृष्टि डाली और हसकर कहा—"मौत का तो परवाना आने वाला है, और इस अलबेली अल्हड ग्वालिन पर मण्डराया फिरता है। बूढे जरा लज्जा कर, अरे यह तो किसी युवक के काम की है।"

'राजा होकर ऐसी बात करते लज्जा नहीं आती।" वृद्ध ने बिगड कर कहा।

"लज्जा तो तुझे आनी चाहिए। जो इस कलि को अपने बूढी हड्डियो

+नवनीत के स्थान पर गोरस का भी वर्णना पाया जाता है। त्रि०

मे मसोस रहा है। अरे इस पर दया कर। किसी हम जैसे को सौंपकर तर जा।" निर्लज्जतापूर्ण शब्द कहकर शाम्ब कुमार हसने लगा।

'क्या कहता है रे मूर्ख! तुझे दया नहीं आती। तू कौन होता है हमारे बीच में आने वाला। मक्खन लेना हो तो ले, वरना पीछा छोड़।' ग्वालिन ने झिड़क कर कहा।

"जितना तेरा रूप है, उतना ही बस..." शाम्ब कुमार ने कहा।

ग्वालिन आगे बढ़ने लगा, तभी शाम्ब कुमार ने अपने एक सेवक को आदेश दिया—"ग्वालिन को महल में ले चलो।"

सेवक ने ग्वालिन को पकड़ लिया और वह उसे महल में खींच कर ले चला। वृद्ध पीछे पीछे त्राहिमाम्, त्राहिमाम् करता हुआ चला।

महल में पहुंचने पर शाम्ब कुमार ने सेवक को चले जाने का आदेश दिया और वृद्ध को सम्बोधित करके दुत्कार कर बोला—'ओ बूढ़े! तू मेरा कहाँ सिर पर चढ़ा आता है। बाहर जा ग्वालिन है कोई परी तो नहीं, कोई रत्न तो नहीं लगे इसमें जो मैं छुड़ा लूंगा।'

भृकुटि तनी थी। फिर उस ने ग्वालिन की ओर देखा। यह देख कर सिहर उठा कि वह ग्वालिन नहीं बस उस की माता ही है, जाम्बवती। उस ने क्षमा मांगी।+ पर माता के नेत्रों में वात्सल्य की अपेक्षा क्रोध तैर रहा था। उस ने कहा—"आज मुझे तेरे चरित्र को देख कर तुझे अपना पुत्र कहते हुए भी लज्जा आती है। तू ने अपने दुष्चरित्र से हमारे कुल को कलंकित कर दिया, तू ने मेरी कोख कलंकित कर डाली। इस से तो मैं निपूती ही रहती तो अच्छा था।'

'मा! मुझे क्षमा कर दो। मैं पापी हूँ पर हूं आपका ही पुत्र। आज आपने मेरी आंखें खोल दीं।

धिक्कार है मुझे, मेरे जीवन को कोटिशः धिक्कार है। मैं लज्जित हू। मैं आप से क्षमा चाहता हूँ।' गिड गिडाकर शाम्बकुमार ने कहा।

पर मां उस समय कठोर हो गई थी, पुत्र के आंसुओं से भी उसका हृदय नहीं पिघला, वह बोली—नहीं, नहीं तेरा पाप क्षम्य नहीं है। तुझे जितना भी दण्ड दिया जाय कम ही है।'

तब कुमार श्री कृष्ण के चरणों में गिर पडा, उसके अश्रु उनके चरणों को धो रहे थे, अवरुद्ध कण्ठ से वह बोला—"पिता जी! मुझे आप ही क्षमा कर दीजिए। आप तो करुणानिधान हैं, आप ही मा को समझाइये। वास्तव में मुझ से बडी भूल हुई है। मैं भटक गया था।'

श्री कृष्ण ने गम्भीरता पूर्वक कहा—'मैं तुम्हे क्षमा कैसे कर सकता हूँ क्षमा मांगनी ही है तो उन देवियों से मागो जिन्हे तुम ने कुदृष्टि से देखा है! उन से मागो जो तुम्हारे इस पाशविक चरित्र से आतंकित, भयभीत एव पीडित हुए हैं। मैं तो तुम्हें क्षमा नहीं दण्ड दे सकता हूँ।'

+कहते हैं कि उस दिन तो शर्म के मारे शाम्ब गायब ही रहा और दूसरे दिन श्री कृष्ण ने उसे पकड मगवाया, तब जाम्बवती भी पास बैठी थी और शाम्ब उस समय एक काठ की कील घड रहा था। तब श्रीकृष्ण ने पूछा कि 'यह कील क्यो बना रहे हो ? उद्दण्ड शाम्ब ने उत्तर दिया—'जो मनुष्य कल की बात आज कहेगा उसके मुंह में यह कील ठोक दूंगा इस लिए बना रहा हूँ।'

शाम्ब के इस मूर्खता पूर्ण उत्तर को सुन कर श्रीकृष्ण रुष्ट हो गये और उन्होंने उसे नगर से बाहर निकल जाने की आज्ञा दे दी। त्रि०—

'तो फिर मुझे दण्ड ही दीजिए।' शाम्बकुमार के कण्ठ से निकल गया। पर वह स्वय ही अपने शब्दो पर पश्चाताप करने लगा। वह दण्ड की बात सोच कर कांप उठा। न जाने पिता जी कौन सा कठोर दण्ड दे डाले? वह कैसे उसे सहन कर सकेगा? यह सोच कर उसका रोम रोम काप उठा।

'यदि तुम दण्ड भोगने को तैयार हो श्री कृष्ण ने कहा—तो जाओ इसी क्षण नगर से बाहर निकल जाओ और किसी को अपनी यह काली सूरत न दिखाओ।'

शाम्बकुमार बहुत रोया, गिड़ गिड़ाकर आदेश को वापिस लेने की प्रार्थना की, पर श्रीकृष्ण अपनी बात पर अटल रहे। कुमार को उसी समय नगर से निकल जाना पड़ा। जिस समय नगर निवासियों ने सुना कि श्रीकृष्ण ने अपने पुत्र को नगर निर्वासित कर दिया है। सभी उनके न्याय की प्रशसा करने लगे। कितने ही दाँतों तले उंगली दबाकर रह गए—ओह! अपने पुत्र के साथ तनिक सी भी सहनुभूति नहीं की। न्याय का इतना दृढ़ दृष्टांत!!

* प्रद्युम्न कुमारका भ्रातृत्व *

जब प्रद्युम्न कुमार ने सुना कि शाम्ब कुमार को निर्वासित कर दिया गया, उसे बहुत दुःख हुआ, दुःख इस लिए नहीं कि वह शाम्ब-कुमार के दुष्चारित्र्य को उचित समझता था, अथवा वह उसे कठोर दण्ड समझ रहा था बल्कि इस लिए कि शांबकुमार ने ऐसे दुष्कृत्य किए कि पिता जी को उसे नगर से निकालना पड़ा। वह उसका भाई है। जिसे उस ने ही राज्य सिंहासन दिलाया था, उसकी यह दुर्दशा हो, दुःख की ही तो बात थी। वह नगर से निकल चला, शाम्बकुमार की खोज मे। विपिन मे उसे शाम्बकुमार मिला। प्रद्युम्न कुमार को देखते ही वह फूट पडा—"भ्राता जी! मुझ पापी को खोजने के लिए आज क्यों आए? मैं तो नीच हूँ।

पिता जी ने मुझे इस योग्य भी नहीं समझा कि मैं नगर में भी रह सकूं। उन्होंने कहा कि मैं किसी को अपना काला मुंह भी न दिखाऊं। मैं नहीं चाहता कि आप मुझ से मिले। आप चले जाइये।"

शोक विह्वल होकर कहे गए इन शब्दों को सुनकर प्रद्युम्न कुमार भी दुखित हो गया, उसने भाई को सम्भालते हुए कहा—"भैया ! पिता जी ने तुम्हे जो दण्ड दिया, वह इसी लिए तो कि तुम जीवन मे पुन ऐसा पाप कमाने की भूल न करो। वे पिता हैं, वे नहीं चाहते कि उनका बेटा ऐसे दुष्कृत्य करे कि जिन के कारण वह तो नरक में जाये, पर उस के कुल के लिए यह ससार ही नरक बन जाय। तुम अब अपनी भूल पर पश्चाताप कर रहे हो, यही दण्ड का उद्देश्य होता है। अपने को सम्भालो और अब पुण्य मार्ग पर चलो।"

"भ्राता जी ! मैं अपने अपराधों को स्वीकार करता हूँ। पर अपने को सुधारने, खोई प्रतिष्ठा को पुन प्राप्त करने, लोगों मे अपने प्रति फैली घृणा को दूर करने और सच्चा मानव बनने का तो अधिकार मुझे मिलना चाहिए। मैं समझ गया हूँ कि मैंने कितना घोर पाप किया है। पर दण्ड तो सुपथ पर लाने के लिए ही होता है। आप विश्वास रखिये कि पूज्य माता जी व पिता जी ने एक ही झटके से मेरी आँखें खोल दी थीं। मेरी बुद्धि पर पड़ा हुआ विषयानुराग का पर्दा अलग हो चुका अब मैं सुपथ पर चलना चाहता हूँ। पर मुझे उसी समाज में वापिस जाने दिया जाय, जिस ने मुझ पर थूका है। वहाँ मैं अपने चरित्र की धाक जमा दूंगा, मैं अपने कुल का नाम उज्ज्वल करूंगा। पर मुझे अवसर तो दिया जाय।" शाबकुमार ने द्रवित हो कर कहा। उसकी बात तर्क सगत थी।

प्रद्युम्न कुमार बोला—"भैया ! पिता जी के हृदय में पुत्र स्नेह अभी तक है। वे तुम्हें सुधारना ही चाहते हैं। पर उन्होंने जो आदेश दिया है किन्तु उसे वह वापिस नहीं ले सकते।"

शाम्बकुमार घुटनों के बल बैठ गया और विनय भाव से बोला—भ्राता जी ! आप ने पग पग पर मेरी सहायता की, आप ही ने मुझे राज्य सिंहासन दिलाया, आप ही पर मुझे गर्व है। आप ही का सहारा है। इस अवसर पर फिर आप मेरी सहायता कीजिए।"

"भैया ! मैं तुम्हें सुमार्ग पर लाने के लिए जो कर सकता हूँ करूंगा। मुझे भी तुमसे हार्दिक स्नेह है।"

प्रद्युम्न कुमार ने वायदा कर लिया कि जो भी हो सकेगा, वह

अवश्य करेगा और उसने उसे वहीं मनुष्यत्व के सवध में शिक्षा दी। और न्याय चरित्र और धर्म का बोध कराया।

वापिस आकर उसने श्री कृष्ण से प्रार्थना की कि उस की भूल को क्षमा कर दें और सुमार्ग पर चलने का उसे अवसर प्रदान करें। उसे इसी समाज मे आकर सच्चरित्र बन कर दिखाने का अवसर दें।

किन्तु श्रीकृष्ण अपने आदेश को वापिस नहीं लेना चाहते थे, पर वह प्रद्युम्न कुमार को निराश भी नहीं करना चाहते थे, अतः उन्होंने बहुत सोच समझकर एक ऐसी शर्त शाम्बकुमारके नगरमे वापिस आनेके लिए रक्खी जो प्रत्यक्ष में पूर्ण होने योग्य प्रतीत नहीं होती थी। उन्होंने कहा कि यदि सत्यभामा शाम्ब कुमार को अपने साथ हाथी पर बैठाकर महल में ला सके तो वह आ सकता है।"

प्रद्युम्न कुमार ने शर्त सुनी तो वह भी परेशान हो गया क्योंकि वह जानता था कि सत्यभामा कभी भी शाम्ब कुमार को वापिस लाने का यत्न करने को तैयार नहीं हो सकतीं। जब उसने वह शर्त शाम्ब कुमार को जाकर बताई तो शाम्ब कुमार ने निराश होकर कहा—"भ्राता जी! यह तो असभव है। पिता जी ने ऐसी शर्त रक्खी है जिसके पूर्ण होने की संभावना ही नहीं क्योंकि सत्यभामा तो वैसे ही मुझ से चिढ़ती है, वह भला क्यों मुझे विपत्ति से लेने आयेगी?"

"हाँ, लगता तो ऐसा ही है।"

"तो क्या मुझे निराश होना पड़ेगा?"

प्रद्युम्न कुमार चिन्ता मग्न था उसने कहा—मै स्वय व्याकुल हूँ। कोई उपाय समझ मे नहीं आता। पिता जी इस शर्त से-टस से मस नहीं होंगे। फिर काम बने तो कैसे?"

शाम्ब कुमार के नेत्र छल छला आये—"तो फिर क्या मुझे इसी प्रकार विपिन में भटकते फिरना है। क्या आपके रहते भी मुझे इसी प्रकार ठोकरें खानी पड़े गी?"

उसकी बात से प्रद्युम्न कुमार का हृदय द्रवित हो गया, उसने कहा—"भैया! पिता जी का दिया दण्ड कुछ दिन तो भोगे ही। फिर मैं कोई न कोई उपाय अवश्य ही करूगा।"

शाम्ब कुमार को आश्वासन देकर प्रद्युम्न कुमार चला आया। पर उसे चैन नहीं थी, वह शाम्ब कुमार को वापिस लाने की सोचता रहा।

प्रद्युम्न कुमार ने अपनी विद्या के बल से ऐसा ही चमत्कार कर

दिया जिससे शाम्ब कुमार की इच्छा पूर्ति का मार्ग निकल आया।

+एक दिन सुभानु राज उपवन में सैर करने के हेतु गया। साथ

+यह घटना इस प्रकार भी कही जाती है कि—शाम्ब के चले जाने पर प्रद्युम्न अकेले रह गए, अब उनका और कोई साथी ऐसा न रह गया जो उन का पूर्ण रूप से साथ देवे। भीरु कुमार से उसकी पटती न थी। अत कभी २ परस्पर मुठभेड भी हो जाती। एक दिन प्रद्युम्न ने भीरु कुमार को पीट डाला इस पर सत्यभामा कहने लगी प्रद्युम्न! तू भी शाम्ब की तरह नटखट होने लग गया है। उसके चले जाने से नगरवासियो का आधा दुख तो दूर हो गया है, और जब तू भी चला जायेगा तो सारा दुख दूर हो जायेगा।" माता मैं कहाँ जाऊ? प्रद्युम्न ने पूछा। श्मशान में जा और कहा जायेगा? सत्यभामा ने खिझते हुए कहा।

"अच्छा माता यह भी बतादो कि वहा से मैं वापिस कब आऊ।" जब मैं स्वय शाम्ब को हाथ पकडकर यहा ले आऊ तब चले आना। सत्यभामा ने कुटिलता पूर्ण उत्तर दिया। 'अच्छा' कह कर कुमार वहा से जाकर श्मशान में रहने लगा। घूमता हुआ निर्वासित शाम्बभी उधर आ पहुचा। अब वे दोनो श्मशान में चौकीदार की भाति रहने लगे। अपनी बुद्धिमत्ता से कर भी वसूल करने लगे। अधिकार भी प्रयोग करते रहे। इसी भाँति जीवन यापन कर रहे थे कि एक दिन शाम्ब को राज्य में पुनर्वासित करने की युक्ति प्रद्युम्न को सूझी। क्योकि उसके पास गौरी और प्रज्ञप्ति नामक दो विद्याए थी जो उसे परोक्ष वातावरण को प्रत्यक्ष रूप में बताया करती थी।

कारण यह बना कि इन्ही दिनो सत्यभामा ने अपने पुत्र भीरु के विवाह के लिए निन्यानवे कन्याए खोज रक्खी थी किन्तु उसकी हार्दिक इच्छा थी कि उस के पुत्र का विवाह सौ राजकुमारियो के साथ हो।

इधर प्रद्युम्न को उसकी विद्या से यह सारी बातें मालूम हो गयी। अत उस ने एक षडयन्त्र रचा। स्वय एक प्रदेश का राजा बना, जितशत्रु नाम रक्खा, और शाम्ब को अपनी पुत्री बनाया। एक दिन भीरु की धाय माता ने उस लडकी को अपनी सहेलियो के साथ उद्यान में खेलते हुए देखा। वह रूप में साक्षात् रति समान थी। उसने शीघ्र आकर सत्यभामा को बताया। सत्यभामा ने भीरुकुमार के लिए याचना की। इस पर जितशत्रु ने कहला भेजा कि—"यदि सत्यभामा स्वय मेरी कन्या का हाथ पकड कर द्वारिका में प्रवेश करे, विवाह के समय भीरु के हाथमें हाथ देते समय इसका हाथ ऊपर रखा जाय,तो मैं अपनी पुत्री का विवाह करूगा अन्यथा नही। सत्यभामा ने उसकी सारी शर्तें सहर्ष स्वीकार कर ली और यथा समय जितशत्रु के शिविर में गयी जो कि द्वारिका से थोडी ही दूरि

पर था कन्या का हाथ पकड कर ले आयी। उधर शाम्ब ने प्रज्ञप्ति विद्या से वर मागा कि सत्यभामा आदि मुझे सुन्दर कन्या के रूप देखे तथा द्वारिकावासी अन्य लोग शाम्ब के रूप मे ही। प्रज्ञप्ति ने तथास्तु कह दिया, जिसके प्रभाव से वह उसी भाति दिखाई देने लगा। सत्यभामा हाथ पकडे हुए कन्या को वहा ले आयी जहा वे ९९ कन्याए उपस्थित थी, आकर उसका बाया हाथ भीरु कुमार के दाहिने हाथ मे ऊपर रखा गया। इस ओर वैवाहिक रीति से कार्य सम्पन्न हो रहा था कि उधर शाम्ब अपने दाहिने हाथ मे उन कन्याओ के बायें हाथ ग्रहण कर भावर लेने लग पडा। शाम्ब को देखकर उन राजकुमारियो ने सोचा कि यही हमारे पति हैं। देव समान परम सुन्दर पति को पाकर वे अपने को धन्य समझने लगी।

वैवाहिक कार्य की समाप्ति पर राजकुमारियों के साथ माया रूपी शाम्व ने भी शयन कक्ष मे पदार्पण किया। और उनके साथ ही भीरुकुमार ने भी प्रवेश किया। प्रासाद में पहुँचते ही शाम्व ने अपना असली रूप प्रकट कर दिया और भीरु को वहाँ से भगा दिया। भीरु हाथ मलता हुआ सत्यभामा के पास पहुचा और शाम्ब के महल मे आ घुमने की बात कही। कुमार की बात सुन कर सत्यभामा को आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह कहने लगी—उसे तो निकाल दिया गया है, बिना आज्ञा वह नगर मे प्रवेश ही नही कर सकता फिर भला वह यहा कैसे आ गया? पुत्र! तुझे भ्रम हो गया है। अन्त मे सत्यभामा स्वयं देखने को आई, उसे देखते ही वह आग बबूला हो उठी, उसने कहा--धृष्ट! तू यहा कैसे आया? उत्तर मे शाम्ब ने कहा—माता! तुम ही तो हाथ पकड कर यहा लाई हो और यह विवाह का उपक्रम भी तुम्ही ने किया है।

कुमार की बातें सुनकर सत्यभामा और अधिक गर्म हो गई। इस पर शाम्ब ने प्रद्युम्न तथा अन्यान्य लोगो की साक्षी दिलवायी। सभी ने कहा कि हमने स्वय आपको हाथ पकड कर कुमार को लाते देखा है। इतने में ही प्रद्युम्न बोलउठा माता! मेरे प्रश्न के उत्तरमें आपने ही उस दिन कहा था कि "तुम उस दिन आना जिस दिन वह शाम्ब को हाथ पकड कर नगर मे ले आवे।" अत माता आज तुम उसे ले आयी और साथ में भी आगया। प्रद्युम्न की बात सुनकर सत्यभामा उनके कपट पूर्ण व्यवहार पर हाथ मलती और यह सोचती हुई अपने महल में चली गई कि "मुझे ऐसा मालूम होता तो मैं कभी भी ऐसा शब्द मुह से न निकालती।"

पश्चात् जाम्बवती ने अपने पुत्र के चातुर्य पर प्रसन्न हो उसके विवाहोपलक्ष्य मे एक महोत्सव आयोजित किया और प्रतीभोज आदि दिया। इस प्रकार प्रद्-युम्न अपनी बुद्धिमत्ता से शाम्ब को पुन. नगर में ले आया। त्रि० व०—

में उसके था मन्त्री। उपवन में सैर करते करते उसने एक वृक्ष के नीचे बैठी एक परम सुन्दरी को देखा। उसे देखना था कि सुन्दरी के रूप का जादू सुभानु के अंग अंग पर प्रभाव कर गया वह उसके लावण्य तथा अनुपम रूप को निहारता ही रह गया। कितनी ही देर तक वह टकटकी लगाए देखता रहा। जितना ही वह अधिक उसे देखता, उतना ही नशा उस पर छाता जाता। अप्सरा समान सुन्दरी रूप पर दृष्टि लगाए लगाए ही वह मूर्छित हो गया। मन्त्री ने उपाय करके उसकी मूर्छा भंग की और उसे अपने साथ महल में ले आया। पर उसके नेत्रों में तो उसी सुन्दरी का रूप बस गया था। वह उसके लिए व्याकुल था। सत्यभामा ने अपने कुंवर को खोया खोया सा देखकर पूछा—"तुम कुछ खोये खोये से हो। क्या कारण है ?"

अभी सुभानु ने कोई उत्तर नहीं दिया था कि मन्त्री जी आ गए, उन्होंने कहा—"रानी जी! उपवन में कुंवर जी को मूर्छा आ गई थी। इन्हें विश्राम कराइये।"

सत्यभामा यह सुनकर चकित रह गई बोली—"मूर्छा! मूर्छा क्यों आ गई थी ? क्या कुछ तबियत खराब है ? क्या हुआ है इसे ? कोई कारण तो हुआ ही होगा।"

"रानी जी! जहा तक मैं समझता हू उपवन में बैठी एक अप्सरा के रूप को देखकर कुंवर मूर्छित हुए थे।"

मन्त्री जी की बात सुनकर सत्यभामा ने पूछा—"क्या किसी अप्सरा को देख लिया है इसने ? क्या वह इतनी रूपवती थी कि कुंवर मूर्छित हो गया ?"

"हां थी तो परम सुन्दरी।"

उत्तर सुनकर सत्यभामा ने कुंवर को बैठाया और उससे भी वही प्रश्न किया—"कौन थी वह ? क्या वह इतनी सुन्दर थी कि उसके रूप को देखकर ही तुम मूर्छित हो गए ?"

"माता जी! जीवन भर मैंने ऐसा रूप नहीं देखा। वह अवश्य ही आकाश से उतरी कोई देवांगना होगी, उसके रूप में कोई जादू था।" सुभानु बोला।

सत्यभामा को बहुत आश्चर्य हो रहा था, उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि कोई स्त्री इतनी रूपवती भी हो सकती है कि जिसे देख

कर कोई राजकुमार मूर्छित हो जाये। "मुझे तो विश्वास नहीं होता बेटा। आखिर वह ऐसी कितनी रूपवती थी कि तुम्हें देखकर ही मूर्छा आ गई।"

"मां! वह रूप पृथ्वी पर तो देखने को मिलता नहीं। अब तक उसकी मूर्ति मेरी आंखों में बसी है। जैसे वह अभी तक मेरे सामने बैठी है" सुभानु बोला।

सत्यभामा को स्वयं अपने रूप का ही अभिमान था, वह अपनी शका का निराकरण करने हेतु हाथी पर सवार होकर उपवन की ओर चल पड़ी।

उपवन में पहुँच कर उसने कोना कोना छान मारा, तब कहीं जाकर उसे एक स्थान पर पुष्प लताओं के झुरमट में बैठी वह सुन्दरी दिखाई दी। एक बार उसके मद भरे नेत्रों को देखकर ही वह मुग्ध हो गई। उसके गुलाबी रग के कपोल और कमल की पखडियों से अधर पल्लव देखकर वह अपना आपा भूल गई। हठात् उसके मन ने कहा—"इस रूपसी पर क्यों न कोई युवक सुधबुध खो दे। कितना मादक है इसका सौंदर्य। वास्तव में स्वर्ग लोक की अप्सरा ही दीखती है।"

वह उसके निकट गई। षोड्शी अपने आप में ही सिमट गई। सत्यभामा ने जाकर एक बार उसे अपने अतृप्त नेत्रों से ऊपर से नीचे तक देखा और फिर पूछा—"सुन्दरी तुम कौन हो, और यहाँ कैसे आई हो? वह बोली—"मैं एक दूर देश की राजकन्या हूं। अपने मामा जी के पास रहती थी, मुझे विवाह योग्य समझ कर पिता जी वहाँ से मुझे ले आये। रास्ते में थककर इस उपवन में विश्राम करने के हेतु रुके। रात्रि को सभी सो गए, पर मुझे नींद नहीं आई भाभी का वियोग सना रहा था। व्याकुल थी, उठकर एक दूसरे वृक्ष के नीचे जा बैठी। और वहीं नींद आ गई। प्रात जब मेरी आंखें खुलीं तो मैंने चारों ओर देखा, पर वहां कोई नहीं था। पिता जी और उनके सेवक जा चुके थे। उसी समय से यहां बैठी हूं, व्याकुल एव दुखित। पता नहीं पिताजी कहां चले गए। मुझे क्यों छोड़ गए। मुझे अकेलापन खाये जा रहा है। चिन्तित हूँ। आप हो मुझे मेरे घर पहुचने का उपाय बता दीजिए।"

सुन्दरी की बात सुनकर सत्यभामा को बड़ी प्रसन्नता हुई। प्रसन्नता इस लिए कि अब वह इस पुष्प से सुभानु के हृदय उपवन को सजा सकेगी। अपने बेटे को सन्तुष्ट करने का सरल उपाय हो सकेगा। यह सोचकर वह कहने लगी—"सुन्दरी! तुम्हारी बात सुनकर मुझे तुम्हारे प्रति सहानुभूति हो गई है। मैं तुम्हारी प्रत्येक सहायता करूंगी। मैं इस नगर की रानी हूँ। तुम्हारा यहा अकेले रहना उचित नहीं है। तुम मेरे साथ महल मे चलो।"

"मैं आपके महल मे कैसे जा सकती हूँ। पता नहीं पिता जी क्या सोचे ?"

"तुम्हें कहीं तो शरण लेनी ही पडेगी। तुम मेरे ही महल में चलो। मेरा एक राजकुमार है सुभानु। बड़ा ही सुन्दर, गुणवान, विद्यावान और चारित्रवान है। अनेक नृप अपनी अपनी कन्याओं का विवाह उस से रचाने को उतावले हो रहे है। जब से उसने तुम्हें देखा है, तुम्हारे रूप पर ही अपना मन वार दिया है। तुम चलो और उसकी सहधर्मिणी बन जाओ।" सत्यभामा ने अपनी मनोकामना को प्रगट करते हुए कहा।

परन्तु सुन्दरी न बोली।

तब सत्यभामा ने एक और दांव फैंका—द्वारिका नरेश श्रीकृष्ण महाराज का नाम तो तुमने भी सुना होगा, बड़े ही बलशाली तथा प्रतापी यादव वशी नरेश हैं। उन्होंने ही कस जैसे बलिष्ठ का वध किया है, उनके सामने कितने ही नरेश हाथ बाधे खड़े रहते हैं। उनके पांचजन्य की ध्वनि सुनकर अच्छे अच्छे शूरवीरों की छाती दहल जाती है। सुभानुकुमार उन्हीं की आखों का तारा है। उसके साथ रह कर तुम वास्तव में अपने पर गर्व कर सकती हो। मै उसकी मां हू। तुम्हें एक पुष्प की तरह रक्खूगी। तुम्हे कभी कोई कष्ट नहीं होने दूंगी।"

सुन्दरी ने कहा—"रानी जी! आपकी बातों पर मुझे विश्वास है। श्रीकृष्ण महाराज की ख्याति दूर दूर तक फैली है। पर मेरे पिताजी स्वयवर रचाने की इच्छा रखते हैं।"

सत्यभामा ने उत्साह पूर्वक कहा—"तो फिर मैं दावे के साथ कहती हू कि स्वयवर मे भी तुम राजकुमार सुभानु को ही वरमाला पहनातीं। मेरे साथ चलो उसे देख लो। यदि तुम्हारा हृदय स्वीकार

करे तो उसे वरमाला पहना दो। यही तो स्वयंवर का उद्देश्य है।"

सुन्दरी आनाकानी करती रही। पर सत्यभामा अत्याग्रह करने लगी और अन्त में वह उसे उपवन से हाथी पर बैठाकर नगर की ओर चल पड़ी। उस पर अपना प्रेम जताने और सुभानु के लिए जीतने के निमित्त वह स्वय ही उस पर चंवर ढोलती जाती थी।

महल में पहुचकर उसे एक सुसज्जित कमरे मे बैठा दिया। नाना प्रकार के भोजन उसको अपने हाथो से खिलाये। भाँति भाँति के सुन्दर, मनोहर और बहुमूल्य वस्त्र तथा आभूषण उसे दिखाकर उसका मन मोहने की चेष्टा की। फिर सुभानु को बुलाकर उसके सामने बैठा दिया। उस समय सुभानु बहुमूल्य एवं सर्व सुन्दर वस्त्रों मे था। अनेक झूठी सच्ची प्रशसाओ का तूमार बांध दिया। और जब उसे आशा हो गई कि मनोकामना पूर्ण हो जायेगी, सुभानु को लेकर वहा से चली गई। दासियो को उसकी सेवा मे लगा दिया।

बाहर जाकर सुभानु से बोली—"सभी प्रकार से उसे तुम्हे पति रूप मे स्वीकार करने का मैने प्रयत्न कर लिया है। अब शेष रहा है तुम्हारा कार्य। तुम अपने प्रेम के पाश मे बाध लो। अकेले मे जाकर उससे प्रेम याचना करो। तुमने युक्ति पूर्वक प्रेम प्रदर्शन किया तो काम बना ही पडा है।"

सुभानु बोला—"मां! आप विश्वास रक्खे मैं उसका मन जीतकर छोड़ूंगा। बस एक बार एकान्त मे मिलने का आप प्रबन्ध करदे।"

प्रद्युम्न कुमार यह सारा दृश्य गुप्त रूप से देख रहा था। सत्यभामा ने अवसर पाकर दासियो को एक एक कर के वहां से हटा लिया और सुभानु को पाठ पढ़ा कर उस के पास भेज दिया।

सुभानु कापता हृदय लिए हुए उस कमरे की ओर गया। उसका मन डावाडोल था। उस की दशा वही थी जो परीक्षा मे उतरते व्यक्ति की होती है। वह अपनी सफलता की कामना करता हुआ गया। वह सोचता जाता कि किन शब्दो का प्रयोग वह अपना प्रेम प्रदर्शन करने के हेतु करेगा। उसने धड़कते हृदय कोलिए हुए कमरे मे प्रवेश किया। पर ज्यों ही उसने फूलो से सजी सुन्दरी की शैया पर दृष्टि डाली, वह धक से रह गया। उस ने आँखे फाड़ फाड़ कर देखा तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसे अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। आखों को

मल कर फिर देखा। पर बात वही रही। उस शैया पर सुन्दरी के स्थान पर शाम्ब कुमार बैठा था। यह शाबकुमार है तो फिर सुन्दरी कहाँ गई ? उस ने चारों ओर दृष्टि डाली, सुन्दरी वहां नहीं थी। क्रोध में आकर उस ने कहा—

"शाम्ब तुम्हें यहा आने की आज्ञा किस मूर्ख ने दी ? क्या तुम ने सुन्दरी पर भी हाथ साफ कर दिया डाकू !"

वह उस की ओर लपका। पर शांबकुमार खडा हो गया, वह बोला "तनिक होश से काम लो। इतने पागल मत बनो कि बाद को पछताना पडे। किस सुन्दरी की बात कर रहे हो ?'

"उसी सुन्दरी की जिसे अभी अभी मैंने इस कमरे में छोडा था।"

'इस कमरे मे तो कोई सुन्दरी नहीं थी।'

'तुम्हें महल में आने का साहस कैसे हुआ ?

'तुम्हारी माता जी मुझे ले आईं, मैं क्या करू ?'

सुभानु क्रोध के मारे कापने लगा, उसने मा को आवाज दी। सत्यभामा ने जब कमरे में शाम्ब कुमार को देखा तो उसका भी पारा चढ़ गया। 'तुझे यहां किस ने आने दिया ? क्या तु पिता के आदेश का उल्लघन कर के यहाँ भाग आया ? अरे निर्लज्ज यहां क्यों आया ?

"मैं क्या करू, आप ही तो मुझे यहाँ लाई हैं।' शाबकुमार ने कहा।

"अच्छा अब मेरी ही आँखों में धूल झोंकना चाहता है ? मुझे क्या पडी थी जो तुझ कलंकी को लाती ?' सत्यभामा ने बिगड़ कर कहा।

"माता जी ! मुझे तो आप ही लाई हैं। अभी अभी आप ने मुझे नाना प्रकार के भोजन खिलाये हैं।' शान्ति पूर्वक शाम्बकुमार बोला।

सत्यभामा ने कमरे में चारों ओर दृष्टि डाली और क्रोध वश बोली- 'कुलकलकी ! सफेद झूठ बोलकर अपना अपराध छुपाना चाहता

है। बता तू ने उस सुन्दरी का क्या किया ?"

"कौन सुन्दरी ?"

"जो अभी अभी इस कमरे में थी।'

'यहाँ तो मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं था।'

'इतना झूठ ?' क्रोध के मारे गरज कर सत्यभामा बोली।

'मुसीबत यह है कि आप की दृष्टि ने धोखा खाया और आप मुझे सुन्दरी समझ कर उपवन से ले आई। इसमे मेरा कुछ अपराध नहीं, अपराध तो आप की दृष्टि का है।" शाम्बकुमार ने स्पष्टीकरण देते हुए कहा।

उसी समय प्रद्युम्न कुमार भी वहां आ गया और वह भी शाम्ब कुमार का साक्षी हो कर कहने लगा—'माता जी! मै स्वयं आश्चर्य चकित था कि आप हाथी पर शाम्बकुमार को ला रही थीं, स्वयं चवर ढोल रही थीं। और महल में लाकर नाना प्रकार के भोजन खिला रही थीं।

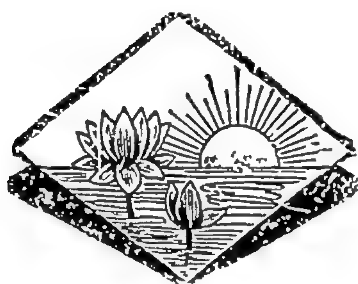
सत्यभामा और सुभानु को क्रोध भी था और आश्चर्य भी। वे अपने कानो पर विश्वास करे या आँखों पर; उन की समझ मे ही यह नहीं आ रहा था।

तभी प्रद्युम्न कुमार ने कहा—माता जी! आप मेरा विश्वास करे, आप हाथी पर शाम्बकुमार को ही लाई थीं और इसीलिए शाम्बकुमार महल में आ गया, वरना न आता। पिता जी ने कहा था कि आप यदि शाम्ब कुमार को हाथी पर महल मे ला सकें तो शाम्बकुमार वापिस आ सकता है वरना नहीं. पिता जी की शर्त पूर्ण हुई और आप की कृपा से शाम्ब कुमार महल मे वापिस आ गया।'

प्रद्युम्न कुमार की बात सुनकर सत्यभामा इस रहस्य को समझ गई, उस ने कहा—'तुम भी अपने पिता की तरह ही पूरे ठग हो। तुम्हीं ने यह सारा स्वांग रचा और मुझे ठग लिया।' वह मन ही मन

अपने आप पर झुंझला रही थी। पर प्रत्यक्ष में क्रोध प्रगट न करना ही उसने श्रेयष्कर समझा।

शाम्बकुमार ने अपने चरित्र को पवित्र किया, प्रेम की धारा बहा कर उस ने सभी के मन में से अपने प्रति घृणा समाप्त कर दी। सेवा-भाव और दयाभाव से वह सभी का प्रिय हो गया। उसका विवाह हेमांगद नृप की कन्या सुहिरनी से कर दिया गया। सुभानु, शाम्ब-कुमार, प्रद्युम्न कुमार आदि सभी आनन्द से जीवन व्यतीत करने लगे।



❀ चौबीसवां परिच्छेद ❀

प्रद्युम्न कुमार तथा वैदर्भी

एकबार रुक्मणि के मन मे विचार आया कि अपने भाई रुक्म की कन्या वैदर्भी के साथ प्रद्युम्न कुमार का विवाह हो जाय तो बहुत ही अच्छा रहे। रुक्म के मन में श्रीकृष्ण की ओर से छाई ईर्ष्या का भी अन्त हो जाये और घर मे वैदर्भी जैसी सुन्दरी बहू बन कर आ जाये।

बात यह थी कि वैदर्भी के रूप और गुणो की चारों ओर चर्चा थी और कितने ही राजकुमार उसे प्राप्त करने के लिए लालायित थे। रुक्मणि स्वय वैदर्भी की प्रशंसा किया करती थी, वह उसके लिए अच्छा वर खोज रही थी, तभी उसके मन मे प्रद्युम्न कुमार के साथ उसका विवाह करने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसने अपने विचार को किसी पर प्रकट नहीं किया, बल्कि एक दूत के द्वारा अपने भाई रुक्म के पास एक पत्र भिजवाया, जिसमे वैदर्भी और प्रद्युम्न कुमार के परस्पर विवाह का प्रस्ताव किया गया था। रुक्म ने ज्योंही पत्र पढ़ा, उसे क्रोध आ गया, आग्नेय नेत्रों से दूत की ओर देखते हुए उसने पत्र फाड़ फेंका और कहा—"जाकर कह देना कि रुक्मणि मेरे हृदय में छुपी चिनगारियों को हवा न दे। मेरे घावों पर नमक न छिड़के।"

दूत ने आकर पूरी बात रुक्मणि को बता दी। रुक्मणि को जब पत्र की दुर्दशा और रुक्म का उत्तर ज्ञात हुआ वह गम्भीर हो गई। उसकी मनोकामना का गला दबा दिया गया था, अतः मन ही मन बहुत दुखी हुई। कहा किसी से कुछ नहीं।

माता को खिन्न देखकर एक दिन प्रद्युम्न कुमार ने पूछा—"मां आज क्या बात है? स्वास्थ्य तो ठीक है?

रुक्मणि ने दीर्घ निश्वास छोडा।

"क्या बात है ? मैं देख रहा हूँ कि आप चिन्तित है, मन मे कोई पीडा है।"

"बात ही कुछ ऐसी हो गई है बेटा।"

"मुझे भी तो बताइये।"

"क्या बताऊ मै अपनी भूल से एक हार्दिक पीडा मोल ले बैठी।" दुखित होकर रुक्मणि बोली।

प्रद्युम्न हठ कर बैठा, मा जो बात है आप मुझे अवश्य बताइये।" बार बार आग्रह करने पर रुक्मणि को भी बतानी पडी। सारी बात सुनकर प्रद्युम्न ने उसी समय प्रतिज्ञा की--कि "चाहे जो हो मैं वैदर्भी को ब्याह कर लाऊगा, उसे आपकी पत्नी बनाकर छोडूगा। जब तक उसे महल में न ले आऊ, चैन न लूगा।"

रुक्मणि प्रद्युम्न कुमार की इस प्रतिज्ञा को सुनकर कांप उठी, वह बोली—"बेटा उत्साह मे आकर ऐसी कठोर प्रतिज्ञा मत करो। मैं नहीं चाहती कि वैदर्भी को प्राप्त करने के लिए तुम सहस्रों व्यक्तियों का रक्त बहाओ।"

"मां मैं यह भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए रक्त की एक बूद भी न बहने दूगा।" प्रद्युम्न कुमार ने प्रतिज्ञा की और शाम्ब कुमार को साथ लेकर द्वारिका से चल पडा। रुक्म की राजधानी भोजकटपुर पहुच कर उन्होंने डोम का रूप धारण कर लिया और नगर के बाहर उपवन में डेरा लगा दिया। ढोल आदि लिए और नगर में जाकर गाते हुए निकलने लगे, मधुर कण्ठ और ढोल बासुरी की ध्वनि ने एक विचित्र समा बाध दिया। जो सुनता वही मुग्ध हो जाता। तमाम नगर में इन डोमो की ख्याति फैल गई। और यह बात रुक्म के कानों में भी पडी कि दो डोम नगर में फेरी लगा रहे हैं, बहुत अच्छा गाते बजाते हैं एक दिन जब वे राजमहल के आगे से गाते बजाते निकल रहे थे। रुक्म ने उन्हें दरबार में बुलवा लिया। दरबार में उन्हें गाने को कहा। दोनों ने अत्युत्तम सगीत सुनाया, मधुर कण्ठ से निकले गीतों को सुनकर वैदर्भी भी दरबार में आ गई। उसे उनका सगीत बहुत प्रिय लगा।

अन्त में रुक्म ने पूछा—"तुम लोग कहां से आये हो ? कहॉ के रहने वाले हो।"

डाम के वेष मे छुपे प्रद्युम्न कुमार ने कहा—"महाराज हम तो खाना बदोश हैं, मांगते खाते फिरते हैं। हमारा कहॉ घर, कहॉ ठिकाना, जहॉ रात हो गई वहीं विश्राम कर लेते हैं। बस वही बात है—

जहा मिल गई तवा परात ।
वहीं बिताई सारी रात ॥

इसी प्रकार से घूमते घामते हम द्वारिका से आ रहे है।"

ज्यों ही प्रद्युम्न कुमार रुका शाम्ब कुमार बोल उठा—

"महाराज ! द्वारिका बड़ी सुन्दर नगरी है। बड़ा वैभव है उस नगर मे। हम तो महाराज वहॉ पूरे एक मास ठहरे।"

आश्चर्य से रुक्म ने कहा—'अच्छा !'

'जी हां, वहॉ के नरेश का एक राजकुमार बहुत ही रूपवान, व गुणवान है। बड़ा ही करुण हृदय। शाम्बकुमार ने इतना कह कर, प्रद्युम्नकुमार की ओर देख कर कहा—क्या नाम है भई उसका ?'

'प्रद्युम्नकुमार।'

'जी, तो प्रद्युम्न कुमार बड़ा दानी है, सगीत से उसे बड़ा प्रेम है, नाक का नकशा तो ऐसा है कि चॉद भी शरमा जाये। पूरो तरह देवता समान है। वह दुखियों पर बड़ी दया करता है। इतना बलिष्ठ है कि अच्छे अच्छे शूरवीर उसके धनुष को टकार सुनकर ही घबरा जाते हैं। बड़ा ही यशस्वी और प्रतापी राजकुमार है। सारी राजधानी मे उसी की प्रशसा है।' शाम्बकुमार ने कहा।

प्रद्युम्नकुमार बोल उठा—'महाराज ! यू तो हम ने कितने ही राजकुमार देखे हैं, एक से एक बढ़ कर, पर प्रद्युम्नकुमार सा रूपवान विद्यावान, गुणवान, चरित्रवान, दानवीर और करुण हृदय राजकुमार आज तक कहीं नहीं देखा। बस उसी ने अपने दयाभाव से हमे एक मास तक रोका। हम एक मास तक वहीं आनन्द करते रहे।

इसी प्रकार दोनो ने मिल कर प्रद्युम्न कुमार की भूरि भूरि प्रशसा की। इधर प्रशंसा सुन सुन कर रुक्म को क्रोध आ रहा था और

वैदर्भी के मन में प्रद्युम्न कुमार के प्रति प्रेम अकुरित हो रहा था। बल्कि उसने निश्चय कर लिया कि वह प्रद्युम्न कुमार को ही पति रूप में स्वीकार करेगी।

रुक्म ने अन्त में कहा—'प्रद्युम्न तो हमारा भानजा है। तुम उस से बड़े प्रसन्न हो। पर यहाँ भी तुम्हे वैसा ही आराम मिलेगा।' और दोनों को बहुत सा इनाम देकर विदा किया।

दूसरे दिन रुक्म की हस्तिशाला से एक मदोन्मत्त हाथी निकल भागा। उस ने भयकर रूप धारण कर लिया। आपणों को नष्ट करता, घरों को उजाडता, लोगों को मारता हुआ वह घूमने लगा, सारे नगर में त्राहि, त्राहि मच गई। राज कर्मचारियों ने उसे काबू में करने के बहुत प्रयत्न किए पर वह काबू में न आया, था वह रण का हाथी। इस लिए उस की हत्या भी नहीं की जा सकती थी) अन्त मे रुक्म ने घोषणा की कि जो व्यक्ति इस हाथी को पकड कर लायेगा उसे मुह मागा इनाम मिलेगा। कितने ही लोग फिर तो उसे पकड़ने का प्रयत्न करने लगे पर वह किसी के काबू मे न आया। अन्त में वही दोनो डोम चले और डोम वेषधारी प्रद्युम्न कुमार ने अपनी गायन विद्या से हाथी को वश में कर लिया। उसके मस्तक पर सवार होकर प्रद्युम्न-कुमार डोम के वेष में महल पहुँचा। रुक्म उसकी वीरता से बहुत प्रसन्न हुआ। हाथी को बांधने का आदेश दिया, जब प्रद्युम्न कुमार ने हाथी को हस्ति शाला में बाध दिया और वह इनाम लेने पहुँचा तो रुक्म ने उस की बडी प्रशसा की अन्त में बोला—डोम! तुम वीर भी हो, !! अच्छा जो चाहे मांग लो हम वही तुम्हें पुरस्कार स्वरूप प्रदान करेंगे।"

डोम बोला—'महाराज! मुझे आप की धन दौलत, नहीं चाहिए, हाथी घोडे नहीं चाहिऐं, जागीर नहीं चाहिए। हम तो डोम हैं, मागना खाना हमारा पेशा है, सेठ मैं बनना नहीं चाहता, जो मिल रहा है, उसी में प्रसन्न हू। हा हमें रोटी सेकने वाली की जरूरत है। बस आप की दया हो तो हमारा यही काम हो जाये। आप अपनी कन्या को हमें दे दीजिए।'

रुक्म क्रोध से पागल हो गया, उस ने गरज कर कहा—मूर्ख डोम

है तू, तुझे इतना भी ध्यान नहीं है कि तुम जैसे नीच को राज कन्या नहीं दी जा सकती। तू ने हमारा अपमान किया है। इसका दण्ड तो यह था कि अभी तुझे मरवा दिया जाता, पर तेरी वीरता के कारण हम तुझे वह दण्ड नहीं देते। तुरन्त हमारे दरबार से निकल जाओ।"

डोम के वेष मे छुपा "प्रद्युम्न कुमार दरबार से यह कहकर चला आया—"आप अपना दिया वचन पूर्ण नहीं करना चाहते तो न सही। आपने कहा था मैंने माँग लिया। मांगने से कोई अपराध हो गया हो तो क्षमा करें।"

जिस समय रात्रि की अवनिका नगर पर पूर्ण रूप से छा गई, महल वाले सो गए, प्रद्युम्न ने प्रज्ञप्ति विद्या के प्रभाव से चुपके से छुप कर महल में प्रवेश किया। और वह ढूंढ़ता ढूंढ़ता वैदर्भी के कमरे मे पहुँच गया। वह उस समय तक जाग रही थी। जाग रही थी प्रद्युम्न कुमार की याद मे। वह उसका चित्र अपनी कल्पना शक्ति से बना रही थी। वह कामना कर रही थी कि प्रद्युम्न कुमार शीघ्र ही आकर उसे अपनी सह धर्मिणि बनाले।

प्रद्युम्न कुमार ने ज्यो ही कमरे में प्रवेश किया, वैदर्भी की दृष्टि उस पर जा टिकी। उस समय वह अपने वास्तविक रूप मे था। बहु मूल्य वस्त्र पहन रक्खे थे, अस्त्र शस्त्रों से सज्जित था। अचानक एक अज्ञात व्यक्ति के इस प्रकार रात्रि मे आ जाने मे वैदर्भी घबरा उठी। यह देखकर प्रद्युम्न कुमार ने कहा—"आप घबराइये नहीं। मैं प्रद्युम्न कुमार हूँ। द्वारिका से आया हूं।" माता रुक्मणि ने एक पत्र दिया है।"

प्रद्युम्न कुमार का नाम सुनते ही उसका मन प्रफुल्लित हो गया। उसने प्रणाम किया और स्वागत मे खड़ी हो गई। पूछा—"आप इतनी रात को क्यो आये ?" निकट पहुंच कर प्रद्युम्न कुमार बोला—कदाचित तुम्हे ज्ञात नहीं, तुम्हारे पिता जी नहीं चाहते कि मेरा तुमसे विवाह हो, पर मैं अपनी माँ से तुम्हारे रूप को प्रशसा सुन चुका हूँ। जब से तुम्हारे बारे में सुन चुका हूं। बस तुम्हारे लिए व्याकुल रहता था। आज अवसर पाकर यहा आया हूँ, यह जानने के लिये कि क्या तुम भी मुझे चाहती हो।"

वैदर्भी के कपोल आरक्त हो गए, उसने नजर नीची कर ली और [illegible]ने लगी।

प्रद्युम्न कुमार बोला—"यदि तुम मुझ से विवाह करने को तैयार हो तो आओ हम दोनों मिल कर आज रात्रि में ही एक हो जायें।"

दोनों में बहुत देरि तक बातें होती रहीं। और प्रद्युम्न कुमार ने उसे इस बात पर राजी कर लिया कि माता पिता की आज्ञा बिना ही वे दोनों विवाह के सूत्र में बध जायें। उसी समय कपड़ों और उचित सामान का प्रबन्ध किया गया। प्रद्युम्न् कुमार ने उसे कगन पहनाया और उसकी माग सिन्दूर से भर दी। इस प्रकार उनका विवाह सम्पन्न हो गया।

प्रात जब धाय ने विदर्भी की मांग में सिन्दूर देखा तो उसने यह बात रानी से जा कही। रानी ने सुना तो उसे प्रतीत हुआ मानो किसी ने उसे पहाड़ पर से उठा कर हजारों गज नीची खाई मे फेंद दिया हो। वह भागी भागी वैदर्भी के पास गई और मांग को सिन्दूर से भरा देखकर वह पूछ बैठी। विदर्भी तेरी मांग किसने भरी ?"

"प्रद्युम्न कुमार ने।" +वैदर्भी ने उत्तर दिया।

रानी के हृदय पर एक भयकर चोट पडी, फिर भी सम्भलते हुए, उसने पूछा—'कब ?'

"रात्री को।'

"क्या वह आया था ?"

"हां।"

"माग क्यों भरी ?"

"हम दोनों ने विवाह कर लिया।"

उत्तर सुनकर रानी से न रहा गया, वह फूट पड़ी। उसने सहस्त्रों गालियां दी। नेत्रों से अश्रुधार बह निकली। रोती हुई रुक्म के पास गई।

रुक्म को जब इस बात का पता चला तो वह अपने आपे में न रहा, क्रोध से उसका रोम रोम जलने लगा उसने वैदर्भी को बुलाकर कितनी ही जली कटी सुनाई और अन्त मे बोला—"तूने मेरी नाक कटा दी है। तूने मेरी गर्दन सारे ससार के आगे झुका दी है। इससे तो अच्छा था कि कल तुझे मैं उस डोम को ही दे देता।"

+ऐसा भी उल्लेख पाया जाता है कि वह सर्वथा मौन रही। त्रि०—

फिर क्रुध होकर उसने कहा—"अच्छा, तो फिर तेरे इस दुष्कृत्य को यही सजा है कि तुझे उसी डोम को दे दिया जाय, ताकि जीवन भर अपने दुष्कृत्य के लिए रोती रहे। मैं तेरे लिए कल अपने वचन से मुकर गया, पर आज तेरे किए का दण्ड दिया जायेगा और मैं अपने वचन को पूर्ण करने का यश भी प्राप्त करूंगा।"

उसने उसी समय एक सेवक को उन डोमों को ले आने का आदेश दिया। डोम दरबार में आ गए, तब रुक्म ने वैदर्भी का हाथ डोम रूपी प्रद्युम्न कुमार के हाथ में देते हुए कहा—"लो यह है तुम्हारी रोटी सेकने वाली। मैं अपना वचन पूर्ण करता हूं।"

डोम रूपी प्रद्युम्न कुमार ने रुक्म का बार बार धन्यवाद किया और दरबार से वैदर्भी को लेकर द्वारिका को चला आया। जब वह दरबार से चला आया, तब रुक्म का क्रोध कुछ शात हुआ और वह सोचने लगा, राजकन्या डोम को दे देने से तो अच्छा था कि प्रद्युम्न कुमार के साथ हुए उसके विवाह को ही स्वीकार कर लिया जाता। वास्तव में मैंने यह अच्छा नहीं किया। बेटी से भूल हो गई थी तो इसका इतना कठोर दण्ड देना नहीं चाहिए था। अब लोग मेरा उपहास करेंगे।

यह सोचकर उसने नौकरों को आदेश दिया कि उन दोनों डोमों को तुरन्त खोजकर लाओ। नौकर गए उन्होंने खोज की, पर डोम कहीं न मिले। राजा को बहुत दुख हुआ।

उधर जब वैदर्भी सहित प्रद्युम्न शाम्ब सकुशल द्वारिका पहुंचे तो रुक्मणि को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसका हृदय कमल रूपसी वैदर्भी को अपने प्रासाद में पुत्र वधू के रूप में प्राप्त कर अनायास ही खिल उठा, जो कि पहले उसके लिए सदा त्रसित रहता था। फिर प्रद्युम्न कुमार ने एक दूत द्वारा रुक्म को वास्तविक बात कहला भेजी। पश्चात् विधिवत् वैदर्भी का विवाह कुमार के साथ कर दिया गया।

इस प्रकार रुक्मणि वैदर्भी, प्रद्युम्न और शाम्ब के मुखकमल तथा उनके अनुपम कार्यों को देख देख कर सदा प्रफुल्लित रहने लगी।



* पच्चीसवां परिच्छेद *

द्रोण का बदला

आचार्य द्रोण को इस बात की बड़ी प्रसन्नता थी कि परीक्षा में कौरव और पाण्डवों ने जो कलाए दिखाईं उसकी चारों ओर बहुत ही प्रशसा हुई और सभी पर उनकी विद्याओं का प्रशसनीय प्रभाव पड़ा। राजपरिवार बहुत ही प्रसन्न था और लोग आचार्य द्रोण की शिक्षा की बहुत ही सराहना कर रहे थे। आचार्य द्रोण अपने शिष्यों की योग्यता को देखकर अपने को कृतार्थ समझने लगे। वे सोचते कि वे सुशिष्यों को पाकर अपने गुरु के ऋण से उऋण हो गये। उन्होंने विद्या की धरोहर ली और कुछ सुपात्रों को दे दी, यही तो विद्यावान का धर्म है। वह उन्होंने निभा दिया। वे बडे प्रसन्न थे।

परन्तु जहाँ उनका हृदय प्रफुल्ल था वहीं एक वेदना भी उनके हृदय को कचोट रही थी, एक शल्य था जो अभी तक चुभ रहा था। उन्होंने द्रुपद के दरबार में जो प्रतिज्ञा की थी वह अभी तक उनके मस्तिष्क में विद्यमान थी और उसकी पूर्ति की कामना उन्हें व्याकुल किए हुए थी। वह स्वप्न जो अभी तक उनके मन में सो रहा था, शिष्यों के सुयोग्य होने पर अंगड़ाई लेकर जाग उठा और उन्हें विचार आया कि अब राजा द्रुपद से बदला लेने का उचित अवसर है। अर्जुन ने मेरी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा कर ही ली है, लगे हाथों अपनी उस प्रतिज्ञा को पूर्ण करा लेना ही श्रेयस्कर है।

द्रोणाचार्य ने अपने सभी शिष्यों को अपने पास बुलाया, कर्ण के अतिरिक्त सभी गुरु के पास एकत्रित हो गए। आचार्य जी ने समस्त शिष्यों को सम्बोधित करके कहना आरंभ किया—"तुम लोगों को अपनी शक्तिभर मैंने परिश्रम के साथ शिक्षा दी। और अब तुम

सुयोग्य हो गए हो। तुम सभी बलिष्ठ और विद्यवान हो। परीक्षा देकर तुमने सिद्ध कर दिया है कि तुम्हारी योग्यता प्रशसनीय है। अब तुम्हारा अपने गुरु के प्रति जो कर्तव्य है आशा है तुम सभी उसे निभाने के लिए तैयार होंगे।"

सभी की जिज्ञासा पूर्ण दृष्टि गुरुदेव के मुखमंडल पर जम गई। द्रोणाचार्य ने कहा—"जब तक तुम लोग गुरु दक्षिणा नहीं देते, तब तक एक ऋण तुम्हारे सिर पर रहेगा। मैं चाहता हूँ कि तुम सब भार-मुक्त हो जाओ।"

"हम सभी गुरुदेव को गुरुदक्षिणा देने को तत्पर है। आप जो चाहें वही आपके चरणों में प्रस्तुत कर दिया जाय।" युधिष्ठिर ने सभी शिष्यो की ओर से कहा। सभी ने उसका अनुमोदन किया।

द्रोणाचार्य बोले—"मै जानता हूँ कि तुम सभी गुरु दक्षिणा देने तैयार हो। ऐसी ही मुझे आशा भी थी। मुझे तुम्हारा सोना चाँदी आदि बहुमूल्य उपहार नहीं चाहिए। तुम्हें ज्ञात है कि मैंने एक प्रतिज्ञा कर रक्खी है। उसे पूर्ण करने के लिए मै उत्सुक हूँ। मै चाहता हूं कि गुरु दक्षिणा रूप में तुम मुझे राजा द्रुपद को बांधकर लाकर दो। वही मेरी दक्षिणा होगी। उसने कहा था कि राजा का मित्र राजा ही हो सकता है रंक नहीं, मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुझे अपने शिष्यों से बंधवा कर मंगाऊंगा और तू स्वयं कहेगा कि मैं तुम्हारा मित्र हूँ। तुम सब योग्य हो, बलिष्ठ भी, अतः जाओ उसे बांध लाओ।"

द्रोणाचार्य की बात सुनकर कुछ देरि के लिए सब चुप हो गये। द्रोणाचार्य ने सभी के मनोभाव पढ़ने की चेष्टा की, तभी युधिष्ठिर खड़े हो गये। बोले—"हम आपके शिष्य हैं, आपसे शिक्षा पाते समय जिस तरह हमारे लिए आदरणीय तथा माननीय थे आज भी हैं। आपकी आज्ञाएं जैसे पहले शिरोधार्य थी आज भी हैं। परन्तु आप मुझे यह प्रश्न उठाने की धृष्टता के लिए क्षमा करें कि आपने तो कहा था क्रोध को जीतने में ही आनन्द मिलता है, पर आज आप ही अपने क्रोध वश किये गए निश्चय को हमसे पूर्ण कराने की माँग कर रहे है। उस दिन आप निर्धनता के बोझ से दुखी थे, पर आज आप हमारे गुरु है, निर्धनता का प्रश्न ही नहीं उठता। क्रोध सह लेने के कारण आप मेरी

प्रशसा किया करते थे, फिर आज स्वय ही । क्या यह अच्छा न होगा कि द्रुपद के पास क्षमा का सन्देश भेज दिया जाय ?"

द्रोण बोले—"मैंने जो शिक्षा दी वह तुम्हारा जीवन सफल बनाने के लिए दी है। मैं तुम्हारे स्वभाव की प्रशसा करता हूँ और तुम्हें धर्म-राज मानता हूँ, पर स्वभाव तो प्रत्येक व्यक्ति का भिन्न भिन्न होता है। सभी तो धर्मराज नहीं हैं। तुम मुझे अपनी प्रतिज्ञा से हट जाने की प्रेरणा मत दो। मैं अपने अपमान को नहीं भूल सकता।"

युधिष्ठिर पूछ बैठे—"पर क्या यह उचित है गुरुजी ?"

"उचित और अनुचित का प्रश्न नहीं है। प्रश्न यह है कि मैं अपने प्रण को पूरा करना चाहता हू और मैंने गुरु दक्षिणा के रूप में द्रुपद को बाँध कर लाना माँगा है। मैं जब तक अपने वचन को पूर्ण नहीं कर लूंगा, मैं व्याकुल रहूँगा। मुझे शान्ति मिल सकती है, तभी जब मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाय। तुम चाहते हो तो गुरु दक्षिणा रूप में उसे पूर्ण कर दो नहीं चाहते, तो न सही। मैं समझूगा कि मैंने जो इतनने दिनों से तुम से आशाए लगा रक्खी थीं वे व्यर्थ थीं, मैं फिर दूसरा उपाय सोचूगा।' द्रोणाचार्य ने कहा।

"आप मेरी बात को गलत न समझिये। युधिष्ठिर बोले—मैं आप की आज्ञा का पालन करने को सदैव तैयार हूं। हम क्षत्रिय है, गुरु कुछ याचना करें और हम उसे पूर्ण न करें यह तो कभी हो ही नहीं सकता।"

"तो फिर क्या मैं समझूं कि तुम द्रुपद को बांध लाने को तैयार हो ?" द्रोणाचार्य ने पूछा और सभी ने कहा—हां हम आपके मन की शान्ति के लिए गुरु दक्षिणा से उऋण होने के लिए आपकी प्रतिज्ञा पूर्ण करेंगे। किन्तु सिद्धान्त क्रोध पर विजय पाने को ही कहता है।"

खैर, कौरव तथा पाण्डव द्रुपद को बाधने के लिए अपने अस्त्र शस्त्र सम्भाल कर चल पड़े। दुर्योधन सोचने लगा यह अवसर बड़ा सुन्दर है, द्रोणाचार्य को अपने साथ लेने का। कर्ण हमारी ओर है ही यदि द्रोणाचार्य भी हमारे साथ हो जाय तो हमारे पास अपार शक्ति हो सकती है और इस इच्छा की पूर्ति का यही शुभ अवसर है। यदि हम

ही राजा द्रुपद को बाँध लाये तो गुरुदेव अवश्य ही हमसे प्रसन्न होंगे और हमारे पक्ष में आ जायेंगे। इस समय के वार्तालाप से वे युधिष्ठिर से तो असन्तुष्ट हो ही गए होंगे, अतः उनकी प्रतिज्ञा की पूर्ति करके उन्हें आसानी से ही अपनी ओर कर लिया जा सकता है।

यह विचार करके अपने भाइयों को साथ लेकर दुर्योधन आगे बढ़ गया, उसने पाण्डवों को पीछे छोड़ दिया, तीव्र गति से वह बढ़ा। ताकि वह पाण्डवो के पहुंचने से पहले ही द्रुपद को बांध सके।

कौरवों को आगे बढ़ते देख भीम के कान खड़े हुए, उसने युधिष्ठिर को सम्बोधित करके कहा—"भ्राता! देखो कौरव कितनी जल्दी जा रहे है, वे आगे निकल गये है, कहीं हमारे जाने से पूर्व ही उन्होंने द्रुपद को बाँध लिया, तो हम गुरु दक्षिणा नहीं दे सकेंगे और अर्जुन की प्रतिज्ञा भी पूर्ण नहीं होगी।"

युधिष्ठिर बोले—"भीम! इतने उतावले मत बनो, यदि हम से पहले ही जाकर वे यश प्राप्त कर सकते हैं, तो करने दो तुम तो उस समय सहायता के लिए तैयार रहो जब कौरव भागने लगें। उस समय तुम्हें पीछे नहीं रहना होगा।"

भीम ने तुरन्त अर्जुन से भी कहा—"भ्राता द्रुपद को बाँधने का प्रण आपने किया है, कहीं कौरव बाँध लाए तो आपकी प्रतिज्ञा का क्या होगा?"

"मुझे गुरुदेव की प्रतिज्ञा के पूर्ण होने से मतलब है। अर्जुन बोले—यदि यह यश कौरवों को ही मिलना है तो मिलने दो। गुरुदेव यह तो जानते ही हैं कि हम भी उन्हीं की प्रतिज्ञा पूर्ण करने जा रहे हैं।"

इस प्रकार पाण्डव स्वाभाविक गति से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने लगे और कौरव उनसे आगे तीव्र गति से आगे बढ़ते रहे। जब वह द्रुपद की राजधानी के निकट पहुंचे तो दूतों ने द्रुपद को सूचना दी कि कौरव पाण्डवों ने चढ़ाई कर दी है। यह सुनते ही वह समझ गया कि वे द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए आये होंगे। वह उस समय सोचने लगा कि वास्तव में उसने द्रोण का अपमान करके अच्छा नहीं किया था। बिना बात के एक युद्ध उसके सिर पर आ गया और न जाने इसका क्या परिणाम हो। पर दूसरे

ही क्षण वह सोचने लगा कि अब इस बात का विचार करने या इस पर पश्चाताप करने से क्या लाभ ? अब तो कौरव पाण्डवों का वीरता से सामना करना ही होगा।

द्रुपद ने तुरन्त अपनी सेना को तैयार होने की आज्ञा दी और सेना लेकर स्वय कौरवों का सामना करने के लिए चल पड़ा। कौरवों और द्रुपद की सेना में घमासान युद्ध होने लगा। कुछ देर तक तो कौरवों ने डटकर सामना किया, पर द्रुपद की शक्ति अधिक थी, जब दुर्घषण युद्ध में उनसे द्रुपद सेना के प्रहारों को न रोका जा सका तो उनके पांव उखड़ गए। द्रुपद के सामने उनकी एक न चली। कौरवों को बड़ी ही निराशा हुई।

इतने में पाण्डव भी निकट आ चुके थे, जब उन्होंने कौरवों को भागते देखा तो समझ गए कि द्रुपद की शक्ति से भयभीत होकर कायरों की भाँति भाग रहे हैं।

अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा—"भ्राता जी ! आप यहीं ठहरिये। क्योंकि आपने गुरुदेव से जो वार्तालाप किया था उसका स्पष्ट अर्थ था कि आप द्रुपद पर चढ़ाई करने के विरोध में है आपको तो गुरु आज्ञा की पूर्ति के लिए ही हमारे साथ आना पड़ा है। अतएव मैं आपका इस युद्ध में कूदना उचित नहीं समझता क्योंकि जब आत्मा साथ न दे, हृदय शकित हो, मस्तिष्क शाँत न हो, तो युद्ध नहीं करना चाहिए।"

युधिष्ठिर बोले—"ठीक है कि मै भी यही चाहता था।" युधिष्ठिर वहीं ठहर गए और चारों पाण्डव भ्राता आगे बढ़ गए। उन्होंने कौरवों को ललकार कर कहा—"क्या आप लोग कौरव कुल की कीर्ति को कलकित करने यहा आये हैं ? यदि द्रुपद से युद्ध करने की शक्ति नहीं थी तो आगे बढने का साहस क्यों किया था ?

दुर्योधन बोल उठा —"हम तो यह सोचकर आगे बढे थे कि द्रुपद को बाँधने का कष्ट आपको न करना पड़े। हम ही कर डालें पर फिर सोचा द्रुपद को बांधने की प्रतिज्ञा तो अर्जुन ने भी की थी अतएव द्रुपद को बाधने का कार्य अर्जुन के हाथ से ही होना उचित है। यही सोचकर हम मन लगा कर नहीं लड़े।"

पाण्डव उसकी धूर्तता समझ गए। उन्होंने कहा—"आपने बहुत अच्छा किया, अच्छा चलो फिर सभी साथ चलते हैं।"

पाण्डवो ने जाते ही भयकर आक्रमण किया। अर्जुन के बाणो ने द्रुपद की सेना के लिए वही कार्य किया जो ज्वाला की लपटें मधु मक्खियों के लिए करती है। उस के बाणो की वर्षा से द्रुपद एक दम निरुत्साह हो गया। उसकी सेना ने कितनी ही टक्कर झेली, पर अन्त मे वह निराश हो गई। द्रुपद पाण्डवो की वीरता के सामने झुक गया, उसका अभिमान चूर चूर हो गया। अर्जुन ने उसे नाग-पाश मे बांध लिया और बोला—"द्रुपद महाराज! शक्ति या सम्पत्ति का अभिमान कभी सुखदायी नहीं होता।

राजा द्रुपद सुनकर लज्जित हो गया उसने सिर झुका लिया। अर्जुन उसे बाँधकर द्रोणाचार्य के पास ले गया और बोला—"लीजिए, गुरुदेव! यह है आपकी गुरु दक्षिणा।"

आज द्रुपद को अपने सामने बन्दी रूप मे खडा देखकर द्रोणाचार्य को जो प्रसन्नता हो रही थी, उसे बस वे ही अधिक जानते थे। उनके मन का कांटा निकल गया था। वे गदगद थे। उन्होने अर्जुन को आशीर्वाद देकर द्रुपद को सम्बोधित करते हुए कहा "राजा रक का मित्र नहीं हो सकता" तुम्हे याद है वह अपनी बात?

"जब मै आपके सामने बन्दी की दशा में खड़ा हूं तो आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए थी। सिंह को पिजरे में बन्द करके उस पर वार करना वीरता नहीं है। द्रुपद ने क्रोध को पीते हुए कहा।

"परन्तु वह क्षण तुम्हे याद नहीं है जब मै तुम्हारे सामने असहाय अवस्था में खड़ा था तुम्हारे दरबार में, तुम्हारी विराट शक्ति थी। तुम सिहासन पर थे। तुम्हारा विचार था कि तुम मुझे निहत्थे, निस्सहाय और निर्धन व्यक्ति का चाहे जो बना सकते हो। उस समय तुमने यह क्या नहीं सोचा कि किसी की विवशता से अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहिए, क्या तुमने अपनी स्थिति का लाभ नहीं उठाया था? क्या तुम्हे याद है कि तुमने अपने सैनिको को मुझे धक्के देकर बाहर निकालने का आदेश दिया था। तुमने मुझ से अनभिज्ञ होने का स्वांग रचा था। मेरे स्वाभिमान को बार बार ठोकर लगाई थी, क्या तुम्हे याद है कि तुमने वास्तव मे अपना आधा राज्य देने की प्रतिज्ञा

की थी ?" द्रोणाचार्य ने उत्तेजित होकर प्रश्न किए। जो कि द्रुपद के दिल में बाणों की भांति चुभते चले गए।

मैं कह जो चुका कि इस समय आप कुछ भी कह सकते है आप चाहे जो याद दिला सकते हैं। फिर भी जब आप बार बार पूछ रहे है तो मैं कहता हू कि मुझे सब कुछ याद है।" द्रुपद शांति से बोला।

"अच्छा तो तुम ने उस समय मुझे मित्र नहीं माना था, पर मैं तुम्हें अपना मित्र स्वीकार करता हूँ और पाँचाल देश का उत्तरी भाग तुम्हे देता हू और दक्षिणी भाग स्वय लेकर तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी करता हूँ। बोलो स्वीकार है ? द्रोणाचार्य ने पूछा।

द्रुपद ने सिर झुकाये हुए कहा—ठीक है, अस्वीकार कैसे किया जा सकता है।'

उसी समय द्रोणाचार्य ने अर्जुन को आज्ञा दी कि द्रुपद को मुक्त कर दो। अर्जुन ने उसे छोड़ दिया। द्रोणाचार्य ने कहा—आओ द्रुपद बीते हुए को भूल जायें और फिर मित्रों के समान रहे। आओ मेरे मित्र मुझ से गले मिलो। द्रुपद आगे बढ़ा। दोनों गले मिले। परन्तु दो गले तो मिले, दो हृदय नहीं। उस समय द्रुपद के हृदय में अपमान की ज्वाला धधक रही थी। वह खून के घूट पी रहा था और उस क्रोध की धधकती हुई ज्वाला को दबाए हुए अपने राज्य को लौट गया।

द्रुपद के चले जाने के पश्चात् धर्मराज (युधिष्ठिर) ने कहा—'गुरु जी ! मुझे लगता है कि यह सब कुछ उचित नहीं हुआ।'

'क्यों ?'

'इस लिए कि आप ने व्यर्थ ही द्रुपद से वैर बढ़ाया।'

'नहीं मैं उसे मित्र बना कर गले मिला। पिछली बातों पर पानी फेर दिया और इस काण्ड का पटाक्षेप कर डाला।' द्रोणाचार्य बोले।

युधिष्ठिर बोले—नहीं गुरुदेव ! द्रुपद आप से गले तो मिला, पर उसका हृदय आप से नहीं मिला। उसके हृदय में तो अपमान की ज्वाला धधक रही थी।

'यदि ऐसा ही है तो भी मुझे अब उस से कोई भय नहीं है क्योंकि मैंने उसके राज्य का श्रेष्ठ भाग स्वय ले लिया है और उसे निकृष्ट भाग दिया है। द्रोणाचार्य ने कहा।

'परन्तु इस के बावजूद। वैर बढ़ने से आप को किसी भी समय इसका दु खद परिणाम भोगना होगा।'

युधिष्ठिर की बात सुन कर द्रोणाचार्य बोले—'तुम्हारे जैसे विचारों के लोगो से राज काज कभी नहीं चल सकता।'

'महाराज ! आप कुछ भी कहे। मैं समझता हूं यह सब ठीक नहीं हुआ। किसी से भी अनावश्यक वैर बांधना बुरा है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण को राज्य के प्रपच मे पड़ने की क्या आवश्यकता है। हम आप के इतने सेवक हैं फिर आप को कमी किस चीज की थी।'

युधिष्ठिर ने कहा। पर द्रोणाचार्य ने उनकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया।



* छब्बीसवा परिच्छेद *

द्रुपद का संकल्प

द्रोणाचार्य को भीष्म जी ने विदाई में अच्छी सम्पत्ति दी थी ऊपर से उन्हें द्रुपद का आधा राज्य मिल गया। वे बड़े प्रसन्न थे। विदा होकर वे द्रुपद से मिले और राज्य मे चले गए। पर शास्त्र कहते हैं कि वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता। द्रोण ने तो अपने अपमान का बदला ले लिया, और उसके बाद वे दोनों गले भी मिल गए, पर अब द्रुपद के हृदय में बैर की अग्नि प्रज्वलित हो गई। वह बोला—द्रोण! तुम ने क्रोध के मारे मुझे अपने शिष्यों से बंधवा मगाया। क्या यह तुम्हारी विद्या कुविद्या नहीं है? मैं पागल हो गया था पर तुम तो ब्राह्मण थे तुम्हें तो शान्ति रखनी चाहिये थी। इस प्रकार बाध कर मँगाने में चाहे तुम्हारे मन को शान्ति मिली हो, पर विजय का श्रेय तुम्हें तो नहीं, हां, बाधने वाला अवश्य वीर है। और उसकी वीरता को मै स्वीकार करता हू। परन्तु ब्राह्मण होकर क्रोध करते हो। तुमने मुझे पकड़ कर मगाया और ऊपर से वाग्बाण मारे। इस अपमान का बदला लेने को मैं भी व्याकुल हू। मैं भी यदि द्रोण रहित भूमि न कर दू तो मेरा नाम द्रुपद नहीं।"

इस प्रकार द्रुपद के हृदय में द्रोण द्वारा किया अपमान शूल की भांति हृदय मे चुभता रहा। उसके हृदय में बदले की आग भड़क उठी। वह खाते पीते, सोते उठते, बैठते, हर समय इसी चिन्ता में रहता कि द्रोण से बदला कैसे लू।

अन्त में उसने सोचा कि द्रोण के शिष्य पाण्डव कौरव बड़े बलशाली हैं और अब द्रोण को आधा राज्य भी मिल गया अतएव शक्ति से द्रोण से बदला लेना असम्भव नहीं तो कठिन तो अवश्य ही है।

न जाने क्या परिणाम हो। अत एक ही उपाय हो सकता है कि मै तप करू और तप केवल द्रोण से बदला लेने के लिए। तप की शक्ति के सामने उसकी क्या शक्ति है। मै तप की शक्ति से उसे नष्ट कर दू गा। तप किए बिना उसके विनाश का और कोई उपाय नहीं है।१ शास्त्रानुसार बडे बड़े तापस्वियों ने तप के फल की कामना (निदान) की है। तप के प्रभाव से उनका मनोरथ तो पूरा हुआ पर मोक्ष के लिए इस प्रकार का किया तप व्यर्थ सिद्ध हुआ।

निदान युक्त तप के प्रभाव से द्रुपद को आश्वासन मिला कि उसे तीन सन्तानों की प्राप्ति होगी, जिनमें एक भीष्म को, एक द्रोण और एक कौरव कुल को नष्ट करेगी।

शास्त्र में कहे हुए "वैराणुबधिणि महब्भयाणि" की सत्यता का यह प्रमाण है। एक बैर को वैर से मिटाने का प्रयत्न किया कि दूसरा बैर बढ़ा। द्रुपद एक वैर को मिटाने गया तो दूसरा वैर बढ़ा। इसी लिए यह कहना सत्य ही है कि केवल कौरव-पाण्डव विरोध के कारण ही महाभारत नहीं हुआ बल्कि पांचालों कौरवो का तथा गॉधारों और यादवों का वैर भी महाभारत का कारण था।

घोर तप से प्राप्त आश्वासन को पाकर द्रुपद घर आ गया। कुछ समय पश्चात् रानी ने शुभ स्वप्न देखकर धृष्टद्युम्न नामक पुत्र को जन्म दिया। जब धृष्टद्युम्न उत्पन्न हुआ तो आकाश वाणी हुई कि हे राजन्! इस पुत्र द्वारा तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी अर्थात यह पुत्र द्रोण का नाश करेगा।

उसके पश्चात् शिखण्ड़ी का जन्म हुआ। उस समय भी एक आकाश वाणी हुई वह यह थी कि हे राजा इस पुत्र द्वारा भीष्म का विनाश होगा।

शिखण्डी के पश्चात् द्रुपद की रानी से एक कन्या उत्पन्न हुई। उसका नाम द्रौपदी रखा गया, वह बड़ी ही सुन्दर थी। उसके जन्म के समय भविष्य वाणी हुई कि इसकी शक्ति से कुरुवश का नाश होगा।

---

१ प्रचलित का महाभारत कहता है कि द्रोण के नाश के लिए द्रुपद ने यज्ञ किया दो ब्राह्मणो ने उसमे यज्ञ कराया। यज्ञ की ज्वाला की लपटो से एक पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ। परन्तु यह विचार असम्भव है। क्योंकि अग्नि की लपटे निकालना ही यज्ञ नही, तप भी एक प्रकार का यज्ञ है।

यह तीनों सन्तानें द्रुपद को तप के कारण मिली, इन्हें पाकर द्रुपद बहुत ही प्रसन्न हुआ। वह सोचता—धृष्टद्युम्न वीर वीर है। द्रौपदी कन्या है और शिखण्डी दीखता तो पुत्र है परन्तु है नपुंसक। ससार में स्त्री, पुरुष, नपुंस्क तीन ही प्रकार के मनुष्य होते हैं, मेरे यहाँ तीनों प्रकार के मनुष्यों ने जन्म लिया। शिखण्डी नपुंसक है, पर उसके सम्बन्ध में आकाश वाणी हुई है कि भीष्म का नाश करेगा, अत नपुंसक है तो क्या है, होगा तो मेरे शत्रुओं का नाशक ही। अतएव मुझे अब चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं।

शिक्षा योग्य होने पर द्रुपद ने धृष्टद्युम्न और शिखण्डी को शास्त्र विद्या में पारगत किया। और धृष्टद्युमम्न भी कर्ण तथा अर्जुन के समान महारथी माना जाने लगा। उसे देख देख कर द्रुपद सोचता—"मेरा यह कुंवर कब बड़ा होगा और कब मेरी आशा पूर्ण होगी?"

द्रौपदी को चार प्रकार की शिक्षाए दिलाई गई। कन्या को दी भी चार प्रकार की शिक्षाए जाती हैं। पहली कुमारी अवस्था की शिक्षा दी जाती हैं, जिसमें अक्षर ज्ञान का, भोजन विज्ञान तथा सदाचार के सस्कार आदि का समावेश होता है। दूसरी शिक्षा वधू धर्म की दी दी जाती है कि सुसराल में जाकर सास, श्वसुर और पति आदि के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये। और उनके प्रति उसके कर्तव्य क्या हैं, उसका क्या अधिकार है। तीसरी शिक्षा मातृ धर्म की दी जाती है। जिसमें सिखाया जाता है कि माँ बनने पर बालक का पालन पोषण कैसे करना चाहिए चौथी शिक्षा में उसके जीवन के अन्तिम भाग का कर्तव्य सिखलाया जाता है। विधवा धर्म का भी इसी में समावेश होता है।

इस प्रकार द्रुपद की तीनो सन्ताने शिक्षा ग्रहण करके विद्यावान हो गई। द्रुपद को अपार हर्ष हुआ।

---

१ पूर्वोक्त तथा उपरोक्त सारा प्रकरण ही अर्थात् द्रोण का वदला, द्रुपद का सकल्प आदि प्रचलित महाभारत के आधार पर अपनी मान्यतानुसार ही दे रहे हैं। जैन ग्रन्थो में इनका उल्लेख नही मिलता।

२ जैनागम में पाचाल अधिपति महाराज द्रुपद की धृष्टार्जुन तथा द्रोपदी इन दो सतानो का ही उल्लेख प्राप्त होता है।

✿ सताईसवां परिच्छेद ✿

द्रोपदी स्वयंवर

पाँचाल देश अन्य प्रदेशों मे नगीने की भाँति सुशोभित हो रहा था। यह देश जलवायु, खाद्यान्न उत्पादन तथा विद्या आदि समस्त साधनों से परिपूर्ण था। इसकी शस्य श्यामला भूमि अपनी मोहकता से परदेशी के मन को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेती। अधिक तो क्या इस सर्वाङ्गीण सुन्दर देश की उपमा से शास्त्रकारों ने आत्मसाधना मे लीन रहने वाले, शास्त्रज्ञ बहुश्रुति को उपमित किया है। पाठक इससे अनुमान लगालें कि वह कितना सुन्दर एव शोभाशाली देश था।

यहाँ महाराज द्रुपद अपनी तीनो सतति के मुख कमल देख देख सदा आनन्द पूर्वक रह रहे थे।

राजधानी काम्पिल्यपुर मे महाराज द्रुपद एक बार अपने राज्य-सिंहासन पर बैठे थे कि उनकी पुत्री द्रोपदी उन्हें प्रणाम करने के लिये वहाँ आई। उस समय उसके तन पर बहुमूल्य वस्त्र तथा मणि रत्नों के आभूषण पड़े हुये थे। एक तो वह पहले ही स्वरूपा थी दूसरे इन आभरणों से उसका सौन्दर्य सूर्य रश्मियों की भाँति प्रतिभाषित होने लगा जिससे वह साक्षात् देवांगना स्वरूप जान पड़ती थी।

परम सुन्दरी राजकुमारी द्रोपदी के रूप लावण्य तथा शालीनता आदि गुणों पर प्रसन्न हो द्रुपद ने उसे अपनी गोद मे बैठाया और क्षण भर निर्निमेष दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा मानो कुशल कलाकार अपने हाथों निर्मित की हुई कला को देख रहा हो। अनायास ही द्रुपद का मौन भंग हुवा, वह बोल उठा "पुत्री! मैंने तुझे दरिद्र के रत्न की भाँति पालित पोषित किया है। मै तुझे अपने प्राणों से भी प्रिय समझता हूँ। इतना होते हुये भी यदि मैं तुम्हे किसी राजा अथवा

युवराज को दे दूँ और तुम्हारे जीवन की विशालता में कमी रहे तो मुझे जीवन भर दुःख के अगारों में जलते रहना पडेगा। इससे तो अच्छा है कि तुम स्वय ही अपना वर चुन लो। अतः शीघ्र ही मैं तुम्हारे लिये स्वयवर का प्रबन्ध किये देता हूँ।" द्रुपद की इन बातों को सुनकर गोद में बैठी हुई राजकुमारी ने लज्जा का अनुभव किया और वह उसी समय पिता को वन्दन कर अन्तःपुर में चली आई।

इधर महाराज द्रुपद अपने मन्त्रियों को बुलाकर कहने लगे मन्त्रीवर! आज राजकुमारी द्रौपदी सदा के भांति पद वन्दन के लिये मेरे पास आई अनायास ही मेरी दृष्टि उसके शरीर पर पडी और वह कुछ ढू ढ़ने लगी। मैंने देखा कि उसके अगों से यौवन प्रस्फुटित होने लगा है और वह वयस्क भी हो चुकी है। उसमें स्वय सोचने समझने और निर्णय करने की क्षमता भी आ चुकी है। इसलिए यही उपयुक्त है कि उसका विवाह कर देना चाहिये क्योंकि "अधिक मात्रा में बढ़ा हुआ धन वयस्क एव यौवनपूर्ण कन्या और कला निपुण तथा बलिष्ठ पुत्र का माता पिता के लिये सम्भाल कर रखना दुष्कर हो जाता है।"

"महाराज! आप इतने चिन्तित क्यों हो रहे हैं, द्रौपदी एक कुलीन राजकन्या है, शिक्षा दीक्षा से युक्त है और उसे तो अपने कुल के गौरव का स्वय ही ध्यान है, अत चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं।" मन्त्री ने उत्तर दिया।

मन्त्री जी! जो आप कह रहे है वह उचित ही है, फिर भी यौवन अवस्था एक ऐसी अवस्था है जिसमें मनोवेगों की प्रबलता रहती है, हृदय में नाना प्रकार के सकल्प विकल्पों का उद्भव होता रहता है। जब वे पूर्ण नहीं होते तो मनुष्य चिन्तित बना रहता है और उसकी भावनाएँ किसी भी समय सीमा को तोड़ने के लिये उतारु हो सकती है, अत उन मनोवेगों को रोकना उचित नहीं।" राजा ने कहा।

"ठीक है मैं मानता हूँ यह अवस्था ऐसी ही होती है; किन्तु ज्ञान और चिन्तन एक ऐसा साधन है जिससे मनुष्य अपने आपको सीमित रख सकता है और वह योग्यता राजकुमारी में है। पुत्र पुत्रियों को माता पिता इसीलिये शिक्षित करते हैं कि वे अपने आपका मार्ग दर्शन कर सकें।" मन्त्री ने वास्तविकता दर्शाते हुये कहा।

"मन्त्री जी ! मनोवेगों के प्रबल प्रवाह में मानव भटक जाता है। उस समय उससे ज्ञान चिन्तन आदि कोसो दूर चला जाता है। मात्र उसको उस पूर्ति की ही धुन रहती है, राजा ने मन्त्री की बात को काटते हुये कहा—और चिन्ता मे मन तो अशान्त रहता ही है किन्तु वह शारीरिक शक्ति का भी ह्रास करती है।"

"तो आपका क्या विचार है ?"

"विचार तो मै पहले ही प्रगट कर चुका हू कि द्रोपदी विवाह योग्य हो चुकी है और उसका उपाय सोचना चाहिये।" राजा ने कहा।

"महाराज ! द्रोपदी का विवाह किस पद्धति से करने का आपने निश्चय किया है ?"

"स्वयवर पद्धति मे, क्योंकि इसमे कन्या को आत्म निर्णय का अवसर मिलता है।"

जो आज्ञा, हम स्वयवर की सफलता के लिये पूर्ण प्रयत्न करेंगे।"

इस प्रकार महाराज द्रुपद ने मन्त्रियो के साथ स्वयवर का निश्चय कर अन्तःपुर को प्रस्थान किया। वहाँ जाकर उन्होने महारानी चूलनी के साथ द्रोपदी के पाणिग्रहण की चर्चा की। रानी स्वय बड़ी बुद्धिमती थी और वह पहले से ही चाहती थी कि द्रोपदी के विवाह की बात चले। अतः उसे राजा निश्चय पसन्द आया और उसके लिये सम्मति दे दी।

इस प्रकार महाराज द्रुपद ने अपनी रानी तथा मन्त्रियो के साथ परामर्श कर द्रोपदी के स्वयवर की तैयारी आरम्भ करदी। सर्व प्रथम राजा महाराजाओं के निमन्त्रण के लिये दूतो को भेजा गया जो देश के प्रत्येक भाग मे जाकर स्वयवर की निश्चित तिथि की सूचना दे सके। उनमे से पहला दूत सौराष्ट्र देश मे अवस्थित द्वारका नगरी पहुंचा। श्रीकृष्ण का राज्य दरबार लगा हुवा था। महाराज समुद्र विजय, वसुदेव आदि दशो दशार्ह तथा बलराम प्रद्युम्न, शाम्ब आदि बैठे हुए सभी अपने अपने स्थानों को अलंकृत कर रहे थे। द्वारपाल ने आकर निवेदन किया महाराज ! पांचाल देशाधिपति राजा द्रुपद का दूत आया है, क्या आज्ञा है। श्रीकृष्ण ने उसे अन्दर आने

की आज्ञा दी। पश्चात् अनेकों राजकर्मचारियो के साथ दूत ने प्रवेश किया। श्रीकृष्ण दूत को सम्मान देकर बोले "कहो कैसे आगमन हुआ, राजा द्रुपद तो कुशल हैं ?"

दूत ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—महाराज ! पांचाल देश के अधिपति द्रुपद सकुशल हैं। उनका आग्रह भरा सन्देश है कि आप राजकुमारों सहित राजकुमारी द्रौपदी के स्वयवर महोत्सव में अवश्य भाग लें। दूत द्वारा इस मगल सूचना को सुनकर श्रीकृष्ण ने उचित समय पर उत्सव में सम्मिलित होने की स्वीकृति प्रदान की और दूत को सम्मान पूर्वक विदा दी। दूत के जाने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने समुद्रविजय प्रमुख गुरुजनों तथा बलदेव, अक्रूर, अनाधृष्टि आदि भाइयों, प्रद्युम्न, शाम्ब आदि राजकुमारों को साथ लेकर प्रस्थानोद्यत हुए।

उधर रथ पर सवार हुवा दूसरा दूत चेदी राष्ट्र की राजधानी शुक्तिमति को जा पहुँचा। जहाँ कि उस समय दमघोष पुत्र शिशुपाल न्यायपूर्वक राज्य कर रहा था। दूत ने राज्य सभा में प्रवेश कर और करबद्ध प्रार्थना की कि हे राजन् ! महाराज द्रुपद ने अपनी पुत्री द्रौपदी के स्वयवर का आयोजन किया है, अत महाराज ने आपको अपने पाँचों भाइयों सहित सम्मिलित होने की प्रार्थना की है। वहाँ देश के कौने कौने से राजा महाराजा भाग ले रहे हैं, अतः आपकी उपस्थिति भी आवश्यक है।"

दूत की बात को सुनकर शिशुपाल का मन मयूर नृत्य कर उठा। उसे अपार हर्ष हुआ अपनी वीरता के प्रदर्शन का अवसर पाकर। क्योंकि उन्हें रुक्मणि स्वयवर पर तो उन्हें हताश होना पड़ा था। अत इस स्वर्णिम अवसर को खाली नहीं जाने देना चाहिये। यही सोचकर तत्काल उन्होंने आने की स्वीकृति दे दी। स्वीकृति पाकर दूत उसी समय काम्पील्यपुर को लौट आया।

[1]इधर महाराज द्रुपद ने एक अन्य दूत को बुलाकर मगध देश के अधिपति महाराज जरासंध के यहाँ आमन्त्रण के लिये भेजा क्योंकि वे उस समय के मुख्य राजा थे। तीन खण्ड में अर्थात् सोलह हजार राजाओं पर उनका प्रभुत्व छाया हुआ था।

इसी प्रकार महाराज द्रुपद ने अंगदेश के राजा कर्ण तथा शलानन्दी, हस्ति शीर्ष के राजा दमदन्त, मथुरा नगरी के राजा धर, भोज-

---

१ आगम मे जरासन्ध कुमार सहदेव के आगमन तथा निमन्त्रण की बात पाई जाती है, और इसी के समर्थक त्रिशष्ठिशलाका चरित एव पाण्डव चरित्र हैं किन्तु अन्य ग्रन्थो मे जरासध के आगमन का भी उल्लेख पाया जाता है।

यहा एक शका उपस्थित होती है कि राजा के विद्यमान होते हुए राजकुमार को निमत्रण क्यो ? और जब सहदेव अथवा जरासंध स्वयवर में उपस्थित थे तो क्या उन्हे श्रीकृष्ण का पता न लगा यदि लग गया था तो वही युद्ध होना सभव था, किन्तु ऐसा नही है, श्रीकृष्ण अब तक जीवित हैं इसका पता एक रत्न कबल व्यापारी द्वारा जीवयशा के सामने किये गये रहस्योद्घाटन द्वारा हुआ है। और फिर जरासन्ध ने युद्ध किया है।

जरासन्ध के विषय में परम्परानुगत एक मान्यता चली आ रही है कि वह जीवित नही था यदि होता तो वह अवश्य आता। क्योकि अपने समय का बलिष्ठ राजा था। दूसरी मान्यता है कि द्रोपदी स्वयंवर बाद में था। आदि।

इसी प्रकार कीचक तथा उसके सौ भाइयो के सम्बन्ध मे भी निमत्रण व आगमन का उल्लेख है किन्तु विराट जीवित था, उसका वर्णन पाण्डव बनोवास के समय वहां छिपकर रहे थे आदि मिलता है। इसी प्रकार रुक्म का। इससे यही प्रतीत होता है कि द्रुपद ने द्रोपदी के समान वयवान् राजा और राजकुमारो को तथा कुछ प्रसिद्ध महाराजाओ को ही बुलाया है। अन्यथा कीचक और रुक्म के निमन्त्रण का प्रश्न ही नही उठता था जब कि विराट और भीष्मक जीवित थे।

मथुरा के राजा धर का उल्लेख उपरोक्त आगम तथा दोनो ग्रन्थो मे पाया जाता है, किन्तु ग्रन्थ ही स्वीकार करते हैं कि कस के मरने के पश्चात् वहा का राज्य महाराज उग्रसेन को मिला, कालीकुमार के आक्रमण से पूर्व यादव शोर्यपुर और उग्रसेन मथुरा छोड़कर चले आये थे, हो सकता है पीछे मे किसी अन्य राजा ने अपना अधिकार जमा लिया हो। किन्तु राजा उग्रसेन के पुत्र का नाम भी धर था। अतः यह विचारणीय है।

कटपुर के राजा भीष्मक पुत्र रुक्म। विराट नगर के महाराज विराट के कीचक प्रमुख सौ भाइयों आदि सुप्रसिद्ध राजाओं की भिन्न भिन्न दूत भेजकर निमन्त्रित किया। तथा अन्य शेष राजाओं के पास एक और विशेष दूत भेजा जिसने ग्राम और नगरों में जाकर सभी राजाओं को निमन्त्रित किया। राजाओं ने भी प्रसन्न मन से निमन्त्रण पत्र स्वीकार करते हुए दूत को उसी समय ससम्मान विदा कर दिया।

उधर हस्तिनापुर नगर में महाराज पाण्डु अपने भाइयों तथा पुत्रों के साथ आनन्द पूर्वक राज्य कर रहे थे। एक बार महाराज पांडू अपनी राज्य सभा में स्वर्ण निर्मित मणि रत्नमय एक उच्च सिंहासन पर विराजमान थे। उनका शरीर दिव्याम्बर तथा बहु मूल्य आभरणों से सुसज्जित था। उनके पार्श्व भागों में पितामहभीष्म, धृतराष्ट्र, विदुर, द्रोण आदि गुरुजन स्थित थे। उस समय महाराज पाण्डू की रूप छटा मन्द्राचल पर उदित सूर्य की भाँति प्रतिभाषित हो रही थी। सभाजनो से परिवृत्त हुये वे साक्षात् देव सभा में स्थित देवराज इन्द्र की भांति देदिप्यमान हो रहे थे। सिंहासन के दोनों ओर बन्दीजन चँवर ढोल रहे थे। एक ओर कवियो की स्तुति गान का माधुर्य सभा में अनुपम मोहकता ला रहा था। तो दूसरी ओर गान्धर्वों का तु बरू नाद सभा जनों को प्रति मोहित कर रहा था। साथ ही महाराज के मन को रंजित करने के लिये वारांगनाएँ अपनी अनुपम शास्त्रीय नृत्य कला का प्रदर्शन कर रही थीं। इतने में ही द्वारपाल ने प्रवेश किया और नमस्कार करके निवेदन करने लगा हे राजन्! द्वार पर काम्पिल्यपुर के महाराज द्रुपद का दूत कोई सदेश लेकर आया है, क्या आज्ञा है?

दूत की सूचना पाकर महाराज ने तत्काल उसे उपस्थित होने की आज्ञा दे दी। दूत ने अन्दर प्रवेश किया और महाराज पाण्डु तथा पितामह आदि को प्रणाम करके इस प्रकार कहना आरम्भ किया—हे कुरुकुल मार्तण्ड! महाराज द्रुपद ने अपनी द्रोपदी नामक राजकुमारी के लिये स्वयवर का आयोजन किया है जिसमें देश देशांतरों के सभी राजाओं को आमन्त्रित किया है। अतः हे राजन् उन्होंने आपको सविनय कहलाया है कि आप अपने कामदेव स्वरूप पांचों पुत्रों तथा दुर्योधनादि पराक्रमी सौ भाइयों को साथ लेकर महोत्सव में अवश्य भाग लें।

दूत के मुख से इन मंगलमय वचनों तथा राजा द्रुपद की विनति को सुन कर कुरु वंश के सभी राज पुरुषो का मन देखने को लालायित हो उठा अतः महाराज पाण्डु ने आगमन की हर्ष सूचक स्वीकृति प्रदान करते हुये दूत को सम्मान पूर्वक विदा दी।

दूत के प्रस्थान करने के पश्चात् भीष्मादि वृद्ध पुरुष तथा कौरव-पाण्डव आदि तरुण राजकुमारों व अन्य स्वजन परिजन और मन्त्रियों सहित महाराज पाण्डू ने कांपिल्यपुर के लिये प्रस्थान किया। उस समय महाराज पाण्डू की सवारी सचमुच ही वर्णनातीत थी। सर्व प्रथम वादकों का मण्डल आगे २ अपने वाद्य यन्त्रो से मगल सूचक ध्वनि का प्रसार करता हुवा चल रहा था जो भविष्य के मंगल कार्य का प्रतीक स्वरूप था। इनके पीछे शास्त्रास्त्रों से सुसज्जित साक्षात आतक स्वरूप दुर्दान्त वीरोंके वाहन चल रहे थे। इसी प्रकार ठीक मध्यमें कला कोविदों की नाना कलाओं का आगार हिरण्यमय एक रथ था जिस मे महाराज पाण्डू अपनी दोनो रानियां कुन्ती और माद्रीके साथ विराजमान इन्द्र तथा इन्द्राणी के समान शोभित हो रहे थे। इनके पीछे पीछे महाराज धृतराष्ट्र भी अपनी रानियों सहित अत्यन्त रमणीय रथ पर सवार थे। इसी प्रकार विदुर आदि सभी बन्धु तथा द्रोण आदि सम्मानित सभ्य जन अपनी अपनी सवारी पर अवस्थित थे। दुर्योधन आदि सौ भ्राता तथा युधिष्ठिर आदि पॉच पाण्डव राजकुमार भी अपने अपने विशिष्ट वाहनों पर सवार थे। जिनके शरीर बहुमूल्य परिधानों एवं रत्नाभरणों से सुसज्जित थे। उन पर पड़े हुये ढाल, खड्ग, धनुष, तुणीर, भाला आदि शस्त्र उनके शारीरिक शक्ति अथवा सुकोमार्य, तथा सौंदर्य गुणों के सिवा वीरत्व गुण के परिचायक थे।

इस प्रकार सर्वांग सुन्दर यह एक सौ पॉच राजकुमार कुल की शोभा बढ़ा रहे थे। एक एक रथ पर राज्य चिन्हांकित एक एक पताका थी जो अत्यन्त दूरी से ही आगमन की सूचना दे रही थी। इन सब वाहनों के पश्चात शास्त्रास्त्रों सहित हाथी, घोड़े, पदाति आदि की सेना चली आ रही थी। जिनकी पदचाप तथा चिंघाड़ों और हिनहिनाहट से पृथ्वी कांप रही थी। बीच बीच में वीर योद्धाओं द्वारा बल प्रदर्शन निमित्त किये गये धनुष के टंकार आदि शब्दों को सुनकर कायरों के

हृदय दहल उठते थे । इस प्रकार सचमुच महाराज पाण्डव की सवारी दर्शनीय थी।

मार्ग में कुरु प्रदेश के अनेकों छोटे-बड़े राजाओं तथा प्रजाजनों द्वारा सन्मानित होते हुये महाराज पाण्डु ने पाचाल प्रदेश में प्रवेश किया ।

महाराज पाण्डु के पाचाल प्रदेश में आने की सूचना दूत ने महाराज द्रुपद को जाकर दी। सूचना पाते ही राजा द्रुपद हाथी पर सवार हुवा महाराज पाण्डु के स्वगतार्थ जा पहुंचा। द्रुपद को अपने निकट आते देख महाराज पाण्डु अपने रथ से नीचे उतर पड़े और सप्रेम भुजाएँ फैला कर उनसे मिले। दर्शकों को इन दोनों राजाओं का सम्मिलन दूध पानी की भांति प्रतीत हुवा। दोनों ने एक दूसरे से कुशल क्षेम पूछी। पश्चात् दोनों राजा फिर अपने अपने रथ में सवार हो गये और शनैः शनै काम्पिल्यपुर के निकट एक सुन्दर उद्यान में आ पहुँचे और द्रुपद की आज्ञानुसार उस दिन महाराज पाण्डु ने उसी उद्यान में निवास किया।

उधर स्वयवर की तैयारियाँ हो रही थीं। उसके लिए एक विशाल एव सुन्दर मंडप का निर्माण हुवा। जिसकी भूमि नीलमणि की भांति चमक रही थी। इसमें सहस्त्रों स्वर्णमय स्तम्भ जिन पर नाना वर्णों वाले रत्नमय लगे हुए हार जो दूर से वृक्ष शिखर पर चढ़ी हुई लताओं की भाति दिखाई दे रहे थे। बीच बीच २ में छोटे २ कितनेक नील मणियों से निर्मित स्तम्भ थे जिन पर शिल्प शास्त्रियों द्वारा देवागनाओं के उत्तम चित्र अंकित थे जिनको देख देख कर सभी चकित हो रहे थे। वस्तुतः ये चित्र पाचाल देश की जीवित चित्रकला के परिचायक थे। मडप के उर्ध्वभाग में लगे चित्र इन्द्र सभाका साक्षात् आवाहन कर रहे थे। उसके प्रमुख द्वारों पर बंधे तोरण मांगलिक स्थान का परिचय दे रहे थे। नाना वर्ण वाली बधी पताकाएँ प्रकोष्ठ स्थानों को सजा रही थीं। मडप के ठीक मध्य में एक उच्च स्वार्णसन अर्थात् वेदी का निर्माण किया गया था जिसे दर्शक गण पृथ्वी के मध्य में अवस्थित नगराज सुमेरु की उपमा से उपमित करते थे। पास ही चारों ओर चार लघु वेदिकाएँ बनी थीं। इनके चारों ओर

गोलाकार स्थान पर स्वर्णमय सिंहासन रक्खे गये थे। जो यथा योग्य बड़े छोटे राजाओं के बैठने के लिये नियुक्त थे तथा उन पर उनका नामादि अंकित था।

इस प्रकार अनेकों अनुपम वस्तुओं से सुसज्जित वह मंडप ऐसा लगता था मानो अमरावती से देव विमान ही पृथ्वी तल पर उतर आया हो।

धीरे धीरे मार्ग तय करते हुये यादवचन्द्र श्री कृष्ण भी अपने स्वजन परिजन सहित कांपिल्यपुर के निकट आ अहुँचे। इनके आने की सूचना पाते ही महाराज द्रुपद अपने मन्त्रियों तथा स्वयर में आये राजाओं सहित पुष्पमालादि आदरोचित्त सामग्री ले स्वागतार्थ जा पहुचे। साथ ही उनके दर्शनोत्सुक प्रजा समूह भी समुद्र की भांति उमड़ पड़ा मानो वह चन्द्र को पाने के लिए जा रहा हो। वहां जाकर उन्होंने यथायोग्य स्वागत सत्कार किया। और बहुमान के साथ नगर में लिवा लाये।

उस समय पाचजन्य हाथ में लिए तथा शारग धनुष को स्कन्ध पर धारण किये हुए श्री कृष्ण की शोभा अत्यन्त रमणीय थी। वे समस्त यादवों मे चन्द्र समान ऐसे देदीप्यमान हो रहे थे। मानो अपने तारक समूहको साथ लिये आरहा हो।उनके नील मणि समान सुन्दर नीलाभ वदन को देखकर स्वागतार्थ पहुंची नारियों के नेत्र चकोर उन्हें देखते अघाते ही न थे। फिर साथ रहे हुए प्रद्युम्न-शाम्ब, आदि की सुन्दरता तो अनुपम थी ही। ललनाओं की दृष्टि उन पर तब तक जमी ही रही जब तक कि वे आवासगृह में न पहुंच गए। उनके तेजो-मण्डित भव्य भाल के आगे सभी आगन्तुक नत मस्तक थे।

श्री कृष्ण का इस प्रकार के स्वागत का अर्थ था अपने मान की रक्षा करना क्योंकि एक तो वे भावी वासुदेव थे दूसरे उन्होंने प्रत्यक्ष मे अपना चमत्कार दिखा दिया था जिससे कि समस्त राजा तथा प्रजा जन आश्चर्य चकित और भयभीत बने हुये थे। वह था चमत्कार नृशसी कस का वध तथा शिशुपाल की पराजय। अतः द्रुपद भी यह नहीं चाहता था कि वह उनकी आखों में आये।

इसी तरह दिनों दिन देश देशान्तरों से राजा महाराजा, युवराज

आदि के आते रहने से नगर में की नित नई चहल पहल दिखाई दे रही थीं।

वह नगर तो पहले ही अत्यन्त रमणीय था। फिर इस आयोजन ने सोने में सुगन्धी का काम कर दिया। इसमें यातायात के लिए बड़े राजमार्ग थे। इन राजमार्गों के दोनों ओर गगन चुम्बी अट्टालिकाएँ अवस्थित थीं जो नग समान प्रतीत हो रही थीं। ये अट्टालिकाओं तथा इन पर हुई सुन्दर चित्रकारी उस युग की कला की प्रतीक थी।

यह नगर सुन्दरता की दृष्टि से ही नहीं किन्तु नागरिकों की सुख सुविधा में भी महान् नगरों का चुनौती दे रहा था। जैसे कि आजीविका के लिए उद्योगशालायें, बौद्धिक विकास के लिए शिक्षा सस्थाएँ व्यवस्था के लिए नगरपालिका तथा आरक्षक विभाग थे। स्वास्थ्य के लिए स्थान स्थान पर चिकित्सालय थें। खान-पान की सुविधा के लिए बडे बड़े आपण थे जो नगर निवासियों तथा समीपस्थ ग्रामीणों के लेन देन के माध्यम बने हुए थे। यथा स्थान उपवन भी थे जिनमें आबाल वृद्ध सभी क्रीड़ा का आनन्द लूटते थे। महाराज द्रुपद के न्याय, कारुण्य और वीरत्व का यशोगान प्रत्येक पुरवासी की जिह्वा पर उच्चारित हो रहा था। सभी ने अपने राजा की राजकुमारी के विवाह महोत्सव में अपनी अपनी कला से स्वागतार्थ उच्चतम वस्तुएँ निर्माण की थी। जिसे देखकर कलाकार के लिए दर्शक के मुंह से वाह! वाह! शब्द निकल पड़ते। कोई किधर ही निकल जात उसे चारों ओर ही खुशी का आयोजन ही दिखाई देता। फिर उन दीर्घ एव विस्तीर्ण राजप्रासादों की तो बात ही क्या थी। विद्युत से सजे हुए प्रासादों का जब अलौकिक प्रतिबिंब पीछे की ओर रही गगा नदी के निर्मल जल में पड़ता था तो वे साक्षात् स्वर्णमय जलगृह ही प्रतीत होने लगते थे। इस प्रकार वधू की भाँति सजी राजधानी सचमुच ही दर्शनीय थी।

धीरे धीरे जरासध कुमार सहदेव, चन्देरी पति शिशुपाल महाराज विराट पुत्र, अगराज कर्ण, शलान्दी आदि मुख्य राजा गण तथा अन्य छोटे छोटे राजा जन भी यथा समय काम्पिल्यपुर पहुंच गये। उनके निवासार्थ महाराज द्रुपद ने पहले ही भव्य आवास गृहों का प्रबन्ध कर रक्खा था। जिसमें सब प्रकार की सुख सुविधा की सामग्री उपस्थित

थी। उन्हें वहां ठहरा दिया गया।

सभी नृपों के पहुँच जाने पर उनके समय यापन अथवा मनोरंजन के लिये मडप में कला प्रदर्शन का आयोजन चलता रहा जिसमें नृत्य, गान, तथा मल्ल युद्ध आदि अनेक प्रदर्शन हुए। कहते हैं कि यह आयोजन दो सप्ताह तक रहा।

इसी बीच महाराज द्रुपद के हृदय में एक परिवर्तन आया। उस परिवर्तन का मूल कारण था पूर्व प्रतिशोध भावना का उदित होना। क्योंकि द्रोणाचार्य द्वारा किया गया अपमान उनके हृदय में कॉटे की भाँति चुभ रहा था। अत इस उचित अवसर को पाकर उन्होने उनसे बदला लेने का निश्चय कर लिया। इसलिए उन्होने एक वज्रमय धनुष की शर्त रखी. उसका यही रहस्य था कि जो इस धनुष से चक्रों पर पर स्थित राधा को वेध देगा वही अत्यन्त पराक्रमी पुरुष है जो मेरे शत्रु को दमन करने मे सफल हो सकेगा।

तदनुसार मडप के मध्य स्थित वेदिका पर एक वृहदाकार धनुष रखा गया तथा ऊपर की ओर एक राधा लटकाई गई जिसके नीचे एक बड़ा चक्र तथा अन्य छोटे चार चक्र जो विपरीत दिशा में घूमते थे लगाये गये। नीचे एक तैल से भरा हुआ कड़ाह रखा गया जिस में चक्रो का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। उसी में देख कर ही राधा को वेधना था।×

यथा समय महाराज द्रुपद ने दूत द्वारा कृष्ण, पाण्डु, सहदेव आदि समस्त नृपों को मंडप में एकत्रित होने की सूचना भेज दी। तदनुसार अपने अपने सिंहासनों को सभी राजाओं ने ग्रहण किया। उन बैठे हुए मतिमान् तेजस्वी, कामदेव स्वरूप, दुर्पेदय आदि गुण सम्पन्न राजा-राजकुमारों की शोभा देखते ही बनती थी। फिर उन में स्कन्ध भाग पर धनुष-वाण धारण किये हुए उस धनुर्धारी अर्जुन की शोभा तो निराली ही थी, मानो वह साक्षात वीररस की प्रतिमूर्ति ही है, अथवा यों कहें कि धनुर्धारियों के मद के हरने को स्वय धनुर्वेद ही आ उपस्थित हुये है जिसे देखते हुए आँखे अघाती न थीं।

×धनुष तथा राधावेध आदि की शर्त का उल्लेख आगम मे, त्रिषष्ठिचरित्र एव नेमनाथ चरित्र में नही पाया जाता फिर भी पाडव चरित्र में आये वर्णन के आधार पर तथा प्रचलित द्रुपद प्रतिज्ञा पूर्ति के प्रसग से दिया गया है।

उधर राजकुमारी द्रौपदी को स्नानादि कराकर परिचारिकाओं ने सुन्दर एव बहुमूल्य वस्त्रालकारों से अलंकृत किया। सर्वप्रकार के शृ गारों से मंडित हुई वह साक्षात रति प्रतीत होने लगी। उसका शरीर एक तो पहले ही गौर वर्ण वाला था ही फिर गन्धानुलेपन द्वारा वह और भी सुरभित होकर मलयाचल पर स्थित चन्दन की भांति दिखाई देने लगा।

उसके पद्म कमल सदृश पद युगल में नूपुर तथा कटि भाग में कटि भूषण मधुर ध्वनि कर रहे थे। गले में मनोहर मोतियों की माला पड़ी थी। कानों मे स्वर्ण रत्न जड़ित कुण्डल थे। आखों मे अंजन भाल पर सुहाग बिन्दी उसके मंगल जीवन की कामना कर रहे थे। शिर पर रत्न मणियों से गुंथित शिरोभूषण साक्षात सूर्य समान देदीप्यमान हो रहा था। उसके काले कजराले बालों की वेणी पृष्ठ भाग पर चन्दन वृक्ष पर लिपटे व्यालों की भांति लोट रही थी। कमल समान सुकोमल करों में स्वर्ण कगन तथा अगुलियों में हीर मुद्राये थीं। मुख में पड़े हुए ताम्बूल द्वारा ओष्ठ लाल मणि की तरह दमक रहे थे। अथवा यों कहें कि वे कामदेव के रागस्थान ही बने हुए थे।

इस प्रकार सर्वाभूषणों से सुसज्जित अपनी धाय माता व सहेलियों तथा परिचारिकाओं से परिवृत एक अनुपम रथ पर सवार हो राजकुमारी द्रौपदी स्वयवर मंडप में आई। उसका आगमन ऐसा प्रतीत हुआ मानो इन्द्रपुरी से विमान में बैठकर कोई देवांगना भूलोक पर आई हो। उसके अन्दर प्रवेश करते ही वादकों ने मंगल सूचक वाद्य बजाये। जिस की ध्वनि से वह विशाल मंडप गूंज उठा। जिस ने राजकुमारी के रूप दर्शन के लिए लालायित बैठे राजागण को उनकी चिर प्रतिक्षा की पूर्ति की सूचना दे दी। उनके चिरपिपासित नेत्र चकोर उसके मुखचन्द्र की ओर टकटकी लगाकर देखने लगे। राजकुमारी के अभूतपूर्व लावण्य को देख कर सभी ने दांतों तले अगुली दबा ली। गज समान गति वाली कन्या द्रौपदी श्रीकृष्ण तथा पिता महाराज द्रुपद को नमस्कार करती तथा सब उपस्थित राजाओं कटाक्षपात करती हुई वेदिका पर जा पहुची। अपने चपल नेत्रों द्वार किए गए कटाक्ष में उसे एक मदन की प्रतिमूर्ति दिखाई दी और उसी क्षण उसको ही उसने अपना हृदय अर्पण कर दिया। तभी से उसक मन उसको पाने के लिए आतुर हो उठा।

उपस्थित राजाओं की दशा बड़ी विचित्र थी । उनके वदन पर पड़े बल उनके मनोभावों को स्पष्ट कर रहे थे । उसकी रूप राशि को देख कोई हस्तकमल की छवि कहने लगा । कोई उसकी दातो की सुन्दर पंक्ति को अनार के दांनों से उपमा देता था तो कोई उसके नेत्र युगल कोमृगीनयनों से घटित करता । कामी पुरुष अंगुष्ठसे लेकर सिर तक सुन्दरता को ही निरखने लगे । धैयवान् निश्चल भावसे चुपचाप दृश्य को देखने में लीन थे । कोई उसकी सुन्दरता को देख कर आश्चर्य कर रहा था, कोई प्रतिज्ञा पूर्ण कर उसे प्राप्त करने की बात सोच रहा था।
फिर राजकुमार तो देखते ही उसे पाने को लालायित हो रहे थे किन्तु उनकी आशाओं पर उस समय तुषारापात हो जाता जब कि उन की दृष्टि उस वज्रमय धनुष पर पड़ती थी । किन्तु अन्य कोई उपाय ही न था उसे प्राप्त करने का, इसलिए फिर उनके हृदय मे उत्साह का संचार होने लगता । इस प्रकार शृङ्गार युक्त वेदी पर बैठी राजकुमारी को दर्शकों ने अपने भावानुसार भिन्न भिन्न दृष्टि से देखा ।

इतने मे ही दर्शको को 'शान्त करने के लिए भेरी द्वारा एक उच्च नाद किया गया जिसे सुन कर सब दर्शक शान्त हो गये । पश्चात् युवराज धृष्टद्युम्न ने इस प्रकार घोषणा की कि "उपस्थित नृपगण एव युवराज ! नेत्राञ्जन स्वरूप मेरी भगिनी द्रोपदी राजकुमारी उसी के गले में वर माल डालेगी अर्थात् उसका वरण करेगी कि जो तेल मे प्रतिबिम्बत होते हुए चक्रो के बीच में से प्रस्तुत धनुष द्वारा ऊपर लटक रही राधा (मछली) को वेधेगा । यह पूर्ण सत्य है । अत आप सब हमारी प्रतिज्ञा की पूर्णता तथा अपने स्त्रीरत्न की प्राप्ति के लिए उद्यत हो जाइये ।"

धृष्टद्युम्न की घोषणा को सुन कर क्रमश नृप अपने बल अज-माने को धनुष के पास आने लगे । उधर हाथ मे विशाल दर्पण लिए वेदिका पर खड़ी धात्री आते हुए राजाओं का राजकुमारी को परिचय देती जाती थी । हे कुमारी ! सर्वप्रथम हस्तिशीर्ष नगर का राजा दमदन्त धनुष चढ़ाने के लिए तत्पर हुवा किन्तु बीच में छींक का अपशकुन होने से पुनः अपने सिंहासन पर जा रहा है । उसके बाद मथुरापुरी का राजा धर धनुष उठाने को उद्यत हुवा ही था कि सभी खिल खिलाकर हस पड़े । उसने इसमें अपना अपमान समझा और वापिस सिंहासन पर जा बैठा । पश्चात् विराट राजकुमार

कीचक धनुष के पास आया। किन्तु वह उसे देखकर ही स्तब्ध हो गया तथा बिना स्पर्श किये ही लौट गया। जरासंध पुत्र सहदेव भी बड़े उत्साह पूर्वक विजय श्री प्राप्त करने के लिये शेर की भाँति दहाड़ता आया, पर धनुष पर दृष्टि पड़ते ही घबरा गया और वापिस जा बैठा। इन आये हुये राजाओं का परिचय कराती हुई धातृ बोली हे कृशांगी! तेरी प्राप्ति का इच्छुक चन्देरी पति शिशुपाल राधा वेधने के लिए दौड़ता दौड़ता आया किन्तु यह भी विफल रहा। हे कमल नयनी, अब दुर्योधन द्वारा प्रेरित हुवा उसका मित्र अंगराज कर्ण आ रहा है। यह वही महान् धनुर्धारी योद्धा है जिसने परीक्षा मंडप में अर्जुन को चुनौती दी थी। अतः अवश्य ही लक्ष्य वेध करेगा।

धातृ के यह शब्द द्रोपदी के हृदय में बाण की तरह चुभ गये। उसका मुख मण्डल मुर्झा गया। दुखित हुई वह विचार करने लगी—"यदि यह राधा वेध करने में समर्थ हो गया तो पिताजी की प्रतिज्ञानुसार अवश्य ही मेरा वरण करेगा। यह उचित नहीं, मेरा मन नहीं मानता कि वह सूत पुत्र के हाथों में जाये।" इस प्रकार मन ही मन इस अनिष्ट को टालने लियो तथा अर्जुन को पाने के लिए अपने इष्ट देव से प्रार्थना करने लगी।

इतने में ही द्रोपदी के मुख पर आये हुये चिन्ता के भावों को जान धातृ बोल उठी "हे सुमध्यमे! इष्टदेव के प्रभाव से कर्णराज लक्ष्य वेध में सफल न हो सका। अत चिन्तातुर होने की आवश्यकता नहीं।"

इधर कर्ण को [1]लक्ष्य वेध में असफल देख दुर्योधन झुंझला कर उठा और अपनी मूँछों पर ताव देता हुवा धनुष के पास आया और नमस्कार कर धनुष को चढाने की चेष्टा की किन्तु सफल न हो सका। हे स्वामिनी! महाबली दुर्योधन के धनुष को नमस्कार करने पर माता गान्धारी अत्यन्त हर्षितहुई किन्तु उसके असफल होने पर चिन्तातुर

---

[1]कर्ण के सम्बन्ध में ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि उसने धनुष चढा दिया और ज्यो ही लक्ष्य वेध करने लगा कि द्रोपदी ने घोषणा कर दी कि सूतपुत्र के साथ वह कदापि विवाह न करेगी। कही ऐसा लिखा है कि धनुष चढाते समय हाथ से केतन छूट गया अत असमर्थ रहा।

दिखाई दे रही है। भला अपार बाहुबली लक्ष्यरक्षक जिस प्रयत्न में विफल रहे फिर भला गदा योद्धी इसमें कैसे सफल हो सकता था।

इस प्रकार क्रमश शल्य, दु शासन, सुयोधन, भगदत्त, भूरिश्रवा, जयद्रथ, महासेन आदि अनेको प्रचण्ड वीरों ने अपना पूरा २ जोर लगाया किन्तु लक्ष्य वेध न हो सका। होता भी कैसे जबकि द्रोपदी का मानस कमल तो अर्जुन रूपी सूर्य के लिये कामना कर रहा था।

बड़े बड़े योद्धाओं के परास्त हो जाने पर चारो ओर निराशा का वातावरण छा गया। लक्ष्य वेध की इस अपार लीला से सभी आश्चर्य चकित तथा स्तब्ध बैठे थे। उनके चेहरों पर घोर उदासीनता तथा असफलता स्पष्ट रूप से लक्षित हो रही थी।

इस वातावरण को देख महाराज द्रुपद मन ही मन अत्यन्त दुखित हुये सोचने लगे कि मैंने व्यर्थ मे ही इतनी बड़ी शर्त रख कर भूल की देखो यह इस मंडप में कर्ण, दुर्योधन जैसे बड़े रूपवान पराक्रमी, कलाविशेषज्ञ उपस्थित हैं। इनमे से किसी को भी द्रोपदी अपनी इच्छा के अनुसार वर माला पहना देती। वह भी उसे पाकर अपने को धन्य समझता। किन्तु अब क्या हो सकता है।" इस प्रकार सोचते हुये भी उन्हे इस समस्या का कोई हल नहीं मिल रहा था।

अन्त मे उन्हो को एक युक्ति याद आई कि वह मंडप मे अवस्थित योद्धाओं को ललकारे जिससे उनके रक्त में उत्साह का संचार हो। वे कहने लगे—"उपस्थित महानुभाव राजा गण! मुझे अत्यन्त दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आज क्षत्रियत्व का अपमान स्पष्ट रूप से लक्षित हो रहा है। क्या राजकुमारी द्रोपदी जन्म भर अविवाहित ही रहेगी? क्योकि अब तक जितने भी योद्धा उठे जिनके नाम शौर्य आदि से चराचर मात्र भयभीत होता था, जिनके वीरत्व की धाक किसी को सामने अड़ने नहीं देती थी। जो अपनी कलाओं से विश्व विजयी बनने के स्वप्न लिये बैठे थे तथा जिसको उन पर पूर्ण अभिमान था आज उसका दिवाला निकल गया है। क्या यह क्षत्रियत्व का अपमान नहीं?"

द्रुपद का इतना कहना ही था कि कामदेव स्वरूप वीर अर्जुन के भुजदण्ड फड़क उठे। आँखों मे रक्त उतर आया। किन्तु गुरुजनो

की बिना आज्ञा उन्होंने अपने आपको प्रगट करना उचित न समझा। अत शान्त ही बैठे रहे।

इतने में धातृ ने पाण्डु की ओर संकेत करते हुए बताया कि हे सुलक्षणे! कुरु वंश के अलंकार रूप महाराज पाण्डु अपने पाँचों पुत्रों सहित बैठे हुए इस प्रकार शोभित हो रहे हैं मानो कामदेव अपने पाँचों बाणों को कर में धारण किये शोभित हो रहा है। इनके ठीक दाहिने पक्ष में अतिशय शूरवीर, सद्गुणी तथा शान्त एव सत्य की प्रतिमूर्ति धर्मराज युधिष्ठिर बैठे है, तथा उनके पार्श्व भाग में महाबली गदाधारी भीम हैं जो इतने साहसी है कि बालकों की गेद की भाँति रणक्षेत्र मे बड़े बडे उन्मत्त हाथियो को क्षण मात्र में पछाड़ देते हैं। ठीक इनके निकट ही इनके लघु भाई धनुषधारी अर्जुन बैठे हैं, जो आज समग्र पृथ्वीतल पर धनुर्विद्या में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। यह इतने तीक्ष्ण लक्ष्यभेदी हैं कि कोई किसी आवरण की ओट में भी इनके बाण मे नहीं बच सकता। रणांगण में इनके सामने आते हुये बड़े बड़े शूरवीर भी कॉपते हैं। असाधारण कौशल तथा अन्य वीरोचित गुणों के साथ यह परम गुरु भक्त भी हैं, और उसी के प्रभाव से इन्हें राधा वेध का विशेष लक्ष्य ज्ञान प्राप्त हुआ है। अत मुझे विश्वास है कि यह वीर अवश्य लक्ष्य वेध करेगा।

धाय के मुख से अर्जुन की प्रशसा सुन द्रौपदी मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुई। और उसका मुरझाया हुआ मुख कमल विकसित हो उठा। चिरकाल की मनोगत प्रतीक्षा अपना साकार रूप ले आई। क्योंकि वह तो अपने आपको अर्जुन के चरणों में पहले ही सर्वात्मना समर्पित कर चुकी थी।

पश्चात् गुरुजनों की आज्ञा पाकर इष्ट मन्त्र का उच्चारण करता हुआ अर्जुन सिंह की भाँति तीव्र गति से वेदी के पास पहुच गया। और तत्काल धनुष को हाथ में उठा प्रत्यचा चढ़ाई और भीषण टकार शब्द किया जिसे सुनकर सारा जन समुदाय काँप उठा। अनायास ही धनुष ध्वनि को सुनकर सभी अर्जुन की ओर देखने लगे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि अर्जुन कब गया कैसे धनुष उठाकर टकारव शब्द किया। कोई उसकी इस क्रिया पर प्रसन्न मुद्रा से देख रहा था तो कोई आश्चर्य चकित होकर। कितने ही असफल राजाजन

आवेश मे आ दाँत पीसने लगे, तो कइयों की लज्जा के मारे गर्दन झुक गई।

इधर भीमसेन अपनी कालस्वरूप गदा को लिये हुये सजग प्रहरी की भाँति चहुं ओर घूम रहा था और राजाओं को सम्बोधित करते हुए कह रहा था 'कि अब वीर अर्जुन राधावेध कार्य को प्रारम्भ कर रहा है। जिसे देख कर यदि किसी के मस्तिष्क में पीड़ा उत्पन्न होगी तो उस रोग का मेरी यह गदा निराकरण करेगी।'

पास ही बैठी द्रौपदी अर्जुन की क्रिया को देखकर हर्षित हो रही थी। युधिष्ठिर आदि चारो भाइयों के नेत्ररूपी मेघ प्रेमवृष्टि कर रहे थे। तो दूसरी ओर दुर्योधन आदि मन ही मन द्वेषाग्नि मे प्रज्वलित हो रहे थे। समस्त कौरव रूप कुमुदनी वन अर्जुन रूप सूर्य के उदित होने पर कुम्हला गया था। उनका मुख निस्तेज प्रतीत होने लगा। लक्ष्यवेध के लिये तत्पर खड़े अर्जुन को देखकर द्रौपदी पुनः मन ही मन प्रार्थना करने लगी—हे उपास्य देव! धनञ्जय के भुजदण्डों मे वह अपूर्व बल तथा मस्तिष्क में वह चातुर्य प्रदान करो जिससे वे इस महान परीक्षा मे उत्तीर्ण होवें।"

इसी बीच द्रोणाचार्य खड़े होकर धृतराष्ट्र, पाण्डु, आदि को सम्बोधित करते हुवे कहने लगे हे कुरु राजन्! अब आप सावधान होकर अपने पुत्र अर्जुन के भुजचातुर्य को भली भांति देखिये।"

इस पर सभी दर्शक गण अपनी निर्निमेष दृष्टि से ऊपर की ओर ऐसे देखने लगे मानो आकाश मे कोई आश्चर्यजनक घटना घट रही हो।

बस फिर क्या था, बात की बात में ही नीचे तेल के कड़ाह में पडे प्रतिबिम्ब को देख कर अर्जुन ने धनुष की प्रत्यचा को पुन खींचा जिससे पहाड़ो के फटने के सदृश भयकर झ ण ण ण ' की ध्वनि निकली जिससे पृथ्वी भी काँपती हुई प्रतीत हुई। दर्शको के कान बहरे हो गए। दिग्गज चिंघाड़ उठे। और सबके समक्ष उन चक्रों के विपरीत भ्रमण के बीच से निशाना मार कर राधा की बायी आँख को वेध डाला। उस समय आकाश में स्थित देवो ने पुष्प वृष्टि की। कुन्ती और पाण्डु को अपार हर्ष हुआ। द्रुपद चेलना व धृष्टार्जुन की प्रसन्नता का तो पारावार ही न था क्योंकि उनकी प्रतिज्ञा की पूर्ति तथा पुत्री को

श्रेष्ठवर की प्राप्ति हुई थी।

अर्जुन पुनः अपने स्थान पर आ बैठा। द्रौपदी ने पिता की आज्ञानुसार अर्जुन के गले में वरमाला डालदी किन्तु वह देवयोग से दर्शकों को पाँचों भाइयों के गले में दिखाई देने लगी। इतने मे "अच्छा हुआ, अच्छा हुआ द्रौपदी की मनोकामना पूर्ण हुई, इसे श्रेष्ठ वरकी प्राप्ति हुई है" इस प्रकार की अतरिक्ष ध्वनि हुई।

पांचों पाण्डवों के गले में माला देख महाराज द्रुपद अत्यन्त चिन्तित हुये। वे सोचने लगे मैं अपनी पुत्री को पाँचों के हाथो कैसे सौंप सकता हू। यदि मैं ऐसा करूगा तो जगत में सभ्य जनों के बीच उपहास का पात्र बन जाऊंगा। और यह बात है भी न्याय और नीति के विरुद्ध कि एक नारी अनेक पुरुषों का वरण करे।

इतने में ही घूमते घामते वहाँ एक चारण श्रमण अवतरित हुए। जिनका सौम्य मुख मण्डल तपश्चरण के प्रभाव से देदिप्यमान हो रहा था, जिनके भाल पर शान्ति की अनन्त रेखायें अकित थी जो शम, दम आदि जीवनोचित्त गुणों को धारण किये हुये थीं, गगन गामिनी लब्धी से युक्त थे। महाराज ने उन्हें उचित आसन दिया। और श्रीकृष्ण आदि राजा लोग नमस्कारकर निवेदन करने लगे हे भगवन्! द्रौपदी ने अर्जुन के गले में वरमाला डाली थी किन्तु वह पांचों भाइयों के गले दिखाई दे रही है। तो क्या यह इन पांचों को स्वीकार करेगी? क्या यह न्याय सगत है।

उनकी जिज्ञासा को शान्त करने के लिये चारण श्रमण कहने लगे राजन् इसके लिये यह न्याय सगत ही है क्योंकि इसके पूर्व कृत कर्म की यही प्रेरणा है। और उसी के प्रभाव से यह सब कुछ हुवा है। सुनो मैं तुम्हें इसके पूर्व जन्म की एक घटना सुनाऊं जिसे सुनकर तुम्हें तथा दर्शकों को आत्म सतोष होगा। इतना कहकर मुनिराज ने पूर्व जन्म का वृतान्त सुनाना आरम्भ किया—

द्रौपदी का पूर्व भव

अग देश मे चम्पापुरी एक अत्यन्त सुन्दर तथा रमणीय नगरी थी। जिसमें अवस्थित गगन चुम्बी अट्टालिकाओं में नाना जातियो के धनाढ्य लोग वसते थे। वहीं एक धनाढ्य ब्राह्मण परिवार था जिसमें

क्रमशः सोमदेव,सोमभूति और सोमदत्त नामक तीन भाई थे। तीनों में परस्पर अगाध प्रेम था। वे एक दूसरे से कभी विलग न होते। तीनों ही विवाहित थे जिनके रति समान रूपसी तीन स्त्रियां थीं जिनके नाम क्रमशः नागश्री, भूतश्री, यक्षश्री थे।

माता-पिता के देहान्त होने के बाद वे अलग हो गये किन्तु भ्रातृत्व सुरक्षित रहा। वे अपने उद्यान की रूपहली रात्री में परस्पर क्रीड़ाएँ करते समय यापन करने लगे। इस प्रकार ऐश्वर्यपूर्ण जीवन बिताते हुये उन्हें प्रात और सायंकाल का ध्यान भी नहीं रहता। वनों उपवनों में जाकर गोष्ठी तथा नृत्य गान का आयोजन करना यही उनकी दिनचर्या बन गई थी।

एक दिन तीनों ने मिलकर विचार किया कि हमारे पास इतनी अमित धन राशि है कि दान देने तथा नित्य प्रति क्रीड़ार्थ व्यय करते हुए भी जो परम्पराओं तक समाप्त नहीं हो सकती। अत हमें पहले की भाँति ही प्रेमपूर्वक एक एक के यहाँ एक स्थान पर परस्पर खान पान आदि तथा मनोरंजक कार्यों का आयोजन करना चाहिये।'

तदनुसार क्रमशः एक दूसरे भाई के यहाँ भोजन का प्रबन्ध होने लगा। सभी एक दूसरे से बढ़ कर उत्तमोत्तम खाद्य पदार्थों का निर्माण करतीं। प्रत्येक के हृदय में अपने अपने स्वाभिमान का भय बना रहता। अत बड़ी निपुणता से कार्य सफल किया करतीं।

क्रमशः एक बार नागश्री के यहा प्रीतिभोज था। उसने बड़ी प्रसन्नता एवं उत्साह पूर्वक नाना प्रकार के मीठे तथा नमकीन खाद्य पदार्थ तैयार किये। पदार्थों को तैयार करके उसने उन सबका आस्वादन लिया ताकि उसे यह मालूम हो सके किसमें क्या कमी रह गई। फिर कहीं उसे उन सबके बीच उपहास का पात्र न बनना पड़े। किन्तु दैवयोग से उन भाजियों में लौकी की भाजी भी थी। उसे चखने पर मालूम हुआ कि वह कड़वी है। इस पर नागश्री को बड़ा क्षोभ हुआ उसके सारे परिश्रम पर पानी फिर गया। खैर उसने उस समय उसे एक ओर छुपा कर रख दिया। फिर वह अपने आप को धिक्कारती हुई उस कड़वी भाजी में व्यय हुये घृत आदि उत्तम पदार्थों के लिये पश्चाताप करने लगी।

यथा समय तीनों भाई तथा दोनों देवरानियाँ आ पहुंचे। नागश्री

ने उनका उचित स्वागत किया। और अपने हाथों से बहुमान के साथ उत्तम पदार्थ परोसे, तथा उसने स्वयं भी उनके साथ बैठकर भोजन किया। प्रेमपूर्वक भोजन करने के पश्चात् अनेकों क्रीडाएं करके सब अपने २ घर को लौट गये।

उसी नगरी के बाहर पूर्वोत्तर दिशा में सुभूमिभाग नामक उद्यान था जो अत्यन्त रमणीय तथा मोहक था। उस उद्यान में सुन्दर आवास गृह भी बने हुये थे, जिनमें आकर ऋषि मुनि भी निवास किया करते थे। उन्हीं दिनों इसी राजोपवन में आचार्य धर्म घोष अपने शिष्य मण्डल सहित ठहरे हुये थे। उनमे धर्म रुचि नामक प्रधान शिष्य थे जो मासोपवासी मुनि थे। वे भी पहले राजकुमार थे किन्तु विलासिता की सम्पूर्ण सुख सुविधाओं को छोडकर उन्होंने इस तपश्चरण का आचरण किया, जिसके द्वारा उनका आत्मा तो बलवान् किन्तु शरीर कृश हो गया था। फिर भी आठों याम कायोत्सर्ग, स्वाध्याय में ही लीन रहते। एक बार मासोपवास पारण के लिये वे नगरी में आये। ,उनकी दृष्टि में सभी नगरवासी समान थे। वे छोटों को भी बडों के रूप में देखना चाहते थे। इस प्रकार जीवन का अध्ययन तथा भिक्षा की गवेषणा करते उच्च मध्यम व निम्न कुलों में घूमने लगे। किन्तु कहीं भी उनकी वृत्त्यानुसार आहार न मिला। अन्त में दैवयोग से नागश्री के घर पहुचे गये। नागश्री ने अपनी असावधानी को छुपाने के लिये छुपाकर रक्खा हुआ वह कटु तुम्बक का शाक उन्हें कचवर पात्र समझते हुए दे दिया। उसे लेकर धर्मरुचि अपने स्थान पर पहुँचे और शास्त्र विधि के अनुसार उसने उसे गुरु के समक्ष रखा। और उसके सम्बन्ध की सारी बातें सुनाकर वे स्वाध्याय आदि दैनिक क्रियाओं में लग गये।

पात्र में रहे हुए उस शाक को देखकर तथा उसमें से निकलती हुई तीव्र गन्ध को जानकर उनके दिल में शका उत्पन्न हुई। पहले तो उन्हें अपनी शका निर्मूल प्रतीत हुई किन्तु जब उसमें से चखा तो वह सचमुच ही कडवा निकला था। उन्होंने तत्काल धर्मरुचि अणगार को बुलाया और कहने लगे—"हे शिष्य ! हे तपस्वी !! यह शाक कटु रस वाला है यदि तू इसे खायेगा तो अकाल में ही तेरे प्राण पखेरू उड़ जायेंगे। साधक के लिए यह उचित नहीं कि वह जान-बूझकर आत्म-

हत्या के लिए उतारू हो जाये। अर्थात् जीवन परित्याग की कामना करे। अतः तुम इसे कहीं एकांत शुद्ध स्थान—जीव रहित भूमि पर जाकर उपयोग पूर्वक डाल दो और अन्य आहार की गवेषणा कर पारणा करो।" तदनुसार गुरु आज्ञा को शिरोधार्य करता हुआ उपवन से निकलकर निर्जन वन मे चला गया। वहाँ जाकर उसने एक निर्वद्य स्थान पर शाक के एक बिन्दु को डालकर देखा कि उसकी तीव्र गन्ध के प्रभाव से सहस्रों चींटियां इधर-उधर घूमती हुई आ पहुंची तथा अन्य जीव भी आकर मडराने लगे। ज्योंही चींटी आदियो ने उस शाक का आस्वादन किया त्यों ही वे मरती चली गईं। उनके लिए उसका एक बिन्दु भी विष का आगार बन गया।

उनको इस तरह मरते हुए देख धर्मरुचि की हृदय द्रवित हो उठा। उस दयालु मुनिराज ने करुण विगलित हो सोचना आरम्भ किया कि "सभी जीव इस जगती पर जीवित रहना चाहते हैं। दुःख सबको अप्रिय लगता है। कोई भी अपने आपको दुखित एव त्रस्त देखना नहीं चाहता। मुझे जिस प्रकार अपने प्राण प्यारे हैं, प्रत्येक प्राणि भूत, सत्व को भी प्यारे है। यह आत्मोपम्य की पवित्र भावना ही तो संसार में प्राणियो के सम्बन्ध को जोड़े हुए है तथा सहानुभूति सह अस्तित्व आदि इसको उन्नति के लक्षण हैं। जहाँ इन तत्वों का अभाव होता है, वहाँ नाना दुःख आकर सताने लगते हैं। जीवन नारकीय बन जाता है। जब मैं इन सब बातों को जानता हूँ और स्वाध्याय, तप आदि का अनुसरण करता हूँ तोफिर यह अनर्थ क्यों करने लगा हूँ। जानते हुए, समझते हुए कुकृत्य का करना आत्म वंचना नहीं है? क्या यह ससार को धोखा देना नहीं? नहीं, मैं ऐसा कभी नहीं करूँगा। यह घोर पाप है, हिंसा है, नर्क का कारण है। ज्ञान दूसरों को निर्भय तथा जीवित रखने शिक्षा देता है तो चारित्र्य उसे क्रियात्मक रूप देने की। किन्तु मैं एक अपने तनिक स्वार्थ के लिए कि जिन्दा रहूँगा इन सहस्रों के प्राणियों के प्राणों का अतिपातन करने लगा हूं। नहीं यह मेरे लिए कदापि उचित नहीं। मैंने षड्कायिक जीवों की हिंसा न करने की मानसिक, वाचिक और कायिक योग से प्रतिज्ञा ली है, क्या मैं उसे आज भंग कर दूँ?

यही तो परीक्षा का समय है।"

इस प्रकार सोचते हुए उस दीर्घ तपस्वी ने उस कटुक पदार्थ को प्राणी दया निमित्त पृथ्वी पर न डाल अपने उदर में ही स्थान दिया। बस फिर क्या था। उसके पेट में उतरते ही मुहूर्त भर में उनके कर्कश एव असह्य वेदना उत्पन्न हो गई और देखते-ही-देखते उनका शरीर निर्जीव गया। उसकी आत्मा स्वर्गगामी हो गई। अर्थात् प्रतिक्रमण-पापालोचना करके सिद्ध एव अरिहत तथा अपने आचार्य को वदना कर अन्त मरण समाधि में लीन हो उनकी आत्मा सर्वार्थसिद्ध नामक देवलोक में चली गई।

धर्मरुचि अणगार को न आता देखकर स्थविर धर्मघोष के हृदय में विचार उत्पन्न हुआ 'कि क्या बात है वह तपस्वी अब तक लौटकर नहीं आया। शरीर के कृश होने के कारण कहीं कोई आशंकित घटना तो नहीं घट गई।' यह सोचकर उन्होंने अपने शिष्यों को ढू ढ़ने के लिए भेजा। ढू ढ़ते-ढू ढ़ते शिष्य उसी निर्जन वनखण्ड में जा पहुचे जहा धर्मरुचि अणगार के पार्थिव देह के सिवाय कुछ नहीं था। उसके प्राण रहित व निश्चेष्ट शरीर को देखकर उन्हे बड़ा विस्मय हुआ। अनायास ही उनके मुँह से निकल पड़ा हा हा! अरे!! यह अकाल में कुकार्य कैसे हुआ। मण्डल की इस दिव्य-विभूति के जीवन के साथ किसने खिलवाड़ की।" फिर उन्होंने कायोत्सर्ग कर उस दिवगत आत्मा के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की और उसके रहे हुए धर्मोपकरणों को लेकर चले आये।

धर्मरुचि के उपकरणों को अपने सामने देख आचार्य धर्मघोष ने पूर्व-गत उपयोग लगा अथवा अवधिज्ञान के बल से इस अनर्थ के कारण ढ़ुंढ़ने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने बताया हे आर्यो! धर्मरुचि अण-गार की मृत्यु का कारण इसी नगरी में अवस्थित नागश्री नामक ब्राह्मण पत्नी द्वारा दिया कटुक व्यजन है अत यह ब्राह्मण पत्नी निर्दया अधन्या तथा अपुण्यवती है, जिसने अपने तनिक स्वार्थ के लिये उस सरल हृदय विनयात्मा धर्मरुचि के प्राण ले लिये। और इसी महापाप वन्ध के कारण ही उसे नर्क-तिर्यक् आदि अशुभ योनियों में भटकना होगा।"

गुरु मुख से इन वचनों को सुनकर शिष्यगण बड़े कुपित हुये।

उनके धैर्य तथा समता का बॉध टूट गया । उन्होंने इस दुष्कृत्य समाचार को लोगों में प्रसारित किया । जिससे वह सोमदत्त के कानों तक भी पहुँच गया ।

सोमदत्त ने इस अपवाद को अपने कुल का कलंक समझा । उसे महान् दुख हुआ नागश्री के इस कुकृत्य पर । वह तत्काल नागश्री के पास पहुँचा और उसे उसके लिए अत्यन्त भर्त्सना दी । पर बात छुपने वाली न थी, धीरे-धीरे वह आबाल वृद्ध सभी के कानों पहुँच गयी । उसके भाइयों को जब मालूम हुआ तो वे भी परिवार सहित वहाँ पहुँचे और सब मिलकर लगे नागश्री को इस प्रकार कहने-अरि ! अप्रार्थी की प्रार्थना करने वाली नागश्री तू सचमुच निष्ठुरा है । अरि दुष्टा ! तपस्वी को कटुक शाक देते हुये तुझे लज्जा नहीं आई । हीन लक्षणे । तेरे लक्षणों से स्पष्ट लक्षित होता है कि सचमुच तेरे द्वारा ही यह महान् पाप किया गया है । तूने हमारे कुल को कलंकित कर डाला है । आज तो तूने एक साधु के प्राण लिये हैं कल को तू हमारे मे से किसी पर हाथ साफ करेगी । पापिन ! तू कच्चे नीम फल के समान कटु है । तू सर्वथा त्याग देने योग्य है जा निकल जा अभी हमारे घर से ।

यों कहते हुए उन्होंने नागश्री के शरीर पर रहे बहुमूल्य आभरणों तथा वस्त्रो को भी छीन लिया और उसे धक्के देकर बाहर निकाल दिया । अब गृह निर्वासित बेचारी नागश्री चम्पानगरी के द्विपथ, चतुष्पथ आदि राजमार्गों तथा गलियों में भटकने लगी । वह जिधर भी निकल जाती अबाल वृद्ध सभी उसकी भर्त्सना करते, कटुक शब्द कहते । यहां तक कि उन्होंने कंकर पत्थर मार कर उसके शिर आदि अङ्गों को घायल कर दिया । देखिये यह वही समृद्धशालिनी स्वरूपा नागश्री है जिसकी सेवा में अनेकों को दास दासियाँ प्रतिक्षण उपस्थित रहते थे; जो निरन्तर अनेकों को अन्नादि दान देती हुई आनन्दमय जीवन बिता रही थी, वही आज पेट पूर्ति के लिये दर दर की भीख मांग रही है । जिसके सिर पर दरिद्रों की भाँति फूटा हुआ मिट्टी का घड़ा पानी पीने के लिये रक्खा है । शरीर पर रमणीय आभरणों के स्थान पर घावों में से रक्त धारा बह रही है । उसका पुष्ट वदन पिचक गया, आँखें अन्दर गड़ गई हैं । बाल बिखरे हुये हैं । वर्ण श्याम हो

गया है। चम्पापुरी के धनाढ्य परिवार की सर्वांग सुन्दर महिला आज साक्षात् राक्षसी की भाँति दिखाई दे रही हैं। सारा जन समुदाय जिससे घृणा करता है। अन्त में उसके शरीर में कुष्ठ श्वास आदि सोलह महा रोग उत्पन्न हो गये। किन्तु कोई उपचार करने वाला नहीं मिला। यह सब कुछ स्वोपार्जित कर्म फल ही था। मनुष्य कर्म करता हुआ विचार नहीं किया करता। यदि करले तो उसे इस प्रकार की यातनाए न भोगनी पड़े। क्योंकि *"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृत कर्म शुभाशुभम्"* के अनुसार फल भोगना ही पड़ता है।

इस प्रकार निराश्रितों की भाँति दुखमय जीवन के लिये रोती चिल्लाती व अनुताप करती हुई, काल धर्म को प्राप्त हो गई। शास्त्र-कारों का कथन है कि मृत्यु के पश्चात् नागश्री मघा नामक छठे नर्क में नैर्यिक रूप में उत्पन्न हुई। वहां की दीर्घ आयु को बिता कर मत्स्य रूप में समुद्र में उत्पन्न हुई। वहां से शस्त्र द्वारा मारी जाकर सातवीं नर्क में जा पहुँची। पुनःमत्स्य योनि में जन्म हुआ। और फिर भी मारी जाकर सप्तम नर्क में ही गई। इस प्रकार मत्स्य, परिसर्प आदि योनियों में जन्म-मरण करती सातों नर्कों में दो दो बार तथा एकद्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय और पचेन्द्रिय जाति में अनेक बार भव भ्रमण किया। इस प्रकार भवारण्य में भ्रमण करती हुई पुण्योदय से इसी चम्पानगरी में सागरदत सार्थवाह१ के यहां भद्रा पत्नि की कुक्षि से बालिका रूप में जन्म लिया। वह अत्यन्त सुकुमार शरीर व हस्ति के कोमल तालु भाग के समान लाल वर्ण वाली थी। अतः माता पिता ने उसका सुकुमालिका नाम दिया। पांच धात्रिओं द्वारा लालित पालित होती हुई यह कुमारी द्वितिया के चन्द्र कल की भाँति वढ़ने लगी। यथा समय उसे नारियोचित्त शिक्षा दीक्षा दी गई। धीरे २ वयस्क हो जाने पर उसके अगों से योवन फूटने लगा। उसके लक्षणों से यह लक्षित होता था कि वह बाल्य भाव से मुक्त हो चुकी है।

× 'सार्थवाह' से अभिप्राय यहा सार्थ अर्थात् यूथपतिसे है। क्योकि प्राचीन समय में द्रव्योपार्जन के लिए पैदल अथवा जलयान द्वारा एक सार्थ (काफला) किसी के नेतृत्व में व्यापारार्थ जाया करता था। अत वह नेता 'सार्थवाह' कहलाता है। आगे चलकर उनके वंश में सार्थवाह पद रूप भी हो गया।

इन्हीं दिनों यहा जिनदत्त नामक एक सार्थवाह था। जिसके पास अपार धन राशि थी। जो अपनी भद्रा भार्या के साथ सुख से जीवन व्यतीत कर रहा था। उसके यहां सुकुमार तथा स्वरूपवान एक सागर पुत्र था। सुकुमारिका की भांति उसे भी जिनदत्त ने पुरुषोचित्त गुणों तथा कलाओं की शिक्षा दी थी।

एक बार सुकुमालिका स्नान मज्जन कर वस्त्राभूषणों से विभूषित होकर अपनी सखियों के साथ स्वर्णमय गेन्द से खेल रही थी कि उधर से जिनदत्त सार्थवाह आ निकला। अनायास ही उसकी दृष्टि सुकुमालिका पर पड़ी, उसके अपूर्व रूप को निहार कर वह अत्यन्त विस्मित हुआ। उसने तत्काल अपने साथ रहे कौटुम्बिक पुरुषों से पूछा यह किसकी पुत्री है, इसका क्या नाम है ? इस पर वे कहने लगे हे स्वामिन् ! यह यह सागरदत्त सार्थवाह की पुत्री सुकुमालिका है।

घर आकर जिनदत्त सार्थवाह अपने शयन कक्ष में सुकुमारिका के बारे में कुछ सोचता रहा। अन्त में उसने वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो कौटुम्बिक पुरुषों को साथ ले सागरदत्त के यहॉ जाने का निश्चय किया।

सागरदत्त अपने वाह्योपस्थान में बैठा अनेकों मनुष्यों से वार्तालाप कर रहा था। जिनदत्त को आया देख उसने बहुमान के साथ सत्कार कर आसन दिया। और पूछने लगा—"कहिये आज आपका यहाँ कैसे आना हुआ ? आपका यहां आना कुछ रहस्यमय प्रतीत होता है।" सागरदत्त की बात को सुनकर जिनदत ने कहना प्रारम्भ किया श्रेष्ठिवर ! मैं तुम्हारी रति समान पुत्री सुकुमालिका को अपने पुत्र सागर के लिये याचना करने आया हूँ यदि तुम उचित समझते हो और योग्य श्लाघनीय व समान सयोग चाहते हो तो अवश्य ही मेरे पुत्र के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दो।

सागरदत्त ने कहा—श्रेष्ठिवर ! बात तो आपकी ठीक है किन्तु यह सुकुमालिका हमारी इकलौती संतान है जो हमें अत्यन्त इष्ट, कान्त एवं प्रिय है। इसके नामोच्चारण से ही हमें बहुत संतोष मिलता है और फिर देखने की तो बात ही क्या है अतः हम इसे अपने से एक क्षण भी विलग नहीं करना चाहते। हॉ यदि आपका पुत्र हमारा गृह जामाता बन कर रहे तो मैं अपनी

पुत्री का विवाह उसके साथ कर सकता हूँ, अन्यथा नहीं। इस पर जिनदत्त ने अपने पुत्र के साथ परामर्श करके उत्तर देने के लिये कहा।

घर आकर सार्थवाह ने अपने पुत्र सागर से इस विषय की चर्चा की किन्तु वह पितृ लज्जा की दृष्टि से वह सर्वथा मौन ही रहा। अत *'मौन' सम्मति लक्षणम्'* के अनुसार पुत्र के मनोगत भावों को जानकर और बन्धु वर्ग से परामर्श कर सागरदत्त के यहाँ उसके शर्त की स्वीकृति की सूचना भिजवादी।

तदनुसार शुभ दिन में सुकुमालिका के साथ कुल परम्परा की वैवाहिक रीति के अनुसार बड़ी धूमधाम से सुकुमालिका के साथ सागरदत्त का विवाह सपन्न हो गया।

गृह जामाता सागर ने पाणिग्रहण के समय सुकुमालिका का हाथ अपने दाहिने कर में लिया तो उसका स्पर्श अगार के समान प्रतीत हुआ। किन्तु वह उस समय इस विषय को अधिक सोचने की अवस्था में नहीं था, अत कुछ भी विचार नहीं किया। रात्रि के समय जब वह अपने शयन कक्ष में शयन के लिए गया। वहाँ सुकुमालिका के साथ शरीर स्पर्श हुआ तो वह अग्नि तेज के समान तीक्ष्ण प्रतीत हुई। खैर उस समय तो वह मौन साधे ही पड़ा रहा किन्तु जब सुकुमालिका को निद्रा आ गई तो वहाँ से चुपचाप अपने घर भाग आया। सुकुमालिका की निद्रा भग हुई तो उसने देखा कि उसका पति वहाँ नहीं है। यह देख वह बड़ी चिन्तातुर हुई। इधर उधर खोजने लगी किन्तु कुछ भी पता न लगा। अन्त में हताश हो वह उच्च स्वर से रोने लगी। उसकी इस रुदन ध्वनि को सुनकर उसकी दास दासियों ने उसे यह कह कर ढ़ाढ़स बधाया कि वह सागर को येन केन प्रकारेण खोज कर यहां ले आयेंगे। और माता ने समझाते हुए कहा। हे पुत्री। तू शोकाकुल मत हो। यह प्रात काल का मगलमय समय है, अतः तुझे दन्त धावनादि करके ईश उपासना में लीन होना चाहिए।

अपने जामाता को ढूंढता हुआ सागरदत सार्थवाह जिनदत्त के यहाँ पहुँचा और उसके रात्रि में लुप्त हो जाने का सारा वृतान्त कह सुनाया और उपालम्भ देने लगा कि कुलीन व्यक्तियों को इस प्रकार का विश्वासघात शोभा नहीं देता। किसी की कन्या के जीवन के साथ

इस प्रकार खिलवाड़ करना अच्छा नहीं, आप उसे शीघ्र ही मेरे यहाँ पहुंचाने की व्यवस्था कीजिये।' सार्थवाह की बात को सुन कर जिनदत्त की लज्जा के मारे आँखे नीची हो गई। और मन ही मन दुखित होते हुये पुत्र को पास बुलाकर इस प्रकार कहने लगा हे पुत्र! रात्रि मे तू सागरदत्त की बिना आज्ञा ही क्यों चला आया। इसमें तेरा मेरा तथा कुल का अपमान है। मैं अनेकों सार्थवाहो के बीच तुझे सागरदत्त का गृह जामाता बनाने का वचन दिया था अतः तुझे इसी समय वहाँ लौट जाना चाहिए, इसी मे शोभा है। पुत्र! प्रामाणिकता के नष्ट हो जाने पर धन, यौवन, बुद्धि, बल आदि सब साधन तुच्छ प्रतीत होते हैं। अतः मनुष्य का जीवन प्रामाणिक होना चाहिये।"

पिता की बात को सुनकर सागर ने कहना आरम्भ किया—पिता जी, मैं पर्वत से गिर कर वृक्ष से कूद कर या अग्नि मे जलकर प्राण दे सकता हूँ। चाहो तो मरुस्थल जैसे शुष्क प्रदेश मे रह जीवन व्यतीत कर लूँगा, पानी मे डूब कर मर जाऊँ, विष भक्षण व अन्य किसी साधन से आत्म हत्या कर लूगा, आप गीध जैसे मास लोलुप पक्षियों से मेरा शरीर नोचवा दो,या देश निर्वासित करवादो। यह सब प्रायश्चित मुझे सहर्ष स्वीकार होंगे किन्तु उस सागरदत्त के घर जाना कदापि स्वीकार न होगा।"

अपने जामाता के ऐसे वचन सुनकर सागरदत्त को मर्मान्तक पीड़ा पहुची। निराश हो वहाँ से घर लौट आया, और अपनी पुत्री को उसके वियोग के लिए सांत्वना दे विश्वास दिलाया कि अब वह उसे ऐसे व्यक्ति के ब्याहेगा जो उसे अपनी सहधर्मिणी स्वीकार कर रखेगा।

सुकुमालिका के स्पर्श की बात प्रसिद्ध हो गई थी। अतःकोई उसको स्वीकार करने को तैयार न हुआ। इससे सागरदत्त सदा चिन्तित रहता।

एक बार गवाक्ष में बैठे हुये उसकी दृष्टि मार्ग में जाते हुए दरिद्र युवक पर पड़ी जो शरीर मे पुष्ट तथा गौर वर्ण वाला था। वस्त्र फटे हुये थे, मुँह पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। सागरदत्त ने उसे अपने पास बुलाया और स्नान मंजन आदि करवा कर पहिनने के लिये उत्तम वस्त्र तथा आभूषण दिये और भोजनोपरान्त वह उसे कहने लगा हे युवक! परम सुन्दरी सुकुमालिका पुत्री को मै तुझे देता हूँ इसे तुम

अपनी पत्नी स्वीकार कर यहीं आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करो। और इस अमित सम्पत्ति के आज से तुम्हीं मालिक हो।

युवक ने उपरोक्त कथन को इस प्रकार सहर्ष स्वीकार कर लिया मानो किसी निर्धन को धन का अक्षय भडार मिल गया हो। यथा समय जब वह रात्रि को सुकुमालिका के शयन कक्ष में पहुंचा उसे भी वह अगार व असिधारा की भाँति तप्त एव तीक्ष्ण प्रतीत हुई। उसने पुन अपना पूर्व वेश धारण कर लिया और वहाँ से भाग गया। सुकुमालिका पहिले की भाँति रुदन करने लगी। इस पर पिता ने उसे समझाते हुये कहा पुत्री! तेरे पूर्व जन्म के किसी भीषण अन्तराय कर्म का उदय भाव प्रतीत होता है। जिससे तुझे जीवनमें बार बार असफलता मिल रही है। अन्तराय कर्म का यही लक्षण है। अतः अब तुझे अपने प्राप्त जीवन पर ही सतोष कर दान पुण्य तथा धर्माचरण में ही समय लगाना चाहिये जिससे कि अशुभ कर्मों की समाप्ति हो सके।

अब सुकुमालिका पिता द्वारा दर्शित मार्ग में जीवन बिता रही थी कि उसके घर एक दिन गोपालिका नामक आर्या का आगमन हुआ। उसने उनका बहुमान के साथ स्वागत सत्कार किया और आहार आदि देकर अपनी दुःख भरी कहानी कह सुनाई। आर्या ने उसे आत्म सन्तोष दिलाते हुए तप आदि के अनुसरण की शिक्षा दी। तदनुसार सुकुमालिका नाना विध तपचरण के अनुष्ठान में लग गई। तदनन्तर माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर उक्त आर्या के पास दीक्षित हो गई। और वहाँ वह ज्ञानाभ्यास करती हुई चारित्र्य का पालन करने लगी।

यूँ ही समय बीतता गया। एक दिन सुकुमालिका आर्या के हृदय मे उद्यान मे धूप की आतापना लेने की इच्छा उत्पन्न हुई। क्योंकि आज भी श्रमण निग्रन्थों के लिए कहा गया कि —

आयावयति गिम्हेसु, हेमतेसु अवाउडा।
वासासु पडिसलीणा, सजया सुसमाहिआ॥

अर्थात सुसमाधिवंत सयति ग्रीष्मऋतु में आतापना लेते हैं तथा शरदऋतु मे वस्त्र रहित अथवा अल्प वस्त्रों में रहते हैं और वर्षा ऋतु में तो कच्छप की भाँति अपनी इन्द्रियों को वश मे रख कर ही स्थिर रहते हैं।

उसने जाकर अपनी स्थविरा से उस लिए आज्ञा मागी किन्तु

उत्तर में उन्होंने कहा कि 'बस्ती के बाहर निर्जन वन तथा अन्य शून्य स्थान में आर्याओं के लिए आतापना लेना निषिद्ध है।' किन्तु यह उत्तर सुकुमालिका को पसन्द न आया। वह अपने निश्चयानुसार उद्यान में अकेली रह आतापना आदि लेने लगी।

ससार में अनेक विचारों के मनुष्य होते है। कोई सज्जन तो कोई दुर्जन। चम्पा नगरी में भी एक ललित गोष्ठी थी जिसमें परस्त्री गामी, वेश्यागामी आदि दुर्व्यसनी लोग जमा रहते थे। इसमें अधिक धनी लोगोंकी सख्या थी जो गृह निर्वासित, निर्लज्ज विषय लोलुप आदि थे। इन्हीं दिनो यहाँ एक देवदत्ता नामक सुप्रसिद्ध वेश्या थी। एक बार वह उक्त ललित गोष्ठी के पाँच सदस्यों के साथ उद्यान के एक भाग में क्रीड़ा कर रही थी। दैवयोग से, इसी में सुकुमालिका आर्या बैठी थी। उसकी दृष्टि अनायास ही उस वेश्या पर जा पड़ी। उसने देखा कि एक उसे गोद मे लिये बैठा प्यार कर रहा है तो दूसरा उसके सिर पर चवर कर रहा है। तीसरा सुगधित पुष्पों से उसकी वेणी को सजा रहा है। इसी प्रकार वे पाँचो पुरुष उसकी सेवा तल्लीन हैं, और स्त्री भी प्रसन्न हो उनके साथ क्रीड़ा कर रही है।

इस दृश्य को देखते ही सुकुमालिका को अपने गृहस्थ के दुखी जीवन का स्मरण हो आया। वह अनुताप कर लगी कि यह स्त्री अत्यन्त शोभाग्य शालिनी है जिसके कि पाँच पाँच पुरुष सेवा मे तत्पर रहते है किन्तु मैं ऐसी भाग्य हीना थी जिसको कि एक पति का सुख भी प्राप्त न हो सका।

इस प्रकार सोचती अनुताप करती हुई सुकुमालिका के हृदय का धैर्य एवं समता का बाँध टुट गया। विषय बासना जागृत हो गई। अप्राप्य की कामना करने लगी। अन्त में उसने अपने तपोनुष्ठान के फल प्राप्ति की इच्छा की "कि यदि मेरे तप आदि का प्रभाव है तो उनके कारण मैं भी अपने आगामी भव में इसी स्त्री की भाँति सुखोपभोग भोगने वाली बनूँ।" इस प्रकार निदान बाँध कर वह कुछ-कुछ नियम विरुद्ध जीवन मे प्रवृत्त होने लगी।

इस पर आर्याओं ने उसे सम्भलने की चेतावनी दी और उसे एकांत मे न रहनेके लिये भी आदेश दिया। किन्तु उस आदेश का उसके जीवन पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उल्टे और असयम स्थानों को अपनी

क्रियाओं में उतारने लगी। इस प्रकार कुछ वर्षों तक एकांकी जीवन बिता कर काल धर्म को प्राप्त हुई। मृत्युपरान्त वह देवलोक में अपरि-गृहीता देवियों में उत्पन्न हुई।

हे राजन्! देव आयुष्य को पूर्ण कर उसी देवी ने चूलना की कुक्षि से तेरे घर जन्म लिया है। और पूर्व कृत निदान (फल प्राप्ति की अभिलाषा) के कारण ही पाँचों के गले में वरमाला प्रतीत हुई अत इससे चिन्तित तथा विचार मग्न होने की आवश्कता नहीं है। क्योंकि निदान शल्यरूप होता है। शरीर के किसी अंग में चुभा हुआ काटा निकल न जाय तब तक चैन नहीं लेने देता ठीक उसी भाँति निदान की पूर्ति अर्थात् उसका फल प्राप्त न हो जाय अभिलाषा तीव्र बनी ही रहती है। तीन प्रकार के शल्य होते हैं माया निदान और मिथ्यादर्शन। जिनके फलस्वरूप आत्मा मोक्ष से वचित रह नाना क्लेशों को प्राप्त होता है।

मायाशल्य—अपने स्वार्थ वश अथवा निरर्थक ही दूसरों के साथ कपट विश्वासघात तथा मिथ्या दोषारोपण आदि का व्यवहार करते रहना। इस क्रिया से वस्तुतः मानव अपने साथ ही कपटपूर्ण व्यवहार करता है, उसके हृदय में प्रति क्षण उसकी रक्षा के लिये अशांति बनी ही रहती है। इस आत्मवचना का प्रतिफल भव भवान्तरों अवश्य में ही भोगना पड़ता है। दूसरा निदान शल्य-यह अनेक प्रकार है, शुभ भी अशुभ भी। किन्तु इसकी भी पूर्ति के बिना त्याग, तप और सयम की ओर लगाव होना सर्वथा असभव होता है अत यह भी मुमक्षु के लिए बाधक है।

तीसरा मिथ्या दर्शन—इस शल्य के होते हुए उस आत्मा मे तत्त्वातत्त्व के परिक्षण की शक्ति नहीं होती, बुद्धि सवथा विपरीत वस्तुओं के श्रद्धान में ही लीन रहती है। जिसके प्रभाव से वाचिक व कायिक प्रवृत्तियाँ भी उसी तरह की हो जाती हैं। इसी प्रकार अध-श्रद्धा-विश्वास में फसे रहने से आत्मा पर निरन्तर कर्म कालुष्य आता रहता है जो भव वृद्धि में कारण रूप है, अतः ऐसी स्थिति मे आत्म साक्षात्कार होना तो दुर्लभ है ही किन्तु जीवन के सामान्य गुण भी प्राप्त नहीं हो पाते। ऐसे आत्मा पर दूसरों के विचारों का प्रभाव शीघ्र ही हो जाता है। अत वह अपना एक मार्ग निश्चित नहीं कर पाता और मार्ग दर्शन के अभाव में इतस्तत भटकता रहता है। अतः

मनुष्य को कोई भी कार्य चाहे वह सासारिक हो व आध्यात्मिक उसके प्रतिफलकी अभिलाषा नहीं करनी चाहिये कर्त्तव्य पालनका लक्ष्य रखना ही मानवता है। कर्त्तव्य पालन का फल तो सुन्दर होता ही है फिर इस विषय मे शका क्यों। शका निश्चय को चंचल करती है। अभिलाषा पुनर्जन्म की जड़ को हरी भरी बनाती है अतः आत्मा को कर्त्तव्यनिष्ठ ही रहना चाहिए। खैर, चिंतत होने की आवश्यकता नहीं यह द्रौपदी कन्या सर्व कर्म मल को क्षय करके मोक्षप्राप्त करेगी।" यह कह कर मुनि अदृश्य हो गये।

द्रौपदी के पूर्व, जन्म के वृतान्त को सुन कर हुआ चूलना के हृदय को शान्ति मिली और उपास्थित नृपो की हृदय शकां भी दूर हो गई। पश्चात् महाराज द्रुपद ने कुल परम्परानुसार अर्जुन के साथ बड़ी घूमधाम से विवाह कर दिया। द्रौपदी जैसी रूपवती गुणवती पुत्रवधू को पाकर महाराज पाण्डु तथा कुन्ती, माद्री सभी कृतकृत्य हो उठे। सर्वत्र प्रसन्नता का वतावरण छाया रहा। इस प्रकार कार्य समाप्ति के पश्चात् महाराज पाण्डु श्री कृष्ण व दशों दशार्हों सहित हस्तिनापुर चल पडे।

उधर सदेश वाहक द्वारा द्रौपदी विवाह की सूचना पाते ही अन्य मंत्रियों, राजकर्मचारियो ने हस्तिनापुर नगर को नवविवाहित दूल्हे भाँति सजवाया। द्विपथ, चतुष्थ आदि राज मार्गो मे नाना कलाकारो द्वारा निर्मित नाना भाँति के द्वार अवस्थित थे। उन प्रत्येक द्वारशिखर पर राज्य चिह्नांकित ध्वजाएँ फहरा रही थीं। द्वार भाल नव विवाहित राजकुमार व नव वधू की मगलकामना के सूचक वाक्यों से मडित थे। नगर प्रवेश द्वार तथा दुर्ग के प्रमुख द्वार पर स्थित मणिरत्नो से निर्मित 'स्वागतम्' शुभागमन' पट्ट आनेवाले वर-वधू तथा श्रीकृष्ण जैसे पराक्रमी भावी वासुदेव का नगरवासियों की ओर से स्वागतार्थ प्रतीक्षा कर रहे थे। सारा नगर रगविरगी पताकाओं से आच्छादित था। राजप्रसादो व राजभवनों का शृ गार तो सचमुच वर्णनातीत था ही किन्तु नगरवासी प्रसिद्ध श्रेष्ठियो की अट्टालिकाएँ भी राजप्रसाद की होड करने लगीं। मध्यमवर्गीय लोगों के भवन उन अट्टालिकाओं की समता करने लगे थे। स्थान स्थान पर नृत्य गान का आयोजन होने लगा, जिसमे आबाल वृद्ध सभी आनंद लूटने लगे। इस प्रकार आग-

मन के पूर्व ही प्रसन्नता का वातावरण नगर में व्याप्त हो चुका था फिर आगमन के पश्चात् की तो बात ही क्या थी।

एक दिन प्रतीक्षा का अवसान हुआ। सूचना मिली कि कल मध्याह्न काल में राज्य हृदय हार महाराज का नगर मे आगमन होगा। बस फिर क्या था, चल पडे सभी अपने महाराज के स्वागत में श्रीकृष्ण के दर्शन और नववधू को निरखने को यथा समय सवारी आई। राजवाद्य ने मगल ध्वनि ध्वनित की, ललनाएँ मगल बंधाई गीत गाने लगीं। महाराज पाण्डु निमन्त्रित राजाओं तथा अपने राजकुमारों के साथ साक्षात् अमरावती के स्वामी इन्द्र की भाँति प्रतीत हो रहे थे। उनके पृष्ठ भाग की ओर चले आ रहे बहुमूल्य रथ पर अर्जुन और द्रौपदी स्थित थे। जो कामदेव और रति की प्रति मूर्ति ही भाषित हो रहे थे। जिसे देख कोई रोहिणी चद्रमा की उपमा देता तो कोई मणि-काञ्चन का सयोग कहता। नारीवृंद तो राजकुमारी की रूप छटा को देखते अघाते ही न था। रह रह कर जनसमुदाय से 'महाराज अमर रहें' युग युग जीवें, युगल जोडी चिरजीवी हो जय हो' की ध्वनि आ रही थी। राजपथों की अट्टालिकाओं, भवनों पर खड़ी सुन्दरियाँ के नेत्र चकोर महाराज की अनुपम प्रतिभा तथा कुमार एव वधू की रूप राशि का पान कर हृदय तृप्त करने में सलग्न थे, उनके कमनीय सुकोमल कर उन पर पुष्प बरसा रहे थे, जिसे महाराज एवं राजकुमार मौन स्वीकृति से स्वीकार कर रहे थे।

इस प्रकार महाराज पाण्डु अपने नगरवासियों द्वारा किये गये अपूर्व स्वागत को स्वीकार करते दुर्ग के प्रागण में जा पहुचे। वहाँ रण में भयकर ज्वाला उगलने वाली विशाल काय तोपों ने अपनी भीषण ध्वनि से उनका स्वागत किया। पश्चात् महाराज ने दुर्ग में प्रवेश किया और वाह्योपस्थान में एक सभा का आयोजन किया। आयोजन में सर्वप्रथम महाराज पाण्डु ने साथ आये समुद्रविजय, वसुदेव, श्रीकृष्ण आदि राजाओं का धन्यवाद प्रदर्शन किया कि 'इन्होंने मेरी तुच्छ विनति स्वीकार कर यहाँ तक आने का कष्ट किया है। पश्चात् अपने मन्त्रियों, नगरवासियों का धन्यवाद करते हुए विवाहोपलक्ष में उन्होंने कारावास से बन्दीजनों को मुक्त करने की तथा अन्य अपराधियों के अपराध क्षमा करने की आज्ञा दी और नागरिकों को तथा

ग्रामीणों को और उचित सुख-सुविधा के साधन आदि जुटाने का आश्वासन दिया।

इस प्रकार विवाहोपलक्ष में दान आदि देते हुए श्रीकृष्ण आदि राजाओं के उचित्त स्वागत सत्कार में लग गये। कई दिनो तक आतिथ्य स्वीकार कर सब राजा अपनी अपनी राजधानियों को लौट गये।

नोट—आगम के उल्लेख से ज्ञात होता है कि द्रुपद राजा, सम्यत्वी अर्थात् अरिहत प्रतिपादित धर्म को स्वीकार करने वाला नही था, क्योकि सम्यत्वी के सुरा पान और मासाहार का प्रयोग नही होता। और द्रोपदी भी निदानकृत होने से सम्यक्त्व धर्म को पालन करने वाली नही थी। किन्तु निदान पूर्ति के पश्चात् महाराज पाण्डु के यहाँ आकर उसे धर्म की अवश्य प्राप्ति हुई थी, जिस के प्रभाव से आगे स्वर्ग मे जाकर बाद मे मोक्ष प्राप्त करेगी।

—०—

द्रोपदी-स्वयंवर पर्यन्त प्रथम भाग

समाप्त

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	२५	आत्मघामक	आत्मघातक
९	१	पूव	पूर्व
१०	२४	सिंहासन	ध्वज
१८	५	लॅगे	लगे
१३	३	सतप्त	सतप्त
१४	१५	तीसरे	तीसरा
,,	१७	मनपयय	मनपर्यय
१५	३२	२२५००	२५००
१७	१५	फलस्वरुप	फलस्वरूप
१८	१६	वहद्ध्वज	वृहद्ध्वज
१९	१०	कुशग्र	कुशाग्र
१९	२०	सवसपन्न	सर्वसपन्न
२०	२	वश	वश
२७	२	बलता	प्रवलता
३१	१४	रक्षणायच	च रक्षणाय
३२	६	अन्तराम	अन्तराय
३७	३	सस्कार	सत्कार
३७	२१	ऐसा	ऐसा है
३९	३	जीव	जीवे
४१	१४	रागी	रोगी
४०	३१	उन॰	उत्तर
४३	१५	पुरुपो	पुण्यो
५३	४	मझदार	मझधार
,,	१०	ढूसरे	दूसरे
५४	२४	लो	तो
५६	१२	लो	ली
,,	२६	क्रर	क्रूर

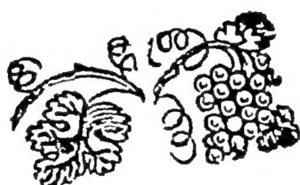
पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५८	२	जैसा	जैसी
,,	९	अकस	अकुश
,,	११	रस	इस
,,	२७	कालाप्रिय	कलाप्रिय
,,	३१	अपने	अपनी
६०	३१	य तो हवहुत	यह तो बहुत
६४	४	कुलक्षणा	कुलक्षणी
७४	२६	स्वरुप	स्वरूप
८१	२८	अगारक	अगारक
८२	८	प्रज्ञति	प्रज्ञप्ति
९६	४	श्रेष्ट	श्रेष्ठ
९७	१०	शान्तवना	सान्त्वना
९६	३०	द्रत	द्रुत
१०५	२२	ज्ञान	गान
,,	२६	श्रति	श्रुति
१०६	१५	अरणगार	अणगार
११०	४	कल	कब
११३	३	इनमें	इनमें से
,,	२६	होता	होता है
१२३	२८	सवार्था	सर्वार्थ
१३४	५	म	में
१४०	१३	कुल सम्वन्ध	कुलकेसम्वन्ध
१४१	२	सन्देह	सघर्ष
१४४	२९	लोग	लोगो
१४५	२५	विला	विद्या
,,	,,	सीखते	सीखने
,,	,,	मिथा	मिला

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४७	१३	कह	कही
,,	१६	प्रकोरण	प्रकारेण
१४६	१५	खते	खाते
१५५	१६	चोदहगरोपम	चोदहसा-गरोपम
१५७	६	की	को
१५६	८	तुझे	तुम
१६२	१६	सुभ्रम	सुभूम
,,	१८	शस्त्रात्र	शस्त्रास्त्र
१६३	५	शरणागत-वन्तसल	शरणागत-वत्सल
,,	३	पुत्र	पुत्र
,,	२७	उम्हे	उन्हे
१६४	२१	द्यूती	द्यूत
,,	२४	इवछा	इच्छा
१६६	१६	भव्व	भव
१६७	१२	शोक	शोकन
,,	१३	सोनन	सोत
,,	१६	पार	पारकर
१८०	३	प्रतीक्षा बैठो थी	प्रतीक्षा मे बैठी थी
,,	२४	इसे	इसी
१८३	६	(इन्द्रसेन)	इन्द्रसेना
१६७	१	पड़ता	पडा
१६६	३	अनन्त	अनन्तर
२००	१४	हर	पर
२०७	५	पासन्न	प्रसन्न
२०६	२१	अर्षभ	ऋषभ
२१५	११	अर्न्तध्यान	अन्तर्धान
२१७	३	दश्रिण	दक्षिण
२१६	२१	श्र ष्ठे	श्रेष्ठि
२२६	११	अपने	आपने
,,	७	पत्पन्न	उत्पन्न
२२७	३	क्षयोपश्य	क्षयोपशम
२३०	हैडिंग	सातवां	दशवा
२३४	१	मम्भ्रान्त	सम्मानित
,,	६	ा	मे
,,	१४	पित	पिता
२३६	२२	आच्छाहि	आच्छादित
२३६	८	आपने	अपने
२४०	२७	क्षुरप्रणामक	क्षुरप्रवाण नामक
२४२	२४	राजाप्रसाद	राजप्रासाद
२४५	१६	जगराज	गजराज
२४६	२३	ओप	और
२४६	७	रुप	रूप
,,	८	सिहते	सिहरते
२५१	८	मासोदवासी	मासोपवासी
,,	१६	पारा	पाश
,,	२०	निघातक	विघातक
२५२	१६	निदानकारण	निराकरण
२५३	१	रूष	पुरुष
,,	१६	मरण	भरण
२५४	१०	सतानदायक	सतापदायक
२५७	३१	वसुदेव	वासुदेव
२६२	१३	स्वमेव	स्वयमेव
२६४	४	शकुन	शकुनि
२६५	१	द्वादश	द्वादशी
,,	२	सेवा	शिवा
२६५	३०	नप का हृदन	नृप का हृदय
२६६	१६	बना	बता

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६७	२३	सन्देह	सन्देश
२६८	२४	सुलक्षरण	सुलक्षण
२६९	फुटनोट	मिलसकता है	मिलता है
२७७	२५	क्षब्ध	क्षुब्ध
२७९	१९	रोढा	रोडा
२८३	२१	सत्ववती	सत्यवती
२८८	२५	क्षत्र	छत्र
२९५	९	ईर्षा	ईर्ष्या
२९७	२६	तडफ	तडप
३०१	२६	कल्पका	कल्पना
३०३	२५	पसृता	प्रसन्नता
३०८	१९	पाण्ड	लावण्यमयी
३१४	१६	कारण	कर्णा
३१७	१०	कुन्ती की वहिन	माद्रराज शल्य की वहिन
३१८	१३	मेह	मेघ
"	"	पुरायातमा	पुण्यात्मा
"	"	मतवान	मतिमान्
३१९		दसोटन	
"	८	भाख	भाव
३२०	७	लावण्य	लावण्य
३२३	१०	एश्वर्य	ऐश्वर्य
३२५	१	धृतराष्ट्र	धृतराष्ट्र
३२७	४	लगता	लगाता
"	९	सूझ	सूझी
"	१०	जाता	गया
"	"	गिरता	गिराता
३३०	३	निद्रासन	निद्रासन्न
३३२	८	पाण्डव	पाण्डव

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३३४	६	अनुश	धनुष
३३५	२४	स्वीकार	अस्वीकार
३३८	१२	लत्त्य	लक्ष्य
३४०	४	नभावित	प्रभावित
"	५	तर्थना	प्रार्थना
३४७	१०	झनुष्य	मनुष्य
३५३	९	वस्त	वस्तु
३५६	३०	कट	कष्ट
३७४	१६	भख	भाव
३८४	१२	दिवा	दिया
३९०	१३	आशा	आज्ञा
"	१९	करतन	करतल
४०५	१	गभ	गर्भ
"	२८	नैमित्यिको	नैमित्तिको
४०७	२०	ने	ने कहा
४०८	२३	होकर	होकर
४०९	१४	समझते	समझने
४१०	१८	वृपभ	वृषभ
४१६	२०	सत्यभाम	सत्यभामा
४२४	२	जैसे	जिसे
४३७	५	जामता	जामाता
४४.	हैडिंग	दमघोप	दमघोष
४४९	२१	भल	भला
४५१	७	कर	पर
४६०	१३	सकाचार	समाचार
"	२४	कीरीट	किरीट
४६२	६	दात	घात
"	१२	मैदा ने	मैया
"	१५	कृष्णजी	कृष्णाष्टमी
४६५	२८	वाहिन	वाहिनी
४६६	फुटनोट	प्रात	प्राते

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६७	,,	छा	हो
४७२	५	समभी	समझी
,,	३२	यदि	यही
४७४	१७	रानियो	रानियो के
,,	,,	उन्होने	वे
४७५	१७	वर	व
४८२	२३	सीनघर	सीमंधर
४८३	३	पुण्वान	पुण्यवान
,,	४	ललित	लालित
४८५	४	क्रुध	क्रुद्ध
४८६	२३	चन्द्रामा	चन्द्राभा
४९२	१८	घार	बार
,,	१६	उस पर	उसे
४९३	७	वह	उस
४९६	२६	सहधामिणी	सहधार्मिणी
५०८	६	वा	था।
५११	८	पीपे	पीते
५१२	१६	उत्कृण्ठा	उत्कण्ठा
,,	१६	पराक्रमी	पराक्रम
,,	३०	इसके	इसके पास
५२१	३०	आंख	आख मूंद
५२६	१४	सहनुभूति	सहानुभूति
५४७	३	द्रुपद	द्रोपदी
५४८	७	[illegible]	[illegible]



पुस्तक प्राप्ति के अन्य स्थान

—०—

१ श्री उल्फतराय जी जैन (मंत्री ग्रन्थमाला)
१०५ वैरिड रोड नई दिल्ली

२ श्री जैनधर्म प्रचारक सामग्री भंडार
जैन उपाश्रय डिप्टीगंज सदर दिल्ली

३ श्री सोहनलाल जैन रजोहरण पात्र भंडार
अम्बाला शहर (पंजाब)

c/o

४ श्री ला० लच्छीराम रामलाल जैन सर्राफ
अम्बाला शहर